श्रीः

गुरु देव

श्रीमद् अमृतवाग्भवाचार्य

(चरितामृत)

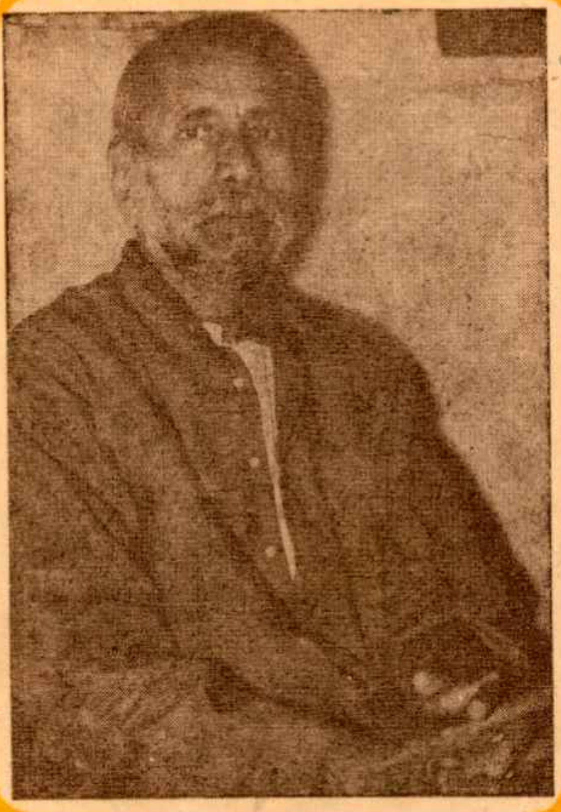

डा० बलजिन्नाथ पंडित्

श्री:

गुरुदेव

श्रीमद् अमृतवाग्भवाचार्य

(चरितामृत)

डा० बलजिन्नाथ पंडित
शास्त्री, एम. ए., पी-एच. डी.
(भारत के राष्ट्राध्यक्ष द्वारा सम्मानित)

सम्पादक—
रत्नलाल अग्रवाल
एम. ए., एल. एल. बी.

प्रकाशक—
विद्वद्वरकल श्री राधाकृष्ण धार्मिक संस्थान
(रजि०) दिल्ली

प्रकाशक—
विद्वद्वरकल श्री राधाकृष्ण धार्मिक संस्थान (रजि०)
दिल्ली

पुनर्प्रकाशनाधिकार—
प्रकाशक संस्था के आधीन है।

सहायक-प्रूफ-संशोधनकर्ता—
श्री माधव शर्मा, एम० ए०

प्रथम संस्करण : वि० सं० २०४६
ई० सन् १९८९

(१००० प्रतियाँ)

मूल्य : रु० ८०/-

मुद्रक—
वन्दना एवं पङ्कज प्रिण्टर्स
मौजपुर, दिल्ली-५३

पुस्तक मिलने का पता—
श्री रत्न लाल अग्रवाल
(१) स्टाफ क्वार्टर, ए-१
दिल्ली हाईकोर्ट, शेरशाह रोड,
नई दिल्ली-३

(२) फ्लेट नं० २८६ आर. पी. एस. कालोनी
मदनगिर (खानपुर डिपो के सामने)
नई दिल्ली-६२

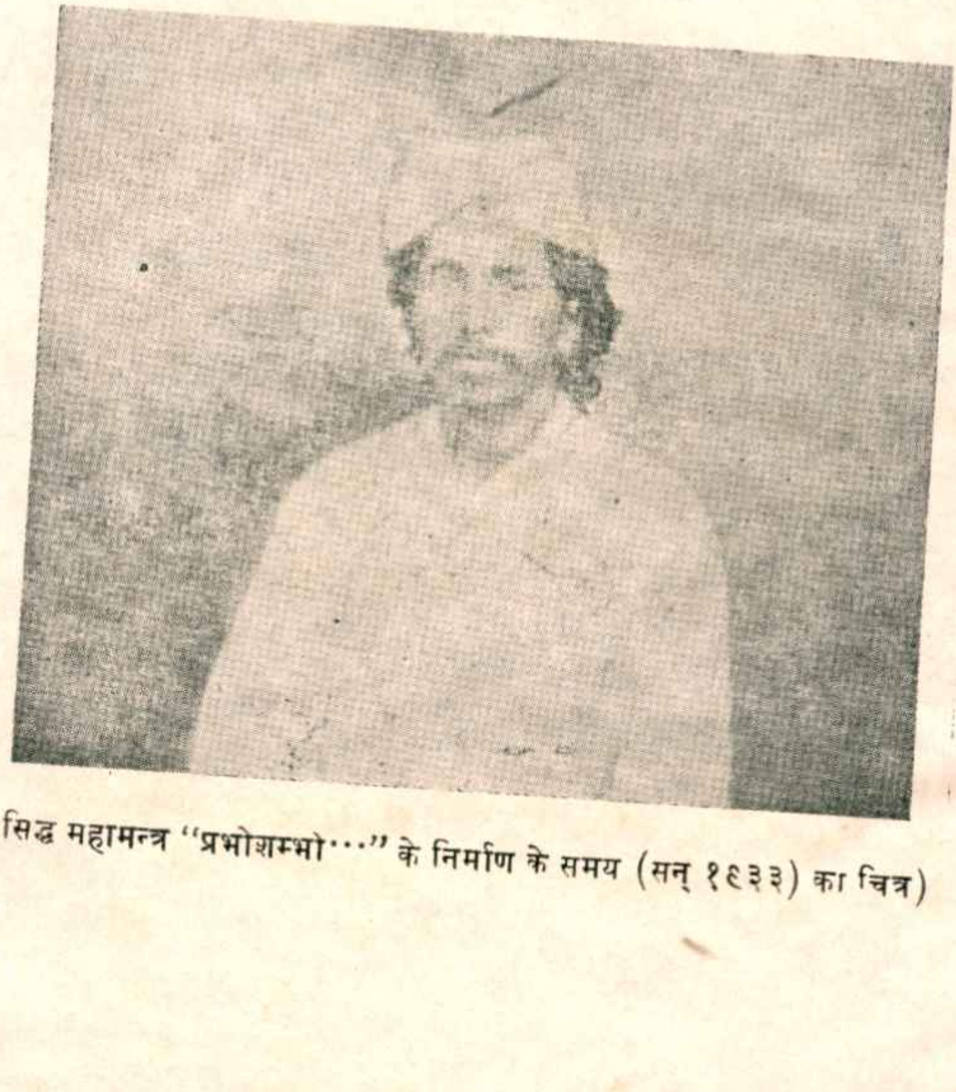

सिद्ध महामन्त्र "प्रभोशम्भो···" के निर्माण के समय (सन् १९३३) का चित्र)

सिद्ध-महा-मन्त्र-मयी प्रार्थना

(आ० श्रीमद् अमृतवाग्भव-निर्मिता)

प्रभो शम्भो दीनं विहितशरणं त्वच्चरणयोर्
भवारण्यादस्माद् विषमविषयाशीविष-वृतात् ।

समुद्धृत्य श्रद्धा-विधुरमपि बद्धादरकरं
दयादृष्ट्या पश्यन्निजतनयमात्मीकुरु शिव ॥

अर्थ—हे सर्व शक्तिमान्, समस्त संसार का कल्याण करने वाले, कल्याण-स्वरूप भगवान् शिव, यद्यपि मुझ में सच्ची श्रद्धा की न्यूनता है, फिर भी मैं अति दीन बन कर आदरपूर्वक हाथ जोड़े हुए आपके चरणों की शरण में आया हूं। (अतः) विषय रूपी भयंकर विषधर सर्पों से भरे इस संसार रूपी महावन में से मेरा उद्धार करके दया-दृष्टि से देखते हुए अपने पुत्र रूपी मुझको (अवश्य ही) अपनाइए, अर्थात् मुझे अपने साथ अभेद भाव का साक्षात्कार करवाइए।

प्राक्कथन

पूज्यपाद आचार्य श्रीमद् अमृतवाग्भव महोदय का प्रथम दर्शन मुझे ई० सन् १९३२ में श्रीनगर में पं० श्रीनाथ जी तिक्कू के तात्कालिक आवास पर गुण्ड अहलमर-वाले श्री गौरीशंकर मन्दिर की धर्मशाला में हुआ था। वह दर्शन तो दर्शन मात्र ही था। परस्पर कोई परिचय नहीं हुआ। फिर विशेष परिचयात्मक दर्शन तथा सम्पर्क श्रीनगर में ही ई० सन् १९३५ में हुआ। पं० श्रीनाथ जी ही मुझे श्री टिकालाल खजांची के घर ले गए जहां पूज्यपाद महोदय ठहरे थे। उन दिनों कश्मीर में लोग उन्हें महात्मा आनन्दस्वरूप कहा करते थे। दूसरा विशेष सम्पर्क मुझे सन् १९३९ में श्री रघुनाथ मन्दिर की ड्योढ़ी के ऊपर स्थित कमरे में हुआ। वे वहां ठहरे थे और एक हिमाचली छात्र ने मुझे सूचना दी कि स्वामी आनन्दस्वरूप जी अमुक कमरे में ठहरे हैं। उस समय दो तीन दिन मैं उनके पास जाता रहा, घण्टों बैठता रहा और उनसे संस्कृत वाङ्मय के आचार्यों का विशेष परिचय मुझे मिलता रहा। आचार्य सोमानन्द का नाम मैंने वहां उन से ही पहली बार सुना। आगे जब पूज्यपाद श्री आचार्य महोदय ने हिमाचल प्रदेश में सोलन नगर में "श्री स्वाध्याय सदन" की स्थापना करके "श्री स्वाध्याय" नामक त्रैमासिक पत्रिका को चालू कर दिया तो मैं भी उस पत्रिका के लिए विविध विषयों पर लेख भेजता रहा। इस माध्यम से मेरा पूज्यपाद जी से विशेष सम्पर्क बढ़ता गया।

सन् १९४७ में जब श्री पूज्यपाद जी अज्ञातवास में रह रहे थे तो मैं वर्ष भर जम्मू में रहता रहा। स्यालकोट में रहने वाले उनके प्रेमी जन उन्हें बहुत ढूंढते रहे। पता लगने पर उन्होंने मेरे साथ सम्पर्क स्थापित किया। शीतकाल में पूज्यपाद जी स्वयं पुनः स्यालकोट आ गए। वहां उन्हें मेरे जम्मू में होने का पता लगा। तब वे एक बार किन्हीं प्रेमी महानुभावों के साथ स्वयं जम्मू आ गए और मुझे उन्होंने दर्शन दिए। एक रात्रि श्यामलाल वर्माणी के घर ठहरे; दीवान प्रेस में श्री राष्ट्रालोक के द्वितीय संस्करण को प्रकाशित करने का प्रबन्ध करवा कर दूसरे दिन मुझे भी अपने साथ स्यालकोट ले गए। साथ श्री महानुभवशक्ति

स्तोत्र की पाण्डुलिपि मुझे दे गए और उस पर संस्कृत टीका तथा हिन्दी अनुवाद लिखने का आदेश दे गए। उस समय उनके वचनामृत को सुनने का सुअवसर मुझे कुछ दिनों के लिए मिला। उन सर्दियों में वे राष्ट्रालोक के प्रकाशन के सम्बन्ध से एक बार पुनः जम्मू आए और मुझे पुनः उनकी अमृतमयी वाणी को सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

आगे ई० सन् १९५८ में मैं उनके दर्शन के लिए ही दिल्ली गया। तदनन्तर सन् १९६० में मैं भरतपुर जाकर कुछ दिन उनके साथ सम्पर्क में रहा। आगे मैं कभी कभी दिल्ली जाता रहा और दो दो तीन तीन दिन उनके सम्पर्क में रहता रहा। परन्तु उनसे विशेष सम्पर्क का सुअवसर मुझे तब मिला जब वे सन् १९६० ई० में कश्मीर आकर अनन्तनाग में मेरे निवास पर दो तीन सप्ताह के लिए ठहरे। ऐसा ही दूसरा सुअवसर मुझे सन् १९६२ में तब मिला जब वे दो तीन सप्ताह हमारे अपने घर में कुलगाम में हमारे साथ ठहरे। उस अवसर पर उन्होंने हमारे घर में "श्रीदेशिकदर्शनम्" और "श्रीसञ्जीवनीदर्शनम्" का निर्माण किया। श्रीसिद्धमहारहस्यं के भी कुछ एक, अंशों का निर्माण उन्होंने वहीं किया। उदाहरणार्थ—श्री कृष्ण दर्शन (तिस्रः स्त्रियों दात्रहस्ताः—इत्यादि) और अमरेश्वर दर्शन के श्लोकों की रचना उन्होंने वहीं पर की। इन दो अवसरों पर उनसे विविध विषयों पर मेरी बातचीत विस्तारपूर्वक होती रही। धर्म, दर्शन, इतिहास, साहित्य जैसे विषयों पर तथा उनकी अपनी जीवनी पर काफी बातें होती रहीं। इस तरह से मुझे उनकी जीवन-गाथा की अनेकों घटनाओं का ज्ञान उन्हीं की वाणी से होता रहा। अपने जीवन की कई एक बातों को तो वे स्पष्टतया सुनाया करते थे। परन्तु उनके अपने परिवार से सम्बद्ध बातों को प्रायः स्पष्ट नहीं किया करते थे। उन बातों का जरा भर स्पष्टीकरण वे अपने मर्त्य जीवन के अन्तिम दो तीन वर्षों में करने तो लगे थे, परन्तु उस समय मैं उनके साथ काफी देर तक कभी रहा नहीं। सन् १९६२ के पश्चात् मैं बहुत बार दिल्ली जाता रहा, परन्तु उनसे दो दो या तीन तीन दिन ही कुछ एक घण्टों का सम्पर्क बनता रहा। सन् १९७२ से सन् १९८० तक मैं प्रतिवर्ष उनके जन्म दिवस पर सुहाणा जाता रहा और उनके दर्शन करता रहा। चण्डीगढ़ में भी बहुत बार उनसे मिलता रहा, विशेष कर तब जब वे हमारे जामाता श्री द्वारिका नाथ पण्डित के पास ठहरा करते थे। सन् १९८१-८२ में यदि मुझे उनके साथ पर्याप्त समय तक रहने का कोई अवसर मिला होता तो मुझे उनकी जीवनी की सभी घटनाओं का स्फुट परिचय मिल गया होता। परन्तु इस बात का बड़ा खेद है कि मुझे उन वर्षों में कोई ऐसा अवसर नहीं मिला।

तो मैंने जो जो बातें उनकी ही वाणी से स्वयं सुनी हैं, उन्हीं के आधार पर मैं उनकी इस जीवनी को लिख रहा हूं। शिवलोक के प्रति प्रस्थान से दो ही मास

पूर्व उन्होंने मुझे अपने हाथ से लिखा हुआ अपने वंश के पूर्वजों का विस्तृत इतिहास दिल्ली में दिखाया था और यह इच्छा प्रकट की थी कि मैं उनके पास बैठकर उसकी एक प्रतिलिपि सुन्दर अक्षरों में लिख दूं। तब मैंने यह सङ्कल्प किया था कि मार्गशीर्ष मास में पन्द्रह दिन की छुट्टी लेकर उनके उस आदेश को पूरा करूं। परन्तु कार्तिक के शुक्ल पक्ष में ही वे अपने मर्त्य शरीर को छोड़कर सिद्ध लोकों की ओर प्रस्थान कर गए। उनके द्वारा लिखा हुआ वह स्ववंश वर्णन जिसका नामकरण उन्होंने "वरकल वंश चरितम्" ऐसा किया है। इस समय मेरे पास है। इसके अतिरिक्त उन्होंने अपना "आत्म चरितम्" तथा अपने सम्बन्धियों और गुरुजनों के जो परिचय श्लोकबद्ध करके रखे हैं, वे भी मेरे पास हैं। इसके अतिरिक्त उनकी कई एक 'डायरियां' मेरे पास विद्यमान हैं और उनकी रचनाओं की एक सूची भी है। परन्तु सन् १९२९ अगस्त से सन् १९३० दिसम्बर तक, तथा १-२-३३ से २०-७-३४ तक और ६-८-३५ से २५-६-३९ तथा २३-७-४२ से ३१-१२-६२ तक की कोई भी दैनन्दिनी उनके सामान में कहीं भी नहीं मिली। फिर उन्होंने अपने जीवन की कुछ एक घटनाओं का वर्णन श्री स्वाध्याय के अङ्कों में भी हिन्दी भाषा में प्रकाशित किया था। वे लेख भी मेरे पास हैं। पूज्यपाद जी के साथ विशेष सहवास के अवसर का सौभाग्य जिन जिन महानुभावों को प्राप्त होता रहा उनसे भी मैं पत्र-व्यवहार कर चुका हूं। फिर उनके संस्मरण, जिन्हें उनके जयपुर वाले भक्तों ने एक पत्रिका के रूप में सन् १९८५ में प्रकाशित किया है, वे भी मेरे सामने हैं। यद्यपि मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि उन महानुभावों में से अनेकों की स्मृति शक्ति कुछ कुछ शिथिल हो गई है, और इस कारण स वे उन उन घटनाओं को पूरी तरह से वैसे ढङ्ग से बता नहीं पा रहे हैं जैसे ढङ्ग से उन्होंने उन्हें सुना था, फिर भी उन महानुभावों से सम्पर्क करने से मेरा यह कार्य काफी मात्रा में सुसाध्य बन रहा है। इस प्रकार से सभी स्रोतों से प्राप्त निश्चय के तौर पर सत्य सामग्री के आधार पर ही मैं पूज्यपाद श्री आचार्य महोदय के इस जीवनचरित को लिख रहा हूं। इस ग्रन्थ में मैं जो लिख रहा हूं, उसे उपरोक्त विश्वसनीय स्रोतों की भलीभान्ति परीक्षा करके उन्हीं के आधार पर लिख रहा हूं। जहां कहीं भी जिस किसी बात को मैं अनुमान के आधार पर लिख रहा हूं, वहां इस बात का वैसा उल्लेख स्पष्टतया कर रहा हूं कि ऐसा मेरा अनुमान है।

सन् १९८३ में पूज्यपाद जी के जयपुर वाले भक्त जनों की प्रेरणा से मैंने महाराज जी की एक अति संक्षिप्त जीवनी उन्हें लिखकर भेज दी थी। उन्होंने "परमपूज्य श्री बाबा महाराज" इस शीर्षक वाली पुस्तिका को प्रकाशित तो किया, परन्तु जो सामग्री मैंने लिखकर भेजी थी उसका विशेष उपयोग नहीं किया। न ही उन्होंने पूज्यपाद जी की जीवन गाथा पर समुचित शोधकार्य ही किया।

स्तोत्र की पाण्डुलिपि मुझे दे गए और उस पर संस्कृत टीका तथा हिन्दी अनुवाद लिखने का आदेश दे गए। उस समय उनके वचनामृत को सुनने का सुअवसर मुझे कुछ दिनों के लिए मिला। उन सर्दियों में वे राष्ट्रालोक के प्रकाशन के सम्बन्ध से एक बार पुनः जम्मू आए और मुझे पुन: उनकी अमृतमयी वाणी को सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

आगे ई० सन् १९५८ में मैं उनके दर्शन के लिए ही दिल्ली गया। तदनन्तर सन् १९६० में मैं भरतपुर जाकर कुछ दिन उनके साथ सम्पर्क में रहा। आगे मैं कभी कभी दिल्ली जाता रहा और दो दो तीन तीन दिन उनके सम्पर्क में रहता रहा। परन्तु उनसे विशेष सम्पर्क का सुअवसर मुझे तब मिला जब वे सन् १९६० ई० में कश्मीर आकर अनन्तनाग में मेरे निवास पर दो तीन सप्ताह के लिए ठहरे। ऐसा ही दूसरा सुअवसर मुझे सन् १९६२ में तब मिला जब वे दो तीन सप्ताह हमारे अपने घर में कुलगाम में हमारे साथ ठहरे। उस अवसर पर उन्होंने हमारे घर में "श्रीदेशिकदर्शनम्" और "श्रीसञ्जीवनीदर्शनम्" का निर्माण किया। श्रीसिद्धमहारहस्यं के भी कुछ एक, अंशों का निर्माण उन्होंने वहीं किया। उदाहरणार्थ—श्री कृष्ण दर्शन (तिस्रः स्त्रियों दात्रहस्ता:—इत्यादि) और अमरेश्वर दर्शन के श्लोकों की रचना उन्होंने वहीं पर की। इन दो अवसरों पर उनसे विविध विषयों पर मेरी बातचीत विस्तारपूर्वक होती रही। धर्म, दर्शन, इतिहास, साहित्य जैसे विषयों पर तथा उनकी अपनी जीवनी पर काफी बातें होती रहीं। इस तरह से मुझे उनकी जीवन-गाथा की अनेकों घटनाओं का ज्ञान उन्हीं की वाणी से होता रहा। अपने जीवन की कई एक बातों को तो वे स्पष्टतया सुनाया करते थे। परन्तु उनके अपने परिवार से सम्बद्ध बातों को प्राय: स्पष्ट नहीं किया करते थे। उन बातों का ज़रा भर स्पष्टीकरण वे अपने मर्त्य जीवन के अन्तिम दो तीन वर्षों में करने तो लगे थे, परन्तु उस समय मैं उनके साथ काफी देर तक कभी रहा नहीं। सन् १९६२ के पश्चात् मैं बहुत बार दिल्ली जाता रहा, परन्तु उनसे दो दो या तीन तीन दिन ही कुछ एक घण्टों का सम्पर्क बनता रहा। सन् १९७२ से सन् १९८० तक मैं प्रतिवर्ष उनके जन्म दिवस पर सुहाणा जाता रहा और उनके दर्शन करता रहा। चण्डीगढ़ में भी बहुत बार उनसे मिलता रहा, विशेष कर तब जब वे हमारे जामाता श्री द्वारिका नाथ पण्डित के पास ठहरा करते थे। सन् १९८१-८२ में यदि मुझे उनके साथ पर्याप्त समय तक रहने का कोई अवसर मिला होता तो मुझे उनकी जीवनी की सभी घटनाओं का स्फुट परिचय मिल गया होता। परन्तु इस बात का बड़ा खेद है कि मुझे उन वर्षों में कोई ऐसा अवसर नहीं मिला।

तो मैंने जो जो बातें उनकी ही वाणी से स्वयं सुनी हैं, उन्हीं के आधार पर मैं उनकी इस जीवनी को लिख रहा हूं। शिवलोक के प्रति प्रस्थान से दो ही मास

पूर्व उन्होंने मुझे अपने हाथ से लिखा हुआ अपने वंश के पूर्वजों का विस्तृत इतिहास दिल्ली में दिखाया था और यह इच्छा प्रकट की थी कि मैं उनके पास बैठकर उसकी एक प्रतिलिपि सुन्दर अक्षरों में लिख दूं। तब मैंने यह सङ्कल्प किया था कि मार्गशीर्ष मास में पन्द्रह दिन की छुट्टी लेकर उनके उस आदेश को पूरा करूं। परन्तु कार्तिक के शुक्ल पक्ष में ही वे अपने मर्त्य शरीर को छोड़कर सिद्ध लोकों की ओर प्रस्थान कर गए। उनके द्वारा लिखा हुआ वह स्ववंश वर्णन जिसका नामकरण उन्होंने "वरकल वंश चरितम्" ऐसा किया है। इस समय मेरे पास है। इसके अतिरिक्त उन्होंने अपना "आत्म चरितम्" तथा अपने सम्बन्धियों और गुरुजनों के जो परिचय श्लोकबद्ध करके रखे हैं, वे भी मेरे पास हैं। इसके अतिरिक्त उनकी कई एक 'डायरियां' मेरे पास विद्यमान हैं और उनकी रचनाओं की एक सूची भी है। परन्तु सन् १६२६ अगस्त से सन् १६३० दिसम्बर तक, तथा १-२-३३ से २०-७-३४ तक और ६-८-३५ से २५-६-३६ तथा २३-७-४२ से ३१-१२-६२ तक की कोई भी दैनन्दिनी उनके सामान में कहीं भी नहीं मिली। फिर उन्होंने अपने जीवन की कुछ एक घटनाओं का वर्णन श्री स्वाध्याय के अङ्कों में भी हिन्दी भाषा में प्रकाशित किया था। वे लेख भी मेरे पास हैं। पूज्यपाद जी के साथ विशेष सहवास के अवसर का सौभाग्य जिन जिन महानुभावों को प्राप्त होता रहा उनसे भी मैं पत्र-व्यवहार कर चुका हूं। फिर उनके संस्मरण, जिन्हें उनके जयपुर वाले भक्तों ने एक पत्रिका के रूप में सन् १६८५ में प्रकाशित किया है, वे भी मेरे सामने हैं। यद्यपि मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि उन महानुभावों में से अनेकों की स्मृति शक्ति कुछ कुछ शिथिल हो गई है, और इस कारण से वे उन उन घटनाओं को पूरी तरह से वैसे ढङ्ग से बता नहीं पा रहे हैं जैसे ढङ्ग से उन्होंने उन्हें सुना था, फिर भी उन महानुभावों से सम्पर्क करने से मेरा यह कार्य काफी मात्रा में सुसाध्य बन रहा है। इस प्रकार से सभी स्रोतों से प्राप्त निश्चय के तौर पर सत्य सामग्री के आधार पर ही मैं पूज्यपाद श्री आचार्य महोदय के इस जीवनचरित को लिख रहा हूं। इस ग्रन्थ में मैं जो लिख रहा हूं, उसे उपरोक्त विश्वसनीय स्रोतों की भलीभान्ति परीक्षा करके उन्हीं के आधार पर लिख रहा हूं। जहां कहीं भी जिस किसी बात को मैं अनुमान के आधार पर लिख रहा हूं, वहां इस बात का वैसा उल्लेख स्पष्टतया कर रहा हूं कि ऐसा मेरा अनुमान है।

सन् १६८३ में पूज्यपाद जी के जयपुर वाले भक्त जनों की प्रेरणा से मैंने महाराज जी की एक अति संक्षिप्त जीवनी उन्हें लिखकर भेज दी थी। उन्होंने "परमपूज्य श्री बाबा महाराज" इस शीर्षक वाली पुस्तिका को प्रकाशित तो किया, परन्तु जो सामग्री मैंने लिखकर भेजी थी उसका विशेष उपयोग नहीं किया। न ही उन्होंने पूज्यपाद जी की जीवन गाथा पर समुचित शोधकार्य ही किया।

अतः उस पुस्तिका में अनेकों ही त्रुटियां रह गईं, तथा अनेकों असङ्गत बातें भी उसमें आ गईं। तभी से पूज्यपाद जी के अन्य प्रेमी शिष्य मुझे उनकी यथार्थ जीवन गाथा को लिखने की प्रेरणा करते रहे।

वस्तुतः उनके जयपुर वाले भक्तजन स्वयं तो पुस्तक लेखन के अभ्यासी नहीं हैं। उन्होंने मेरे द्वारा भेजी हुई सामग्री को तथा श्री स्वाध्याय के अङ्कों में मिलने वाली सामग्री को और पूज्यपाद जी के द्वारा निर्मित ग्रन्थों को किसी संस्कृतज्ञ विद्वान् के सामने प्रस्तुत करके उनसे ही उस उपरोक्त पुस्तिका को लिखवाया। उस पुस्तिका को पढ़ने से हम लोगों को ऐसा प्रतीत हुआ कि वे पण्डित महोदय पूज्यपाद जी के दार्शनिक सिद्धान्तों से, राजनैतिक विचारों से, सामाजिक दृष्टिकोण से तथा साधना क्रम से विशेष परिचित नहीं हैं। वे पण्डित होने के नाते यथा कथञ्चित् उस संक्षिप्त जीवनी को लिख ही गए। जयपुर के उन भक्तों को भी इस प्रकार की त्रुटियों की संवेदना हुई। तभी उन्होंने सन् १९८५ में पूज्यपाद विषयक स्मृति ग्रन्थ का सम्पादन विशेष सावधानता से किया। उस स्मृति ग्रन्थ से भी पूज्यपाद जी के जीवन वृत्तान्त पर समुचित विस्तार से प्रकाश नहीं पड़ पाया। अतः उस प्रयोजन को पूरा करने के लिए इस पुस्तक का निर्माण किया जा रहा है।

महापुरुषों के प्रेमी भक्तजन बहुत बार भक्ति के आवेश में कुछ ऐसी बातें भी लिखा करते हैं जो वास्तविक इतिहास की घटनाएं नहीं होती हैं, तथा जिनमें अत्युक्तियों का विशेष प्रयोग किया जाता है। पूज्यपाद श्री आचार्य महोदय को वैसी बातें पसन्द नहीं थीं। अतः मैं यत्न कर रहा हूं कि उनकी यह जीवनी सत्य इतिहास की सीमाओं का उल्लंघन न करने पाये।

पूज्यपाद जी को भिन्न भिन्न देशों में भिन्न भिन्न नामों से जाना जाता था। कश्मीर में उन्हें प्रायः श्री आनन्दस्वरूप कहा जाता था। हिमाचल प्रदेश में भी वे इसी नाम से जाने जाते थे। हमारे मित्र मण्डल और सम्बन्धी वर्ग में उन्हें श्री महात्मा जी कहा जाता था। भरतपुर, जयपुर आदि में उन्हें श्री बाबा महाराज कहते थे। पंजाब में वे श्री महाराज जी कहलाते थे। जन्म से उनका नाम वैद्यनाथ वरकले था और वाराणसी में वैद्यनाथ शास्त्री कहलाते थे। उधर रहते हुए ही उन्होंने ग्रन्थ लेखक के रूप में अपना नाम 'अमृतवाग्भव' रखा था और आगे पविव्राजक जीवन में ग्रन्थ रचना इसी नाम से किया करते थे। अपने प्रारम्भिक जीवन में रचे हुए 'परमशिव-स्तोत्र' में उन्होंने अपने इस नाम को संकेत से बताया है। इस नाम की व्याख्या करते हुए उन्होंने मुझे स्वयं बताया है कि उनके नाम का प्रथम अक्षर "वैं" है। उसमें 'व' अमृतबीज है और 'ऐं' वाग्भव बीज है। अतः 'वैं' को अमृतवाग्भव कहा जा सकता है। ऐसे संकेत के अनुसार उन्होंने ग्रन्थ

रचना में अपने आपका उल्लेख इसी नाम से किया। शाक्त साधना के ऐसे संकेत के अनुसार ही उन्होंने अपने परम शिवस्तोत्र में व्यञ्जना का आश्रय लेते हुए कहा है—

सामरस्य समुल्लासः श्री राधाकृष्णयोः परः।
अहमात्मऽमृतासारिवाग्भवो जयताच्चिरम्॥

(प. शि. स्तो. ३)

इस श्लोक में उनके मातपिता श्री राधा और श्री कृष्ण के नामों का भी उच्चारण किया गया है और साथ ही अपने रहस्यात्मक नाम के अक्षरों का भी इसमें उल्लेख किया गया है। त्रिगुणेश्वर स्तोत्र में अपने "वैद्यनाथ" नाम की ओर भी संकेत इस तरह से किया गया है—

यं वैद्यनाथ इति वैद्यजना वदन्ति।

(त्रि. स्तो. ५)

दिल्ली, भरतपुर, सोहाणा, नालागढ़, आदि अनेकों ही स्थानों में रहने वाले पूज्यपाद श्री आचार्य जी के अनेकों भक्त उनके जीवन चरित को जानना चाहते हैं। अतः उसे लिखते हुए उनकी इस शुभ इच्छा को मैं पूरा करने का यत्न कर रहा हूं। प्रकाशन का काम दिल्ली में श्री रत्नलाल जी अग्रवाल "विद्वद्वरकल श्री राधाकृष्ण धार्मिक संस्थान" की ओर से करेंगे।

पूज्यपाद जी के पिछले चार जन्मों के वृत्तान्तों का आधार है कि ई० सन् १९३५ के आसपास जब वे कश्मीर मण्डल में घूमते हुए बारामुला नामक स्थान में भगवती शैलपुत्री के मन्दिर की धर्मशाला में ठहरे थे तो उन्हें वहां एक हिमाचली सन्त महात्मा से परिचय हो गया। उन सन्त महापुरुष को लोग वहां चखमा बाबा कहा करते थे। उनसे पूज्यपाद जी ने एक साधना सीख ली। उसके अभ्यास से उन्हें दो ढाई महीने में ही अपने चार अतीत जन्मों के जीवन की स्मृति जाग उठी। उसी स्मृति के आधार पर उन्होंने अपने उन जन्मों के विषय में जो बातें हमें स्वयं कह दी हैं तथा जो संक्षेप से या विस्तार से स्वयं लिख रखी हैं, उन्हीं के अनुसार उनके पूर्वजन्मों के इतिहास पर भी इस पुस्तक में थोड़ा बहुत प्रकाश डाला जा रहा है। उनके अनेकों शिष्य उन बातों को प्रायः जानते भी हैं। उन जन्मों के चरित का काफी घना सम्बन्ध उनके इस पश्चिम जन्म के साथ है। इस कारण से भी उन जन्मों की गाथा को भी इस पुस्तक में समुचित स्थान दिए जाने में ही औचित्य है।

परमपूज्य श्री आचार्य जी के कई एक शिष्यों ने उनके विषय में अपने संस्मरण लिखे हैं जिन्हें सन् १९८५ ई० में जयपुर वाले भक्तों ने एक पत्रिका के

रूप में प्रकाशित किया। पूज्यपाद जी अपने अतीत जन्मों की उन घटनाओं को सुनाया तो करते थे परन्तु विस्तार से उनका स्पष्टीकरण प्रायः करते नहीं थे। फिर कहने में, सुनने में, समझने में, स्मरण रखने में और पुनः कहने में भी प्रायः काफी अन्तर आ ही जाया करता है। अतः उन संस्मरणों की अपेक्षा मैं उपरोक्त आधारों का ही विशेष आश्रय लेते हुए इस पुस्तक को लिख रहा हूं। हो सकता है कि कहीं कहीं उन संस्मरणों में बताई हुई किसी किसी बात पर मेरा और उन महानुभावों के दृष्टिकोण में या घटना वर्णन में ज़रा ज़रा अन्तर भी आ जाए। उसके लिए मानव प्रवृत्ति ही जिम्मेवार है। मैं तो उन उन घटनाओं को उसी रूप में लिखूंगा जिस रूप में निश्चय के तौर पर मेरे स्मृति पटल पर वह अङ्कित हैं।

श्री पूज्यपाद जी के दिल्ली वाले अनन्य भक्त श्री रत्नलाल जी अग्रवाल को पूज्यपाद जी के साथ चिर-सहवास का सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। अतः मैं चाहूंगा कि वे इस पुस्तक को प्रकाशित करने से पहले इसे भली भान्ति पढ़कर जहां जहां 'उन्हें आवश्यकता की संवेदना हो, वहां वहां पृष्ठों के नीचे टिप्पणियों में उन उन विषयों पर प्रकाश डालते हुए उनका स्फुट स्पष्टीकरण करें।

—डा० बलजिन्नाथ पंडित
शा० एम.ए. पी.एच.डी.
C/o रणवीर विद्यापीठ,
जम्मू

श्री भूमिका

॥ श्रीहरिः ॥

प्रपञ्चात्मक जगत के जन्मादि का नियामक अपनी दिव्य वाग्देवी का प्रसार अपने श्वास मात्र से भगवती श्रुति के रूप में करता है। अपौरुषेय वेद की भान्ति वेदाङ्ग तथा 'अ, ई, उ, ण' आदि वर्ण एवं ध्वनियां भी मूलतः नित्य एवं अपौरुषेय ही हैं। वेद एवं वैदिक परम्परा का अनुसारी समस्त इतिहास-पुराणादि वाङ्मय भी अपने मूलरूप में वैसा अपौरुषेय ही है। यह समस्त वाङ्मय वेदानुकूल होने के कारण परमप्रमाण कोटि में आता हुए 'आगम', 'आप्तवचन', 'शब्द', 'शास्त्र' अथवा वेद संज्ञा से ही अभिहित होता है, क्योंकि इसके द्वारा 'येनाक्षरं पुरुषं वेद नित्यम्' इस शास्त्रवचन से नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाव, सर्वज्ञ, सर्व शक्ति सम्वलित, सजातीय-विजातीय-स्वगत भेद शून्य एवं सच्चिदानन्द, परमानन्द "आत्मविलास भूत" शिवशक्ति स्वरूप परतत्व का प्रत्यक् चैतन्याभिन्न रूप से दर्शन (साक्षात्कार) होता है। यह दर्शन भी सगुण-साकार-सविकल्प तथा निर्गुण-निराकार-निर्विकल्पोभयविध रूप से होता है।

इस प्रकार की विशुद्ध प्राचीन भारतीय परम्परा ही 'आर्ष' परम्परा इस संज्ञा से अभिहित हुई है तथा प्राचीन ऋषियों ने अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व से प्राणी मात्र के ऐहिकामुष्मिक सर्वविध कल्याण की महामङ्गलमय प्रार्थना की है। प्राचीन वसिष्ठ, विश्वामित्र, मनु, याज्ञवल्क्य, वेदव्यास, हारीत आदि ऋषियों का पूर्ण एवं अंशावतार कलियुग में भी सायण, उवट, महीधर, चाणक्य, महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज, धर्मसम्राट विश्ववन्द्य स्वामी श्री करपात्री जी महाराज, पं० दीनानाथ सारस्वत, सर्वतन्त्र स्वतन्त्र अनन्त श्री स्वामी श्री अमृतवाग्भवाचार्य जी महाराज आदि के रूप होता है।

परमपूज्य अनन्त श्री अमृत वाग्भवाचार्य जी महाराज ने अपना समस्त जीवन

प्राचीन आस्तिक शास्त्रीय (धर्म शास्त्रीय एवं दर्शन शास्त्रीय) परम्परा के आचरण, रक्षण, संरक्षण, प्रचार प्रसारादि में लगाया। उनके आचार, व्यवहार, उपदेश तथा आदेश शास्त्र सम्मत-तर्क की कसौटी पर सदैव खरे उतरे। सिद्ध परम्परा, योग परम्परा, शासन परम्परा, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, तथा लोकोत्तर वैदुष्य के वे मानदण्ड थे। अपनी धार्मिक, दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय परम्पराओं की अमिट छाप उन्होंने अपनी शिष्यमण्डली पर छोड़ी।

श्री चरण अपने ग्रन्थों एवं आदेशोपदेशों में शासनपद्धति में धर्म सापेक्ष्यता के कट्टर पक्षपाती रहे। उनका दृढ़ विश्वास था कि तथाकथित धर्म निरपेक्ष अथवा धर्महीन शासन राष्ट्र-कल्याण में सहायक हो ही नहीं सकता। इतिहास प्रसिद्ध धर्म विहीन, तथा कथित धर्म निरपेक्ष्य शासन महाराज वेन का ही हुआ। उसके दुष्परिणाम इतिहास-पुराणादि में प्रसिद्ध है। ब्रह्मवैवर्त पुराण (कार्तिक कृष्ण एकादशी) के अनुसार महाराज मुचुकुन्द विष्णु भक्त एवं सत्यवादी थे; अतएव उनका शासन निष्कण्टक था—

> विष्णुभक्तः सत्यसन्धो बभूव नृपतिः सदा।
> तस्यैवं शासतो राजन् राज्यं निहरकण्टकम्॥

उनके राज्य में एकादशी का व्रत होता था, उनकी घोषणा "न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं हरेर्दिने" थी। उनके राज्य में एकादशी के दिन हाथी, घोड़ा एवं अन्य सभी पशुओं को घास अन्न एवं जल भी नहीं डाला जाता था मनुष्यों का तो कहना ही क्या—

> "मत्पितुर्वेश्मनि विभो भोक्तव्यं नैव केनचित्।
> गजैरश्वैस्तथा चान्यैरन्यैः पशुभिरेव च॥
> तृणमन्नं तथा वारि न भोक्तव्यं हरेर्दिने।
> मानवैश्च कुतः कान्त भुज्यते हरिवासरे॥

दानवराज जालन्धर देवताओं को पराजित करता हुआ भी धर्मानुकूल शासन करता था। पद्मपुराण (कार्तिक माहात्म्य, अध्याय ११) के अनुसार दानवेन्द्र जलन्धर धर्मपूर्वक शासन करते हुए प्रजापालन आत्मज-पुत्रों की भान्ति करता था, अतएव उसके राज्य में कोई भी ज्वराक्रान्त, दुःखी, दुर्बल एवं दीन नहीं दीखता था। इस शासन का वर्णन देवर्षिनारद महाराज पृथु से करते हैं—

> "एवं जलन्धरः कृत्वा देवान् स्ववशवर्तिनः।
> धर्मेण पालयामास प्रजाः पुत्रानिवौरसान्॥
> न कश्चिद्व्याधितो नैव दुःखिता न कृशस्तथा।
> न दीनो दृश्यते तस्मिन् धर्मराज्यं प्रशासति॥

धर्मशासन से दु:ख, दारिद्रय, अन्न संकट, पशुओं के चारे का संकट सभी संकट स्वयमेव दूर हो जाते हैं। श्रीचरणों ने अपने आचरण, उपदेश एवं राष्ट्रालोकादि ग्रन्थों में धर्म सापेक्ष्य शासन तन्त्र का प्रतिपादन किया।

महाराजश्री का प्रत्येक वचन शास्त्रीय आर्षपरम्परा का प्रतिपादक होता था। प्राय: ४५ वर्ष पूर्व हरिद्वार के कुम्भ के अवसर पर श्रीचरणों द्वारा विरचित "आत्मविलास" पर कतिपय पण्डितों ने "यह ग्रन्थ अशास्त्रीय है" ऐसा कहकर ग्रन्थ की कटु आलोचना की। यही ग्रन्थ वहीं पर समुपस्थित विश्ववन्द्य अनन्तश्री विभूषित धर्मसम्राट् स्वामी श्री करपात्री जी महाराज की सम्मति के लिए भी पहुंचा। पूज्यपाद स्वामी जी ने ग्रन्थ को आद्योपान्त पढ़ कर कहा "यह आत्मविलास सर्वथा शास्त्रीय एवं समादरणीय है।" अपनी लोकलीला के अन्तिम वर्ष में महाराजश्री अमृतवाग्भवाचार्य जी ने इस शरीर से अपने काशीवास की इच्छा प्रगट की। काशी में इस विषय का एक पत्र अनन्त श्री स्वामी नन्दनन्दनानन्द सरस्वती जी महाराज की सेवा में इस ही शरीर ने लिखा। स्वामी जी ने वह पत्र महाराजश्री स्वामी करपात्री जी को सुनाया। धर्मसम्राट् स्वामी करपात्री जी ने स्वामी अमृतवाग्भवाचार्य जी के निवास का प्रबन्ध करने का आदेश दिया। यह पूछे जाने पर कि उनको कहां ठहराया जायगा, धर्मसम्राट् श्री करपात्री जी ने तुरन्त उत्तर दिया, "वह केवल हमारे साथ ही रहेंगे।" इस प्रकार की विलक्षण थी पहचान सच्चे साधु की सच्चे साधु को।

महाराज श्री अमृतवाग्भवाचार्य जी द्वारा स्वहस्ताक्षराङ्कित विद्वद्वरकल श्रीराधाकृष्ण धार्मिक संस्थान का संविधान उनका "वसीयतनामा" अन्तिमादेशोपदेश है। उसमें उन्होंने वेद पुराणेतिहास प्रतिपादित धर्म, वर्णाश्रम व्यवस्था, गौरक्षा तथा अन्य सभी प्राचीन संस्कृतिक मूल्यों के पालन का आदेश दिया है। आत्मकल्याण के सन्मार्ग का प्रदर्शक यह "वसीयतनामा" आचरणीय है यथा—श्रीमद् भागवत (१०.३३.३२) में भगवान् श्री शुकदेव ने स्पष्ट आदेश दिया है—"ईश्वर (कोटि प्रविष्ट) महापुरुषों के वचन सत्य होते हैं, इस प्रकार उनके चरित्र भी कभी सत्य होते हैं। (कभी जीव बुद्धि से परे के होते हैं।), एतदर्थ उन्होंने जो अपने वचन से (मुख से) कहा हो बुद्धिमान को उसका प्रयत्न पूर्वक आचरण करना चाहिए"—

ईश्वराणां वचः सत्यं तथैवाचरितं क्वचित्।
तेषां यत् स्ववचोयुक्तं बुद्धिमास्तत् समाचरेत्॥

अतएव शिष्य मण्डली एवं प्राणीमात्र का कल्याण श्रीचरणों के उस "वसीयतनामें के परिपालन मात्र में है। एतदतिरिक्त उनके सभी ग्रन्थों तथा आदेशोपदेशों में

प्राप्त विधि-निषेध सम्यक् परिपालनीय कल्याण सेतु तथा भवरोग की रामबाण औषधी है।

उनका धर्मसामान्य एवं सन्यासाश्रम धर्मपालन भी उत्कृष्ट कोटि का था। अपने जीवनकाल में ही अपने अन्तिम संस्कार का शास्त्रीय सन्यास पद्धति से हरिद्वार श्री गंगा जी में जल समाधी का आदेश दे गए थे। तथा इस कार्य का उत्तरदायित्व इस शरीर पर छोड़ गए। यह श्रीचरणों की महती कृपा थी। महाराजश्री की लोक लीला संवरण करने के पश्चात् विधिवत् उनकी जल समाधी श्रीगंगा जी में सम्पन्न हुई।

श्री वैवस्वत मन्वतर के श्री श्वेत वाराहकल्प के अट्ठाईसवें कलियुग के प्रथम चरण में जीव नास्तिकता की चकाचौंध में भ्रमित हो रहा है। प्रकाश्यमान साहित्य महाभयंकर इस नास्तिकता में चार चाँद लगा रहा है। एतत्तकालीन समाज, समाज शास्त्र राजनीति एवं शासन तन्त्र धर्म एवं ईश्वर पराङ्मुख हो रहे हैं। तथाकथित नेताओं के जीवनवृत्त दिशा-विहीनता के ज्वलन्त उदाहरण हैं। नास्तिक एवं तत्वज्ञानशून्य जनसम्मर्द "अन्धगोलाङ्गूल न्याय" से महासर्वनाश में प्रवृत्त है तथा अपने को परमकृतार्थ एवं परमपण्डित — धीर-वीर-उपदेष्टा मानता है। भगवती श्रुति ने ऐसे लोगों का भी रहस्योद्घाटन किया है—

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीरा पण्डितं मन्यमानाः।
दन्द्रम्यमाणा परियन्ति मूढ़ा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धः॥

(कठोपनिषद् २/५)

अविद्यायां बहुधा वर्तमाना वयं कृतार्था इत्यभि मन्यन्ति बालाः॥

(मुण्डकोपनिषद् २/६)

ऐसी सर्वथा विपरीत एवं नारकीय स्थिति से बचने का एकमात्र उपाय वेद एवं तदनुकूल सच्छास्त्रीय परम्परा पर आधारित महापुरुषों के चरितामृतों से सन्मार्गान्वेषणमात्र ही हैं। अनन्त श्री स्वामी श्री अमृतवाग्भवाचार्य जी महाराज अमृतबीज "व" एवं वाग्भवबीज 'ऐ' (वै-वैद्यनाथ मूल संज्ञा) आधार थे। उनका प्रत्येक क्रिया कलाप मोक्ष-सोपान है निःश्रेयस बीज है। श्रीचरण सर्वतन्त्रस्वतन्त्र तत्वविद्वरिष्ठ थे। जीवनकाल में जीवनमुक्त तथा लोक लीला संवरणानन्तर शिवस्वरूप, ब्रह्मस्वरूप एवं परमात्म स्वरूप हो गए। उनकी लोकलीला एवं जन्मान्तरों का वर्णन करके विश्रुतकीर्ति, महामहिम, समादरणीय, पुण्यश्लोक, प्रातः स्मरणीय डा० श्री बलजिन्नाथ पण्डित शास्त्री जी ने महान उपकार किया है। यह ग्रन्थ दिव्य सारस्वत साधना, गवेषणा एवं श्रीचरणों की डा० साहिब पर अपार कृपा का प्रसाद है। इसके अध्ययन से नास्तिकता समाप्त होगी, आस्ति-

कता, मोक्ष एवं भगवत्परायणता का रहस्योद्घाटन होगा। ऐसा मेरा विश्वास है। श्रीचरणों के ग्रन्थों के रहस्योद्घाटन में डा० बलजिन्नाथ पण्डित जी ने अपने को समर्पित करके प्राणीमात्र के कल्याण का परोपकार मार्ग खोल रखा है। श्री मन्नारायण इन पर अपने कृपामृत की वर्षा करते हुए शताधिक आयु प्रदान करें जिससे धर्म सेतु सुरक्षित रह सके। इस ग्रन्थ के प्रकाशन के प्रायः मौन कर्णधार श्री रत्नलाल जी अग्रवाल स्वयं ही संस्था, नेता एवं कार्यकर्ता हैं। उनके जीवन का लक्ष्य भी महाराजश्री के द्वारा उपदिष्ट शाश्वत मूल्यों का प्रकाशन एवं प्रचार ही है। श्री मन्नारायण इन्हें भी सफल दीर्घायुष्य प्रदान करें। इतिशम्।

कार्तिक कृष्ण
एकादशी वि० स० २०४६
(अक्तूबर २५, १९८९)

डा० रघुनाथ शर्मा
एम०ए०, पी-एच, डी०
(उपाध्यक्ष)
रीडर संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय

प्राप्त विधि-निषेध सम्यक् परिपालनीय कल्याण सेतु तथा भवरोग की रामबाण औषधी है।

उनका धर्मसामान्य एवं सन्यासाश्रम धर्मपालन भी उत्कृष्ट कोटि का था। अपने जीवनकाल में ही अपने अन्तिम संस्कार का शास्त्रीय सन्यास पद्धति से हरिद्वार श्री गंगा जी में जल समाधी का आदेश दे गए थे। तथा इस कार्य का उत्तरदायित्व इस शरीर पर छोड़ गए। यह श्रीचरणों की महती कृपा थी। महाराजश्री की लोक लीला संवरण करने के पश्चात् विधिवत् उनकी जल समाधी श्रीगंगा जी में सम्पन्न हुई।

श्री वैवस्वत मन्वतर के श्री श्वेत वाराहकल्प के अट्ठाईसवें कलियुग के प्रथम चरण में जीव नास्तिकता की चकाचौंध में भ्रमित हो रहा है। प्रकाश्यमान साहित्य महाभयंकर इस नास्तिकता में चार चाँद लगा रहा है। एतत्तकालीन समाज, समाज शास्त्र राजनीति एवं शासन तन्त्र धर्म एवं ईश्वर पराङ्मुख हो रहे हैं। तथाकथित नेताओं के जीवनवृत्त दिशा-विहीनता के ज्वलन्त उदाहरण हैं। नास्तिक एवं तत्वज्ञानशून्य जनसम्मर्द "अन्धगोलाङ्गूल न्याय" से महासर्वनाश में प्रवृत्त है तथा अपने को परमकृतार्थ एवं परमपण्डित – धीर-वीर-उपदेष्टा मानता है। भगवती श्रुति ने ऐसे लोगों का भी रहस्योद्घाटन किया है—

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीरा पण्डितं मन्यमानाः।
दन्द्रम्यमाणा परियन्ति मूढ़ा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धः॥
(कठोपनिषद् २/५)

अविद्यायां बहुधा वर्तमाना वयं कृतार्था इत्यीभ मन्यन्ति बालाः॥
(मुण्डकोपनिषद् २/६)

ऐसी सर्वथा विपरीत एवं नारकीय स्थिति से बचने का एकमात्र उपाय वेद एवं तदनुकूल सच्छास्त्रीय परम्परा पर आधारित महापुरुषों के चरितामृतों से सन्मार्गान्वेषणमात्र ही हैं। अनन्त श्री स्वामी श्री अमृतवाग्भवाचार्य जी महाराज अमृतबीज "व" एवं वाग्भवबीज 'ऐ' (वै-वैद्यनाथ मूल संज्ञा) आधार थे। उनका प्रत्येक क्रिया कलाप मोक्ष-सोपान है निःश्रेयस बीज है। श्रीचरण सर्वतन्त्रस्वतन्त्र तत्वविद्वरिष्ठ थे। जीवनकाल में जीवनमुक्त तथा लोक लीला संवरणानन्तर शिवस्वरूप, ब्रह्मस्वरूप एवं परमात्म स्वरूप हो गए। उनकी लोकलीला एवं जन्मान्तरों का वर्णन करके विश्रुतकीर्ति, महामहिम, समादरणीय, पुण्यश्लोक, प्रातः स्मरणीय डा० श्री बलजिन्नाथ पण्डित शास्त्री जी ने महान उपकार किया है। यह ग्रन्थ दिव्य सारस्वत साधना, गवेषणा एवं श्रीचरणों की डा० साहिब पर अपार कृपा का प्रसाद है। इसके अध्ययन से नास्तिकता समाप्त होगी, आस्ति-

कता, मोक्ष एवं भगवत्परायणता का रहस्योद्घाटन होगा। ऐसा मेरा विश्वास है। श्रीचरणों के ग्रन्थों के रहस्योद्घाटन में डा० बलजिन्नाथ पण्डित जी ने अपने को समर्पित करके प्राणीमात्र के कल्याण का परोपकार मार्ग खोल रखा है। श्री मन्नारायण इन पर अपने कृपामृत की वर्षा करते हुए शताधिक आयु प्रदान करें जिससे धर्म सेतु सुरक्षित रह सके। इस ग्रन्थ के प्रकाशन के प्रायः मौन कर्णधार श्री रत्नलाल जी अग्रवाल स्वयं ही संस्था, नेता एवं कार्यकर्ता हैं। उनके जीवन का लक्ष्य भी महाराजश्री के द्वारा उपदिष्ट शाश्वत मूल्यों का प्रकाशन एवं प्रचार ही है। श्री मन्नारायण इन्हें भी सफल दीर्घायुष्य प्रदान करें। इतिशम्।

कार्तिक कृष्ण
एकादशी वि० स० २०४६
(अक्तूबर २५, १९८९)

डा० रघुनाथ शर्मा
एम०ए०, पी-एच, डी०
(उपाध्यक्ष)
रीडर संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय

स्वात्मानं स्वविलासेन विश्वरूपेण भासयन् ।
नित्योदितः कोऽपि देवो जयत्यात्मा परः शिवः ॥

—आत्मविलास से

॥ श्रीः ॥

सम्पादकीय

ध्यान मूलं गुरु मूर्ति, पूजामूलं गुरु पदम्।
मन्त्र मूलं गुरु वाक्यं, मोक्षमूलं गुरु कृपा ॥

विद्वद्वरेण्य डा० बलजिन्नाथ पंडित विरचित, चिर प्रतीक्षित, श्रीमद् अमृत-वाग्भवाचार्य (चरितामृत) ग्रन्थ का प्रकाशन करते हुए संस्था को अपूर्व आह्लाद एवं संतोष का अनुभव हो रहा है। ग्रन्थ पर्याप्त रूप से विस्तृत है और प्रातः स्मरणीय, सिद्धलोकवासी, अनन्तश्री विभूषित पूज्यपाद स्वामी श्री अमृतवाग्भवाचार्य जी महाराज के पावन एवं विशद् जीवन पर आद्योपान्त अर्थात् जन्म से शिवधाम गमण पर्यन्त विविध दृष्टिकोणों से प्रकाश डालता है। यही नहीं अपितु पूज्यपाद 'आचार्य-श्री' के कई महामहिमा-मण्डित' पूर्वजों के इतिहास का समुचित वर्णन भी प्रस्तुत ग्रन्थ में किया गया है। पूज्यपाद जी का जन्माङ्क उनके कतिपय दुर्लभ चित्र और कुछेक स्वानुभूत दिव्य दृश्यों के चित्र भी इस ग्रन्थ की शोभा बढ़ाते हैं। पूज्यपाद जी द्वारा समय समय पर रचित विविध ग्रन्थों एवं उनमें प्रतिपादित उनके दार्शनिक सिद्धांतों का सारगर्भित विवेचन भी प्रस्तुत ग्रन्थ में किया गया है। इन सभी कारणों से डा० सा० की यह अमर-कृति हर प्रकार से समादरणीय तो है ही साथ ही यह उनकी समुज्ज्वल कीर्ति को सदैव अक्षुण्ण बनाये रखने में भी सक्षम है, क्योंकि ऐसे दिव्य सिद्ध महापुरुष के जीवन-ग्रन्थ का ग्रन्थकार भी कोई कम महापुरुष नहीं हो सकता।

यह कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि पूज्यपाद गुरुवर श्रीमद् अमृत-वाग्भवाचार्य जी महाराज के ग्रन्थों की प्रामाणिक और सटीक व्याख्या करने में डा० सा० की निर्बाध गति है। एक आध को छोड़कर उनके लगभग सभी ग्रन्थों की हिन्दी/संस्कृत व्याख्या करने का सौभाग्य डा० सा० को ही प्राप्त है। स्वयं 'आचार्य-श्री' ने अनेक बार इस सत्य को न केवल स्वीकार किया है बल्कि श्री-मुख से, मुक्त कण्ठेन डा० सा० के वैदुष्य की प्रशंसा भी की है।

आपको स्मरण होगा कि ३०-६-८२ तदनुसार आषाढ़ शुक्ल दशमी, सं० २०३९ (स्व-जन्मदिवस) के अवसर पर पूज्यपाद जी ने विद्वद्वरकल श्री राधाकृष्ण धा० संस्थान, दिल्ली की स्थापना की थी। आगे सन् १९८६ में इस संस्था को दिल्ली संघ राज्य सरकार द्वारा पंजीकृत कर दिया गया। कालान्तर में जब कार्तिक शुक्ल अक्षय नवमी वि० सँ० २०३९ (२४-११-८२) को पूज्यपाद जी ने इस दिल्ली महानगर में अपने भौतिक शरीर को त्याग कर सिद्ध लोकों की ओर उत्क्रमण किया तो सभी ओर से उनके जीवन वृत्त को समुद्घाटित करने की मांग उठने लगी। परन्तु प्रश्न यह था कि इस श्रम-साध्य कार्य को कौन करे और कैसे करे। पूज्यपाद जी ने कब और किन परिस्थितियों में परिव्राजक जीवन में प्रवेश किया, उससे पूर्व वे क्या करते थे, कहा रहते थे, उनकी शिक्षा दीक्षा कब और कहां हुई वे किस वंश या कुल से सम्बन्धित थे उन्होंने कौन सा ग्रन्थ कब कहां लिखा इत्यादि अनेकों रहस्य थे जिन का सन्तोषजनक और यथार्थ उत्तर किसी के पास था ही नहीं, कारण यह था कि स्वयं पूज्यपाद जी ने विस्तृत रूप से इस प्रकार की व्यक्तिगत जानकारी किसी को दी नहीं थी और उनसे इस प्रकार के प्रश्न पूछने का साहस किसी को कभी हुआ ही नहीं। परिणामतः उनके जीवन की गाथा लिखना पूज्य डा० बलजिन्नाथ के ही शब्दों में "शोध कार्य" से कम नहीं था।" बहुत सोच विचार के पश्चात संस्था ने, इस समस्या के समाधान के लिए पूज्य डा० सा० की शरण में ही जाने का निर्णय किया। वे प्रतिवर्ष पूज्यपाद जी की वार्षिक पुण्यतिथि एवं संस्था के वार्षिकोत्सव के अवसर पर दिल्ली पधारा करते हैं। ऐसे ही एक अवसर पर पूज्य डा० सा० से जब इस आशय का निवेदन किया गया तो उन्होंने इसे सहर्ष स्वीकार किया। तथापि उनके लिए भी कई कारणों से इस कार्य को तुरन्त हाथ में लेना सम्भव नहीं था। एक तो वे पहले से ही रणवीर विद्यापीठ, जम्मू द्वारा शैव दर्शन से सम्बन्धित पारिभाषिक शब्द कोष के निर्माण में अतीव व्यस्त थे और निर्धारित अवधि के अन्तर्गत उसे पूरा करने के प्रति वचनबद्ध थे। दूसरे स्वयं पूज्यपाद जी ने उन्हें "श्री पीठ" की ओर एक विशेष क्रमानुसार अपने कई ग्रन्थों के प्रकाशन का दायित्व सौंप रखा था। तथापि उन्होंने अपने सतत अथक प्रयत्नों द्वारा पूज्यपाद जी के इस विस्तृत जीवन ग्रन्थ को लिखकर तैयार कर ही दिया और गत वर्ष उनकी वार्षिक पुण्यतिथि के अवसर पर उसकी पाण्डुलिपि को दिल्ली लाकर प्रकाशनार्थ संस्था को सौंप दिया। इस प्रकार पूज्य डा० सा० की साधना और गुरु चरणों में निष्ठा ही ग्रन्थ रूप में साकार होकर हमारे समक्ष है। अपनी इस अविस्मरणीय अहैतु की सेवा से उन्होंने न केवल पूज्यपाद जी के प्रेमी भक्तों की जिज्ञासा का ही शमण किया अपितु हिन्दु जाति बल्कि सम्पूर्ण मानव जाति पर जो उपकार किया है उससे

उऋण हो पाना सर्वथा असम्भव है। गुण ग्राहक पाठक वृन्द ग्रन्थ के अध्ययन के पश्चात् स्वयं ही यह अनुभव कर लेंगे, ऐसा विश्वास है।

पूज्य डा० सा० ने ग्रन्थ के प्राक्कथन में इस शरीर पर यह दायित्व डाल दिया कि प्रकाशन से पूर्व मैं इसकी सम्पूर्ण पाण्डुलिपि को ध्यान पूर्वक पढ़कर जहां आवश्यकता हो अपेक्षित स्पष्टीकरण करूं। उनके ऐसे आदेश को यहां अक्षरशः उद्धृत करना अधिक संगत होगा—

"श्री पूज्यपाद जी के दिल्ली वाले अनन्य भक्त श्री रत्नलाल जी अग्रवाल को पूज्यपाद जी के साथ चिर सहवास का सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। अतः मैं चाहूंगा कि वे इस पुस्तक को प्रकाशित करने से पहले इसे भली भांति पढ़कर जहां-जहां आवश्यकता की संवेदना हो वहां पृष्ठों के नीचे टिप्पणियों के रूप में उन उन विषयों पर और प्रकाश डालते हुये उनका स्फुट स्पष्टीकरण करें।"

अतः मैंने डा०सा० के आदेशानुसार उनके द्वारा लिखित सामग्री की एक फोटो कापी तैयार करवा ली और उसमें यत्र-तत्र उल्लिखित विभिन्न तिथियों, तथ्यों तथा व्यक्तियों और स्थानों के नामों की यथा सम्भव अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि से जांच की है और तथ्यगत त्रुटियों का समुचित परिमार्जन किया है। इसके अतिरिक्त अपरिहार्य स्थिति में अत्यावश्यक संशोधन/परिवर्तन भी किया है। विशेष रूप से अन्तिम दो अध्यायों की सामग्री जो कि 'स्वतंत्र परिव्रजन' और 'जीवन का अन्तिम दौर शीर्षक से लिखी गई है, में पर्याप्त परिवर्धन भी करना पड़ा है'। ऐसी अधिकतर घटनायें पूज्यपाद जी के दिल्ली प्रवास से सम्बन्धित हैं। ऐसा पूज्य डा०सा० की चरण रज को शिरोधार्य करकेउनसे मानसिक रूप से आज्ञा लेकर ही किया है। अन्यथा इस 'अल्पज्ञ' के पास इतनी योग्यता कहां है कि पूज्य डा०सा० के द्वारा निर्मित सामग्री में किसी 'अर्द्ध विराम' के स्थान में भी परिवर्तन कर सके।

परन्तु वास्तविक और अत्यंत जटिल समस्यायें तो तब उभर कर सामने आई जब कार्यकारिणी के निर्णय के अनुसार ग्रन्थ के मुद्रण का कार्य प्रेस को सौंप दिया गया। एक ओर से मूल सामग्री के सम्पादन का कार्य पूरे मनोयोग से प्रारम्भ किया और दूसरी ओर से प्रूफ शोधन के लिए पृष्ठ आने लगे। तीसरी ओर से कागज़ की व्यवस्था के लिए दौड़-धूप। चौथी ओर से पर्याप्त धन और अनुभव का अभाव। मैं किं कर्तव्यविमूढ़ सा हो गया था। परन्तु हम लोगों के पास प्रत्येक विपत्ति से त्राण पाने को मात्र एक ही चिंतामणि है—वह है 'गुरु कृपा पर विश्वास' (पूज्यपाद गुरुवर्य का स्मरण करते ही सभी समस्यायें स्वमेव समाधान को प्राप्त हो गईं।)

कागज का प्रबन्ध बहुत ही विश्वसनीय विक्रेता (मारुति पेपर हाऊस) द्वारा

कर दिया गया। अनावश्यक दौड़-धूप करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी। 'मुद्रण' और 'ब्लॉक' इत्यादि की व्यवस्था तो और भी अधिक सुचारु ढंग से हो गई। इसके लिये **'पंकज'** और **'वन्दना'** प्रेस के प्रबन्धक क्रमश: श्री त्रिपाठी जी और श्री तिवाड़ी जी धन्यपाद के पात्र हैं। उनके सहयोग और आत्मीयता-पूर्ण व्यवहार के बिना ग्रन्थ का इतनी त्वरित गति से प्रकाशन कदापि संभव नहीं हो पाता।

अपने आत्मीय सुहृद एवं सहयोगी श्री माधव शर्मा, (एम० ए०) का भी मैं अन्तरात्मा से आभारी हूं जिन्होंने अपना बहुमूल्य योगदान ग्रन्थ के प्रूफ-शोधन इत्यादि कार्यों में देकर प्रकाशन को सुनिश्चित बनाया।

अंत में मैं अपना सर्वोपरि अभार करुणा वरुणालय पूज्यपाद श्री गुरुवर्य के पावन चरणारवृन्द में अर्पित करते हुते स्वयं को कृतकृत्य और परम सौभाग्यशाली मानता हूं जिनकी सद्प्रेरणा से मैं यह 'तुच्छाति तुच्छ' सेवा कर पाने में समर्थ हो सका। मेरे इन प्रात: वन्दनीय गुरुदेव के पदपाथोजद्वय सदैव मेरे हृदय में विराजमान रहें, यही निवेदन है। इनकी कृपा की छत्रछाया में ही मेरा जीवन रूपी वृक्ष अंकुरित पल्लवित और पुष्पित हुआ है। अंकुरित तो तब हुआ जब २४ दिसम्बर सन् १९६१ को इन्होंने मुझे सुहाणा में बुलाकर रवि, पुष्य नक्षत्र में शिव-मन्त्र की दीक्षा देकर कृतार्थ किया। पल्लवित तब हुआ जब अपनी विशेष प्रेरणा द्वारा वे मुझे पञ्जाब से एक साधारण अध्यापक के पद से मुक्ति दिलाकर दिल्ली ले आये और यहां उच्च-न्यायालब में एक राज-पत्रित अधिकारी के पद पर नियुक्त करवा दिया। मैंने उसे पुष्पित हुआ तब माना जब उन्होंने मुझ अस्थायी रूप से तीस हजारी न्यायालय में स्पेशल मजिस्ट्रेट की कुर्सी पर बिठा दिया। आज यदि इन सब का उल्लेख मैं नहीं करता हूं तो यह मेरी कृतघ्नता होगी, क्योंकि यह सब घटित होने की भविष्यवाणी तो अनन्त 'श्री जी' महाराज, मेरा जन्म पत्र देख कर सन् १९५९ में खरड़ में कर चुके थे। उनकी कृपा का कोई वारापार मैं नहीं देखता। सिद्ध लोकों के प्रति प्रस्थान करने के पश्चात् भी उन्होंने हमारे वर्तमान (उच्च-न्यायालय स्थित) आवास में मेरी गृहिणी को एक दिन साक्षात् प्रकट होकर दर्शन देकर कृतार्थ किया।

नई दिल्ली
चन्द्रवार, कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा
वि० संग १९४६
तदनुसार ३० अक्तूबर ई० सन् १९८९

रत्नलाल अग्रवाल
(एम० ए० एल० एल० बी०)
कोषाध्यक्ष, वि० व
श्री राधाकृष्ण धा० संस्थान
दिल्ली।

सम्मतियाँ

(१)

अनन्तश्रीविभूषित
जगद्गुरु शङ्कराचार्य गोवर्धनपीठाधीश्वर
स्वामी श्री निरञ्जन देव तीर्थ जी महाराज
गोवर्धनमठ, पुरी (उड़ीसा)।

कार्तिक कृष्ण १३,
वि० स० २०४६

स्वामी श्री अमृतवाग्भवाचार्य वेदशास्त्रानुगामी महापुरुष महात्मा थे। वह आजीवन गो, विप्र, वेद, सती, सत्यवादी, अलुब्ध, दानशील इन सात महीधारक स्तम्भों के तथा वेदपुराणेतिहास प्रतिपादक धर्म एवं वर्णाश्रम मर्यादा के पालक, रक्षक एवं प्रचारक रहे। अपनी मूल विचारधारा में वह अखिल भारत वर्षीय धर्मसंघ के संस्थापक धर्म-सम्राट् विश्ववन्द्य स्वामी श्री करपात्री जी महाराज एवं ब्रह्मलीन जगद्गुरु शङ्कराचार्य ज्योतिषपीठाधीश्वर स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रम जी महाराज के हृदय से अनुगामी प्रशंसक थे।

डा० पण्डित बलजिन्नाथ द्वारा लिखित उनका जीवनवृत्त उनके भक्तों को शास्त्रीय धर्म, प्राचीन भारतीय मूल्यों एवं गोरक्षा में प्रेरित करेगा ऐसी हमारी आशा है। विद्वद्वरकल श्री राधाकृष्ण धार्मिक संस्थान को धार्मिक गतिविधियों में मङ्गल कामना करते हैं।

—निरञ्जन देव तीर्थ
जगद्गुरु शंकाचार्य गोवर्धनपीठाधीश्वर
अध्यक्ष—अ० भा० धर्मसंघ तथा अ० भा०
सर्वदलीय **गोरक्षा महाभियान** समिति

अनन्तश्रीविभूषित
स्वामी श्री नंदनंदनानंद सरस्वती जी महाराज
एम० ए०, एल० एल० बी०, भूतपूर्व संसद सदस्य,
उपाध्यक्ष अ० भा० धर्मसंघ
केदार घाट, वाराणसी (उत्तर प्रदेश)

श्री वैद्यनाथ ही आनन्दस्वरूप से परमानन्दात्मक अमृतवाग्भव होकर अपनी अमृतनियन्दिनी वाणी से धर्म एवं दर्शन के गूढतम रहस्यों के उद्घाटन में आजीवन प्रवृत्त रहे। उनको लौह लेखिनी से प्रसूत साहित्य उनके व्यक्तित्व की सर्वाङ्गीणता का परिचायक है। धर्म एवं समाज के शाश्वत मूल्यों के प्रति उनका समर्पित भाव था। वह धर्म में अनावश्यक राजनीतिक हस्तक्षेप के विरोधी तथा धर्माङ्कुश सम्वलित शासन पद्धति के परिपोषक थे।

उनके लौकिक आत्मविलास का डा० बलजिन्नाथ पण्डित जी ने इस जीवनवृत्त में सम्यक् प्रतिपादन किया है। उनका अलौकि— "आत्मविलास" वाणी से परे का विषय है। यह ग्रन्थ लोकोपकारक एवं सद्धर्मपथ प्रदर्शक हो ऐसी श्रीमन्नारायण से प्रार्थना है। इतिशम्।

कार्तिक कृष्ण द्वादशी
वि० सं० २०४६

—**नंदनंदनानंद सरस्वती**
केदार घाट, वाराणसी

अनन्तश्रीविभूषित
स्वामी माधवाश्रम (शुकदेव) स्वामी जी महाराज
महामन्त्री अ० भा० धर्मसंघ,
लुधियाना (पंजाब)।

कार्तिक कृष्ण १०,
वि० सं० २०४६

सिद्ध, सन्त, योगी एवं सर्वतन्त्र स्वतन्त्र अनन्त श्री स्वामी अमृतवाग्भवाचार्य जो प्राचीन आर्य परम्परा के रक्षक महापुरुष थे। शिमला के निकट कण्डाघाट तथा अन्यत्र भी उनके अनेक बार दर्शन हुए। सनातन धर्म के प्राणभूत वेद एवं वर्णाश्रम में उनकी दिव्य रुचि थी। योगशास्त्र, दर्शनशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, समाज शास्त्र, राजनीति शास्त्र एवं धर्मशास्त्र के अधिकारी विद्वान थे। उनके द्वारा विरचित स्तोत्र साहित्य में उनको रसात्मिका अथवा रागात्मिका भक्ति के दर्शन होते हैं। वे महापुरुष अनन्य भगवद्भक्ति तथा भागवत के भी वैसे ही रसिक थे जैसे शिव-शक्ति तत्व एवं भारतीय दर्शन की सभी विधाओं के। प्रकाश स्तम्भ भूत यह महापुरुष मूलतः अ० भा० धर्मसंघ के सिद्धान्तों के परिपोषक थे। डा० बलजिन्नाथ पण्डित जी द्वारा लिखित उनका यह जीवनवृत्त प्राणीमात्र का पथ प्रदर्शक एवं धर्मपालनपुरस्सर ऐहिकामुष्मिक अभ्युदय का हेतु होगा ऐसी आशा एवं विश्वास है।

—**माधवाश्रमः**
(शुकदेव स्वामी)

डा० एस० एन० तिक्कू
ए० एम० एस०, बी० एच० यू०, डी० ओ० एल० (पंजाब)
इन्चार्ज आयुर्वेदिक हास्पिटल
श्री बनारसीदास चांदी वाला स्मारक सेवा केन्द्र
कालकाजी, नई दिल्ली-११००१९

प्रातः स्मरणीय श्री अमृतवाग्भवाचार्य जी का 'जीवनचरित' मुद्रित हो रहा है। श्री आचार्य जी वर्तमान शताब्दी के महान् गुप्त विभूतियों की श्रेणी में गणनीय है। उनकी संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डितों में विशिष्टता तो थी ही इसके अतिरिक्त वह सिद्धहस्त लेखक और आशु कवि भी थे। उनको 'राष्ट्रालोक' रचना उनकी अद्भुत प्रतिभा, देशभक्ति एवं नवीन राष्ट्रीयता का ज्वलन्त उदाहरण है। उनकी बहुमुखी विद्वत्ता तथा उनकी शास्त्र साधना अत्यन्त श्लाघनीय है। उनको धार्मिक साधना तथा उनकी गुप्त एवं अत्यन्त रहस्यपूर्ण दैवी शक्तियां भी विलक्षण थीं। हमें तो उनके जोवनचरित के प्रकाशित होने पर परम सन्तोष और हर्ष हो रहा है।

इसके लिये उनके सभी भक्त और सेवक अपने को कृतकृत्य मानते होंगे ऐसा मेरा विचार है। यह संस्था जिसने परम पुनीत कार्य को संपन्न किया है धन्यवाद की पात्र हैं।

मैं इस ग्रन्थ के विद्वान् लेखक डा० बलजिन्नाथ पण्डित को जिन्होंने विविध स्रोतों से महात्मा जी के जीवन का इतिवृत्त संगृहीत कर के ग्रन्थ को सम्पूर्ण किया है, हार्दिक धन्यवाद और बधाई देता हूं। वास्तव में ऐसे गुप्त सिद्ध पुरुष का जीवन चरित लिखना सुकर नहीं था।

डा० श्रीनाथ तिक्कू

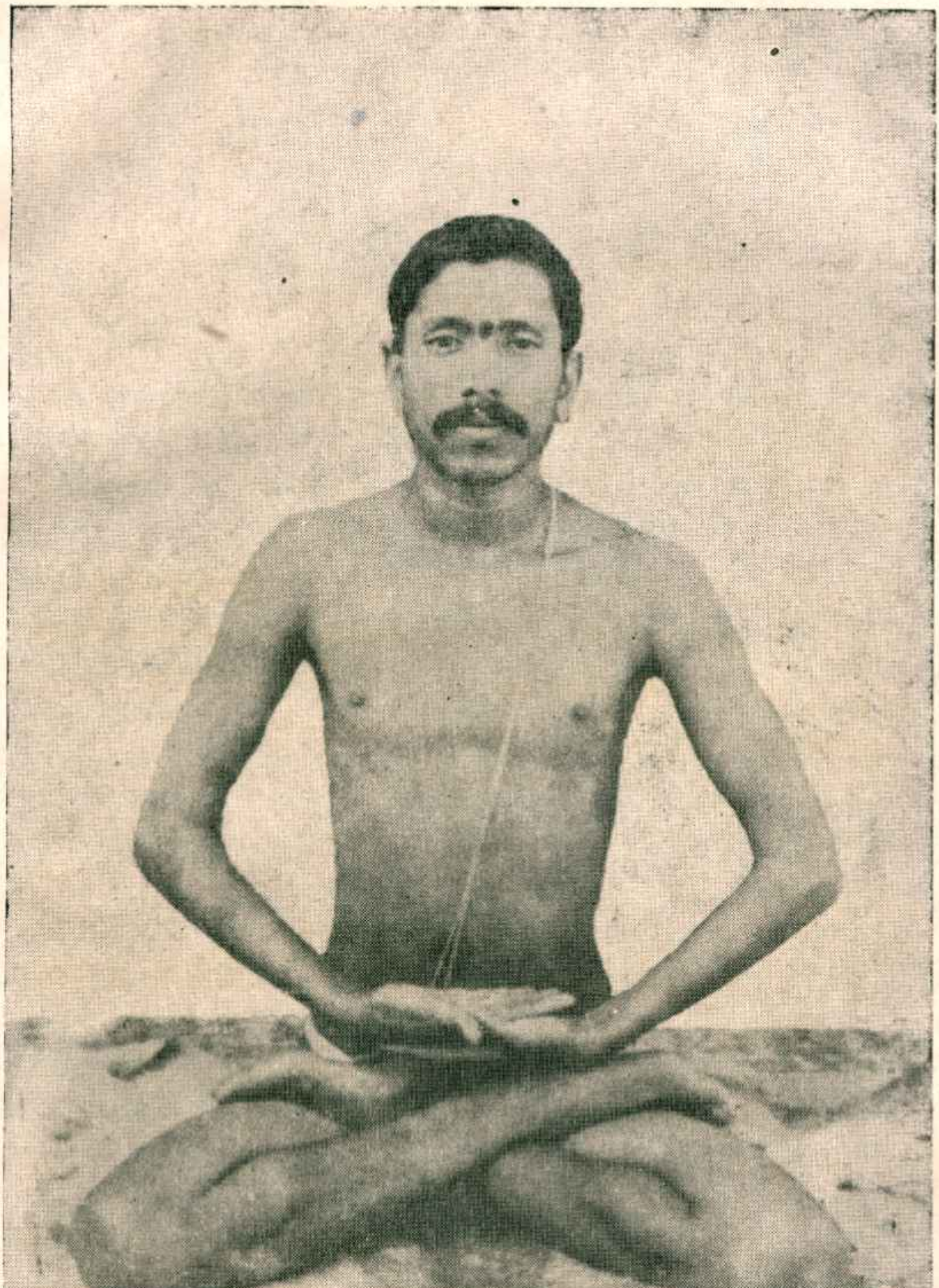

शाम्भी योग मुद्रा में चतुर्थ दशक के किसी वर्ष का चित्र

अध्याय १

अतीत जन्मों की घटनाएं

श्री **चखमा बाबा** के द्वारा सिखाई हुई योग धारणा के अभ्यास से पूज्यपाद आचार्य जी को अपने अतीत जन्मों की जो स्मृति हुई थी उसके आधार पर उन्होंने जो कुछ मुझे स्वयं कहा है या लिखकर रखा है उसी के आधार पर यह अध्याय लिखा जा रहा है। तदनुसार आज से लगभग दो ढाई सौ वर्ष पूर्व पूज्य पाद जी अन्तरिक्ष लोक में स्थित किसी ऊँचे विद्याधरभुवन में रहा करते थे। तन्त्रालोक में और 'स्वच्छन्द तन्त्र' में विद्याधरों के मुख्य तीन भुवनों का वर्णन मिलता है। उन भुवनों में भिन्न-भिन्न स्तरों के विद्याधर नाम के प्राणी निवास करते हैं। उन्हीं भुवनों में से किसी एक भुवन में पूज्यपाद जी निवास करते थे। जैसा कि उन्होंने मुझे एक बार स्वयं कहा, विद्याधरों के भुवन पृथ्वी से ऊपर और स्वर्लोक से नीचे अन्तरिक्ष लोक में कहीं विद्यमान हैं। उन भुवनों के प्राणी सूक्ष्म शरीरों में ही रहते हैं। उनके वे शरीर लगभग वैसे ही शरीर होते हैं जैसे शरीरों के द्वारा हम लोग स्वप्न दशा में काम किया करते हैं। जैसे हम स्वप्न दशा में अपने अभीष्ट ज्ञानमय और क्रियामय व्यवहारों को चलाया करते हैं और केवल संकल्पों ही के द्वारा चलाया करते हैं; उस सूक्ष्म सृष्टि के प्राणी भी सङ्कल्प मात्र से ही सभी ज्ञान क्रियात्मक व्यापारों को करते रहते हैं। हम लोगों को जागृत् अवस्था में स्थूल पदार्थों के योग से तृप्ति मिलती है, परन्तु स्वप्न में वह तृप्ति विषयों के संकल्प मात्र से ही हुआ करती है। उस अवस्था में हमारे योग्य विषय भी मन के सङ्कल्प से ही बने हुए होते हैं। उसी तरह से सूक्ष्म शरीरों वाले प्राणी उत्कृष्ट भुवनों में साङ्कल्पिक विषयों का ही उपभोग करते हैं। उन्हें स्थूल विषयों की आवश्यकता पड़ती ही नहीं। अन्तर अवश्य इतना है कि हमारा स्वप्न संसार अस्थिर और क्षणभंगुर होता है, क्योंकि हम चिरकाल तक उस संसार में ठहर नहीं पाते; तुरन्त जाग पड़ने पर हमारा वह संसार क्षण मात्र में ही विलीन हो जाता है। परन्तु उत्कृष्ट भुवनों में रहने वाले प्राणी स्थिरतया सूक्ष्म शरीरों में ही चिरकाल तक निवास किया करते हैं। हमारी सृष्टि के प्राणी लगातार उत्पन्न होते रहते हैं और मरते रहते हैं, परन्तु सूक्ष्म भुवनों के प्राणी

वहां के सूक्ष्म शरीरों में चिरकाल तक जीवित रहते हैं। इसी बात को आधार बनाते हुए हम लोग उन्हें अमर कहते हैं। पूज्यपाद जी के शब्दों में उन सूक्ष्म शरीरों में हमारी अपेक्षा सहस्रों गुणा बढ़-चढ़ कर सामर्थ्य होती हैं। विषय भोग में भी और योग साधना में भी उन प्राणियों में हमारी अपेक्षा सहस्रों गुणा अधिक क्षमता हुआ करती है। परन्तु हम लोगों की तरह उन प्राणियों में भी काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, स्पर्धा, द्वेष आदि दुर्गुण हुआ ही करते हैं। उन भुवनों में भी तरह तरह की प्रवृत्तियों और भिन्न-भिन्न स्वभावों के प्राणी रहा करते हैं। ऐसी बातें भी पूज्यपाद जी ने मुझे स्वयं कहीं हैं। उस लोक के उस जीवन की स्मृति के उद्बुद्ध होने के विषय में ऐसा उन्होंने कहा था कि जैसे कभी किसी तीव्र उद्बोधक कारण के प्रभाव से कोई सर्वथा भूली हुई बात एकदम स्मृति-पटल पर चमक उठती है, उसी तरह से उन भूले हुए जन्मों की स्मृति उन्हें उद्बुद्ध हो गई थी।

जैसे इस मर्त्यलोक के प्राणियों को भिन्न-भिन्न वर्गों में गिना जाता है उदाहरणार्थ मनुष्य, पक्षी, पशु, कृमि, कीट, वृक्ष, पौधे इत्यादि, वैसे ही उन सूक्ष्म और सूक्ष्मतर भुवनों के प्राणी भी कई एक वर्गों के हुआ करते हैं। उन्हीं वर्गों मे से एक वर्ग विद्याधरों का है। विद्याधर विद्याओं के व्यसनी होते हैं। वे सङ्गीत आदि ललित कलाओं से बहुत प्रेम रखते हैं और उनमें विशेषतया प्रवीण होते हैं। पूज्यपाद जी जब अभी बालक ही थे तो तो उन्होंने अपने पिता जी से धर्माचार्य की पञ्चस्तवी का एक श्लोक सुना जिसमें विद्याधरों द्वारा की जाती हुई जगदम्बा की पूजा का वर्णन किया गया है। श्लोक सुनने पर उन्हें उसके अर्थ को जानने की इच्छा हुई। जब पिता जी ने श्लोक का अर्थ सुना दिया तो, उनके कहे अनुसार, उन्हें अर्थ को सुनते ही एक ऐसी तीव्र वेदना हो गई; कि मानो उनके हृदय को कोई चीर रहा है। क्षणमात्र की उस वेदना से वे मूर्छित हो गए। पश्चात् कई महीनों तक उस मूर्छा के रोग ने उन्हें पकड़े रखा। उन्होंने एक बार उस घटना का काफी विस्तार से किया गया वर्णन श्री स्वाध्याय के किसी अङ्क में प्रकाशित किया था। उस लेख का पुनः प्रकाशन उनके जयपुर वाले भक्तों ने सन् १९८३ ई० में एक पुस्तिक में किया। उस लेख के द्वारा एक तो विद्याधरों के जीवन का स्फुट चित्र सामने आ जाता है, दूसरे ऐसा प्रतीत होता है कि श्लोक का अर्थ सुनते ही पूज्यपाद जी के अवचेतन (subconscious) मन में भुक्तपूर्व विद्याधर भुवन की एकदम स्मृति उद्बुद्ध हो गई और उसी स्मृति से होने वाली तीव्र वेदना से वे मूर्छित हो गए। फिर उसी अज्ञात वेदना ही के कारण उन्हें मूर्छा का रोग महीनों लगा रहा। महा कवि श्री कालिदास ने भी मनोविज्ञान के इस सिद्धान्त के अनुसार दुष्यन्त का वर्णन अभिज्ञान शाकुन्तल में इस तरह से किया है—

रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्
पर्युत्सुको भवति यत् सुखितोऽपि जन्तुः ।
तच्चतेसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं
भावास्थिराणि जननान्तरसौहृदानि ॥

(अभि० शा० ५)

अर्थ—यदि कोई सुखी मानव कभी किन्ही सुन्दर दृश्यों को देखकर या मधुर शब्दों को सुनकर बिना कारण के ही व्याकुल हो जाए तो समझना चाहिए कि उसे न जानते हुए ही अतीत जन्म की किन्ही स्नेहमयी घटनाओं की अन्तः स्मृति हो रही है जो प्रेम के भाव के रूप में उसके भीतर स्थिरतया संस्कार रूप में ठहरी रहती हैं । जैसा कि पीछे कहा गया, आगम शास्त्रों में विद्याधरों को तीन मुख्य वर्गों में बांटा गया है । वे हैं—अधम, मध्यम और उत्तम । श्री पूज्य-पाद जी इन तीन वर्गों में वहां किस वर्ग के प्राणी थे, उनका नाम वहां क्या था, निकट सम्बन्धी कौन थे, गुरु कौन थे और उनके साथ प्रेम या वैर करने वाले कौन-कौन थे, इन इन बातों के विषय में हमने उनसे कभी कुछ पूछा नहीं । उन्होंने स्वयं इस इस तरह की बातें बताई थीं कि उस उत्तम भुवन में रहते हुए भी वे भोगी न होकर एक साधक साधु ही थे । वहां कुछ लोगों को उनसे ईर्ष्या हो गई और उन्होंने उनके गुरु के पास जाकर शिकायत की कि उनका चरित्र ठीक नहीं है । साथ एक महिला को भी साक्षी के रूप में प्रस्तुत कर दिया । इस बात पर गुरु जी अत्यन्त रुष्ट हो गए और इन्हें शाप दिया कि "गच्छ मर्त्य-लोकम्" । उनके कहे अनुसार, पश्चात् गुरुजी को इस बात का पूरा पता लग तो गया कि शिकायत सर्वथा झूठी थी । परन्तु शाप दे चुके थे । मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि जब गुरु जी ने निरपराध होते हुए भी उनको क्रोध से खूब डांटा होगा तो उस निष्कारण डांट से आवेश में आ करके पूज्यपाद जी ने भी डट कर जोश भरे शब्दों में कुछ कहा होगा । उससे गुरु जी की क्रोधाग्नि अधिक प्रज्वलित हुई होगी और वे उसके आवेश में शाप दे गए होंगे । उसके फल स्वरूप पूज्य-पाद जी को चार बार इस मर्त्यलोक में जन्म लेना पड़ा । इस विषय में उन्होंने स्वयं इतना ही लिखा है कि उन्होंने गुरु की अवज्ञा की और इस पर गुरु ने उन्हें शाप दिया । चखमा बाबा के कहे अनुसार पांचवीं बार पुनः यहां जन्म लेना था । जो जगदम्बा की कृपा से टल ही गया । वस्तुतः जब पिछले तीसरे जन्म में वे एक राजा थे तो एक बड़ा ही धर्मात्मा जैन वहां उनका मन्त्री था जो वहां काफी लम्बी आयु तक जीवित रहा । उसने वहां का शरीर छोड़ कर **हरदोई** में एक भार्गव वंश के धनाढय ब्राह्मण के घर में जन्म लेना था और कुछ समय के पश्चात् पूज्यपाद जी ने भी वर्तमान शरीर को छोड़कर उस धनाढय ब्रह्मण के पुत्र के

रूप में वहीं जन्म लेना था। पूज्यपाद जी को अपने उस मन्त्री ने उस पूर्व शरीर को छोड़कर हरदोई में जन्म लेने को जाते हुए दर्शन देकर प्रार्थना की थी कि कुछ समय पश्चात् वे भी उधर उसके पुत्र के रूप में जन्म लेवें। इस घटना से उन्हें **चखमा बाबा** की भविष्य वाणी याद आ गई। पुनर्जन्म के भय से उन्होंने जगदम्बा से बहुत अधिक आतुरता से प्रार्थना की कि उन्हें पुनः इस मर्त्य जीवन में आना न पड़े। जगदम्बा ने उनकी प्रार्थना को स्वीकार किया और उन्हें पुनर्जन्म से विमुक्त ही कर दिया इस तरह से उन्हें पहले से ही उस पांचवें जन्म से मुक्ति मिली। मेरा ऐसा अनुमान है कि उस पांचवें जन्म में अवश्य ही भोगे जाने वाले कर्मों के फल का भोग करने के लिए उनके वर्तमान शरीर की आयु को बढ़ाया गया और जीवन के अन्तिम वर्षों में उन्होंने उन अवश्य भोक्तव्य कर्मों के फल का भोग पूरा कर दिया। जयपुर वाली सन् १९८३ वाली पुस्तिका के अनुसार पूज्यपाद जी ने ६५ वर्ष की आयु को पूरा करके ही हरदोई में पुनर्जन्म लेना था। तदनुसार उनकी आयु को जगदम्बा ने पन्द्रह वर्ष के लिए बढ़ा दिया। परन्तु उस पुस्तिका में वर्ष संख्या के विषय में कोई प्रमाण नहीं दिया गया है। पूज्यपाद जी ने इस विषय में मुझ से केवल इतना ही कहा है कि एक चिरंजीवी को छोड़कर उनके पूर्वज सभी पच्चास वर्ष की आयु से पहले ही परलोक को सिधार गए और केवल वे ही उस अवधि से आगे बढ़ गए।

काव्यों और शास्त्रों में कहा गया है कि देवगणों के भुवनों से जब कोई प्राणी इस मर्त्यलोक में जन्म लेने के लिए उतर आता है तो सर्वथा दरिद्र बन कर नहीं उतरता है। देवलोक के अधिकारी उसके पुण्यों का कुछ भाग बचाकर रखते हैं, जिसे साथ लेकर वह इस लोक में उतरता है। वह पुण्य शेष उसके प्रारब्ध का एक आवश्यक अङ्ग बना रहता है। उसी के फल को यहां 'स्वर्गशेष' कहते हैं। तो पूज्यपाद श्री आचार्य जी भी पुण्यशेष को साथ लेकर ही विद्याधरों के भुवन से इस पृथ्वी पर उतर आए। उसके फलस्वरूप वे एक सुविशाल राज्य के एक धार्मिक राजपूत शासक के पुत्र के रूप में इस मर्त्यलोक में प्रकट हो गए। उनका लालन, पालन, शिक्षा, दीक्षा सब कुछ सम्राटों के ही ढंग से होता रहा। समय आने पर वे उस राज्य के शासक बने और काफी समय तक शासन करते रहे। उनका वह जन्म यहां लगभग सन् १८२० ई० के आस पास हुआ। आगे शासक बन कर लगभग सन् १८९० ई० तक शासन करके उन्होंने उस शासक शरीर को छोड़ दिया। उस जन्म को उन्होंने सनातनी धर्म परम्परा के अनुसार निभाया। वहां वे शाक्त साधना में दिलचस्पी लेते रहे। उनकी इष्ट देवी वहां भगवती ललिता त्रिपुर सुन्दरी थी। ललिता सहस्र नाम का नियमतः पाठ भी करते रहे और उसके पाठों का किसी विशेष संख्या को पूर्ण करने का उन्होंने वहां सङ्कल्प भी कर रखा था। परन्तु वह सङ्कल्पित पाठ संख्या उनसे वहां पूरी नहीं हो

की घटना की काफी जांच महाराजा ने पोलिस के द्वारा करवाई तो थी, परन्तु किसी भी बात को विश्वसनीय प्रमाणों के आधार पर प्रमाणित नहीं किया जा सका। आकस्मिक मृत्यु के विषय में एक साक्ष्य ऐसा भी सामने आया कि महात्माजी अभ्रक की भस्म खाया करते थे और उन दिनों जो भस्म लेते रहे वह कच्ची थी और उस कच्चीं अभ्रकभस्म ने उनके प्राण ले लिए। विश्वसनीय प्रमाण के अभाव के कारण महाराजा न तो किसी को दण्ड ही दे सके, न मृत्यु के वास्तविक कारण की घोषणा ही कर सके और न कोई और कार्यवाही ही कर सके। उधर से महात्मा जी के अनुयायियों ने जिन स्वकपोलकल्पित कहानियों को देश भर में फैला दिया उनका आगे इतना प्रचार हो गया कि कल्पिल कहानियां ही सच्चा इतिहास समझी जाने लगीं; इतनी सत्य समझी जाने लगीं कि वास्तविक सत्य की खोज करने के प्रति किसी को भी प्रवृत्ति हुई ही नहीं और न अब भी हो रही है। अस्तु। कलिकाल में प्रायः ऐसा होता ही रहता है।

उस जन्म की बहुत सी बातें पूज्यपाद जी को याद आ गई थीं। उस राज प्रासाद की जैसी धुन्धली स्मृति उन्हें जाग उठी थी। मैंने उसी के अनुरूप उस प्रासाद को पाया। वहां के शासकों के चित्रों को मैंने देखा तो मुझे उस शासक के चित्र की और पूज्यपादजी की मुखाकृति में परस्पर काफी समानता दीख पड़ी। वहां उनके पास करांची का एक जौहरी रत्न विक्रय के लिए प्रायः आया करता था। उस जौहरी ने पुण्य कर्मों के फल से कश्मीर में एक धार्मिक पण्डित परिवार में जन्म लिया था। श्रीनगर में पूज्यपाद जी उनके घर में बहुत बार निवास करते रहे। वे भी बड़े स्नेह और बड़ी श्रद्धा से उनकी सेवा करते रहे। श्रीनगर में उन्हें **टिकालाल** खजांची कहते थे। उन्हें देखते ही पूज्यपादजी को उनके पूर्वजन्म के जौहरी शरीर की याद आया करती थी। उस पूर्वजन्म में उनके जैन मन्त्री की बात का उल्लेख पीछे किया गया है। बृन्दावन में उन्होंने एक बार उस जन्म की एक बहिन को देखा था जो किसी छोटे से राज्य की रानी थी। उसका नाम सुनते ही उन्हें उस बहिन की शादी के उत्सव की सभी बातें स्मृति पटल पर जाग उठीं। उस विवाह में उनके उस जन्म के पिता ने कन्यादान कन्या के मामा के द्वारा करवाया था। क्योंकि एक छोटे से राजा के साथ ऐसा सम्बन्ध जोड़ने की रस्म में उनके साथ बैठना उन्हें अपनी शान के विपरीत प्रतीत हुआ था। पूज्यपाद जी के कथन के अनुसार वर्तमान जीवन में उन्होंने अपने बड़ों से यह भी सुना था कि जब वे ढाई तीन वर्ष की आयु के थे तो तब प्रायः कहा करते थे कि यह मेरा घर नहीं है। मेरा घर तो अति विशाल है, सुन्दर है और समृद्ध है।" उन्होंने स्वयं लिखा भी है कि उन्हें शैसव में अपना घर प्रायः अपना नहीं लगता था, परन्तु पश्चात् वैसे संस्कार धीरे-धीरे धूमिल होते गए। फिर उन्होंने यह भी कहा

है कि उनके बड़ों के अनुसार वे शैशव में कभी कभी किन्हीं ऐसे शब्दों का प्रयोग किया करते थे जिनका प्रयोग उत्तर प्रदेश में न होकर किसी अन्य प्रदश में ही हुआ करता है। वे कहा करते थे कि ज्यों-ज्यों शैशव बीतता गया और कौमार अवस्था आती गई, त्यों-त्यों वैसी-वैसी धूमिल स्मृतियों के संस्कार दबते-दबते मिट ही गए। तब तक मिटे ही रहे जब चखमा बाबा के द्वारा सिखाई गई साधना के प्रभाव से स्मृति पुन: जाग उठी।

पूज्यपाद जी को अपने उस पूर्वजन्म की राजधानी में पुनः जाने में भय लगता था। एक बार गए भी थे; परन्तु दूसरे ही दिन वहां से लौटे। वे कहते थे कि मन पर विश्वास नहीं करना चाहिए, क्योंकि मन स्वभाव से ही अस्थिर और चञ्चल होता है। यदि मन पर उधर की वासना सवार हो जाए, तो क्या पता कि कहीं उधर जाकर पुन: जन्म लेना पड़े" उनके एक भक्तजन उस नगरी में एक अच्छे अधिकारी थे। बहुत बार उन्हें उधर आने के लिए आग्रह किया करते थे। आखिर एक बार उन्हें उधर आने का वचन दे ही गए और कह गए कि अमुक रविवार को मोटर लेकर आ जाना तो हमें अपने साथ ले चलना। कारणवशात् उस रविवार से पूर्व शनिवार को उन अधिकारी महोदय को सरकारी काम के लिए दूर कहीं जाना पड़ा और उन्होंने फोन द्वारा ऐसा सन्देश उन्हें भेज दिया। दूसरे ही दिन पूज्यपादजी उस नगर को छोड़कर दूर किसी और नगर को चले गए। जब वे अधिकारी पुन: अपने स्थान पर पहुंचे और फोन करके पता किया तो उन्हें विदित हो गया कि पूज्यपादजी दूर कहीं चले गए हैं। इस तरह से उन्होंने उस राजधानी में जाने के कार्यक्रम को सदा के लिए टाल ही दिया।

राजलक्ष्मी की मादक और मोहक शक्ति इतनी प्रबल होती है कि उसके प्रभाव से विवेकी राजा भी बहुत बार अकार्य कर बैठते हैं। बाण भट्ट की कादम्बरी के शुकनास के उपदेशों के प्रकरण में राजलक्ष्मी के ऐसे दुष्प्रभावों का विस्तार से वर्णन किया गया है। पूज्यपादजी से भी उस जन्म में क्या मालूम कितने ऐसे दुष्कर्म प्रमादवश हो गए हों। फिर राजा के अमात्य, मन्त्री प्रशासक भी जो-जो अन्याय करते रहते है, उनका आंशिक फल राजा को भी भोगना पड़ता है। तो उस शासक जीवन में पूज्यपाद जी के हाथों जो भी थोड़े बहुत दुष्कर्म हुए थे वे उनके वर्तमान जीवन में अपना फल दे ही गए। इसी कारण से इस जीवन के अन्तिम दो तीन वर्ष में उन्हें अनेकों रोगों ने घेर कर रखा। पूज्यपादजी को स्मरण था कि अपने शासकीय अधिकार के दुष्प्रयोग से एक बार उन्होंने एक व्यक्ति के साथ घोर अन्याय किया था, तो वर्तमान जन्म में गोविन्दानन्द नामक एक साधु के वेष में घूमते हुए उसी व्यक्ति ने नालागढ़ में पूज्यपादजी को भोजन के साथ कोई विषैली वस्तु खिला दी जिससे उन्हें महीनों भर भगन्दर महारोग से अत्यन्त कष्ट

रूप में वहीं जन्म लेना था। पूज्यपाद जी को अपने उस मन्त्री ने उस पूर्व शरीर को छोड़कर हरदोई में जन्म लेने को जाते हुए दर्शन देकर प्रार्थना की थी कि कुछ समय पश्चात् वे भी उधर उसके पुत्र के रूप में जन्म लेवें। इस घटना से उन्हें **चखमा बाबा** की भविष्य वाणी याद आ गई। पुनर्जन्म के भय से उन्होंने जगदम्बा से बहुत अधिक आतुरता से प्रार्थना की कि उन्हें पुनः इस मर्त्य जीवन में आना न पड़े। जगदम्बा ने उनकी प्रार्थना को स्वीकार किया और उन्हें पुनर्जन्म से विमुक्त ही कर दिया इस तरह से उन्हें पहले से ही उस पांचवें जन्म से मुक्ति मिली। मेरा ऐसा अनुमान है कि उस पांचवें जन्म में अवश्य ही भोगे जाने वाले कर्मों के फल का भोग करने के लिए उनके वर्तमान शरीर की आयु को बढ़ाया गया और जीवन के अन्तिम वर्षों में उन्होंने उन अवश्य भोक्तव्य कर्मों के फल का भोग पूरा कर दिया। जयपुर वाली सन् १९८३ वाली पुस्तिका के अनुसार पूज्यपाद जी ने ६५ वर्ष की आयु को पूरा करके ही हरदोई में पुनर्जन्म लेना था। तदनुसार उनकी आयु को जगदम्बा ने पन्द्रह वर्ष के लिए बढ़ा दिया। परन्तु उस पुस्तिका में वर्ष संख्या के विषय में कोई प्रमाण नहीं दिया गया है। पूज्यपाद जी ने इस विषय में मुझ से केवल इतना ही कहा है कि एक चिरंजीवी को छोड़कर उनके पूर्वज सभी पच्चास वर्ष की आयु से पहले ही परलोक को सिधार गए और केवल वे ही उस अवधि से आगे बढ़ गए।

काव्यों और शास्त्रों में कहा गया है कि देवगणों के भुवनों से जब कोई प्राणी इस मर्त्यलोक में जन्म लेने के लिए उतर आता है तो सर्वथा दरिद्र बन कर नहीं उतरता है। देवलोक के अधिकारी उसके पुण्यों का कुछ भाग बचाकर रखते हैं, जिसे साथ लेकर वह इस लोक में उतरता है। वह पुण्य शेष उसके प्रारब्ध का एक आवश्यक अङ्ग बना रहता है। उसी के फल को यहां 'स्वर्गशेष' कहते हैं। तो पूज्यपाद श्री आचार्य जी भी पुण्यशेष को साथ लेकर ही विद्याधरों के भुवन से इस पृथ्वी पर उतर आए। उसके फलस्वरूप वे एक सुविशाल राज्य के एक धार्मिक राजपूत शासक के पुत्र के रूप में इस मर्त्यलोक में प्रकट हो गए। उनका लालन, पालन, शिक्षा, दीक्षा सब कुछ सम्राटों के ही ढंग से होता रहा। समय आने पर वे उस राज्य के शासक बने और काफी समय तक शासन करते रहे। उनका वह जन्म यहां लगभग सन् १८२० ई० के आस पास हुआ। आगे शासक बन कर लगभग सन् १८९० ई० तक शासन करके उन्होंने उस शासक शरीर को छोड़ दिया। उस जन्म को उन्होंने सनातनी धर्म परम्परा के अनुसार निभाया। वहां वे शाक्त साधना में दिलचस्पी लेते रहे। उनकी इष्ट देवी वहां भगवती ललिता त्रिपुर सुन्दरी थी। ललिता सहस्र नाम का नियमतः पाठ भी करते रहे और उसके पाठों का किसी विशेष संख्या को पूर्ण करने का उन्होंने वहां सङ्कल्प भी कर रखा था। परन्तु वह सङ्कल्पित पाठ संख्या उनसे वहां पूरी नहीं हो

सकी। सहस्रों ही की पाठ संख्या शेष रह गई। चखमा बाबा के द्वारा सिखाई गई साधना के अभ्यास से जब इस बात की स्मृति उन्हें जाग उठी तो तब से उस संख्या को पूरा करने के लिए प्रतिदिन तीन-तीन बार सहस्र नाम का पाठ करने लगे। उस पाठ संख्या का लेखा उनकी डायरियों में कई एक स्थानों पर दिया गया है। आगे जब उनका शरीर बहुत अस्वस्थ और शिथिल होता गया तो १२-४-४२ ई० को उन्होंने सहस्र नाम के शेष पाठों को पूरा करने का काम अपने प्रिय शिष्य, **भरतपुर** निवासी, **मिश्र गोविन्द शर्मा** को सौंप दिया और उन्होंने उस पाठ संख्या को पूरा कर दिया। वे उस जन्म में प्राचीन परम्परा में प्रचलित राजधर्म के अनुसार शासन करते रहे और जीवन यात्रा को भी निभाते रहे। राजधानी में आने वाले विद्वानों और सन्त महात्माओं का सम्मान और यथोचित सेवा भी करते रहे और साथ-साथ राजोचित सुखों का भोग भी करते रहे। बड़े ऐश्वर्य से रहते रहे।

एक बार एक विद्वान् सन्यासी वहां आए। उन्होंने अपना एक नवीन पन्थ भी चलाया था और उनके अनुयायी भी काफी लोग बन चुके थे। तो परम्परा के अनुसार महाराजा ने उनका भी यथोचित आतिथ्य सत्कार किया, यद्यपि उनकी अभिनव धार्मिक परम्परा से और उनके दार्शनिक विचारों से वे जराभर भी सहमत नहीं थे और न ही उनके प्रभाव से जरा भर भी प्रभावित हुए थे। उनका सत्कार करते हुए भी वे अपने सनातनी शाक्त मार्ग से ही लगातार उपासना करते रहे और राजोचित ढङ्ग से ही जीवन बिताते रहे। उन बातों में कोई भी अन्तर नहीं आया। इन बातों को उन्होंने मेरे से स्पष्ट शब्दों में कहा कि वे केवल औपचारिक तौर पर ही ऐसे साधु महात्माओं का सत्कार करते रहे। वैसा करते हुए भी अपने राजोचित सुखों का भी उपभोग करते ही रहे। उनके प्रासाद में नाचने गाने वाली स्त्रियां भी आती रहीं। अपनी कला का प्रदर्शन करके और पारितोषिक पाकर चली जाती रहीं। राज प्रासाद में कभी कोई ऐसी स्त्री या ऐसा पुरुष निवास नहीं कर पाया। प्रासाद की, और विशेष करके अन्तःपुर की, व्यवस्था प्राचीन सनातनी परम्परा के ही अनुसार चलती रही। यह बातें भी उन्होंने मुझ से स्वयं कही हैं।

उस समय वहां एक अवांछनीय घटना हुई। उनके द्वारा अतिथिशाला में ठहराए गए उन अपरोक्त महात्मा जी की अकस्मात् मृत्यु हो गई। उनके अनुयायी कहने लगे कि उन्हें विष दिया गया। उस नवीन पन्थ के महत्त्व को बढ़ाने के प्रयोजन से उन अनुयायियों की परम्परा में आगे अनेकों ही कहानियां घड़ली गईं जो सारी की सारी असत्य और सर्वथा तथ्यहीन हैं, परन्तु जिन्हें आज कल सच्चे इतिहास के रूप में समझा जा रहा है। महात्मा जी की अकस्मात् मृत्यु

झेलना पड़ा और आगे जीवन भर के लिए अर्श का रोग उन्हें लगा ही रहा।

पूज्यपादजी ने **सन् १८९०** के लगभग उस शासक शरीर को छोड़ दिया और गुजरात कठियावाड़ के एक गांव में एक ब्राह्मण के घर में जन्म लिया। वहां केवल पांच छः वर्ष ही जीवित रहे। उधर की उन्हें कोई और स्फुट स्मृति जाग नहीं पड़ी। तदनन्तर उन्होंने तीसरा जन्म पश्चिमी पञ्जाब में जि० झेहलम के किसी ग्राम में एक और ब्राह्मण के घर में ले लिया। वहां वे आठ दस वर्ष की आयु तक ही जीते रहे। उन्हें स्मरण था कि उधर उनके पिता एक पुरोहित थे और उनके एक भक्त यजमान उनके घर प्रायः आया करते थे जिनके कानों में सोने के कुण्डल हुआ करते थे। भरतपुर के श्री **सम्पूर्णदत्त** जी पूज्यपाद जी के संस्मरण में लिखते हैं कि उनका दूसरा जन्म पंजाब में और तीसरा जन्म गुजरात में हुआ था। मुझे भी पहले वैसा ही स्मरण था। परन्तु **सन् १९६२** में जब मैंने इस विषय पर भी पूज्यपाद जी से विस्तारपूर्वक बातचीत की तो उन्होंने स्पष्ट शब्दों में यही कहा कि दूसरा जन्म गुजरात में और तीसरा जन्म जि० झेहलम में हुआ था।

कश्मीर मण्डल में **मार्तण्ड (मट्टन)** नामक पत्तन में **शिवजी फोतेदार** नाम के एक धर्मात्मा सज्जन रहते थे। वे जब **बारामुला** में नियुक्त थे तो वहां पूज्यपाद जी की बड़े ही प्रेम से सेवा किया करते थे। उन्हीं दिनों बारामुला में चखमा बाबा भी थे। वे शिवजी के घर भोजन करने आए थे। वहां उन्होंने शिवजी को और पूज्यपाद जी को बताया कि किसी पूर्व जन्म में उनका परस्पर पिता पुत्र का सम्बन्ध था। शिवजी पिता थे और पूज्यपादजी उनके पुत्र थे। शिवजी एक राजा थे और पूज्यपादजी राजकुमार थे। वहां राजयक्ष्म रोग से राजकुमार का यौवन की आयु में ही देहान्त हो गया था। इन बातों पर पूज्यपादजी को विश्वास नहीं हुआ और इन्हें सच्चा सिद्ध करने के लिए चखमा बाबा को प्रमाण देने को कहने लगे। वे बोले कि हम आपको एक साधना सिखा देंगे जिसके छः महीनों के अभ्यास से आपको प्राचीन जन्मों की स्मृति जाग पड़ेगी। फिर शुभ मुहूर्त पर चखमा के पास जाकर पूज्यपादजी ने उस साधना को सीखा। तो उन्हें दो ही महीनों के अभ्यास से अपने गत उपरोक्त तीन मर्त्य जन्मों की और चौथे विद्याधर लोक वाले जीवन की स्मृति उद्‌बुद्धहो गई। जब इतने से ही उनके वर्तमान जन्म की मुख्य घटनाओं का समाधानहो गगा तो उन्होंने उनसे भी पिछले अन्य जन्मों की स्मृति को जगाने का यत्न नहीं किया। अतः शिवजी के साथ जिस जन्म में उनका पिता-पुत्र सम्बन्ध था, उस जन्म तक का अनुसंधान उन्होंने किया ही नहीं। फिर यह बात भी मन में आ गई कि और और पिछले जन्मों की स्मृति से क्या पता है किन-२ स्थानों को पुनः देखने की वासना सवार हो जाए, तो शिवजी के साथ किस प्राचीन जन्म में उन्हें सम्बन्ध था इस बात का अनुसन्धान उन्होंने किया ही नहीं। हां, यह बात सत्य है वर्तमान जन्म में शिवजी पूज्यपादजी से अत्यन्त स्नेह करते थे,

उपदेशक्रम में वे किसी अन्य महात्मा के शिष्य थे। फिर शिवाजी के ज्येष्ठ पुत्र **श्री जियालालजी फोतेदार** के साथ पूज्यपादजी को ऐसा स्वाभाविक और नैसर्गिक स्नेह था जिससे किसी जन्म का उनके साथ कोई घनिष्ठ सम्बन्ध अभिव्यक्त होता था। तो ऐसा प्रतीत होता है कि विद्याधर लोक में निवास से पहले ही पूज्यपादजी कभी इस मर्त्यलोक में एक राजकुमार थे जहां शिवजी उनके पिता थे। वह घटना काफी पुरानी हो सकती है।

अब पूज्यपाद जी को विद्याधर लोक भी अच्छा नहीं लगता था। मैंने एक बार पूछा था कि "वर्तमान जन्म के पश्चात् क्या आप पुनः उस लोक को जाएंगे," तो कहने लगे कि "वहां भी काम, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष आदि भाव बहुत होते हैं। अत: उस लोक का जीवन हमें पसन्द नहीं।" इस पर मैंने पुन: प्रश्न किया कि "तब आप किस लोक को जाएँगे।" इस पर उन्होंने उत्तर दिया "हम उधर ही जाएंगे जिधर श्री जगदम्बा जाने का आदेश देवें। इस विषय में हम अपनी ओर से कोई भी सङ्कल्प नहीं करना चाहते हैं, क्योंकि हमारा जो भी सङ्कल्प होगा, वह जीव सङ्कल्प ही होगा, शिवसङ्कल्प नहीं होगा।" हमारा अपना अनुमान यह है कि वे सिद्धों के किसी भुवन के प्रति सिधार गए। हमारी यह भी आशा है कि वहां जाकर वे समुचित समय पर भारतवर्ष के और सनातनधर्म के पुनरुद्धार के लिए भी अवश्य ही कोई सफल यत्न करेंगे, क्योंकि भारतमाता की वर्तमान दुर्दशा उनसे सहन नहीं की जा सकती थी और सदा इस विषय की चिन्ता उन्हें लगी ही रहती थी कि भारत का प्रशासन और यहां की राजनीति सन्मार्ग पर आ जाए। भारत की हित कामना के विषय में वे उदासीन और तटस्थ नहीं थे और न ही सनातन धर्म की वर्तमान स्थिति के प्रति ही वैसे थे। उनके ऐसे संस्कारों से ही हम उपरोक्त बात के विषय में अनुमान करते हैं। फिर जब श्रीनगर में **सारिका देवी के आंगन** में मिले सिद्धमानव के साथ उनका विस्तृत संवाद किसी जन शून्य भवन में हुआ था। तब उन्होंने उस सिद्धमानव से यह प्रश्न किया था कि हमारी आगे क्या गति होगी।" इस पर वे सिद्ध मानव यही बोले थे कि यदि वह बात आप को बता दी जाए तो आप क्षण भर भी इस मर्त्यलोक में नहीं ठहर सकेंगे। तुरन्त ही आपका शरीरपात होगा।" उससे हमारा यह अनुमान है कि अपने अन्तिम मर्त्य शरीर को छोड़कर वे किसी ऐसे सिद्धजनों के भुवन को गए होंगे जहां का जीवन असीम और अनवाच्छिन्न आनन्द की अनुभूति का तथा विशेष अधिकारों वाला रहा होगा।

अध्याय २

पूर्वजों का संक्षिप्त इतिहास

अब पूज्यपाद श्री आचार्य महोदय के वर्तमान जीवन की गाथा आरम्भ होती है। यहां उनके पूर्वजों की अल्ल **'वरकले'** थी। वे महाराष्ट्री **ब्राह्मण** थ। उनका मूल निवास स्थान **विदर्भ** देश में था। वहां से आकर प्रयाग और वाराणसी मे रहा करते थे। गोत्र उनका **कौण्डिन्य** था। कृष्णयजुर्वेद की **तैत्तिरीय शाखा** उनका वेद था। **कुल देवी** उनकी एक वीरा भगवती रेणुका थी। इस प्रकार की जानकारी पूज्यपादजी ने स्वनिर्मित आत्मचरित के श्लोकों में भी दी है और **वरकलवंश-चरित** नामक प्रबन्धकाव्य में भी। उनके पूर्वज प्रायः सब के सब अच्छे विद्वान् हुआ करते थे। वेदपाठ में सुप्रवीण बनते रहते थे। व्याकरण आदि शास्त्रों का अच्छा अभ्यास किया करते थे। श्रौतस्मार्त्त धर्म के पक्के अनुयायी हुआ करते थे। आगमिक **श्रीविद्या** की भी प्रायः साधना किया करते थे। प्रायः विद्योपजीवी होते थे। अप्रतिग्राही ब्राह्मण होते हुए दान नहीं लेते थे। पुरातन काल में पौरोहित्य कर्म भी नहीं किया करते थे। पुराणों की, और विशेषकर भागवतपुराण की, कथा किया करते थे और कथा की समाप्ति पर जो थोड़ा बहुत चढ़ावा पोथी पर चढ़ता था, उसी पर सन्तोषवृत्ति से निर्वाह किया करते थे। छात्रों को पढ़ाया भी करते थे और पण्डित सभाओं तथा राजसभाओं में शास्त्रार्थ, धर्मनिर्णय आदि भी कभी-कभी किया करते थे। उससे उन्हें कभी-कभी अर्थलाभ भी हुआ करता था। उनकी धर्मनिष्ठा से और वैदुष्य से शासक लोग बहुत प्रभावित होते रहते थे। कई सौ वर्ष पहले उनके पास काफी भूसम्पत्ति और धनधान्य सम्पत्ति भी हुआ करती थी। भागवतपुराण पर उनकी विशेष श्रद्धा थी परन्तु उपासना क्रम में प्रायः शैव/शाक्त साधना का अभ्यास किया करते थे। भगवान् शिव के प्रायः अनन्य भक्त हुआ करते थे। श्रीविद्या की उपासना उन्हें कुलक्रम से ही प्राप्त होती रही और पूज्यपाद श्री आचार्यजी तक वह उसी क्रम से चलती ही आई।

पूर्वकाल में अतीव सम्पन्न और विद्याव्यसनी उस ब्राह्मण वंश में विदर्भ देश में एक बार एक विशेष धर्मात्मा विद्वान् प्रकट हुए। उनके दस पुत्र थे। उन्होंने एक बार सारे परिवार को साथ लेकर के अनेकों तीर्थों की यात्रा की। स्थान-

स्थान पर काफी दान दे दिया। अन्त में जब वे काशी की यात्रा को गए तो वहां से घर को लौटे नहीं। परिवार को लौटा दिया और स्वयं काशी में ही टिक गए। उनके आठ पुत्र उनके आदेश के अनुसार विदर्भ देश को लौट गए, परन्तु दो पुत्र उनकी सेवा के लिए काशी में ही उनके साथ रहने लगे। उन पुत्रों के मामा उस समय कन्नौज के तत्कालीन शासक के प्रशासन तन्त्र में किसी अच्छे अधिकार के पद पर प्रतिष्ठित थे। वे काफी प्रभावशाली भी थे। उनकी प्रेरणा से और सहायता से कालान्तर में उन दो भाइयों में से एक भाई प्रयाग आकर के वहीं बस गया और मामा के प्रभाव से वहां काफी भूसम्पत्ति का वह स्वामी बन गया। दूसरा भाई काशी में ही टिका रहा। उसकी वंश पसम्परा कई एक पीढ़ियों तक वहीं चलता रही और कालान्तर में समाप्त ही हो गई। प्रयाग वाले भाई की वंश परम्परा चलती ही रही और अभी तक चल रही है।

एक बार प्रयाग वाली परम्परा में दो भाई थे जो दोनों ही बड़े शास्त्रज्ञ विद्वान् भी थे और धर्मकृत्यों में काफी निष्णात भी थे। उस प्रदेश के राजपूत सामन्तों ने एक बार उनसे बहुत आग्रह पूर्वक इस बात की प्रार्थना की कि वे उनके घरों में आकर पौरोहित्य का काम करना स्वीकार करें। बड़े भाई ने तो अपनी कुल क्रमागत अपरिग्रह की परम्परा पर ही स्थिर रहते हुए पौरोहित्य कर्म की प्रार्थना को सर्वथा ठुकरा ही दिया। छोटे भाई की बुद्धि में दो तर्क आ गए। एक तो उसने यह समझा कि पौरोहित्य कर्म करने पर जो दक्षिणा मिलती है, उसे दान में गिना नहीं जा सकता है; क्योंकि वह तो पारिश्रमिक है; उसे ग्रहण करते रहने पर भी ब्राह्मण अप्रतिग्राही बना रह सकता है। दूसरी बात उसके मस्तिष्क में राजपूत सामन्तों ने यह बिठा दी कि यदि उनके जैसे विद्वान् ब्राह्मण पौरोहित्य कर्म करेंगे तो उनसे अन्य पुरोहित भी कर्मकलापों के अनुष्ठान की विधि को सीख लेंगे और इस तरह धर्मकृत्यों के सच्चे विधान का प्रचार बढ़ेगा। अन्यथा धीरे-धीरे उसका लोप ही होता जाएगा। इन दो तर्कों का आश्रय लेकर छोटे भाई ने पौरोहित्य कर्म करना स्वीकार किया। बड़े भाई को यह बात अच्छी नहीं लगी। उन्होंने एसा समझा कि छोटा भाई अपने कुल की धार्मिक परम्परा से भ्रष्ट हो गया। फिर उन्हें इस बात की भी आशंका हो गई कि छोटे भाई के साथ सतत सम्पर्क से वे भी भ्रष्ट हो जाएंगे। अतः उन्होंने प्रयाग नगर को छोड़ दिया और वाराणसी आकर वहीं बस गए। प्रयाग वाली सारी सम्पत्ति को वहीं छोड़कर वे वाराणसी में भागवत की कथा करते हुए सन्तोष वृत्ति से निर्वाह करने लगे।

वाराणसी में रहने वाले वरकलवंश में सम्राट् **अकबर** के समय में एक बड़े प्रभावशाली विद्वान् प्रकट हुए। वे अकबर की सभा में भी बहुत बार जाते रहे। अपने कुल के क्रम से ही उन्होंने श्रीविद्या की दीक्षा प्राप्त की थी और तदनुसार

वें सकला तथा निष्कला, दोनों रूपों वाली कामकला विद्या के अभ्यासी थे। त्रियासी वर्ष की आयु को बिताकर उन्होंने सन्यास ग्रहण किया और तदनन्तर उन पर किसी सिद्ध महापुरुष ने ऐसा अपार अनुग्रह किया जिसके फलस्वरूप वे योग साधना के द्वारा स्वयं सिद्ध पदवी को प्राप्त करके चिरजीवी बनकर हिमालय को चले गए। वे अब भी हिमालय की अधित्यकाओं में विचरण करते हैं। पूज्यपाद श्री आचार्यजी को अपने परिव्राजक जीवन में हरिद्वार में ब्रह्मकुण्ड के घाट पर एक बार उनसे भेंट हुई थी। उस भेंट में उन्होंने पूज्यपादजी को अपने वंश के इतिहास की कई एक ज्ञात तथा अज्ञात घटनाएं सुना दीं। उन उटनाओं की जानकारी का उपयोग उन्होंने वरकलवंश चरित नामक प्रबन्ध काव्य में किया। उन्होंने पूज्यपादजी को अपना व्यक्तिगत परिचय तो दिया नहीं, न अपना नाम ही बताया। परन्तु पूज्यपादजी के पूर्वजों का इतिहास जिस विस्तार से उन्होंने सुना दिया, उससे वे भलीभांति जान गए कि वे उनके वे ही पूर्वज हैं जिनके विषय में उन्होंने सुन रखा था कि वे चिरजीवी बनकर हिमालय में विचरण कर रहे हैं। उन्हीं महापुरुष के गृहस्थ जीवन के समय में अकबर ने वरकलवंश की प्रयाग में स्थित भूसम्पत्ति को लेकर के वहां अपने विशाल दुर्ग का निर्माण किया था और उन्हें उसके बदले वह अतीव उपजाऊ भूखण्ड दे दिया था जहाँ आजकल दारागंज बसा है। १८५७ के स्वतन्त्रता संग्राम में वह सारी भूसम्पत्ति वरकलवंश के हाथ से चली गई। उस चिरजीवी सिद्ध पुरुष के नाम को इस समय कोई नहीं जानता है। वे एक अद्वितीय विद्वान् भी थे। उत्कृष्ट और सफल साधक भी थे, विशेष लक्ष्मीवान् भी थे। वरकलवंश के दस पुत्रों वाले पूर्वज के दो बेटों के वाराणसी में ही बस जाने के अनन्तर आने वाली अठ्ठारहवीं पीढ़ी में वे अज्ञात नाम वाले चिर-जीवी महापुरुष उस वंश में प्रकट हुए थे। ऐसी जानकारी उन्होंने पूज्यपादजी को ब्रह्मकुण्ड घाट पर स्वयं दे दी थी।

उस सिद्ध पुरुष के पश्चात् आने वाली तीसरी पीढ़ी में वाराणसी में वरकल-वंश में एक और महापुरुष ने जन्म लिया वे थे **गोपाल भट्ट** जो अपने अपूर्व वैदुष्य के बल से दूर-दूर तक विख्यात हो गए। वे संस्कृत वाङ्मय के विविध विषयों के एक अद्वितीय पण्डित थे। यद्यपि उन पर भगवती सरस्वती का पूरा प्रसाद था। फिर भी वे भगवती महालक्ष्मी के प्रसाद से सदा वञ्चित ही रहे। अत: उन्होंने भागवती कथा के ही द्वारा काशी में सन्तोषवृत्ति से जीवन को निभाया, परन्तु सदा अतीव सम्मान प्राप्त करते हुए ही निभाया। श्री गोपाल भट्ट का पुत्र श्री **रामभट्ट** था। उनके दो पुत्र थे श्री **अनन्तराम भट्ट** और श्री **बालकृष्ण** भट्ट। श्री रामभट्ट और श्री अन्नतराम भट्ट दोनों ही बड़े भारी विद्वान् थे। वे साथ ही साथ खूब बलवान भी थे तथा शस्त्रों के चलाने में भी काफी निपुण थे।

एक बार इन्दौर राज्य में **महेश्वरपुर** नामक नगर में महारानी **अहल्या बाई** ने

श्रीरामभट्ट के मुख से जब भागवतकी कथा सुनी तो बहुत ही प्रसन्न होकर उसने उनके नाम प्रतिवर्ष मिलने वाली विशेष धनराशि की स्वीकृति का आदेश दिया तथा काशी में उनके रहने के लिए दो भव्य भवन भी दे दिए। तदनन्तर श्रीराम भट्ट और श्री अनन्तराम प्रतिवर्ष महेश्वर पुर आया करते थे और अपनी वार्षिक वृत्ति की धनराशि ले जाया करते थे। घोड़ों पर सवार होकर यात्रा किया करते थे। एक बार जब दोनों ही पिता-पुत्र धनराशि को लेकर के महेश्वरपुर से लौट रहे थे तो उन्हें रात विन्ध्याचल के किसी गहन वन में बितानी पड़ी। थकान भी हो रही थी और भूख भी लग रही थी। तो मार्ग में उन्होंने एक स्थान पर एक स्वच्छ जल वाले तालाब को देखकर उसके तट पर डेरा डाल दिया। घोड़ों को वृक्षों के साथ बांधकर वे विश्राम करने ही लगे थे कि विन्ध्य-अरवी के भीलों के एक समूह ने आकर उन्हें घेर लिया। भील कहने लगे कि जितना भी धन आपके पास है उसे हमें दे दो और साथ दाहिने हाथ का अगूंठा काट कर दे दो, तभी यहां से जीते जी जा सकोगे। दोनों पिता पुत्र जोश में आ गए और तलवारें लेकर भीलों से लड़ने को तैयार हो गए। चार-पांच घंटे घोर युद्ध हुआ जिसमें उन दो ही पण्डितों ने भीलों के सरदार को तथा उसके इकावन अनुचरों को तलवारों की धार पर बलि चढ़ाया। शेष भील भाग गए ओर चारों ओर सन्नाटा छा गया। दोनों पण्डित जन काफी थक गए थे और भूख भी दोनों को बहुत लगी थी। श्रीरामभट्ट चादर बिछाकर आराम करने के लिए लेट गए और श्री अनन्तराम आग जलाकर दाल पकाने लगा। देखते-देखते ही अन्धकारसे घिरे वन के बीच में से एक विषैला बाण आया जो अनन्तराम को लग गया और वे तत्काल मर गए। श्रीरामभट्ट उठ ही रहे थे कि उठते-उठते ही उनके साथ भी ऐसा ही हो गया। दोनों विद्वान् युद्ध में पराजित भीलों के हाथों इस तरह से मारे गए। दूसरे ही दिन यह सारा समाचार महेश्वरपुर पहुंच गया। वहां से अधिकारी उधर आ गए। दोनों विद्वानों की और्ध्वदैहिक क्रिया विधिपूर्वक की गई और एक घुड़सवार को यह सन्देश सुनाने के लिए काशी भेज दिया गया।

उस कालरात्रि को दोनों ही विद्वानों की पत्नियों को अत्यन्त भयानक दुःस्वप्न आ गए। उससे दोनों ही अतीव व्याकुल हो रही थीं। दोनों गङ्गाजी के तट पर प्रतिष्ठित हनुमान जी की उपासना किया करती थीं। उस कालरात्रि के बीत जाने पर प्रातःकाल दोनों हनुमानजी के मदिर पर गईं तो मन्दिर का द्वार पूरा बल लगाने पर भी नहीं खुलने पाया। तब एक अकाशवाणी सुनाई दी जिसने उन्हें बताया कि आप दोनों को अशौच लग गया है, अतः उसकी शुद्धि के अनन्तर ही मन्दिर में प्रवेश करो, उससे पहले नहीं। दोनों ही अतीव दुःख और व्याकुलता की अवर्णनीय पीड़ा के भार को वहन करती हुई शून्य हृदय से घर लौटीं। तीसरे दिन महेश्वरपुर से आए हुए घुड़सवार ने उस वज्रपात सदृश कठोर समचार को

सुना दिया।

श्रीराम भट्ट की वृद्धा पत्नी ने इस दुःखद समाचार से पीड़ित होकर अपने कनिष्ठ पुत्र **श्री बाल कृष्ण भट्ट** को आदेश दिया कि अपने बड़े भाई के दो पुत्रों का लालन-पालन, अध्ययन आदि सब कुछ पूरी निष्ठा से करे और श्री अनन्तराम की विधवा पत्नी रमादेवी की भी सेवा सुश्रूषा करता रहे। रमादेवी को भी समझा बुझाकर उससे यह प्रतिज्ञा करवा ली कि वह अपने पुत्रों का लालन-पालन करने के लिए जीवित रहे और देह त्याग न करे। ऐसा करके पति के मरण के पश्चात् दस दिनों में ही उसने भी अपनी इच्छाशक्ति के प्रयोग मात्र से देहत्याग किया।

श्री बालकृष्ण भट्ट की अपनी कोई भी सन्तति नहीं थी। उसने अपने पिता का, माता का तथा बड़े भाई का क्रिया कर्म आदि विधिपूर्वक किया। भाभी की सेवा भी करता रहा और भाई के दोनों पुत्रों का यज्ञोपवीत भी किया। दोनों को श्रीविद्या की दीक्षा भी दे दी। बड़े प्रेम से दोनों ही की शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध किया और समय पर दोनों ही अच्छे विद्वान् बन गए। बड़े का नाम **गोपीनाथ भट्ट** था और छोटे का **गोपाल भट्ट**। उन्हें गोपाल भट्ट **द्वितीय** समझिए। श्री गोपीनाथ भट्ट सन्तानहीन ही रहे। श्री गोपाल भट्ट ने महाकामेश्वरी भगवती त्रिपुर सुन्दरी की विधिवत् उपासना जो कि उसके फलस्वरूप उनकी पत्नी कमला देवी ने एक अतीव होनहार पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम **रामकृष्ण** रखा गया। बचपन में उसे प्रायः बालकृष्ण कहा जाता रहा। अतः काशी में बड़ा हो जाने पर भी **बालकृष्ण शास्त्री** ही कहा जाता रहा।

भगवती के प्रसाद के प्रभाव से श्रीरामकृष्ण भट्ट बड़े ही मेधावी थे। जिस बात को एक बार भी पढ़ लेते थे वह बात उन्हें स्मरण रहती थी। छोटी ही आयु में उन्होंने अनेकों ही शास्त्र सीख लिए। उनकी दादी के आग्रह से उनके पिता ने उनकी छोटी ही आयु में उनका विवाह गाभे सदाशिव भट्ट की कन्या दुर्गा से कर दिया। श्वशुर घर में बहू का नाम लक्ष्मी रखा गया। तदनन्तर श्री रामकृष्ण भट्ट की दादी और माता पिता जल्दी ही परलोक को सिधार गए। अतः उन्हें विद्याध्ययन छोड़कर गृहस्थी का भार छोटी आयु में ही उठाना पड़ा। वे गङ्गाजी के एक घाट पर भागवत की कथा किया करते रहे। कथा के अन्त पर जो कुछ भी पोथी पर भेंट के रूप चढ़ता था उसी पर सन्तोष वृत्ति से निर्वाह किया करते थे। इन्दौर से मिलने वाली वार्षिक जीवन वृत्ति का भी उन्होंने लेना छोड़ दिया। उसे लेने के लिए उधर कभी गए ही नहीं। यदि वे चाहते तो अपनी विद्या और योग्यता के बल से कहीं भी कोई अच्छा-सा पद पाकर काफी वेतन ले सकते थे। परन्तु उन्होंने कभी वैसा यत्न नहीं किया। कथा से आय बहुत थोड़ी आती थी।

उधर से व्यय काफी करते थे। दान भी सदैव देते ही रहे और धर्मकार्यों पर भी धन व्यय करते रहे। धन संग्रह की लालसा ने उन्हें कभी छुआ तक नहीं। उधर से लड़के लड़कियों की बहुत संख्या थी। अतः घर में व्यय बहुत होता था। धर्म-पत्नी लक्ष्मी देवी भी उसी स्वभाव की थी। उसे कभी भी भड़कीले वस्त्रों और भूषणों को पहनने तथा धन का संग्रह करने के प्रति लालसा नहीं हुई। सन्तोषवृत्ति से गृहस्थी को चलाती हुई सदा सन्तुष्ट रहती रही।

लक्ष्मी देवी के पिता श्री **सदाशिव गाभे** काफी धनाढय थे। उनकी एक मात्र सन्तति लक्ष्मीदेवी ही थी। एक बार उसने लक्ष्मी देवी से कहा कि रामकृष्ण भट्ट के घर को छोड़कर बच्चों समेत उसके घर में आकर रहे तो वह अपनी सारी सम्पत्ति का उत्तराधिकार उसी के नाम लिख देगा। तब उसके बच्चों का लालन-पालन भली-भांति हो सकेगा। लक्ष्मी देवी तो आदर्श पतिव्रता नारी थी। उसने इस प्रस्ताव को ठुकरा ही दिया। इस बात पर रुष्ट हुए पिता ने कहा-—"मैं भली भांति जानता हूं, रामकृष्ण भट्ट इसलिए निःस्पृहता का ढोंग रचाता हुआ कहीं भी धनार्जन के लिए यत्न नहीं कर रहा है कि उसकी दृष्टि मेरे धन के ऊपर है। वह जानता है कि मेरी सारी धन सम्पत्ति कभी उसीं के हाथ में आएगी। इसी लिए ऐसा पाखण्ड कर रहा है और स्वयं गृहस्थी के भारी बोझ को भली-भान्ति वहन करने के लिए धन कमाने का कोई भी उचित यत्न नहीं कर रहा है। न ही धन सञ्चय करने में जरा भी दिलचस्पी दिखा रहा है।" लक्ष्मी देवी को अपने पति के प्रति ऐसे अपमान सूचक शब्दों को सुनते ही बड़ा ही खेद हुआ और रोष भी प्रज्वलित हो गया। उसने रोष भरे शब्दों में अपने पिता को शाप दिया—"जो भी व्यक्ति तुम्हारी इस धन सम्पत्ति को ले लेगा उसका सर्वनाश हो जाएगा।" ऐसा शाप देकर तत्काल ही पिता के घर को छोड़कर अपने घर आ गई और आजीवन कभी भी पिता के घर नहीं गई। सदाशिव गाभे ने रुष्ट होकर अपने भांजे को अपनी सम्पत्ति का एकमात्र उत्तराधिकारी बना दिया। कुछ ही समय में उसके घर का सर्वनाश हो गया। तदनन्तर भी उस धनसम्पत्ति ने कई एक परिवारों का सर्वनाश कर दिया, पतिव्रता नारी के शाप के कारण।

दक्ष प्रजापति के यज्ञ में जब उनकी अनाहूता कन्या शिव पत्नी सती स्वयं चली गई तो उसने वहां यह देखा कि सभी देवताओं की पूजा अर्चा के लिए पीठ सजे हुए हैं, परन्तु उसके पति शिव की पूजा अर्चा का कहीं भी स्थान नहीं है। अपना अनादर तो वह विष का घूंट पीकर सह गई थी, परन्तु अपने पति के अनादर को सहन नहीं कर पाई। उसने दक्ष को शाप दिया जिससे तुरन्त ही उसके यज्ञ का सर्वनाश हुआ फिर भी यह कहा—"मेरा यह शरीर तुझ जैसे नीच व्यक्ति के शरीर का एक अंश है। अतः मैं इस शरीर को अब क्षण भर भी धारण करना

वें सकला तथा निष्कला, दोनों रूपों वाली कामकला विद्या के अभ्यासी थे। त्रियासी वर्ष की आयु को बिताकर उन्होंने सन्यास ग्रहण किया और तदनन्तर उन पर किसी सिद्ध महापुरुष ने ऐसा अपार अनुग्रह किया जिसके फलस्वरूप वे योग साधना के द्वारा स्वयं सिद्ध पदवी को प्राप्त करके चिरजीवी बनकर हिमालय को चले गए। वे अब भी हिमालय की अधित्यकाओं में विचरण करते हैं। पूज्यपाद श्री आचार्यजी को अपने परिव्राजक जीवन में हरिद्वार में ब्रह्मकुण्ड के घाट पर एक बार उनसे भेंट हुई थी। उस भेंट में उन्होंने पूज्यपादजी को अपने वंश के इतिहास की कई एक ज्ञात तथा अज्ञात घटनाएं सुना दीं। उन उटनाओं की जानकारी का उपयोग उन्होंने वरकलवंश चरित नामक प्रबन्ध काव्य में किया। उन्होंने पूज्यपादजी को अपना व्यक्तिगत परिचय तो दिया नहीं, न अपना नाम ही बताया। परन्तु पूज्यपादजी के पूर्वजों का इतिहास जिस विस्तार से उन्होंने सुना दिया, उससे वे भलीभांति जान गए कि वे उनके वे ही पूर्वज हैं जिनके विषय में उन्होंने सुन रखा था कि वे चिरजीवी बनकर हिमालय में विचरण कर रहे हैं। उन्हीं महापुरुष के गृहस्थ जीवन के समय में अकबर ने वरकलवंश की प्रयाग में स्थित भूसम्पत्ति को लेकर के वहां अपने विशाल दुर्ग का निर्माण किया था और उन्हें उसके बदले वह अतीव उपजाऊ भूखण्ड दे दिया था जहाँ आजकल दारागंज बसा है। १८५७ के स्वतन्त्रता संग्राम में वह सारी भूसम्पत्ति वरकलवंश के हाथ से चली गई। उस चिरजीवी सिद्ध पुरुष के नाम को इस समय कोई नहीं जानता है। वे एक अद्वितीय विद्वान् भी थे। उत्कृष्ट और सफल साधक भी थे, विशेष लक्ष्मीवान् भी थे। वरकलवंश के दस पुत्रों वाले पूर्वज के दो बेटों के वाराणसी में ही बस जाने के अनन्तर आने वाली अठ्ठारहवीं पीढ़ी में वे अज्ञात नाम वाले चिर-जीवी महापुरुष उस वंश में प्रकट हुए थे। ऐसी जानकारी उन्होंने पूज्यपादजी को ब्रह्मकुण्ड घाट पर स्वयं दे दी थी।

उस सिद्ध पुरुष के पश्चात् आने वाली तीसरी पीढ़ी में वाराणसी में वरकल-वंश में एक और महापुरुष ने जन्म लिया वे थे **गोपाल भट्ट** जो अपने अपूर्व वैदुष्य के बल से दूर-दूर तक विख्यात हो गए। वे संस्कृत वाङ्मय के विविध विषयों के एक अद्वितीय पण्डित थे। यद्यपि उन पर भगवती सरस्वती का पूरा प्रसाद था। फिर भी वे भगवती महालक्ष्मी के प्रसाद से सदा वञ्चित ही रहे। अतः उन्होंने भागवती कथा के ही द्वारा काशी में सन्तोषवृत्ति से जीवन को निभाया, परन्तु सदा अतीव सम्मान प्राप्त करते हुए ही निभाया। श्री गोपाल भट्ट का पुत्र श्री **रामभट्ट** था। उनके दो पुत्र थे श्री **अनन्तराम** भट्ट और श्री **बालकृष्ण** भट्ट। श्री रामभट्ट और श्री अन्नतराम भट्ट दोनों ही बड़े भारी विद्वान् थे। वे साथ ही साथ खूब बलवान भी थे तथा शस्त्रों के चलाने में भी काफी निपुण थे।

एक बार इन्दौर राज्य में **महेश्वरपुर** नामक नगर में महारानी **अहल्या बाई** ने

श्रीरामभट्ट के मुख से जब भागवतकी कथा सुनी तो बहुत ही प्रसन्न होकर उसने उनके नाम प्रतिवर्ष मिलने वाली विशेष धनराशि की स्वीकृति का आदेश दिया तथा काशी में उनके रहने के लिए दो भव्य भवन भी दे दिए। तदनन्तर श्रीराम भट्ट और श्री अनन्तराम प्रतिवर्ष महेश्वर पुर आया करते थे और अपनी वार्षिक वृत्ति की धनराशि ले जाया करते थे। घोड़ों पर सवार होकर यात्रा किया करते थे। एक बार जब दोनों ही पिता-पुत्र धनराशि को लेकर के महेश्वरपुर से लौट रहे थे तो उन्हें रात विन्ध्याचल के किसी गहन वन में बितानी पड़ी। थकान भी हो रही थी और भूख भी लग रही थी। तो मार्ग में उन्होंने एक स्थान पर एक स्वच्छ जल वाले तालाब को देखकर उसके तट पर डेरा डाल दिया। घोड़ों को वृक्षों के साथ बांधकर वे विश्राम करने ही लगे थे कि विन्ध्य-अरवी के भीलों के एक समूह ने आकर उन्हें घेर लिया। भील कहने लगे कि जितना भी धन आपके पास है उसे हमें दे दो और साथ दाहिने हाथ का अगूंठा काट कर दे दो, तभी यहां से जीते जी जा सकोगे। दोनों पिता पुत्र जोश में आ गए और तलवारें लेकर भीलों से लड़ने को तैयार हो गए। चार-पांच घंटे घोर युद्ध हुआ जिसमें उन दो ही पण्डितों ने भीलों के सरदार को तथा उसके इकावन अनुचरों को तलवारों की धार पर बलि चढ़ाया। शेष भील भाग गए ओर चारों ओर सन्नाटा छा गया। दोनों पण्डित जन काफी थक गए थे और भूख भी दोनों को बहुत लगी थी। श्रीरामभट्ट चादर बिछाकर आराम करने के लिए लेट गए और श्री अनन्तराम आग जलाकर दाल पकाने लगा। देखते-देखते ही अन्धकारसे घिरे वन के बीच में से एक विषैला बाण आया जो अनन्तराम को लग गया और वे तत्काल मर गए। श्रीरामभट्ट उठ ही रहे थे कि उठते-उठते ही उनके साथ भी ऐसा ही हो गया। दोनों विद्वान् युद्ध में पराजित भीलों के हाथों इस तरह से मारे गए। दूसरे ही दिन यह सारा समाचार महेश्वरपुर पहुंच गया। वहां से अधिकारी उधर आ गए। दोनों विद्वानों की और्ध्वदैहिक क्रिया विधिपूर्वक की गई और एक घुड़सवार को यह सन्देश सुनाने के लिए काशी भेज दिया गया।

उस कालरात्रि को दोनों ही विद्वानों की पत्नियों को अत्यन्त भयानक दुःस्वप्न आ गए। उससे दोनों ही अतीव व्याकुल हो रही थीं। दोनों गङ्गाजी के तट पर प्रतिष्ठित हनुमान जी की उपासना किया करती थीं। उस कालरात्रि के बीत जाने पर प्रातःकाल दोनों हनुमानजी के मदिर पर गईं तो मन्दिर का द्वार पूरा बल लगाने पर भी नहीं खुलने पाया। तब एक अकाशवाणी सुनाई दी जिसने उन्हें बताया कि आप दोनों को अशौच लग गया है, अतः उसकी शुद्धि के अनन्तर ही मन्दिर में प्रवेश करो, उससे पहले नहीं। दोनों ही अतीव दुःख और व्याकुलता की अवर्णनीय पीड़ा के भार को वहन करती हुई शून्य हृदय से घर लौटीं। तीसरे दिन महेश्वरपुर से आए हुए घुड़सवार ने उस वज्रपात सदृश कठोर समचार को

वें सकला तथा निष्कला, दोनों रूपों वाली कामकला विद्या के अभ्यासी थे। त्रियासी वर्ष की आयु को बिताकर उन्होंने सन्यास ग्रहण किया और तदनन्तर उन पर किसी सिद्ध महापुरुष ने ऐसा अपार अनुग्रह किया जिसके फलस्वरूप वे योग साधना के द्वारा स्वयं सिद्ध पदवी को प्राप्त करके चिरजीवी बनकर हिमालय को चले गए। वे अब भी हिमालय की अधित्यकाओं में विचरण करते हैं। पूज्यपाद श्री आचार्यजी को अपने परिव्राजक जीवन में हरिद्वार में ब्रह्मकुण्ड के घाट पर एक बार उनसे भेंट हुई थी। उस भेंट में उन्होंने पूज्यपादजी को अपने वंश के इतिहास की कई एक ज्ञात तथा अज्ञात घटनाएं सुना दीं। उन उटनाओं की जानकारी का उपयोग उन्होंने वरकलवंश चरित नामक प्रबन्ध काव्य में किया। उन्होंने पूज्यपादजी को अपना व्यक्तिगत परिचय तो दिया नहीं, न अपना नाम ही बताया। परन्तु पूज्यपादजी के पूर्वजों का इतिहास जिस विस्तार से उन्होंने सुना दिया, उससे वे भलीभांति जान गए कि वे उनके वे ही पूर्वज हैं जिनके विषय में उन्होंने सुन रखा था कि वे चिरजीवी बनकर हिमालय में विचरण कर रहे हैं। उन्हीं महापुरुष के गृहस्थ जीवन के समय में अकबर ने वरकलवंश की प्रयाग में स्थित भूसम्पत्ति को लेकर के वहां अपने विशाल दुर्ग का निर्माण किया था और उन्हें उसके बदले वह अतीव उपजाऊ भूखण्ड दे दिया था जहाँ आजकल दारागंज बसा है। १८५७ के स्वतन्त्रता संग्राम में वह सारी भूसम्पत्ति वरकलवंश के हाथ से चली गई। उस चिरजीवी सिद्ध पुरुष के नाम को इस समय कोई नहीं जानता है। वे एक अद्वितीय विद्वान् भी थे। उत्कृष्ट और सफल साधक भी थे, विशेष लक्ष्मीवान् भी थे। वरकलवंश के दस पुत्रों वाले पूर्वज के दो बेटों के वाराणसी में ही बस जाने के अनन्तर आने वाली अठ्ठारहवीं पीढ़ी में वे अज्ञात नाम वाले चिरजीवी महापुरुष उस वंश में प्रकट हुए थे। ऐसी जानकारी उन्होंने पूज्यपादजी को ब्रह्मकुण्ड घाट पर स्वयं दे दी थी।

उस सिद्ध पुरुष के पश्चात् आने वाली तीसरी पीढ़ी में वाराणसी में वरकलवंश में एक और महापुरुष ने जन्म लिया वे थे **गोपाल भट्ट** जो अपने अपूर्व वैदुष्य के बल से दूर-दूर तक विख्यात हो गए। वे संस्कृत वाङ्मय के विविध विषयों के एक अद्वितीय पण्डित थे। यद्यपि उन पर भगवती सरस्वती का पूरा प्रसाद था। फिर भी वे भगवती महालक्ष्मी के प्रसाद से सदा वञ्चित ही रहे। अत: उन्होंने भागवती कथा के ही द्वारा काशी में सन्तोषवृत्ति से जीवन को निभाया, परन्तु सदा अतीव सम्मान प्राप्त करते हुए ही निभाया। श्री गोपाल भट्ट का पुत्र श्री **रामभट्ट** था। उनके दो पुत्र थे श्री **अनन्तराम** भट्ट और श्री **बालकृष्ण** भट्ट। श्री रामभट्ट और श्री अन्नतराम भट्ट दोनों ही बड़े भारी विद्वान् थे। वे साथ ही साथ खूब बलवान भी थे तथा शस्त्रों के चलाने में भी काफी निपुण थे।

एक बार इन्दौर राज्य में **महेश्वरपुर** नामक नगर में महारानी **अहल्या बाई** ने

श्रीरामभट्ट के मुख से जब भागवतकी कथा सुनी तो बहुत ही प्रसन्न होकर उसने उनके नाम प्रतिवर्ष मिलने वाली विशेष धनराशि की स्वीकृति का आदेश दिया तथा काशी में उनके रहने के लिए दो भव्य भवन भी दे दिए। तदनन्तर श्रीराम भट्ट और श्री अनन्तराम प्रतिवर्ष महेश्वर पुर आया करते थे और अपनी वार्षिक वृत्ति की धनराशि ले जाया करते थे। घोड़ों पर सवार होकर यात्रा किया करते थे। एक बार जब दोनों ही पिता-पुत्र धनराशि को लेकर के महेश्वरपुर से लौट रहे थे तो उन्हें रात विन्ध्याचल के किसी गहन वन में बितानी पड़ी। थकान भी हो रही थी और भूख भी लग रही थी। तो मार्ग में उन्होंने एक स्थान पर एक स्वच्छ जल वाले तालाब को देखकर उसके तट पर डेरा डाल दिया। घोड़ों को वृक्षों के साथ बांधकर वे विश्राम करने ही लगे थे कि विन्ध्य-अरवी के भीलों के एक समूह ने आकर उन्हें घेर लिया। भील कहने लगे कि जितना भी धन आपके पास है उसे हमें दे दो और साथ दाहिने हाथ का अगूंठा काट कर दे दो, तभी यहां से जीते जी जा सकोगे। दोनों पिता पुत्र जोश में आ गए और तलवारें लेकर भीलों से लड़ने को तैयार हो गए। चार-पांच घंटे घोर युद्ध हुआ जिसमें उन दो ही पण्डितों ने भीलों के सरदार को तथा उसके इकावन अनुचरों को तलवारों की धार पर बलि चढ़ाया। शेष भील भाग गए ओर चारों ओर सन्नाटा छा गया। दोनों पण्डित जन काफी थक गए थे और भूख भी दोनों को बहुत लगी थी। श्रीरामभट्ट चादर बिछाकर आराम करने के लिए लेट गए और श्री अनन्तराम आग जलाकर दाल पकाने लगा। देखते-देखते ही अन्धकारसे घिरे वन के बीच में से एक विषैला बाण आया जो अनन्तराम को लग गया और वे तत्काल मर गए। श्रीरामभट्ट उठ ही रहे थे कि उठते-उठते ही उनके साथ भी ऐसा ही हो गया। दोनों विद्वान् युद्ध में पराजित भीलों के हाथों इस तरह से मारे गए। दूसरे ही दिन यह सारा समाचार महेश्वरपुर पहुंच गया। वहां से अधिकारी उधर आ गए। दोनों विद्वानों की और्ध्वदैहिक क्रिया विधिपूर्वक की गई और एक घुड़सवार को यह सन्देश सुनाने के लिए काशी भेज दिया गया।

उस कालरात्रि को दोनों ही विद्वानों की पत्नियों को अत्यन्त भयानक दुःस्वप्न आ गए। उससे दोनों ही अतीव व्याकुल हो रही थीं। दोनों गङ्गाजी के तट पर प्रतिष्ठित हनुमान जी की उपासना किया करती थीं। उस कालरात्रि के बीत जाने पर प्रातःकाल दोनों हनुमानजी के मदिर पर गईं तो मन्दिर का द्वार पूरा बल लगाने पर भी नहीं खुलने पाया। तब एक अकाशवाणी सुनाई दी जिसने उन्हें बताया कि आप दोनों को अशौच लग गया है, अतः उसकी शुद्धि के अनन्तर ही मन्दिर में प्रवेश करो, उससे पहले नहीं। दोनों ही अतीव दुःख और व्याकुलता की अवर्णनीय पीड़ा के भार को वहन करती हुई शून्य हृदय से घर लौटीं। तीसरे दिन महेश्वरपुर से आए हुए घुड़सवार ने उस वज्रपात सदृश कठोर समचार को

सुना दिया।

श्रीराम भट्ट की वृद्धा पत्नी ने इस दुःखद समाचार से पीड़ित होकर अपने कनिष्ठ पुत्र श्री **बाल कृष्ण** भट्ट को आदेश दिया कि अपने बड़े भाई के दो पुत्रों का लालन-पालन, अध्ययन आदि सब कुछ पूरी निष्ठा से करे और श्री अनन्तराम की विधवा पत्नी रमादेवी की भी सेवा सुश्रूषा करता रहे। रमादेवी को भी समझा बुझाकर उससे यह प्रतिज्ञा करवा ली कि वह अपने पुत्रों का लालन-पालन करने के लिए जीवित रहे और देह त्याग न करे। ऐसा करके पति के मरण के पश्चात् दस दिनों में ही उसने भी अपनी इच्छाशक्ति के प्रयोग मात्र से देहत्याग किया।

श्री बालकृष्ण भट्ट की अपनी कोई भी सन्तति नहीं थी। उसने अपने पिता का, माता का तथा बड़े भाई का क्रिया कर्म आदि विधिपूर्वक किया। भाभी की सेवा भी करता रहा और भाई के दोनों पुत्रों का यज्ञोपवीत भी किया। दोनों को श्रीविद्या की दीक्षा भी दे दी। बड़े प्रेम से दोनों ही की शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध किया और समय पर दोनों ही अच्छे विद्वान् बन गए। बड़े का नाम **गोपीनाथ भट्ट** था और छोटे का **गोपाल भट्ट**। उन्हें गोपाल भट्ट **द्वितीय** समझिए। श्री गोपीनाथ भट्ट सन्तानहीन ही रहे। श्री गोपाल भट्ट ने महाकामेश्वरी भगवती त्रिपुर सुन्दरी की विधिवत् उपासना जो कि उसके फलस्वरूप उनकी पत्नी कमला देवी ने एक अतीव होनहार पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम **रामकृष्ण** रखा गया। बचपन में उसे प्रायः बालकृष्ण कहा जाता रहा। अतः काशी में बड़ा हो जाने पर भी **बालकृष्ण शास्त्री** ही कहा जाता रहा।

भगवती के प्रसाद के प्रभाव से श्रीरामकृष्ण भट्ट बड़े ही मेधावी थे। जिस बात को एक बार भी पढ़ लेते थे वह बात उन्हें स्मरण रहती थी। छोटी ही आयु में उन्होंने अनेकों ही शास्त्र सीख लिए। उनकी दादी के आग्रह से उनके पिता ने उनकी छोटी ही आयु में उनका विवाह गाभे सदाशिव भट्ट की कन्या दुर्गा से कर दिया। श्वशुर घर में बहू का नाम लक्ष्मी रखा गया। तदनन्तर श्री रामकृष्ण भट्ट की दादी और माता पिता जल्दी ही परलोक को सिधार गए। अतः उन्हें विद्याध्ययन छोड़कर गृहस्थी का भार छोटी आयु में ही उठाना पड़ा। वे गङ्गाजी के एक घाट पर भागवत की कथा किया करते रहे। कथा के अन्त पर जो कुछ भी पोथी पर भेंट के रूप चढ़ता था उसी पर सन्तोष वृत्ति से निर्वाह किया करते थे। इन्दौर से मिलने वाली वार्षिक जीवन वृत्ति का भी उन्होंने लेना छोड़ दिया। उसे लेने के लिए उधर कभी गए ही नहीं। यदि वे चाहते तो अपनी विद्या और योग्यता के बल से कहीं भी कोई अच्छा-सा पद पाकर काफी वेतन ले सकते थे। परन्तु उन्होंने कभी वैसा यत्न नहीं किया। कथा से आय बहुत थोड़ी आती थी।

उधर से व्यय काफी करते थे। दान भी सदैव देते ही रहे और धर्मकार्यों पर भी धन व्यय करते रहे। धन संग्रह की लालसा ने उन्हें कभी छुआ तक नहीं। उधर से लड़के लड़कियों की बहुत संख्या थी। अतः घर में व्यय बहुत होता था। धर्मपत्नी लक्ष्मी देवी भी उसी स्वभाव की थी। उसे कभी भी भड़कीले वस्त्रों और भूषणों को पहनने तथा धन का संग्रह करने के प्रति लालसा नहीं हुई। सन्तोषवृत्ति से गृहस्थी को चलाती हुई सदा सन्तुष्ट रहती रही।

लक्ष्मी देवी के पिता श्री **सदाशिव गाभे** काफी धनाढय थे। उनकी एक मात्र सन्तति लक्ष्मीदेवी ही थी। एक बार उसने लक्ष्मी देवी से कहा कि रामकृष्ण भट्ट के घर को छोड़कर बच्चों समेत उसके घर में आकर रहे तो वह अपनी सारी सम्पत्ति का उत्तराधिकार उसी के नाम लिख देगा। तब उसके बच्चों का लालन-पालन भली-भांति हो सकेगा। लक्ष्मी देवी तो आदर्श पतिव्रता नारी थी। उसने इस प्रस्ताव को ठुकरा ही दिया। इस बात पर रुष्ट हुए पिता ने कहा--"मैं भली भांति जानता हूं, रामकृष्ण भट्ट इसलिए निःस्पृहता का ढोंग रचाता हुआ कहीं भी धनार्जन के लिए यत्न नहीं कर रहा है कि उसकी दृष्टि मेरे धन के ऊपर है। वह जानता है कि मेरी सारी धन सम्पत्ति कभी उसीं के हाथ में आएगी। इसी लिए ऐसा पाखण्ड कर रहा है और स्वयं गृहस्थी के भारी बोझ को भली-भान्ति वहन करने के लिए धन कमाने का कोई भी उचित यत्न नहीं कर रहा है। न ही धन सञ्चय करने में जरा भी दिलचस्पी दिखा रहा है।" लक्ष्मी देवी को अपने पति के प्रति ऐसे अपमान सूचक शब्दों को सुनते ही बड़ा ही खेद हुआ और रोष भी प्रज्वलित हो गया। उसने रोष भरे शब्दों में अपने पिता को शाप दिया—"जो भी व्यक्ति तुम्हारी इस धन सम्पत्ति को ले लेगा उसका सर्वनाश हो जाएगा।" ऐसा शाप देकर तत्काल ही पिता के घर को छोड़कर अपने घर आ गई और आजीवन कभी भी पिता के घर नहीं गई। सदाशिव गाभे ने रुष्ट होकर अपने भांजे को अपनी सम्पत्ति का एकमात्र उत्तराधिकारी बना दिया। कुछ ही समय में उसके घर का सर्वनाश हो गया। तदनन्तर भी उस धनसम्पत्ति ने कई एक परिवारों का सर्वनाश कर दिया, पतिव्रता नारी के शाप के कारण।

दक्ष प्रजापति के यज्ञ में जब उनकी अनाहूता कन्या शिव पत्नी सती स्वयं चली गई तो उसने वहां यह देखा कि सभी देवताओं की पूजा अर्चा के लिए पीठ सजे हुए हैं, परन्तु उसके पति शिव की पूजा अर्चा का कहीं भी स्थान नहीं है। अपना अनादर तो वह विष का घूंट पीकर सह गई थी, परन्तु अपने पति के अनादर को सहन नहीं कर पाई। उसने दक्ष को शाप दिया जिससे तुरन्त ही उसके यज्ञ का सर्वनाश हुआ फिर भी यह कहा—"मेरा यह शरीर तुझ जैसे नीच व्यक्ति के शरीर का एक अंश है। अतः मैं इस शरीर को अब क्षण भर भी धारण करना

सुना दिया ।

श्रीराम भट्ट की वृद्धा पत्नी ने इस दु:खद समाचार से पीड़ित होकर अपने कनिष्ठ पुत्र **श्री बाल कृष्ण भट्ट को** आदेश दिया कि अपने बड़े भाई के दो पुत्रों का लालन-पालन, अध्ययन आदि सब कुछ पूरी निष्ठा से करे और श्री अनन्तराम की विधवा पत्नी रमादेवी की भी सेवा सुश्रूषा करता रहे । रमादेवी को भी समझा बुझाकर उससे यह प्रतिज्ञा करवा ली कि वह अपने पुत्रों का लालन-पालन करने के लिए जीवित रहे और देह त्याग न करे। ऐसा करके पति के मरण के पश्चात् दस दिनों में ही उसने भी अपनी इच्छाशक्ति के प्रयोग मात्र से देहत्याग किया ।

श्री बालकृष्ण भट्ट की अपनी कोई भी सन्तति नहीं थी । उसने अपने पिता का, माता का तथा बड़े भाई का क्रिया कर्म आदि विधिपूर्वक किया । भाभी की सेवा भी करता रहा और भाई के दोनों पुत्रों का यज्ञोपवीत भी किया । दोनों को श्रीविद्या की दीक्षा भी दे दी । बड़े प्रेम से दोनों ही की शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध किया और समय पर दोनों ही अच्छे विद्वान् बन गए । बड़े का नाम **गोपीनाथ भट्ट** था और छोटे का **गोपाल भट्ट** । उन्हें गोपाल भट्ट **द्वितीय** समझिए । श्री गोपीनाथ भट्ट सन्तानहीन ही रहे। श्री गोपाल भट्ट ने महाकामेश्वरी भगवती त्रिपुर सुन्दरी की विधिवत् उपासना जो कि उसके फलस्वरूप उनकी पत्नी कमला देवी ने एक अतीव होनहार पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम **रामकृष्ण** रखा गया। बचपन में उसे प्राय: बालकृष्ण कहा जाता रहा। अत: काशी में बड़ा हो जाने पर भी **बालकृष्ण शास्त्री** ही कहा जाता रहा।

भगवती के प्रसाद के प्रभाव से श्रीरामकृष्ण भट्ट बड़े ही मेधावी थे। जिस बात को एक बार भी पढ़ लेते थे वह बात उन्हें स्मरण रहती थी। छोटी ही आयु में उन्होंने अनेकों ही शास्त्र सीख लिए। उनकी दादी के आग्रह से उनके पिता ने उनकी छोटी ही आयु में उनका विवाह गाभे सदाशिव भट्ट की कन्या दुर्गा से कर दिया । श्वशुर घर में बहू का नाम लक्ष्मी रखा गया। तदनन्तर श्री रामकृष्ण भट्ट की दादी और माता पिता जल्दी ही परलोक को सिधार गए । अत: उन्हें विद्याध्ययन छोड़कर गृहस्थी का भार छोटी आयु में ही उठाना पड़ा । वे गङ्गाजी के एक घाट पर भागवत की कथा किया करते रहे। कथा के अन्त पर जो कुछ भी पोथी पर भेंट के रूप चढ़ता था उसी पर सन्तोष वृत्ति से निर्वाह किया करते थे। इन्दौर से मिलने वाली वार्षिक जीवन वृत्ति का भी उन्होंने लेना छोड़ दिया। उसे लेने के लिए उधर कभी गए ही नहीं। यदि वे चाहते तो अपनी विद्या और योग्यता के बल से कहीं भी कोई अच्छा-सा पद पाकर काफी वेतन ले सकते थे। परन्तु उन्होंने कभी वैसा यत्न नहीं किया। कथा से आय बहुत थोड़ी आती थी।

उधर से व्यय काफी करते थे। दान भी सदैव देते ही रहे और धर्मकार्यों पर भी धन व्यय करते रहे। धन संग्रह की लालसा ने उन्हें कभी छुआ तक नहीं। उधर से लड़के लड़कियों की बहुत संख्या थी। अतः घर में व्यय बहुत होता था। धर्म-पत्नी लक्ष्मी देवी भी उसी स्वभाव की थी। उसे कभी भी भड़कीले वस्त्रों और भूषणों को पहनने तथा धन का संग्रह करने के प्रति लालसा नहीं हुई। सन्तोषवृत्ति से गृहस्थी को चलाती हुई सदा सन्तुष्ट रहती रही।

लक्ष्मी देवी के पिता श्री **सदाशिव गाभे** काफी धनाढय थे। उनकी एक मात्र सन्तति लक्ष्मीदेवी ही थी। एक बार उसने लक्ष्मी देवी से कहा कि रामकृष्ण भट्ट के घर को छोड़कर बच्चों समेत उसके घर में आकर रहे तो वह अपनी सारी सम्पत्ति का उत्तराधिकार उसी के नाम लिख देगा। तब उसके बच्चों का लालन-पालन भली-भांति हो सकेगा। लक्ष्मी देवी तो आदर्श पतिव्रता नारी थी। उसने इस प्रस्ताव को ठुकरा ही दिया। इस बात पर रुष्ट हुए पिता ने कहा--"मैं भली भांति जानता हूं, रामकृष्ण भट्ट इसलिए निःस्पृहता का ढोंग रचाता हुआ कहीं भी धनार्जन के लिए यत्न नहीं कर रहा है कि उसकी दृष्टि मेरे धन के ऊपर है। वह जानता है कि मेरी सारी धन सम्पत्ति कभी उसीं के हाथ में आएगी। इसी लिए ऐसा पाखण्ड कर रहा है और स्वयं गृहस्थी के भारी बोझ को भली-भान्ति वहन करने के लिए धन कमाने का कोई भी उचित यत्न नहीं कर रहा है। न ही धन सञ्चय करने में जरा भी दिलचस्पी दिखा रहा है।" लक्ष्मी देवी को अपने पति के प्रति ऐसे अपमान सूचक शब्दों को सुनते ही बड़ा ही खेद हुआ और रोष भी प्रज्वलित हो गया। उसने रोष भरे शब्दों में अपने पिता को शाप दिया—"जो भी व्यक्ति तुम्हारी इस धन सम्पत्ति को ले लेगा उसका सर्वनाश हो जाएगा।" ऐसा शाप देकर तत्काल ही पिता के घर को छोड़कर अपने घर आ गई और आजीवन कभी भी पिता के घर नहीं गई। सदाशिव गाभे ने रुष्ट होकर अपने भांजे को अपनी सम्पत्ति का एकमात्र उत्तराधिकारी बना दिया। कुछ ही समय में उसके घर का सर्वनाश हो गया। तदनन्तर भी उस धनसम्पत्ति ने कई एक परिवारों का सर्वनाश कर दिया, पतिव्रता नारी के शाप के कारण।

दक्ष प्रजापति के यज्ञ में जब उनकी अनाहूता कन्या शिव पत्नी सती स्वयं चली गई तो उसने वहां यह देखा कि सभी देवताओं की पूजा अर्चा के लिए पीठ सजे हुए हैं, परन्तु उसके पति शिव की पूजा अर्चा का कहीं भी स्थान नहीं है। अपना अनादर तो वह विष का घूंट पीकर सह गई थी, परन्तु अपने पति के अनादर को सहन नहीं कर पाई। उसने दक्ष को शाप दिया जिससे तुरन्त ही उसके यज्ञ का सर्वनाश हुआ फिर भी यह कहा—"मेरा यह शरीर तुझ जैसे नीच व्यक्ति के शरीर का एक अंश है। अतः मैं इस शरीर को अब क्षण भर भी धारण करना

नहीं चाहती हूं ।" ऐसा कहते हुए उसने योगबल से उस दक्ष के अंशभूत शरीर को यज्ञ वेदि में ही छोड़ दिया और ब्रह्माजी ने उसके लिए हिमालयदेव की पत्नी मैना के गर्भ में एक अभिनव शरीर का प्रबन्ध कर दिया। पतिव्रता नारी चाहे सब सहन कर सके, परन्तु पति के अनादर को कभी सहन नहीं कर सकती है।

एक बार पञ्जाब के प्रतापशाली नरेश **श्री रणजीतसिंह** के एक विद्वान् मन्त्री **रला मिश्र** काशी आए और श्रीरामकृष्ण से उन्होंने कई एक शास्त्र पढ़े। इच्छापूर्वक विद्या को ग्रहण करके उन्होंने गुरुजी को मुंह मांगी गुरुदक्षिणा देने का वचन देते हुए उन्हें दक्षिणा के आदेश के लिए प्रार्थना की। पण्डित महोदय दक्षिणा लेने के लिए जरा भर भी तैयार नहीं हुए। अन्ततो गत्वा जब रला मिश्र ने बहुत आग्रह किया तो पण्डितजी ने कहा कि पण्डितानी जी से पूछें कि वह क्या चाहती हैं। तब लक्ष्मीजी से पूछा गया तो उन्होंने सोना, चांदी, धन, दौलत, भवन भू सम्पत्ति जैसी वस्तुओं में से कोई भी वस्तु न मांगते हुए केवल एक अच्छा दूध देने वाली गाय को ले लेना चाहा स्वीकार किया, क्योंकि उनके सात बच्चे थे और उन्हें वह दूध नहीं पिला सकती थीं। रला मिश्र ने एक अच्छे वंश की गाय ले ली, रेशमी वस्त्र और स्वर्ण चांदी के अलङ्कार उसे पहना दिये और गुरुजी को भेंट कर दी। भट्टजी ने गाय के सारे गहने और वस्त्र उतार कर लौटा दिए और केवल गाय को ले लिया। एक बार रणजीतसिंह ने अपने एक और मन्त्री के हाथ पं० रामकृष्णभट्ट को लाहौर आने का निमन्त्रण भेजा, परन्तु उन्होंने वाराणसी को छोड़कर लाहौर जाने के उस निमन्त्रण को ठुकरा ही दिया। उन्होंने उल्टा कहला भेजा कि महाराज ही स्वयं वाराणसी आ जाएं तो उनके कई एक प्रयोजन सिद्ध होंगे और हमें गङ्गाजी से दूर नहीं जाना पड़ेगा।

भट्ट रामकृष्ण अफीम खाया करते थे। दिन को प्रायः सोया करते थे और रात्रि को योगसाधना का अभ्यास किया करते थे। काशी के पण्डित महानुभाव कहा करते थे कि भट्ट रामकृष्ण यदि निःस्पृह नहीं होते और अफीम खाने का व्यसन उन्हें नहीं लगा होता तथा यदि सांसारिक उन्नति के लिए जरा भर भी यत्नशील होते तो काशी में सब प्रकार की प्रतिष्ठा को पाने में सबसे आगे बढ़ गए होते। परन्तु उन्हें अपने तपस्वी जीवन में ही परम आनन्द आता रहा और सांसारिक प्रतिष्ठा के प्रति न तो कभी लालायित ही हुए और न कभी उसके लिए कोई यत्न ही उन्होंने किया। इन्ही कारणों से उनके श्वशुर गाभे महोदय उनसे सदा असन्तुष्ट ही रहा करते थे और नाराज भी रहते रहे। परन्तु भट्ट महोदय ने उस बात की ओर कभी भी जरा भर भी ध्यान नहीं दिया। वे जीवन भर काशी में ही रहे। कभी प्रतिग्रह नहीं लिया, कभी पौरोहित्य का काम नही किया, और सदा सन्तोष वृत्ति से प्रसन्न और निश्चिन्त रहते रहे। उसी वृत्ति से तीन कन्याओं के

तथा चार पुत्रों के विवाह भी कर दिए। उनके तेरह बच्चे शैशव में ही मरे थे।

भट्ट रामकृष्ण ने अनेकों ग्रन्थों की रचना की और अनेकों ग्रन्थों की टीकाओं का निर्माण किया। फिर अनेकों ग्रन्थों की प्रतिलिपियां भी लिख डालीं जो उनके वंशजों के घरों में चिरकाल तक विद्यमान थीं। पूज्यपाद श्री आचार्य महोदय ने इनके अपने हाथों से लिखे कई एक ग्रन्थों को अपने चचेरे भाई **जगन्नाथ शास्त्री** के पास देखा था। फिर उन्होंने अपने सभी बच्चों को कुलक्रम से प्राप्त बाला त्रिपुरा के मन्त्र की दीक्षा भी दे दी। भागवत की कथा तो वे प्रायः सदैव करते ही रहे उनके द्वारा की जाने वाली देवी सप्तशती की कथा को सुनने के लिए बड़े-बड़े विद्वान् भी आया करते थे। फिर जब वे गङ्गालहरी की व्याख्या किया करते थे तो पण्डित लोग उन्हें साक्षात् पण्डितराज जगन्नाथ ही समझ बैठते थे। इस तरह से एक यशस्वी, धर्मनिष्ठ, उपासक, विद्वान् ब्राह्मण के आदर्श जीवन को बिताते हुए इन्होंने क्षेत्र सन्न्यास ले लिया और जीवन भर काशी में रहकर वहीं देह त्याग भी किया।

भट्ट रामकृष्ण के द्वारा निर्मित एक श्लोक को पूज्यपाद श्री आचार्य महोदय बहुत बार सुनाया करते थे। वह श्लोक यह है—

सिद्धं तत्त्वमिदं द्विधेव विततं यत्सन्ततं सन्नतं
कान्तं शक्तिशिवाख्यमाख्यमपि वा कृत्यत्रयं तद्यतः।
भूतं भूतमयं विभूतिविलसद्विश्वाङ्ग गुह्यं परं
ब्रह्माण्डैक करण्डमद्य रजनीघस्रात्मकं तन्नुमः॥

अर्थ—हम आज उस दिनरात्रि स्वरूप स्वतःसिद्ध और सदासिद्ध तत्त्व की वन्दना कर रहे हैं जो यह तत्त्व मानो दो रूपों में विस्तार को प्राप्त हुआ है, सत्पुरुष जिस तत्त्व की सदैव वन्दना करते आए हैं। जो तत्त्व अतीव कमनीय है, जो तत्त्व शिव-शक्ति नामों से या केवल 'अ' इस नाम से ही प्रसिद्ध है, जिस तरह से ये सृष्टि, स्थिति संहार नामक तीन कृत्य हुआ करते हैं, जो तत्त्व आदिभूत तत्त्व है, जो पञ्चभूतों के रूप में प्रकट होता है, जो अपने ऐश्वर्य में विलसनशील है। समस्त विश्व का जो परम रहस्यभूत स्वरूप है तथा समस्त ब्रह्माण्ड को धारण करने वाला जो एक मात्र करण्ड (टोकरा), अर्थात् आधारभूत तत्त्व है।

भट्ट श्री रामकृष्ण जी ने निम्नलिखित ग्रन्थों की रचना की है।

(१) **कमला स्तोत्र (भाषा काव्य)**
(२) **सीताराम स्तोत्र (भाषा काव्य)**
(३) **रसपात्रम्**
(४) **शिवस्तुतिः (गद्यपद्यमयी)**
(५) **अम्बास्तोत्रम्**
(६) **भगवत्यष्टकम्।**
(७) **भागवत व्याख्या (हिन्दी पद्यमयी)**
(८) **मर्मप्रकाशिका (सप्तशती टीका)**

भट्ट श्री रामकृष्ण सं० १६२० वि० (१८६३ ई०) में शिवलोक को सिधार गए। वे पूज्यपाद आचार्य जी के **प्रपितामह** थे।

भट्ट श्री रामकृष्ण के जीवित पुत्र चार थे। उनमें सबसे बड़े भट्ट **गङ्गाधर** थे। वे मूलत: वेदपाठी पण्डित थे। पद, क्रम, जटा, धन आदि पाठ प्रक्रियाओं में विशेष निष्णात थे। साथ ही व्याकरण, दर्शन, साहित्य, इतिहास, पुराण आदि सभी विषयों में प्रवीण विद्वान् थे। वे कवि भी थे और हिन्दी भाषा में अनेकों कविताएं लिख भी गए। संस्कृत में भी काव्य रचना में काफी प्रौढि थे। इनके माता पिता ने इनका नाम जगन्नाथ रखा था, परन्तु मातामह ने गङ्गाधर रख लिया और उसी गङ्गाधर नाम से वाराणसी में प्रसिद्ध हुए।

एक बार दक्षिण देश में किसी ब्राह्मण नरेश ने जगह-जगह से वेदपाठियों को बुलाकर उनसे वेद पाठ सुन कर और साथ-साथ परीक्षा लेते हुए उनका विशेष सम्मान किया। काशी के वेद पाठी भी उस सम्मेलन पर बुलाए गए। वे जगन्नाथ शास्त्री (भट्ट गङ्गाधर) को भी साथ ले गए। राजा ने वेदपाठ की परीक्षा के अनन्तर पण्डितों से यह कहा कि अर्थ को जाने बिना वेदपाठ पूरी तरह से फलित नहीं होता है, तो आप लोगों में कोई ऐसा वेदपाठी क्या है जो वेद के अर्थ को ठीक तरह से जानता हो। यदि हो तो उसकी परीक्षा लेकर के उसे विशेष सत्कार से सम्मानित किया जाएगा।

इस चुनौती को सुन लेने पर काशी के सभी वेदपाठी एक स्वर से बोले कि ऐसे विद्वान् वेदपाठी एक मात्र भट्ट गङ्गाधर हैं। तब राजा ने उन्हें वेद के अर्थ के ज्ञान की परीक्षा देने की प्रार्थना जो की तो भट्ट गङ्गाधर चुप रहे। इस पर अपने साथियों ने जब उन्हें बहुत आग्रह पूर्वक प्रेरणा की तथा यह प्रार्थना की कि काशी की लाज रखने के लिए आप अवश्य ही परीक्षा दे ही दीजिए। साथ यह भी कहा कि अपने विशेष वैदुष्य को चमका देने का इससे अच्छा अवसर कब मिलेगा। अपने साथियों की ऐसी प्रार्थना को सुनने पर भट्ट गङ्गाधर ने उस राजा से कहा कि उनके यहां जितने भी परीक्षक विद्वान् हैं वे एक एक करके या मिल करके मेरे साथ शास्त्रार्थ करें। यदि उनमें से कोई मुझे शास्त्रार्थ में जीत सके तो तभी वह मेरा परीक्षक बन सकेगा। तब राजा की प्रेरणा से दो तीन पण्डितों को शास्त्रार्थ के लिए तैयार होना पड़ा। वे सब के सब भट्ट गङ्गाधर से हार गए। उस नरेश का हृदय ऐसे विद्वान् के वैदुष्य को देख कर हर्ष से विह्वल हो गया। उसने काशी के उन सभी वेद पाठियों के समेत भट्ट गङ्गाधर को मास भर वही ठहर कर अपने मुख से गणेश पुराण की कथा सुनाने की प्रार्थना की और भट्ट गंगाधर ने इस प्रार्थना को स्वीकार किया। कथा के पूरा होने पर बड़े सम्मान से पण्डित महोदय को वेदपाठियों के समेत विदा किया गया। गणेश

पुराण की जिस पुस्तक को वे वहां से लाए थे उसे पूज्यपाद जी ने देखा है।

भट्ट गंगाधर के भाग्य में गार्हस्थ्य सुख लिखा नहीं था। उनके तेरह बच्चे छोटी आयु में ही मरते गए। उनका सबसे छोटा भाई **रघुनाथ** बहुत बड़ा योग्य विद्वान् था। बीस वर्ष की आयु में वह बड़े-बड़े पण्डितों को शास्त्रार्थ में हराया करता था। अनेकों ही विषयों में निष्णात था और काशी में उसका बड़ा सम्मान था। ऐसे होनहार विद्वान् छोटे भाई जब छोटी आयु में ही परलोक को सिधार गए तो भट्ट गंगाधर संसार से अतीव विरक्त हो गए। कुछ ही वर्षों के पश्चात् उनके दूसरे भाई **श्री वैद्यनाथ** भी जब यौवन में ही शिव लोक यात्रा के पथिक बने तो उनकी विरक्ति और बढ़ गई। तीसरे भाई **भट्ट वामन** जब यौवन में ही अन्धे हो गए तो उनकी विरक्ति की कोई सीमा नहीं रही। फिर उनकी पत्नी भी मर गई। छोटे भाइयों और बच्चों की ऐसी दैवगति का विचार करते हुए वे अतीव विरक्त तो हो ही गए थे। अतः उन्होंने पत्नी के मर जाने पर समस्त सम्बन्धियों के द्वारा आग्रह किए जाने पर भी दूसरा विवाह नहीं किया। आजीवन छोटे भाई वैद्यनाथ के दो पुत्रों का लालन, पालन, अध्यापन, उपनयन आदि अतीत स्नेह पूर्वक भली भान्ति करते रहे। साथ ही साथ उन्होंने ब्राह्मणोचित श्रौत स्मार्त्त परम्पराओं को निभाते हुए, और अपने सुयोग्य पिता श्री रामकृष्ण जी से प्राप्त त्रिपुरा विद्या का अभ्यास करते हुए, तथा भगवद्भजन और विद्याव्यसन में लगे रहते हुए जीवन को बिताया। इस तरह से एक परम आदर्शमय जीवन को पूरा करके उन्होंने वाराणसी में ही शरीर छोड़ा।

श्री भट्ट गंगाधर शास्त्री के छोटे भाई श्री वामन शास्त्री की जीवन गाथा अतीव करुण रस से भरी है। उसी का घना प्रभाव श्री रामकृष्ण (भट्ट गंगाधर) जी के हृदय पर पड़ा जिससे उनका वैराग्य बहुत अधिक बढ़ गया। श्री वामन शास्त्री एक अच्छे विद्वान् थे। उन्हें वाराणसी के संस्कृत महाविद्यालय में अध्यापक पद के लिए चुना गया और नियुक्ति का आदेश पत्र भी उन्हें मिल गया। वह नियुक्ति अर्थ लाभ के साथ ही साथ एक बहुत बड़े सम्मान की बात थी। उससे उनका मित्र मण्डल अतीव प्रसन्न हो गया। महाविद्यालय में कार्यभार को हाथ में ले लेने का मुहूर्त्त निश्चित हो गया। मित्रमण्डल ने उस मुहूर्त्त से कुछ दिन पहले हर्षोल्लास मनाने के लिए भङ्गा पान की गोष्ठी का आयोजन किया। भांग पीस ली गई। उसमें धत्तूर के बीज डाले गए और उनके समेत उसे पीसा गया। फिर उस भांग के रस को विशेष मादक बनाने के लिए ताम्र पात्र में पकाया गया। सायंकाल पानगोष्ठी हुई। सारी मित्र मण्डली ने जी भर कर भांग को पिया। केवल एक भट्ट गंगाधर शास्त्री ने ही उसे नहीं पिया। मित्र मण्डली के सन्तोष के लिए वे एक-एक प्याली को ले लेकर मुख के पास पहुंचा कर पीने

का केवल अभिनय मात्र करते हुए भांग की उन सारी प्यालियों को अपने वस्त्रों के भीतर उण्डेलते गए। जीं भर कर भंगापान करके सब सो गए। उनमें से एक पण्डित तो सोया हुआ ही मर गया और प्रात: जागा ही नहीं। अनेकों को तरह-तरह के रोग लग गए। श्री वामन शास्त्री प्रात:काल जब जागे तो अपने को दर्शन शक्ति से हीन पाया। उनकी आंखों की अनेक प्रकार से चिकित्सा की गई, परन्तु आंखों में देखने की शक्ति ज़रा भर भी नहीं आई। अध्यापकपद पर नियुक्ति का आदेश पत्र निष्फल हो गया। उस पान गोष्ठी के दुष्प्रभावों से केवल एक भट्ट गंगाधर शास्त्री ही बचे रहे। उन्होंने भाई की चिकित्सा पर बहुत-सा धन व्यय किया, परन्तु फल कुछ निकला नहीं। भाई जीवन भर के लिए अन्धा हो गया। इस घटना ने उनकी विरक्ति को और भी अधिक बढ़ा दिया। भट्ट गंगाधर ने एक सुमधुर मराठी भाषा काव्य का तथा संस्कृत में **'श्री गणपति लीलावतार मञ्जरी'** का निर्माण किया और **हारबन्ध** आदि अनेकों चित्र काव्यात्मक श्लोकों की रचना की। छोटे भाई **वैद्यनाथ** के दोनों पुत्रों को स्वयं भी पढ़ाया, पाठशालाओं में भी उनकी शिक्षा का प्रबन्ध किया और कुल क्रम से प्राप्त श्री विद्या की दीक्षा भी उन्हें दे दी।

भट्ट गंगाधर के दूसरे भाई श्रीवैद्यनाथ भट्ट थे। वे ही पूज्यपाद श्रीआचार्य जी के **पितामह** थे। वे बड़े हृष्ट पुष्ट, विशालकाय, अतुल बलशाली और सर्वाङ्ग सुन्दर शरीर वाले जवान थे। उन्हें वाराणसी में **भैया शास्त्री** कहा जाता था। वे अनेकों ही शास्त्रों में खूब निष्णात थे। उनके अनेकों शिष्य काशी में चिरकाल तक विद्यमान रहे और उनके परलोकगमन के अनन्तर भी बहुधा उनके आवास पर आ आ कर उनके आसन को प्रणाम करके जाया करते थे। हृष्ट पुष्ट और बलवान् होते हुए भी दैव योग से केवल अठाईस वर्ष की आयु में शिवधाम को सिधार गए। उस समय उनका एक पुत्र मयूर भट्ट (मोरेश्वर) चार वर्ष की आयु का था और दूसरा पुत्र अभी माता के गर्भ में ही था। उनकी पत्नी मालव देशवासी दामोदर पण्डित की चिमा नाम की पुत्री थी जिसको श्वशुर घर में **रमाबाई** कहा करते थे। वह पूज्यपाद श्री आचार्यजी की पितामही थी। श्री वैद्यनाथ शास्त्री की असामयिक मृत्य के कुछ महीनों के बाद रमाबाई ने जिस पुत्र को जन्म दिया उसका नाम **श्रीकृष्ण** रखा गया। वे पूज्यपाद आचार्यजी के पिता थे।

श्रीकृष्ण भट्ट को घर में **'बब्बन'** कहा जाता था। आगे भी वे वाराणसी में **'बब्बन शास्त्री'** इसी नाम से अधिक प्रसिद्ध रहे।

श्रीकृष्ण पतले शरीर के थे और सर्वांग सुन्दर थे। भट्ट गंगाधर ने दोनों बालकों को बाला श्रीविद्या की दीक्षा दी, दोनों को स्वयं भी पढ़ाया और विद्यालय में भी उनकी शिक्षा का सुप्रबन्ध किया। दोनों का पालन, पोषण, उपनयन,

विवाह आदि भी बड़े स्नेह से करवाया। आगे श्री मयूर भट्ट (मोरेश्वर) एक अच्छे कर्मकाण्डी ब्राह्मण का काम करते रहे और प्रायः काशी में ही रहते रहे। छोटे भाई श्रीकृष्ण ने अनेकों विद्वानों से अनेकों विद्याएं सीख लीं और अनेकों ही विषयों के प्रकाण्ड विद्वान् बन गए। उनकी शिक्षा दीक्षा आदि काफी सुचारु ढंग से हुई। उनके मुख्य गुरु एक महाविद्वान् श्री **गङ्गाधर शास्त्री तैलङ्ग** थे जिनसे उन्होंने बहुत सारी विद्याओं का अध्ययन किया। उनसे ही उन्होंने तन्त्र शास्त्रों के रहस्यों का ज्ञान प्राप्त किया और श्रीविद्या मण्डल के विषय में उनसे पूर्णाभिषेक भी पाया। वे गवर्नमेण्ट संस्कृत कोलेज में प्राध्यापक थे और सी० आई० ई० पदवी से भी विभूषित थे। **श्रीनित्यानन्द पन्त** श्री कृष्णशास्त्री को अपना छोटा भाई जैसा समझते थे। श्री **रामावतार पाण्डेय, श्रीदामोदर गोस्वामी, श्री सदाशिव शास्त्री, बख्शी मुकुन्द** झा आदि बड़े-बड़े विद्वान् उनसे जरा जरा बड़ी आयु के ऐसे पण्डित थे जो उनसे भाई का जैसा स्नेह करते थे। श्री तैलंग गंगाधर शास्त्री के छोटे भाई श्रीराम शास्त्री तैलंग से भी उन्होंने विद्या प्राप्त की। तदनुसार पुराण, दर्शन, व्याकरण, काव्य, अलंकार, साहित्य आदि शास्त्रों में काफी निष्णात बन गए और आगमिक शैव/शाक्त दर्शन में विशेषतया, प्रवीणता को प्राप्त कर गए। जैन दर्शन शास्त्र को भी भली भान्ति जानते थे। संगीत विद्या पर उन्हें काफी अधिकार था। संस्कृत के अतिरिक्त उन्हें उर्दु, फारसी, अरबी, अंग्रेजी, जैन प्राकृत आदि अनेकों भाषाओं का अच्छा ज्ञान था और कई एक भाषाओं में लिखते भी रहे। विद्याव्रत से सन्तुष्ट हो जाने पर वे **भिनगाराज्य** के सामन्त शासक के पुत्र के अध्यापक और संरक्षक के रूप में काम करते हुए कई वर्ष प्रयाग में रहे। तदनन्तर **श्री गुलाबचन्द्र जैन** नाम के एक सेठ के अध्यापक के रूप में काम करते हुए कुछ वर्ष बम्बई में रहे। फिर श्री वल्लभाचार्य के उत्तरीय पीठ के महन्त श्री **देवकीनन्दन जी** की पण्डित सभा के प्रधान पण्डित बन कर उन्हीं के साथ घूमते हुए और उन्हें भागवती कथा सुनाते हुए कई एक नगरों में रहते रहे। वहां जब पुनः वाराणसी आ गए तो उस समय कश्मीर नरेश, महाराजा **प्रतापसिंह** के द्वारा श्रीनगर में स्थापित प्राच्य विद्या सम्बन्धी शोध-संस्थान के डायरेक्टर, श्री **जगदीशचन्द्र चटर्जी** भी उधर आए थे। उनके शोध संस्थान में आगमिक शैव शाक्त दर्शन पर धूमधाम से शोधकार्य चल रहा था। उन्होंने श्रीकृष्ण शास्त्री को जब आगमिक दर्शन विद्या के एक निष्णात पण्डित के रूप में पाया तो उन्हें डिप्टी डायरेक्टर के पद पर श्रीनगर आने के लिए बहुत आग्रह किया। उन्हें भी इस पद पर काम करने के लिए चित्त काफी ललचाया। परन्तु अपने घर के लोगों ने इतनी दूर जाने की सहमति जरा भर भी नहीं दी। उन्हें दो प्रकार की आशाङ्काएं हुई। एक तो यह भय हो गया कि कहीं कश्मीरी सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उधर ही न रहें ओर दूसरे यह चिन्ता होने लगी कि इतनी

श्रीकृष्ण शास्त्री के द्वारा विरचित एक अतीव सुन्दर **गायत्री स्तोत्र को, एकवीरा स्तोत्र को** और **पुण्यानन्दनाथ विरचित कामकला विलास पर निर्मित टीका को पूज्यपाद जी** ने अपने घर के पुस्तक भण्डार में भली भांति देखा था। उनके द्वारा विरचित समस्या पूर्तिमय अनेकों पद्य तात्कालिक पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे। ताहिरपुर के एक बंगाली शासक (सामन्त) **शशिशेखर** से पर्याप्त धन पाकर उसके नाम से **गंगा भावावली** नामक काव्य की रचना भी उन्होंने की थी। वे जीवन भर सदा काफी धनार्जन तो करते रहे, परन्तु व्यय भी बहुत करते रहे, दान भी दिल खोलकर देते रहे और अपने बड़े भाई मयूर भट्ट की भी आर्थिक सहायता करते रहे। इस तरह से वे कभी भी धन का संग्रह नहीं कर पाये। लोग समझते थे कि उनके पास बहुत धन होगा, परन्तु अन्त समय पर उनके पास कुछ भी नहीं था। फिर भी वे उस समय भी शान्तचित्त ही बने रहे। वरकल वंशचरितम् में उनके विषय में काफी लिखा हुआ है। फिर पूज्यपादजी ने कुछ एक घटनाएं स्वयं मुझे सुना दी हैं। उनका विचार था कि उनके वे पूज्य पिताजी भी किसी देवलोक से ही पृथ्वी पर आए थे, क्योंकि उनकी कई एक प्रकार की प्रवृत्तियां ही अतिविचित्र थीं। जैसे एक बार रात को दोनों ही पिता पुत्र सोए हुए थे तो आधी रात के समय कोई आदमी शहनाई बजाने लगा। और बजाने लगा गलत तरीके से। शास्त्री जी शहनाई के उन गलत बजते हुए स्वरों को सहन नहीं कर पाए। एकदम बिस्तर को छोड़ा नीचे उतरे। उस शहनाई बजाने वाले को रोक लिया। उसे समुचित ढंग से बजाना सिखा दिया। तब आकर पुनः शान्ति से सो सके। ऐसी घटनाओं की स्मृति के आधार पर श्रीपूज्यपादजी ऐसा समझते थे कि ऐसी ललित कलाओं का संस्कार यह जतलाता है कि वे कभी गन्धर्व लोक में या विद्याधर लोक में रहे हों, क्योंकि वर्तमान जीवन में उन्हें गान्धर्व विद्या के साथ घना सम्बन्ध कभी रहा ही नहीं था।

एक बार रेल यात्रा में किसी स्टेशन पर रेल की प्रतीक्षा में खड़े थे। सामने कोई भिखारी कुछ मांगने लगा तो एकदम अपनी अंगुली में से सोने की अंगूठी उतार दी; रेल के गार्ड के द्वारा उसे तुडवाया और उस स्वर्ण का एक टुकड़ा उस भिखारी को दे दिया, यद्यपि उनके पास कभी भी पर्याप्त मात्रा में धन एकत्रित नहीं होने पाया था। ऐसी स्थिति में इस प्रकार की उदारता किसी पिछले दिव्य जीवन के संस्कार के प्रभाव को ही जतलाती है।

बहुत से प्रभावशाली महानुभाव उनके मित्र थे। काशी में **पं० मदन मोहन मालवीय** जी उनके एक मित्र थे। इलाहाबाद में जहां उनके ससुराल थे वहीं पर पास ही **श्री मोतीलाल जी** नेहरू का घर था। उनके श्वशुर श्री मोतीलाल जी के मित्र थे। अतः श्री नेहरू जी उन्हें अपने जामाता का जैसा सत्कार करते थे। यद्यपि नेहरू जी का आचार ब्राह्मणोचित ढङ्ग का नहीं था, फिर भी उनके ऊंचे

दूर रहते हुए घर की कोई आर्थिक सहायता करें या न करें। उनके बड़े भाई की आय बहुत नहीं थी। अतः घर के व्यय का काफी भार शास्त्रीजी ही उठाया करते थे। इन कारणों से उन्हें कश्मीर जाने के विचार को ही छोड़ देना पड़ा। पूज्यपाद श्री आचार्य महोदय तब बालक ही थे। इसी प्रसंग से उन्हें तभी से अभिनवगुप्त जैसे सिद्धों के निवास स्थान रूपी कश्मीर देश की यात्रा की उमंग हृदय में उद्वेलित हो गई थी, जो आगे परिव्राजक जीवन में ही पूरी हो गई। पश्चात् बनारस के नरेश ने श्रीकृष्ण शास्त्री को अपनी सरकार के शिक्षा विभाग के **अध्यक्ष पद** पर नियुक्त कर लिया। उन्होंने नियुक्ति का आदेश पत्र प्राप्त किया। उस पद पर अधिकार को हाथ में ले लेने के लिए शुभ मुहूर्त्त भी निकाला गया। परन्तु उस मुहूर्त्त के आने से पहले ही उन्हें विषम ज्वर ने घेर लिया। कुछ दिनों के पश्चात् ज्वर के साथ ही साथ रक्तातिसार का रोग हुआ। उन्होंने उसे यम लोक का सन्देश ही समझ लिया और एक अच्छे सन्न्यासी महात्मा को घर बुलाकर आतुर सन्न्यास की दीक्षा ले ली। सन्न्यास लेकर के कुछ ही दिनों के पश्चात् शरीर को छोड़कर शिवलोक के प्रति प्रस्थान किया। यह घटना अनुमानतः सन् १६१५ ई० की है। तब पूज्यपाद श्री आचार्य महोदय बारह वर्ष के थे और उनका द्वैमातुर छोटा भाई (रामचन्द्र) चार वर्ष का था। श्री कृष्णशास्त्री ने अन्त समय पर सभी को यथोचित उपदेश दिया और पूज्यपादजी को विशेष आशीर्वाद देकर शान्त चित्त से देहत्याग किया। कर्मकाण्ड में सुप्रवीण विद्वान् पण्डित की सहायता से पूज्यपादजी ने अपने नन्हें हाथों से उनकी सन्न्यासोचित और्ध्व दैहिक क्रिया करते हुए उनके शरीर को गंगाजी के अर्पण किया और शेष क्रियाएँ भी सन्न्यासोचित विधि से की गईं। उस समय श्रीकृष्ण शास्त्री की आयु केवस इकतालीस वर्ष की थी।

भट्ट गंगाधर शास्त्री ने श्रीकृष्ण भट्ट को आगमिक श्रीविद्या मण्डल की दीक्षा देते हुए उनका तान्त्रि क क्रमसे पूर्णाभिषेक भी किया था। उपनयन के समय गायत्री दीक्षा के साथ ही उन्हें अपने चाचा वामन भट्ट ने बाला त्रिपुरा विद्या की भी दीक्षा दे रखी थी। अनेकों शास्त्रों के वे निष्णात विद्वान् थे। समस्त दर्शन शास्त्रों के मर्मज्ञ थे। संगीत विद्या में अतीव प्रवीण थे। तन्त्र-मन्त्र-रहस्यों के ज्ञाता थे। बाम दक्षिण दोनों ही क्रमों से श्रीविद्या की उपासना को जानते थे। श्रीविद्या के परम उपासक भी थे। सभाओं में काफी वाक्पटु थे। गायन विद्या पर भी उन्हें अच्छा अधिकार था। कण्ठ अतीब मधुर था वीणावादन में वे अतीव निपुण थे। काशी के बड़े बड़े विद्वान् उनसे काफी स्नेह रखते थे। उनके उन स्नेही विद्वानों में से कुछ ये महानुभाव थे—(१) **गङ्गाधर शास्त्री** सी० आई० ई० (२) पर्वतीय श्री **नित्यानन्द पन्त**, (३) श्री **रामावतार पाण्डेय**, (४) श्री**दामोदर लाल गोस्वामी**, (५) श्री **सदाशिव शास्त्री**, (६) **बख्शी मुकुन्द झा** इत्यादि।

श्रीकृष्ण शास्त्री के द्वारा विरचित एक अतीव सुन्दर **गायत्री स्तोत्र को, एकवीरा स्तोत्र को** और **पुण्यानन्दनाथ विरचित कामकला विलास पर निर्मित टीका को पूज्यपाद जी** ने अपने घर के पुस्तक भण्डार में भली भांति देखा था। उनके द्वारा विरचित समस्या पूर्तिमय अनेकों पद्य तात्कालिक पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे। ताहिरपुर के एक बंगाली शासक (सामन्त) **शशिशेखर** से पर्याप्त धन पाकर उसके नाम से **गंगा भावावली** नामक काव्य की रचना भी उन्होंने की थी। वे जीवन भर सदा काफी धनार्जन तो करते रहे, परन्तु व्यय भी बहुत करते रहे, दान भी दिल खोलकर देते रहे और अपने बड़े भाई मयूर भट्ट की भी आर्थिक सहायता करते रहे। इस तरह से वे कभी भी धन का संग्रह नहीं कर पाये। लोग समझते थे कि उनके पास बहुत धन होगा, परन्तु अन्त समय पर उनके पास कुछ भी नहीं था। फिर भी वे उस समय भी शान्तचित्त ही बने रहे। वरकल वंशचरितम् में उनके विषय में काफी लिखा हुआ है। फिर पूज्यपादजी ने कुछ एक घटनाएं स्वयं मुझे सुना दी हैं। उनका विचार था कि उनके वे पूज्य पिताजी भी किसी देवलोक से ही पृथ्वी पर आए थे, क्योंकि उनकी कई एक प्रकार की प्रवृत्तियां ही अतिविचित्र थीं। जैसे एक बार रात को दोनों ही पिता पुत्र सोए हुए थे तो आधी रात के समय कोई आदमी शहनाई बजाने लगा। और बजाने लगा गलत तरीके से। शास्त्री जी शहनाई के उन गलत बजते हुए स्वरों को सहन नहीं कर पाए। एकदम बिस्तर को छोड़ा नीचे उतरे। उस शहनाई बजाने वाले को रोक लिया। उसे समुचित ढंग से बजाना सिखा दिया। तब आकर पुनः शान्ति से सो सके। ऐसी घटनाओं की स्मृति के आधार पर श्रीपूज्यपादजी ऐसा समझते थे कि ऐसी ललित कलाओं का संस्कार यह जतलाता है कि वे कभी गन्धर्व लोक में या विद्याधर लोक में रहे हों, क्योंकि वर्तमान जीवन में उन्हें गान्धर्व विद्या के साथ घना सम्बन्ध कभी रहा ही नहीं था।

एक बार रेल यात्रा में किसी स्टेशन पर रेल की प्रतीक्षा में खड़े थे। सामने कोई भिखारी कुछ मांगने लगा तो एकदम अपनी अंगुली में से सोने की अंगूठी उतार दी; रेल के गार्ड के द्वारा उसे तुड़वाया और उस स्वर्ण का एक टुकड़ा उस भिखारी को दे दिया, यद्यपि उनके पास कभी भी पर्याप्त मात्रा में धन एकत्रित नहीं होने पाया था। ऐसी स्थिति में इस प्रकार की उदारता किसी पिछले दिव्य जीवन के संस्कार के प्रभाव को ही जतलाती है।

बहुत से प्रभावशाली महानुभाव उनके मित्र थे। काशी में **पं० मदन मोहन मालवीय** जी उनके एक मित्र थे। इलाहाबाद में जहां उनके ससुराल थे वहीं पर पास ही **श्री मोतीलाल जी** नेहरू का घर था। उनके श्वशुर श्री मोतीलाल जी के मित्र थे। अतः श्री नेहरू जी उन्हें अपने जामाता का जैसा सत्कार करते थे। यद्यपि नेहरू जी का आचार ब्राह्मणोचित ढङ्ग का नहीं था, फिर भी उनके ऊंचे

विवाह आदि भी बड़े स्नेह से करवाया। आगे श्री मयूर भट्ट (मोरेश्वर) एक अच्छे कर्मकाण्डी ब्राह्मण का काम करते रहे और प्रायः काशी में ही रहते रहे। छोटे भाई श्रीकृष्ण ने अनेकों विद्वानों से अनेकों विद्याएं सीख लीं और अनेकों ही विषयों के प्रकाण्ड विद्वान् बन गए। उनकी शिक्षा दीक्षा आदि काफी सुचारु ढंग से हुई। उनके मुख्य गुरु एक महाविद्वान् श्री **गङ्गाधर शास्त्री तैलङ्ग** थे जिनसे उन्होंने बहुत सारी विद्याओं का अध्ययन किया। उनसे ही उन्होंने तन्त्र शास्त्रों के रहस्यों का ज्ञान प्राप्त किया और श्रीविद्या मण्डल के विषय में उनसे पूर्णाभिषेक भी पाया। वे गवर्नमेण्ट संस्कृत कोलेज में प्राध्यापक थे और सी० आई० ई० पदवी से भी बिभूषित थे। **श्रीनित्यानन्द पन्त** श्री कृष्णशास्त्री को अपना छोटा भाई जैसा समझते थे। श्री **रामावतार पाण्डेय, श्रीदामोदर गोस्वामी, श्री सदाशिव शास्त्री, बख्शी मुकुन्द** झा आदि बड़े-बड़े विद्वान् उनसे जरा जरा बड़ी आयु के ऐसे पण्डित थे जो उनसे भाई का जैसा स्नेह करते थे। श्री तैलंग गंगाधर शास्त्री के छोटे भाई श्रीराम शास्त्री तैलंग से भी उन्होंने विद्या प्राप्त की। तदनुसार पुराण, दर्शन, व्याकरण, काव्य, अलंकार, साहित्य आदि शास्त्रों में काफी निष्णात बन गए और आगमिक शैव/शाक्त दर्शन में विशेषतया, प्रवीणता को प्राप्त कर गए। जैन दर्शन शास्त्र को भी भली भान्ति जानते थे। संगीत विद्या पर उन्हें काफी अधिकार था। संस्कृत के अतिरिक्त उन्हें उर्दु, फारसी, अरबी, अंग्रेजी, जैन प्राकृत आदि अनेकों भाषाओं का अच्छा ज्ञान था और कई एक भाषाओं में लिखते भी रहे। विद्याव्रत से सन्तुष्ट हो जाने पर वे **भिनगाराज्य** के सामन्त शासक के पुत्र के अध्यापक और संरक्षक के रूप में काम करते हुए कई वर्ष प्रयाग में रहे। तदनन्तर **श्री गुलाबचन्द्र जैन** नाम के एक सेठ के अध्यापक के रूप में काम करते हुए कुछ वर्ष बम्बई में रहे। फिर श्री वल्लभाचार्य के उत्तरीय पीठ के महन्त श्री **देवकीनन्दन जी** की पण्डित सभा के प्रधान पण्डित बन कर उन्हीं के साथ घूमते हुए और उन्हें भागवती कथा सुनाते हुए कई एक नगरों में रहते रहे। वहां जब पुनः वाराणसी आ गए तो उस समय कश्मीर नरेश, महाराजा **प्रतापसिंह** के द्वारा श्रीनगर में स्थापित प्राच्य विद्या सम्बन्धी शोध-संस्थान के डायरेक्टर, श्री **जगदीशचन्द्र चटर्जी** भी उधर आए थे। उनके शोध संस्थान में आगमिक शैव शाक्त दर्शन पर धूमधाम से शोधकार्य चल रहा था। उन्होंने श्रीकृष्ण शास्त्री को जब आगमिक दर्शन विद्या के एक निष्णात पण्डित के रूप में पाया तो उन्हें डिप्टी डायरेक्टर के पद पर श्रीनगर आने के लिए बहुत आग्रह किया। उन्हें भी इस पद पर काम करने के लिए चित्त काफी ललचाया। परन्तु अपने घर के लोगों ने इतनी दूर जाने की सहमति जरा भर भी नहीं दी। उन्हें दो प्रकार की आशङ्काएं हुईं। एक तो यह भय हो गया कि कहीं कश्मीरी सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उधर ही न रहें और दूसरे यह चिन्ता होने लगी कि इतनी

का केवल अभिनय मात्र करते हुए भांग की उन सारी प्यालियों को अपने वस्त्रों के भीतर उण्डेलते गए। जीं भर कर भंगापान करके सब सो गए। उनमें से एक पण्डित तो सोया हुआ ही मर गया और प्रात: जागा ही नहीं। अनेकों को तरह-तरह के रोग लग गए। श्री वामन शास्त्री प्रात:काल जब जागे तो अपने को दर्शन शक्ति से हीन पाया। उनकी आंखों की अनेक प्रकार से चिकित्सा की गई, परन्तु आंखों में देखने की शक्ति ज़रा भर भी नहीं आई। अध्यापकपद पर नियुक्ति का आदेश पत्र निष्फल हो गया। उस पान गोष्ठी के दुष्प्रभावों से केवल एक भट्ट गंगाधर शास्त्री ही बचे रहे। उन्होंने भाई की चिकित्सा पर बहुत-सा धन व्यय किया, परन्तु फल कुछ निकला नहीं। भाई जीवन भर के लिए अन्धा हो गया। इस घटना ने उनकी विरक्ति को और भी अधिक बढ़ा दिया। भट्ट गंगाधर ने एक सुमधुर मराठी भाषा काव्य का तथा संस्कृत में **'श्री गणपति लीलावतार मञ्जरी'** का निर्माण किया और **हारबन्ध** आदि अनेकों चित्र काव्यात्मक श्लोकों की रचना की। छोटे भाई **वैद्यनाथ** के दोनों पुत्रों को स्वयं भी पढ़ाया, पाठशालाओं में भी उनकी शिक्षा का प्रबन्ध किया और कुल क्रम से प्राप्त श्री विद्या की दीक्षा भी उन्हें दे दी।

भट्ट गंगाधर के दूसरे भाई श्रीवैद्यनाथ भट्ट थे। वे ही पूज्यपाद श्रीआचार्य जी के **पितामह** थे। वे बड़े हृष्ट पुष्ट, विशालकाय, अतुल बलशाली और सर्वाङ्ग सुन्दर शरीर वाले जवान थे। उन्हें वाराणसी में **भैया शास्त्री** कहा जाता था। वे अनेकों ही शास्त्रों में खूब निष्णात थे। उनके अनेकों शिष्य काशी में चिरकाल तक विद्यमान रहे और उनके परलोकगमन के अनन्तर भी बहुधा उनके आवास पर आ आ कर उनके आसन को प्रणाम करके जाया करते थे। हृष्ट पुष्ट और बलवान् होते हुए भी दैव योग से केवल अठाईस वर्ष की आयु में शिवधाम को सिधार गए। उस समय उनका एक पुत्र मयूर भट्ट (मोरेश्वर) चार वर्ष की आयु का था और दूसरा पुत्र अभी माता के गर्भ में ही था। उनकी पत्नी मालव देशवासी दामोदर पण्डित की चिमा नाम की पुत्री थी जिसको श्वशुर घर में **रमाबाई** कहा करते थे। वह पूज्यपाद श्री आचार्यजी की पितामही थी। श्री वैद्यनाथ शास्त्री की असामयिक मृत्य के कुछ महीनों के बाद रमाबाई ने जिस पुत्र को जन्म दिया उसका नाम **श्रीकृष्ण** रखा गया। वे पूज्यपाद आचार्यजी के पिता थे।

श्रीकृष्ण भट्ट को घर में **'बब्बन'** कहा जाता था। आगे भी वे वाराणसी में **'बब्बन शास्त्री'** इसी नाम से अधिक प्रसिद्ध रहे।

श्रीकृष्ण पतले शरीर के थे और सर्वांग सुन्दर थे। भट्ट गंगाधर ने दोनों बालकों को बाला श्रीविद्या की दीक्षा दी, दोनों को स्वयं भी पढ़ाया और विद्यालय में भी उनकी शिक्षा का सुप्रबन्ध किया। दोनों का पालन, पोषण, उपनयन,

विवाह आदि भी बड़े स्नेह से करवाया। आगे श्री मयूर भट्ट (मोरेश्वर) एक अच्छे कर्मकाण्डी ब्राह्मण का काम करते रहे और प्रायः काशी में ही रहते रहे। छोटे भाई श्रीकृष्ण ने अनेकों विद्वानों से अनेकों विद्याएं सीख लीं और अनेकों ही विषयों के प्रकाण्ड विद्वान् बन गए। उनकी शिक्षा दीक्षा आदि काफी सुचारु ढंग से हुई। उनके मुख्य गुरु एक महाविद्वान् श्री **गङ्गाधर शास्त्री तैलङ्ग** थे जिनसे उन्होंने बहुत सारी विद्याओं का अध्ययन किया। उनसे ही उन्होंने तन्त्र शास्त्रों के रहस्यों का ज्ञान प्राप्त किया और श्रीविद्या मण्डल के विषय में उनसे पूर्णाभिषेक भी पाया। वे गवर्नमेण्ट संस्कृत कोलेज में प्राध्यापक थे और सी॰ आई॰ ई॰ पदवी से भी बिभूषित थे। **श्रीनित्यानन्द पन्त** श्री कृष्णशास्त्री को अपना छोटा भाई जैसा समझते थे। श्री **रामावतार पाण्डेय**, **श्रीदामोदर गोस्वामी**, **श्री सदाशिव शास्त्री**, **बख्शी मुकुन्द** झा आदि बड़े-बड़े विद्वान् उनसे जरा जरा बड़ी आयु के ऐसे पण्डित थे जो उनसे भाई का जैसा स्नेह करते थे। श्री तैलंग गंगाधर शास्त्री के छोटे भाई श्रीराम शास्त्री तैलंग से भी उन्होंने विद्या प्राप्त की। तदनुसार पुराण, दर्शन, व्याकरण, काव्य, अलंकार, साहित्य आदि शास्त्रों में काफी निष्णात बन गए और आगमिक शैव/शाक्त दर्शन में विशेषतया, प्रवीणता को प्राप्त कर गए। जैन दर्शन शास्त्र को भी भली भान्ति जानते थे। संगीत विद्या पर उन्हें काफी अधिकार था। संस्कृत के अतिरिक्त उन्हें उर्दु, फारसी, अरबी, अंग्रेजी, जैन प्राकृत आदि अनेकों भाषाओं का अच्छा ज्ञान था और कई एक भाषाओं में लिखते भी रहे। विद्याव्रत से सन्तुष्ट हो जाने पर वे **भिनगाराज्य** के सामन्त शासक के पुत्र के अध्यापक और संरक्षक के रूप में काम करते हुए कई वर्ष प्रयाग में रहे। तदनन्तर **श्री गुलाबचन्द्र जैन** नाम के एक सेठ के अध्यापक के रूप में काम करते हुए कुछ वर्ष बम्बई में रहे। फिर श्री वल्लभाचार्य के उत्तरीय पीठ के महन्त श्री **देवकीनन्दन जी** की पण्डित सभा के प्रधान पण्डित बन कर उन्हीं के साथ घूमते हुए और उन्हें भागवती कथा सुनाते हुए कई एक नगरों में रहते रहे। वहां जब पुनः वाराणसी आ गए तो उस समय कश्मीर नरेश, महाराजा **प्रतापसिंह** के द्वारा श्रीनगर में स्थापित प्राच्य विद्या सम्बन्धी शोध-संस्थान के डायरेक्टर, श्री **जगदीशचन्द्र चटर्जी** भी उधर आए थे। उनके शोध संस्थान में आगमिक शैव शाक्त दर्शन पर धूमधाम से शोधकार्य चल रहा था। उन्होंने श्रीकृष्ण शास्त्री को जब आगमिक दर्शन विद्या के एक निष्णात पण्डित के रूप में पाया तो उन्हें डिप्टी डायरेक्टर के पद पर श्रीनगर आने के लिए बहुत आग्रह किया। उन्हें भी इस पद पर काम करने के लिए चित्त काफी ललचाया। परन्तु अपने घर के लोगों ने इतनी दूर जाने की सहमति जरा भर भी नहीं दी। उन्हें दो प्रकार की आशाङ्काएं हुईं। एक तो यह भय हो गया कि कहीं कश्मीरी सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उधर ही न रहें ओर दूसरे यह चिन्ता होने लगी कि इतनी

दूर रहते हुए घर की कोई आर्थिक सहायता करें या न करें। उनके बड़े भाई की आय बहुत नहीं थी। अतः घर के व्यय का काफी भार शास्त्रीजी ही उठाया करते थे। इन कारणों से उन्हें कश्मीर जाने के विचार को ही छोड़ देना पड़ा। पूज्यपाद श्री आचार्य महोदय तब बालक ही थे। इसी प्रसंग से उन्हें तभी से अभिनवगुप्त जैसे सिद्धों के निवास स्थान रूपी कश्मीर देश की यात्रा की उमंग हृदय में उद्वेलित हो गई थी, जो आगे परिव्राजक जीवन में ही पूरी हो गई। पश्चात् बनारस के नरेश ने श्रीकृष्ण शास्त्री को अपनी सरकार के शिक्षा विभाग के **अध्यक्ष पद** पर नियुक्त कर लिया। उन्होंने नियुक्ति का आदेश पत्र प्राप्त किया। उस पद पर अधिकार को हाथ में ले लेने के लिए शुभ मुहूर्त्त भी निकाला गया। परन्तु उस मुहूर्त्त के आने से पहले ही उन्हें विषम ज्वर ने घेर लिया। कुछ दिनों के पश्चात् ज्वर के साथ ही साथ रक्तातिसार का रोग हुआ। उन्होंने उसे यम लोक का सन्देश ही समझ लिया और एक अच्छे सन्न्यासी महात्मा को घर बुलाकर आतुर सन्न्यास की दीक्षा ले ली। सन्न्यास लेकर के कुछ ही दिनों के पश्चात् शरीर को छोड़कर शिवलोक के प्रति प्रस्थान किया। यह घटना अनुमानतः सन् १६१५ ई० की है। तब पूज्यपाद श्री आचार्य महोदय बारह वर्ष के थे और उनका द्वैमातुर छोटा भाई (रामचन्द्र) चार वर्ष का था। श्री कृष्णशास्त्री ने अन्त समय पर सभी को यथोचित उपदेश दिया और पूज्यपादजी को विशेष आशीर्वाद देकर शान्त चित्त से देहत्याग किया। कर्मकाण्ड में सुप्रवीण विद्वान् पण्डित की सहायता से पूज्यपादजी ने अपने नन्हें हाथों से उनकी सन्न्यासोचित और्ध्व दैहिक क्रिया करते हुए उनके शरीर को गंगाजी के अर्पण किया और शेष क्रियाएँ भी सन्न्यासोचित विधि से की गईं। उस समय श्रीकृष्ण शास्त्री की आयु केवस इकतालीस वर्ष की थी।

भट्ट गंगाधर शास्त्री ने श्रीकृष्ण भट्ट को आगमिक श्रीविद्या मण्डल की दीक्षा देते हुए उनका तान्त्रि क क्रमसे पूर्णाभिषेक भी किया था। उपनयन के समय गायत्री दीक्षा के साथ ही उन्हें अपने चाचा वामन भट्ट ने बाला त्रिपुरा विद्या की भी दीक्षा दे रखी थी। अनेकों शास्त्रों के वे निष्णात विद्वान् थे। समस्त दर्शन शास्त्रों के मर्मज्ञ थे। संगीत विद्या में अतीव प्रवीण थे। तन्त्र-मन्त्र-रहस्यों के ज्ञाता थे। बाम दक्षिण दोनों ही क्रमों से श्रीविद्या की उपासना को जानते थे। श्रीविद्या के परम उपासक भी थे। सभाओं में काफी वाक्पटु थे। गायन विद्या पर भी उन्हें अच्छा अधिकार था। कण्ठ अतीब मधुर था वीणावादन में वे अतीव निपुण थे। काशी के बड़े बड़े विद्वान् उनसे काफी स्नेह रखते थे। उनके उन स्नेही विद्वानों में से कुछ ये महानुभाव थे—(१) **गङ्गाधर शास्त्री** सी० आई० ई० (२) पर्वतीय श्री **नित्यानन्द पन्त**, (३) श्री **रामावतार पाण्डेय**, (४) श्री**दामोदर लाल गोस्वामी**, (५) श्री **सदाशिव शास्त्री**, (६) **बख्शी मुकुन्द झा** इत्यादि।

श्रीकृष्ण शास्त्री के द्वारा विरचित एक अतीव सुन्दर **गायत्री स्तोत्र को, एकवीरा स्तोत्र को** और **पुण्यानन्दनाथ विरचित कामकला विलास पर निर्मित टीका को पूज्यपाद जी** ने अपने घर के पुस्तक भण्डार में भली भांति देखा था। उनके द्वारा विरचित समस्या पूर्तिमय अनेकों पद्य तात्कालिक पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे। ताहिरपुर के एक बंगाली शासक (सामन्त) **शशिशेखर** से पर्याप्त धन पाकर उसके नाम से **गंगा भावावली** नामक काव्य की रचना भी उन्होंने की थी। वे जीवन भर सदा काफी धनार्जन तो करते रहे, परन्तु व्यय भी बहुत करते रहे, दान भी दिल खोलकर देते रहे और अपने बड़े भाई मयूर भट्ट की भी आर्थिक सहायता करते रहे। इस तरह से वे कभी भी धन का संग्रह नहीं कर पाये। लोग समझते थे कि उनके पास बहुत धन होगा, परन्तु अन्त समय पर उनके पास कुछ भी नहीं था। फिर भी वे उस समय भी शान्तचित्त ही बने रहे। वरकल वंशचरितम् में उनके विषय में काफी लिखा हुआ है। फिर पूज्यपादजी ने कुछ एक घटनाएं स्वयं मुझे सुना दी हैं। उनका विचार था कि उनके वे पूज्य पिताजी भी किसी देवलोक से ही पृथ्वी पर आए थे, क्योंकि उनकी कई एक प्रकार की प्रवृत्तियां ही अतिविचित्र थीं। जैसे एक बार रात को दोनों ही पिता पुत्र सोए हुए थे तो आधी रात के समय कोई आदमी शहनाई बजाने लगा। और बजाने लगा गलत तरीके से। शास्त्री जी शहनाई के उन गलत बजते हुए स्वरों को सहन नहीं कर पाए। एकदम बिस्तर को छोड़ा नीचे उतरे। उस शहनाई बजाने वाले को रोक लिया। उसे समुचित ढंग से बजाना सिखा दिया। तब आकर पुनः शान्ति से सो सके। ऐसी घटनाओं की स्मृति के आधार पर श्रीपूज्य पादजी ऐसा समझते थे कि ऐसी ललित कलाओं का संस्कार यह जतलाता है कि वे कभी गन्धर्व लोक में या विद्याधर लोक में रहे हों, क्योंकि वर्तमान जीवन में उन्हें गान्धर्व विद्या के साथ घना सम्बन्ध कभी रहा ही नहीं था।

एक बार रेल यात्रा में किसी स्टेशन पर रेल की प्रतीक्षा में खड़े थे। सामने कोई भिखारी कुछ मांगने लगा तो एकदम अपनी अंगुली में से सोने की अंगूठी उतार दी; रेल के गार्ड के द्वारा उसे तुड़वाया और उस स्वर्ण का एक टुकड़ा उस भिखारी को दे दिया, यद्यपि उनके पास कभी भी पर्याप्त मात्रा में धन एकत्रित नहीं होने पाया था। ऐसी स्थिति में इस प्रकार की उदारता किसी पिछले दिव्य जीवन के संस्कार के प्रभाव को ही जतलाती है।

बहुत से प्रभावशाली महानुभाव उनके मित्र थे। काशी में **पं० मदन मोहन मालवीय** जी उनके एक मित्र थे। इलाहाबाद में जहां उनके ससुराल थे वहीं पर पास ही **श्री मोतीलाल जी** नेहरू का घर था। उनके श्वशुर श्री मोतीलाल जी के मित्र थे। अतः श्री नेहरू जी उन्हें अपने जामाता का जैसा सत्कार करते थे। यद्यपि नेहरू जी का आचार ब्राह्मणोचित ढङ्ग का नहीं था, फिर भी उनके ऊंचे

विचारों और दानशीलता जैसे धार्मिक गुणों की वे प्रशंसा करते थे ।

पूज्यपाद जी घर के पुस्तक भण्डार को वर्ष में एक दो बार अभिनवतया संवारणे में और धूलि आदि को साफ करने में प्राय: अपने पिताजी श्री कृष्ण शास्त्री की सहायता करते रहें। उन्हीं से उन्होंने **सोमानन्द**, **उत्पलदेव**, **अभिनवगुप्त** जैसे आचार्यों और उनके ग्रन्थों के नाम बाल्यकाल से ही सुन रखे थे । **शिवमहिम्न स्तोत्र** और पञ्चस्तवी जैसे स्तोत्र काव्यों को उन्हीं से पढ़ा था । शास्त्री जी श्री विद्या के उपासक तो थे ही, अतः पञ्चस्तवी जैसे आगमिक स्तोत्रों से उन्हें बहुत प्रेम था।

श्री कृष्ण शास्त्री अनेकों व्यावहारिक विषयों में भी काफी निपुण थे । राज महलों में अनेकों प्रकार के षड्यन्त्र प्रायः चलते ही रहते हैं। जब वे इलाहाबाद में भिनगा के युवराज का अध्यापन आदि करते रहे तो साथ ही साथ वैसे षड्यन्त्रों से भी उन्हें बचाते रहे। कई वर्ष ऐसा चलता रहा। फिर जिस समय शास्त्री जी की पत्नी (पूज्यपाद जी की माता) मरणासन्न थीं तो शास्त्री जी को इलाहाबाद से वाराणसी आना पड़ा। पीछे से युवराज को विष देकर मार दिया गया।

श्री गोपाल पन्त एक विद्वान् महाराष्ट्री ब्राह्मण थे । अपने वैदुष्य की महिमा से काशी में धर्माधिकारी के पद पर प्रतिष्ठित हुए। उनकी पुत्री का नाम **गोपिका था** और उसे घोड़ू बाई भी कहते थे । वह महिला पूज्यपाद आचार्य महोदय की **माता मही** थी। मालव देश के श्री दामोदर पण्डित की कन्या **चिमा** (श्वशुर घर में **रमाबाई**) उनकी पितामही थी। **शङ्कर भट्ट नाम** के एक महाराष्ट्री विद्वान् दिल्ली के सम्राट शाह आलम के शासन में एक विशिष्ट अधिकारी थे। उन्हें काह्लपुर में दिल्ली नरेश से काफी भू सम्पत्ति मिली थी। काह्लपुर वाली वह सम्पत्ति जब उनसे सन् १८५७ के स्वतन्त्रता संग्राम में छिन गई तो शङ्करभट्ट के वे वंशज इलाहाबाद आकर वहीं बस गए। उसी वंश में श्री **वेणीराम वेरुलकर** नाम के एक पण्डित उत्पन्न हुए। वे पूज्यपाद आचार्य जी के मातामह थे। जब वे वाराणसी में रह रहे थे तो वहां दशश्वमेध घाट के पास उनकी पत्नी गोपिका ने एक अतीव सुन्दर कन्या को जन्म दिया। उसके सौन्दर्य पर मुग्ध हुए गुरुजनों ने उसका नाम **पुत्तली** रखा। उसका विवाह पूज्यपाद जी के पूज्य पिता श्री कृष्ण शास्त्री के साथ सं० १९४६ (१८९२ ई०) में हुआ और उसी के गर्भ से **संवत् १९६० वि०** (१९०३ ई०) में पूज्यपाद श्री आचार्य जी का जन्म मातामह के घर में प्रयाग में हुआ। श्वशुर घर में उनकी उस माता का नाम **राधा** रखा गया। पूज्यपाद जी जब तीन वर्ष की आयु के थे तो उनकी माता ने वाराणसी में एक और पुत्र को जन्म दिया जो तुरन्तु ही मर गया। साथ माता को भी कोई रोग लग गया जिससे उसकी स्थिति मरणासन्न हो गई। उस समय श्री कृष्ण शास्त्री

इलाहाबाद से आ गए। कुछ ही दिनों में उनकी वह पत्नी शरीर छोड़कर शिव-धाम को सिधार गई। तब से श्री पूज्यपाद जी को श्री कृष्ण शास्त्री प्रायः सदैव अपने साथ ही रखते रहे। अतः शैशव में वे कभी बम्बई में रहते रहे और कभी श्री **देवीकी नन्दन** जी की भ्रमण यात्राओं में घूमते रहे।

प्रथम पत्नी की असामयिक मृत्यु के अनन्तर श्री कृष्ण शास्त्री का दूसरा विवाह **श्री राम जोशी** की कन्या **सखू** से हुआ। श्वशुर घर में उनका नाम **रुक्मिणी** रखा गया। उसके गर्भ से एक पुत्र का जन्म हुआ। उसका नाम श्री **रामचन्द्र** वरकले रख गया। मातामह के घर में उसे श्री **सोमनाथ** कहा जाता था। वह पूज्यपाद जी का एक मात्र सौतेला भाई था। पूज्यपाद जी तब इसी लोक में थे जब वह भाई भी परलोक को सिधार गया। उसका एक पुत्र श्री बाल कृष्ण वरकले है जिसके विषय में यह सुना जाता है कि वह वाराणसी वाली भवन सम्पत्ति को बेच कर कहीं और रहने लगा है।

पूज्यपाद जी के ताया श्री मोरेश्वर सामवेद के गायन में अत्यन्त प्रवीण थे। श्रौत स्मार्त्त कर्मकाण्ड में निपुण थे। उनके अनेकों शिष्य वाराणसी में विद्यमान् थे। इन्होंने पूज्यपाद श्री आचार्य जी को कई एक शास्त्र अतीव स्नेह पूर्वक पढ़ा दिए। आगे उनके दो पुत्र थे। उनमें से एक पुत्र श्री जगन्नाथ वरकले पूज्यपाद जी के लगभग समान आयु का था। उसका और पूज्यपाद जी का उपनयन संस्कार एक साथ हुआ था। दोनों को बाला त्रिपुरा के मन्त्र की दीक्षा भी एक ही समय प्राप्त हुई थी। श्री जगन्नाथ जी भी एक अच्छे विद्वान् बने। वे तो अब इस संसार में नहीं हैं। उनका वंश वाराणसी में चल रहा है। उनकी एक कन्या भी वाराणसी में ही ब्याही थी। छोटा भाई श्री कृष्ण भी वाराणसी में ही रहता रहा।

अध्याय ३

शैशव और बाल्यकाल

संवत् १९६० (१९०३ ई० सन्), आषाढ़ शुक्लपक्ष नवमी को शुक्रवार को, चित्रा नक्षत्र के चतुर्थ चरण में धनलंग्न में ३३ घ. ३ पल पर जब दशमी लग चुकी थी तो पूज्यपाद श्री आचार्य जी का जन्म प्रयाग में अपने नाना जी के घर में हुआ था। उस समय मिथुन में सूर्य और बुध, सिंह में शुक्र, कन्या में भौम और राहु, तुला में चन्द्रमा, मकर में शनि और मीन में गुरु और केतु स्थित थे। उनके पश्चात् पूज्यपाद जी की माता ने एक कन्या और एक पुत्र को जन्म दिया। दोनों ही कुछ दिनों के पश्चात् मृत्यु को प्राप्त हो गए। दूसरे पुत्र की मृत्यु के बाद ही पूज्यपाद जी की माता जी का भी देहावसान हो गया। फिर उनकी विमाता ने एक पुत्र और एक कन्या को जन्म दिया। कन्या तो मर ही गई। पुत्र **श्री रामचन्द्र वरकले** सं० १९७० में उत्पन्न हो गया और काशी में पौरोहित्य का काम करता रहा। उसका वंश अभी चल रहा है। १९७२ वि० संवत् में पूज्यपाद जी के पिता शिवलोक सिधार गए और घर में उनकी विमाता और छोटा भाई रामचन्द्र रह गए।

पूज्यपाद जी कौमार अवस्था में अपने मामा के घर में प्रयाग में ही रहते रहे। अतः उनकी अक्षर बोध आदि प्रारम्भिक शिक्षा वहीं हुई। तदनुसार उन्होंने वहां वर्णमाला, अङ्क लेखन आदि सीखा। वहां **श्री बिसू भाऊ** और **श्री रघुनाथ मोटे** उनके अध्यापक रहे। उन दोनों अध्यापकों के प्रति उन्होंने श्रद्धाञ्जलियां संस्कृत श्लोकों में लिख रखी हैं। उनकी मातामही के चचेरे भाई **श्री काशीनाथ पण्डित** ने उन्हें वहां पाणिनीय शिक्षा स्मरण करवा दी। इस तरह उनकी प्राथमिक शिक्षा का प्रबन्ध प्रयाग में ही हुआ।

पूज्यपाद श्री आचार्य जी को शैशव काल में अपने विद्याधर जीवन के और राजपदवी वाले जीवन के गहरे संस्कारों का प्रभाव उनके तात्कालिक बाह्य व्यवहार पर काफी पड़ता रहा। परन्तु इसबात के रहस्य को तब वे जानते नहीं थे। उन्होंने 'श्री स्वाध्याय' में छपे लेखों में स्वयं लिखा है कि बाल्यकाल में उन्हें अपना घर अपना नहीं लगता था, अपने निकट सम्बन्धियों के साथ भी

अपनेपन का अनुभव उन्हें नहीं होता था। निष्कारण उदासी छाई रहती थी। प्रायः उदास बने रहते थे और एकान्त में लम्बी सांसें भरते रहते थे। इन बातों को उनके घर वाले भी जान गए थे और उस कारण से चिन्तित रहा करते थे। शास्त्रों को भली भांति समझते तो थे, परन्तु परीक्षा के लिए तैयारी करने के नीरस परिश्रम में उनका चित्त लगता ही नहीं था। उन्होंने 'श्री स्वाध्याय' में अपने कौमार जीवन की दो विशेष घटनाओं को विस्तार पूर्वक लिख कर प्रकाशित किया है। उनका पुनर्मुद्रण जयपुर वाले भक्तों ने "परम पूज्य श्री बाबा महाराज" नामक पुस्तिका में भी किया है।

उनमें से पहली घटना **क्रुमुवाले** उस महापुरुष के दर्शन की है जिसे उन्होंने लगभग पांच वर्ष की अवस्था में उस प्रकार से स्वप्न में देखा था और जिसके साथ स्वप्न में ही उस प्रकार का वार्तालाप आदि किया था जो कि मानो जाग्रत अवस्था की ही घटनाएं थीं। उस क्रुमुनदी वाले **सिद्धयोगी** का रहस्य आगे कभी खुला नहीं। सम्भवतः वह रहस्य उस नदी के तटों पर पर्याप्त भ्रमण करने पर खुल गया होता, परन्तु उस बात का अवसर उन्हें कोई मिला नहीं। यदि १९४७ ई० में भारत का विभाजन नहीं हुआ होता तो सम्भवतः वैसे भ्रमण का अवसर भी आ ही गया होता। अस्तु ! वह बात रहस्यमय ही रह गई।

दूसरी घटना तब की है जब वे दस वर्ष की आयु के थे और अपने पिताजी से उन्होंने **पञ्चस्तवी** के उस पद्य का अर्थ सुना था जिसमें **विद्याधर** लोकोचित जीवन का संक्षिप्त वर्णन किया गया है और जिसके अर्थ को सुनते ही उन्हें अकस्मात् हृदय विदारक पीड़ा हुई थी और उससे अचेत हो गए थे तथा बार-बार अचेत होते रहने की बीमारी भी उन्हें लग गई थी। उनके घर के लोग उनके इस रोग का कारण तथा उनके निरन्तर उदास रहने का कारण शैशव में ही मातृस्नेह का खो जाना ही समझते थे। उन्होंने स्वयं उन लेखों में लिखा है कि वे निष्कारण उदास रहते थे और कभी-कभी एकान्त में रोया भी करते थे और आंसू भी बहाया करते थे। घरवाले इन बातों का कारण भी माता की असामयिक मृत्यु को ही समझा करते थे। परन्तु बात कुछ और ही थी। उस का उन्हें भी तब तक ज्ञान नहीं था जब तक उनका सम्पर्क सन् १९३५ ई० के लगभग कश्मीर मण्डल में बारामुला नामक **पत्तन** में **चखमा बाबा** से हुआ। उस महापुरुष के द्वारा सिखाई गई योगविद्या के अभ्यास से जब उन्हें पिछले पांचवें जन्म का अर्थात् अपने विद्याधर जीवन का स्मरण आ गया तो शैशव की उन बातों का रहस्य स्वयमेव खुल गया।

कौमार जीवन में पूज्यपाद जी का शरीर प्रायः अस्वस्थ रहा करता था, कोई न कोई रोग लगा ही रहता था। विद्या का अभ्यास घर में ही चलता

था और पाठशाला में भी। अनेकों ही स्तोत्र कौमार अवस्था में ही कण्ठस्थ हो गए थे। श्लोकों को छन्द और यति के अनुसार पढ़ने का ढङ्ग उन्हें अनायास ही आ गया था। उनके प्रिय स्तोत्रों में पुष्पदन्त का **शिवमहिम्नस्तोत्र** और धर्माचार्य की पञ्चस्तवी का विशेष प्राधान्य था। उन्होंने वाराणसी में श्री **शम्भुभट्ट** से पाणिनीय शिक्षा अष्टाध्यायी तथा ज्योतिष और **पिङ्गलमुनि** का छन्दःशास्त्र पढ़ा था। श्री **बटुकनाथ शर्मा** से उन्होंने साहित्य दर्पण के कुछ परिच्छेद पढ़े। अपने ताया श्री **मोरेश्वर (मयूरेश्वर-मयूर भट्ट)** से उन्होंने शब्द रुपावलियों और धातुरुपावलियों को तथा अमरकोष और अनेकों ही देवी देवताओं के स्तोत्रों को पढ़ा और कण्ठ कर लिया। प्रतिवर्ष घर के पुस्तकालय की जब जब सफाई होती थी तो प्रत्येक पुस्तक को खोलकर, धूल झाड़ कर, कागज़ी कीड़ों को हटाकर उन्हें फिर से बांध कर रखना होता था। इस काम में कौमार अवस्था से ही पूज्यपाद जी अपने पूज्यपिता **श्री कृष्ण शास्त्री** की सहायता किया करते थे। अनेकों ही ग्रन्थों में **आ० अभिनवगुप्त** के नाम को देख देख कर उस वन्दनीय नाम के प्रति उनके हृदय में बाल्यकाल से ही श्रद्धा ने अपना अटल स्थान बना लिया था।

सन् १९१२ ई० में वाराणसी में पौने नौ वर्ष की आयु में पूज्यपाद जी का उपनयन संस्कार अपने पूज्य पिताजी के हाथ से हुआ। इस उत्सव पर ऋत्विक् के पद पर उस समय के काशी में विद्यमान तैत्तिरीय शाखा के विद्वानों में सर्व श्रेष्ठ और वैदिक विधानों के मर्मज्ञ पण्डित **श्रीराम कौशिक** लेले अधिष्ठित रहे। बड़े-बड़े उपासक विद्वान उस उत्सव पर उपस्थित रहे। उदाहरण के तौर पर उस समय आगम शास्त्रों के रहस्यों को जानने वाले और श्री विद्या के उपासकों के प्रसिद्ध गुरु गौतम गोत्रीय **श्रीगङ्गाधर जी शास्त्री** तैलङ्ग सी. आई. ई. काशी में विद्यमान थे। उन्होंने ही कुछ वर्ष पूर्व श्रीकृष्ण शास्त्री वरकले को आगमिक श्री मण्डल की परिपूर्णदीक्षा और अभिषेक प्राप्त करने का सौभाग्य प्रदान किया था। वे भी पूज्यपाद जी के उपनयन उत्सव पर उपस्थित थे। उस अवसर पर उन्ही की प्रेरणा से श्रीकृष्ण शास्त्री ने पूज्यपाद जी को स्वकुलक्रमागत त्रैपुरी विद्या की मन्त्रदीक्षा भी सावित्री दीक्षा के साथ ही प्रदान की। आगे भगवती त्रिपुरा पूज्यपाद जी को सदैव अपनी छत्रछाया में स्थान देती रहीं। श्री गङ्गधरशास्त्री तैलङ्ग के छोटे भाई **श्री राम शास्त्री तैलङ्ग** भी उत्सव में उपस्थित रहे। वे श्री कृष्ण शास्त्री के विद्यागुरु रह चुके थे। फिर श्रीकृष्ण शास्त्री जी के बड़े ताया **भट्टगङ्गाधर वरकले** के सहपाठी ब्रह्मचारी श्री दीक्षित मी उत्सव पर उपस्थित रहे। उपनयन संस्कार के अनन्तर श्री पूज्यपाद जी निरन्तर नियमपूर्वक गायत्री का भी जप करते रहे और त्रिपुरा विद्या का भी। आगे भगवती त्रिपुरा की अराधना के ही

फलस्वरूप उन्हें बाल्यकाल में ही भगवान् दुर्वासा के साक्षात् दर्शन हुए और उनसे उन्हें ऐसी उत्कृष्ट शाम्भवी योगविद्या प्राप्त हुई जिसकी महिमा से एक ओर से उनकी कुछ ऐहिक समस्याएं सुलझ गईं और दूसरी ओर से परम अद्वैत शैव दर्शन विद्या के अनेकों प्रमुख सिद्धान्तों का साक्षात् अनुभव हो गया। उत्कृष्ट ढंग की स्वात्मस्वरूप की प्रत्यभिज्ञा कराने वाली वह सुविचित्र अनुभूति, जिसका वर्णन पञ्चम अध्याय में किया जाएगा, भी उसी का एक विशिष्ट फल है। वह अनुभूति उन्हें संवत् १९८६ में कश्मीर मण्डल में बारामूला नामक पत्तन में भगवती शैलपुत्री के स्थान में हुई। कुल क्रमागत त्रिपुरा विद्या के अभ्यास का ही यह फल है कि उन्हें **भगवान् दुर्वासा से शाम्भवी योगविद्या** की दीक्षा मिली। उन दोनों विद्याओं के अभ्यास से ही उन्हें सभी प्रकार के अभीष्ट जीवनफल अनायास ही प्राप्त होते रहे।

उपनयन संस्कार के अनन्तर दिन में तीन बार सन्ध्या वन्दन करने का नियम था। उसके साथ गायत्री जप और त्रिपुरा मन्त्र का जप भी किया करते थे। स्तोत्र पाठ प्रातः और सायं दोनों समय करने का घर में नियम था। स्तोत्रों में से विशेषकर के शिवमहिम्नस्तोत्र और श्री पञ्चस्तवी के प्रति उन्हें बहुत अधिक रुचि थी। बाल्यकाल से ही श्लोकों को शुद्ध रीति से पढ़ने का ढंग उन्हें आ गया था। त्रिपुरा विद्या का विशेष अभ्यास भी उन्होंने किया होता यदि उनके पिताजी असमय में शरीर को छोड़ न गए होते। यदि वे काफी देर जीवित रहे होते तो त्रिपुरा मन्त्र का पूरा पुरश्चरण किया होता। परन्तु वैसा नहीं हो सका। केवल जप ही किया जा सका और उससे भी जगन्माता प्रसन्न होती रहीं और जीवन में सभी कष्टों का सामना करने के साधन जुटाती रहीं और तरह-तरह के देव दर्शन और आध्यात्मिक अनुभूतियां भी कराती रहीं। इस तरह जगदम्बा त्रिपुरा की कृपा दृष्टि उन पर सदैव बनी ही रही।

बाल्योचित खेलकूद में भी पूज्यपाद जी सदा काफी दिलचस्पी लेते रहे, परन्तु बाल्यकाल में शरीर सदैव दुर्बल ही रहा करता था। फिर हृदय की उदास रहने की प्रवृति भी चिरकाल तक बनी ही रही। पढ़ने में तथा समझने में काफी दिलचस्पी रहती रही, रुचि भी सदैव बनी ही रही। परन्तु परीक्षा की दृष्टि से ग्रन्थों के प्रघट्टकों को घोटने में कभी चित्त नहीं लगता था। अनेकों ही सहपाठी उनसे स्नेह भी करते थे और हृदय में उनके प्रति आदर का भाव भी बनाए रखते थे। परन्तु कुछ एक सहपाठी ईर्ष्या भी करते रहे। वे परिश्रम बहुत थोड़ा करते थे। अन्य कार्यों में काफी समय व्यय करते थे परन्तु फिर भी गुरुओं के मुख से प्रशंसा पाया करते थे। सभी गुरु उन पर काफी सन्तुष्ट रहा करते थे। इस बात से कई एक सहपाठी कुढ़ते भी थे।

श्री कृष्ण शास्त्री जी जब बम्बई में **श्री गुलाब चन्द्र जैन** को पढ़ाया करते थे तो पूज्यपाद को अपने साथ ही रखते थे। इस प्रकार से शैशव में ही दूर-दूर की यात्राएं पूज्यपाद जी ने कीं। जब पहली बार रेल द्वारा बम्बई जा रहे थे तो प्रथम श्रेणी के डिब्बे में यात्रा हुई। रात पड़ने पर रेल के भोजनालय से खाना मंगाया गया। उस समय रेलों और होटलों में भी खाना पकाते समय शुद्धि-अशुद्धि का काफी विचार रखा जाता था। अतः रेल के भोजनालय का खाना भी पर्याप्त मात्रा में शुद्ध ही हुआ करता था। अतः ऐसे सनातनी पण्डित जिनको प्रायः दूर-दूर यात्राएं बार-बार करनी पड़ती थीं, समय आने पर आवश्यकता के अनुसार उन भोजनालयों से भी भोजन मंगवाकर खाया करते थे। **पं० मदन मोहन जी मालवीय** भी यात्राओं में वही भोजन खाया करते थे। तो श्रीकृष्ण शास्त्री भी कभी-कभी वैसा ही भोजन आवश्यकता के अनुसार खाया करते थे। तो जब खाना सामने आ गया तो बालक पूज्यपाद जी खाने से काफी हिचकिचाए, क्योंकि उससे पहले कभी उस प्रकार से खाना खाया ही नहीं था। शास्त्री जी खाने लगे और पूज्यपाद जी को भी खाने के प्रति आग्रह किया। वे तो काफी देर तक खाने को प्रस्तुत ही नहीं हुए। परन्तु अन्ततोगत्वा बहुत आग्रह के किए जाने पर अनिच्छा से ही खा गए। खा पी चुकने पर जब दोनों पिता-पुत्र आराम से बैठ गए तो पिताजी ने कहा—"देखो बेटा यह खाना खाने की बात घर में कभी भी नहीं बताना।" वस्तुतः पूरा आचार अपने घर में ही निभता है, पराये घर में नहीं, अन्य देश में और भी नहीं और यात्रा में जरा भर भी नहीं। इसीलिए इस विषय में एक परम्परागत श्लोक प्रसिद्ध है—

स्वगृहे सर्वमाचारं तदर्धं च परगृहे।
तदर्धं परराष्ट्रे तु पथि शूद्रवदाचरेत्॥

बाल्यकाल में उस समय के अन्य अन्य बालकों की तरह वे भी कुछ समय के लिए आर्य समाज के प्रचार के प्रभाव में आ गए। एक बार उन्होंने कहीं मंच पर इस प्रकार का भाषण भी दिया। उसके अनन्तर उन्हें एक बड़े ही माननीय पण्डित प्रवर जब सामने मिले तो उन्होंने उनको सादर अभिवादन किया, परन्तु पण्डित जी ने उनके प्रणाम को स्वीकार न करते हुए मुख बाईं ओर मोड़ लिया। पूज्यपाद जी ने कई बार दाईं और बाईं ओर से प्रणाम किया परन्तु पण्डित महोदय विपरीत दिशा की ओर मुख मोड़ते रहे। अन्ततोगत्वा उन्होंने जब पूछा कि पण्डित जी ऐसा रूक्ष व्यवहार क्यों कर रहे हैं तो पण्डित जी ने उत्तर दिया कि वे क्यों धर्म के विरुद्ध भाषण मंचों पर चढ़कर देते हैं। पूज्यपाद जी बोले—"बीसों लोग ऐसे भाषण देते रहते हैं। मेरे वैसा करने या न करने से क्या होगा।" पण्डित जी बोले "देखो आप एक प्रतिष्ठित

विद्वानों के घर के बालक हो, आप के कहने का प्रभाव लोगों पर बहुत होगा। फिर आपको दूसरों से सुनी हुई बातों के आधार पर ऐसे भाषण नहीं देने चाहिए। स्वयं शास्त्रों को पढ़ो, विचार-विमर्श करके उनके तात्पर्य को समझ लो। तब तदनुसार ही लोगों को अपने विचार सुना दो।" पूज्यपाद जी को उनके ऐसे उपदेश की महत्ता का अनुभव हो गया और अपने अविचारित कर्म पर पश्चात्ताप हुआ। तदनन्तर उन्होंने जब स्वयं प्रकृत शास्त्रों का विचार पूर्वक अध्ययन किया तो उन्हें यह बात निश्चित तौर से बुद्धि में बैठ गई कि आर्यसमाजियों का सारा प्रचार अशास्त्रीय है और वैदिक धर्म की प्राचीन परम्पराओं से बहुत अधिक विरुद्ध है। परन्तु ऐसा समझने पर भी उनकी दृष्टि सदा उदार रही, कभी संकुचित ढंग से उन्होंने सोचा नहीं। फिर अपनी विचारधारा को शास्त्रों के निश्चित तात्पर्यों के आधार पर ही ठहराया, कभी भी भाव के आवेश में आकर शास्त्र विरुद्ध चिन्तन नहीं किया। उन्हें हरिजनों से सदा सहानुभूति रही। परन्तु वे कहते थे कि आर्थिक उत्थान और समुचित शिक्षा के द्वारा चाण्डालों को चाण्डालपन से ऊपर उठाया जाना चाहिए, उनके आचार-विचार आदि को समुचित शिक्षा के द्वारा शुद्ध किया जाना चाहिए, तभी उनके उद्धार से धर्म को कोई क्षति नहीं होगी। इस बात के विपरीत ब्राह्मणों को ही चाण्डालों के स्तर पर उतार देने के प्रचार से धर्म का तथा भारतीय संस्कृति का सर्वनाश होगा। वे कहते थे कि बीमार को स्वस्थ बनाना अच्छा है कि स्वस्थ को बीमार बनाना। उनके विचार में आर्य समाज के और कांग्रेस के नेतागण स्वस्थ लोगों के भीतर बीमारियों का प्रचार करने में लगे हुए हैं। जिससे धर्म का, देश का और संस्कृति का काफी विनाश होने वाला है।

एक बार आर्य समाजियों ने किन्हीं पर्वतीय प्रदेशों में नाइयों को भड़का कर द्विज जातियों के साथ असहयोग करने पर उतारु कर दिया था। तब उधर के नाई कहने लगे थे कि हमारे साथ रोटी-बेटी का सम्बन्ध बनाओ तभी हम आप लोगो के बाल काटेंगे। इस संकट में फंसे हुए उन द्विज वर्णों का एक वर्ग वाराणसी आया था और पूछ रहा था कि हम क्या करें। पूज्यपाद जी से उनकी जब भेंट हुई तो उन्होंने उन्हें कहा कि आप लोग प्राचीन ऋषियों की तरह बालों को, दाढ़ी को, मूछों आदि को रख लो तो आपको नाइयों की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी। यह सर्वप्रथम उपाय है। दूसरा उपाय यह है कि आप स्वयं बाल बनाने की क्रिया को अभ्यास के द्वारा सीख लो और एक-दूसरे के बाल बनाया करो। तीसरा उपाय यह है कि अन्य प्रदेशों से नाइयों को बुलाकर अपने अपने ग्रामों में बसाओ। यदि इन तीनों उपायों में से किसी भी उपाय को अपनाने के लिए तैयार नहीं हो तो जो चाहो सो कर लो।

होते।" इस बात पर सभी विस्मय निमग्न जब हुए तो एक आगन्तुक महानु भाव ने कहा, कि "दो ब्राह्मण बालक यहां आए थे। दस पन्द्रह मिनट खड़े-खड़े देखते रहे और कुछ न कह कर ही चले गए" इस बात को सुनते ही मुख्य यजमान को निमन्त्रण की बात याद आ गई। उन्हें बड़ा ही पश्चात्ताप हुआ कि बालकों को न पहचान लेने के कारण उनसे ऐसी भूल क्यों हो गई। तभी सभी ने मुझे आप को पुनः बुलाने के लिए यहां भेजा। सभी लोग आप दोनों की प्रतीक्षा कर रहे हैं। कृपया पधारिए और हमारे धार्मिक प्रयत्न को सफल बना दीजिए।"

इस बात को सुन लेने पर पूज्यपाद जी ने अपने मित्र को मनाया। यह कहा कि धर्म के कार्य में बाधा को दूर कर देने में ही कल्याण है। फिर बेचारों ने इतना व्यय किया है उसे सफल बनाने में हम सहयोग दें तो उसी में हमारा भी भला है। आखिर वे मान गए और दोनों बालक उस महानुभाव के साथ पुनः यज्ञ वाट की ओर चल पड़े। ज्यों ही द्वार देश से भीतर प्रविष्ट हो गए तो देखा कि सभी की आंखें द्वार देश की ही ओर लगी हुई हैं। बड़े ही सम्मान से दोनों बालकों को प्रणाम पूर्वक आदर से आसन पर बिठाया गया। अग्नि मन्थन के सारे विधान को पुनः कर लिया गया। पूज्यपाद जी के हाथ में उत्तरारणि दे दी गई। वेदपाठ और सामगान होने लगा। उन्होंने उस अरणि को अधरारणि पर जमा दिया और केवल तीन बार रगड़ दिया। बस तीसरी रगड़ से अरणि में से अग्नि की ज्वाला निकल पड़ी और उसने पास रखे हुए इंधन को पकड़ लिया और अग्निज्वालाएं धधकने लगीं। उपस्थित सज्जन जय अग्निदेव के नारे लगाते हुए अग्निदेव पर फूलों की वर्षा करने लगे। याग विधिपूर्वक चल पड़ा। इस घटना से सभी को इस बात का निश्चय हो गया कि यज्ञ की अग्नि केवल एक भौतिक पदार्थ ही नहीं है, अपितु साक्षात् अग्नि देव है। योग्य ब्राह्मण बालकों की अवहेलना को देखकर अग्निदेव रुष्ट होकर छिप गए और उनका सम्मान होने पर और उनसे ही बुलाए जाने पर बिना काल भेद के क्षणों में ही देदीप्यमान रूप में दर्शन दे गए।

उस युग में सारे भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति का आन्दोलन खूब चला था। भारत के बहुसंख्यक नवयुवक उसमें भाग लिया करते थे। पूज्यपाद जी को भी उस आन्दोलन में विशेष रुचि थी। यद्यपि उन्होंने यह भी भली-भांति जान लिया था कि आन्दोलन को चलाने वाले कांग्रेस के स्वयं सेवकों में अधिकांश लोग स्वार्थी और बेईमान थे। कांग्रेस के पुराने नेताओं में से उनकी श्रद्धा सबसे अधिक बालगंगाधर तिलक पर थी। वे कहा करते थे कि श्री तिलक जब कभी भी जो भी निश्चय लेते थे वह बुद्धिमत्ता पूर्वक और शास्त्र मर्यादा

पूज्यपाद जी ने अपने बाल्यकाल की एक अद्भुत घटना भी सुना दी है। तदनुसार वाराणसी के एक माननीय तथा धनाढ्य, तथा सुशिक्षित ब्राह्मण ने विधिपूर्वक वैदिक चातुर्मास्य यज्ञ के अनुष्ठान का प्रबन्ध किया। सारी सामग्री जुटाई गई। अच्छे-अच्छे वेदवित् ब्राह्मणों को बुलाया गया, काशी के सभी पण्डितों और अन्य महानुभावों को अनुष्ठान के प्रारम्भिक दिवस पर निमन्त्रित किया गया और बड़ी धूमधाम से यज्ञ का प्रबन्ध हुआ। पूज्यपाद जी और एक मित्र को भी निमन्त्रित किया गया। दोनों ही अप्रतिग्राही ब्राह्मण थे अतः निमन्त्रणों पर जाते नहीं थे, परन्तु विद्या गुरु ने आदेश दिया कि "इस निमंत्रण को स्वीकार करो और आंखों देख लो कि चातुर्मास्य याग का अनुष्ठान कैसे किया जाता है। केवल पुस्तकें पढ़ने से पूरा ज्ञान नहीं होता है। ज्ञान के प्रयोग पक्ष को जाकर प्राप्त कर लो।" ऐसा आदेश पाने पर दोनों बालक वहां गए। उधर बड़ी धूमधाम थी। अनेकों ही प्रतिष्ठित और सम्मान्य अतिथियों की बड़ी भीड़ थी। सभी प्रबन्धक उनके सम्मान की चिन्ता में व्यस्त थे। दोनों बालक यज्ञ वाट के समीप कुछ देर खड़े-खड़े सारा दृश्य देखते रहे। किसी ने उन्हें भीतर नहीं बुलाया। किसी ने बैठने का आसन नहीं दिया। वस्तुतः उनकी ओर किसी का ध्यान ही नहीं गया, क्योंकि प्रबन्धकों में से किसी को उनसे परिचय नहीं था। पूज्यपाद जी के मित्र कुछ खीज गए और कहा, "ये लोग अपने ऐश्वर्य के गर्व में चूर हैं, यहां हमने क्या करना है। जहां कोई बात भी नहीं कर रहा है। चलो विद्यालय को ही लौट चलें।" पूज्यपाद जी भी प्रक्षुब्ध से थे, अतः मित्र की बात मान गए। दोनों वहां से लौट आए। किसी ने भी ठहरने को नहीं कहा। आकर अपने दैनिक अध्ययन कार्य में लग गए। लगभग दो ढाई घण्टे बाद एक महानुभाव उन्हें फिर बुलाने के लिए आया। उन्होंने जाना ही नहीं चाहा। जब उसने बहुत अधिक विनय पूर्वक विशेष आग्रह किया तो पूज्यपाद जी बोले, 'आप क्यों इतना आग्रह कर रहे हैं। हमारे जाए बिना क्या याग नहीं चल रहा है।' इस पर वह महानुभाव विनम्र होकर कहने लगा "याग का आरम्भ हो गया। ऋत्विक अपना-अपना कार्य निभाने लगे। परन्तु ज्यों ही अग्निमन्थन का अवसर आया तो अग्निदेव सर्वथा अदृश्य हो गए। अनेकों ऋत्विक और अन्य बलशाली महानुभाव अरणियों को रगड़-रगड़ कर थक कर चूर हो गए। घण्टों मन्थन होता रहा, सामगान होता रहा, परन्तु अग्निदेव जरा भर भी प्रकट नहीं हुए। ऐसी घटना यागों में आज तक किसी ने कभी नहीं देखी। यजमान निराश और खिन्न हो गए। उनके सभी हितैषी व्याकुल हो गए। अतिथिगण बैठे-बैठे तंग आ गए। अन्ततोगत्वा एक वृद्ध ऋत्विक जी ने डंके की चोट लगाते हुए कहा कि अवश्य ही कोई महान् अपराध हुआ है, अन्यथा अग्निदेव इतने रुष्ट नहीं

होते ।" इस बात पर सभी विस्मय निमग्न जब हुए तो एक आगन्तुक महानुभाव ने कहा, कि "दो ब्राह्मण बालक यहां आए थे । दस पन्द्रह मिनट खड़े-खड़े देखते रहे और कुछ न कह कर ही चले गए" इस बात को सुनते ही मुख्य यजमान को निमन्त्रण की बात याद आ गई । उन्हें बड़ा ही पश्चात्ताप हुआ कि बालकों को न पहचान लेने के कारण उनसे ऐसी भूल क्यों हो गई । तभी सभी ने मुझे आप को पुनः बुलाने के लिए यहां भेजा । सभी लोग आप दोनों की प्रतीक्षा कर रहे हैं । कृपया पधारिए और हमारे धार्मिक प्रयत्न को सफल बना दीजिए ।"

इस बात को सुन लेने पर पूज्यपाद जी ने अपने मित्र को मनाया । यह कहा कि धर्म के कार्य में बाधा को दूर कर देने में ही कल्याण है । फिर बेचारों ने इतना व्यय किया है उसे सफल बनाने में हम सहयोग दें तो उसी में हमारा भी भला है । आखिर वे मान गए और दोनों बालक उस महानुभाव के साथ पुनः यज्ञ वाट की ओर चल पड़े । ज्यों ही द्वार देश से भीतर प्रविष्ट हो गए तो देखा कि सभी की आंखें द्वार देश की ही ओर लगी हुई हैं । बड़े ही सम्मान से दोनों बालकों को प्रणाम पूर्वक आदर से आसन पर बिठाया गया । अग्नि मन्थन के सारे विधान को पुनः कर लिया गया । पूज्यपाद जी के हाथ में उत्तरारणि दे दी गई । वेदपाठ और सामगान होने लगा । उन्होंने उस अरणि को अधरारणि पर जमा दिया और केवल तीन बार रगड़ दिया । बस तीसरी रगड़ से अरणि में से अग्नि की ज्वाला निकल पड़ी और उसने पास रखे हुए ईंधन को पकड़ लिया और अग्निज्वालाएं धधकने लगीं । उपस्थित सज्जन जय अग्निदेव के नारे लगाते हुए अग्निदेव पर फूलों की वर्षा करने लगे । याग विधिपूर्वक चल पड़ा । इस घटना से सभी को इस बात का निश्चय हो गया कि यज्ञ की अग्नि केवल एक भौतिक पदार्थ ही नहीं है, अपितु साक्षात् अग्नि देव है । योग्य ब्राह्मण बालकों की अवहेलना को देखकर अग्निदेव रुष्ट होकर छिप गए और उनका सम्मान होने पर और उनसे ही बुलाए जाने पर बिना काल भेद के क्षणों में ही देदीप्यमान रूप में दर्शन दे गए ।

उस युग में सारे भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति का आन्दोलन खूब चला था । भारत के बहुसंख्यक नवयुवक उसमें भाग लिया करते थे । पूज्यपाद जी को भी उस आन्दोलन में विशेष रुचि थी । यद्यपि उन्होंने यह भी भली-भांति जान लिया था कि आन्दोलन को चलाने वाले कांग्रेस के स्वयं सेवकों में अधिकांश लोग स्वार्थी और बेईमान थे । कांग्रेस के पुराने नेताओं में से उनकी श्रद्धा सबसे अधिक बालगंगाधर तिलक पर थी । वे कहा करते थे कि श्री तिलक जब कभी भी जो भी निश्चय लेते थे वह बुद्धिमत्ता पूर्वक और शास्त्र मर्यादा

खूब आन्दोलन करें। मैं उनका सहायक हूं। मेरे अनुग्रह से उनके प्रयत्न शीघ्र ही सफल हो जाएंगे।" उस विज्ञापन पत्र से मिस ऐसीबेसेंट के विज्ञापन का प्रभाव सर्वथा नष्ट हो गया। बहुत सारे कांग्रेसी देशसेवकों से उनका घना सम्पर्क रहा। **सरदार भगत सिंह** के प्रिय मित्र और सच्चे साथी **श्री राजगुरु** बालकपन में पूज्यपाद जी के स्नेही मित्र थे।

एक बार कांग्रेस का कोई बड़ा कार्यक्रम था। लम्बा जलूस निकालना था। पूज्यपाद जी भी स्वयंसेवक बालकों के बीच एक स्वयं-सेवक थे। एक वृद्धा महिला ने स्वयंसेवकों की उस छोटी सी टुकड़ी को दस रुपये चन्दा दे दिया। उन रुपयों को उनके मुख्य स्वयंसेवक ने अपनी जेब में रख लिया; कांग्रेस की पूंजी में या खाते में जमा नहीं किया, न ही ऊपरी अधिकारियों को अर्पण किया। पूज्यपाद जी ने तीन स्तर के अधिकारियों के पास शिकायत कर दी, परन्तु किसी ने कोई भी ध्यान नहीं दिया। तबसे पूज्यपाद जी ने कांग्रेस की सदस्यता छोड़ दी। कांग्रेस के मुख्य ध्येय के प्रति अर्थात् देश की स्वतन्त्रता के प्रति वे दिलचस्पी तो जीवन भर रखते रहे परन्तु कांग्रेस के सदाचार में उनका कोई विश्वास नहीं रहा। स्वातन्त्र्य के पश्चात् श्री स्वाध्याय पत्रिका में बहुत बार श्वेत वस्त्रों के नीचे छिपाए हुए काले शरीरों और चित्तों वाले, तथा पाश्चात्य गुरुओं से शिक्षा-दीक्षा प्राप्त करके वेषमात्र से भारतीयता को दर्शाने वाले ऐसे कांग्रेसियों की खूब आलोचना संस्कृत भाषा में रचित सुन्दर पद्यों के द्वारा करते रहे। वे पद्य अब अमृत सूक्तिपञ्चाशिका में छपे हैं।

के अनुसार लिया करते थे। फिर यदि उन्हें कभी कोई गलती लग जाती थी तो आगे उसे समझकर मान भी लेते थे। उदाहरण के तौर पर एक बार समाज-सुधार विषयक समस्याओं के विषय में उन्हें अपने व्यक्तिगत विचारों को प्रकट करने को जब कहा गया तो उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा, हमारी अनेकों सामाजिक प्रथाएं शताब्दियों की दासता के दुष्परिणाम हैं और वर्तमान युग में हमारी बुद्धि भी दासता के दुष्परिणामों के परिप्रेक्ष में ही सोचती है। अत: हम इन बातों पर अभी सद्विचार कर ही नहीं सकते हैं। तो हमें अपनी शक्ति को इधर-उधर की छोटी समस्याओं पर व्यय न करके पूरी शक्ति का उपयोग स्वतन्त्रता की प्राप्ति के प्रति करके देश को पूरी तरह से स्वतन्त्र बना देना चाहिए। तदनन्तर स्वातन्त्र्य के वातावरण में उत्पन्न और उसी में पली हुई हमारी अगली पीढ़ियां इन समाज-सुधार सम्बन्धी विषयों पर सद्-विचार करें।" उनके द्वारा निर्मित गीता रहस्य के विषय में एक बार काशी के विद्वानों ने कुछ एक शंकाओं का स्पष्टीकरण करते हुए उन्हें जब एक विस्तृत पत्र लिखा तो उन्होंने उत्तर में यही लिखा कि वे अपनी उन गलतियों को स्वीकार करते हैं और जब पुस्तक का नया संस्करण छपेगा तो शास्त्रों के सच्चे सिद्धान्तों के अनुसार संशोधन करके उन दोषों को अवश्य दूर करेंगे।

मिस ऐनी बेसेंट की प्रशंसा तो सभी भारत वासी करते आए हैं। परन्तु पूज्यपाद जी ने उनके विषय में एक ऐसी घटना सुनाई है जिससे यह प्रमाणित होता है कि वह भी नहीं चाहती थीं कि भारत अभी स्वतन्त्र हो जाए। उस घटना के अनुसार जब वे अभी छोटी श्रेणियों में ही पढ़ रहे थे तो मिस एनीबेसेंट ने एक विज्ञापन प्रकाशित करके वाराणसी के बाजारों में दुकानों और भवनों की दीवारों पर उसे लगवा दिया। उसमें यह लिखा था—"सज्जनो ! मैं कल रात को जब ध्यान में मग्न हो गई तो मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि किसी ऊपरी लोक में पहुंच गई हूं। वहां मुझे भगवान् **मैत्रेय बुद्ध** के दर्शन हुए। उन्होंने मुझसे कहा कि भारत की जनता के सामने हमारा यह संदेश ले जाओ कि भारत के लिए अंग्रेजी शासन ही अभी हितकर है और यही शासन काफी देर चलेगा इसका अभी अन्त नहीं होगा। अत: वे स्वतन्त्रता के लिए किए जाने वाले व्यर्थ के आन्दोलनों को छोड़कर शान्ति से रहें।" इस विज्ञापन को पढ़कर उनके विद्यालय के एक ऊंची श्रेणी के छात्र ने उसके उत्तर में एक और विज्ञापन प्रकाशित करके दीवारों पर लगवा दिया। यह आकार में एनीबेसेंट के विज्ञापन से चार गुना बड़ा था और खूब मोटे-मोटे अक्षरों में छपा था। उसमें यह लिखा था, भाइयो मैं शिव जी की पूजा में कल जब अत्यन्त ध्यान मग्न हो गया तो मुझे शिवलोक में भगवान् शंकर के दर्शन हुए। उन्होंने मुझसे कहा "बेटा, देशवासियों से कह दो कि स्वतन्त्रता के लिए

खूब आन्दोलन करें। मैं उनका सहायक हूं। मेरे अनुग्रह से उनके प्रयत्न शीघ्र ही सफल हो जाएंगे।" उस विज्ञापन पत्र से मिस ऐसीबेसेंट के विज्ञापन का प्रभाव सर्वथा नष्ट हो गया। बहुत सारे कांग्रेसी देशसेवकों से उनका घना सम्पर्क रहा। **सरदार भगत सिंह** के प्रिय मित्र और सच्चे साथी **श्री राजगुरु** बालकपन में पूज्यपाद जी के स्नेही मित्र थे।

एक बार कांग्रेस का कोई बड़ा कार्यक्रम था। लम्बा जलूस निकालना था। पूज्यपाद जी भी स्वयंसेवक बालकों के बीच एक स्वयं-सेवक थे। एक वृद्धा महिला ने स्वयंसेवकों की उस छोटी सी टुकड़ी को दस रुपये चन्दा दे दिया। उन रुपयों को उनके मुख्य स्वयंसेवक ने अपनी जेब में रख लिया; कांग्रेस की पूंजी में या खाते में जमा नहीं किया, न ही ऊपरी अधिकारियों को अर्पण किया। पूज्यपाद जी ने तीन स्तर के अधिकारियों के पास शिकायत कर दी, परन्तु किसी ने कोई भी ध्यान नहीं दिया। तबसे पूज्यपाद जी ने कांग्रेस की सदस्यता छोड़ दी। कांग्रेस के मुख्य ध्येय के प्रति अर्थात् देश की स्वतन्त्रता के प्रति वे दिलचस्पी तो जीवन भर रखते रहे परन्तु कांग्रेस के सदाचार में उनका कोई विश्वास नहीं रहा। स्वातन्त्र्य के पश्चात् श्री स्वाध्याय पत्रिका में बहुत बार श्वेत वस्त्रों के नीचे छिपाए हुए काले शरीरों और चित्तों वाले, तथा पाश्चात्य गुरुओं से शिक्षा-दीक्षा प्राप्त करके वेषमात्र से भारतीयता को दर्शाने वाले ऐसे कांग्रेसियों की खूब आलोचना संस्कृत भाषा में रचित सुन्दर पद्यों के द्वारा करते रहे। वे पद्य अब अमृत सूक्तिपञ्चाशिका में छपे हैं।

अध्याय ४

वाराणसेय जीवन

वाराणसी में पूज्यपाद जी के पिताजी और ताया जी श्री मोरेश्वर शास्त्री दोनों काफी देर तक एक साथ रहते रहे। श्री मोरेश्वर जी सुयोग्य विद्वान् और अतीव निपुण वेदपाठी तथा कर्मकाण्ड-मर्मज्ञ पण्डित थे। उनके बहुत शिष्य थे। काशी में उनका सम्मान भी बहुत था। परन्तु पौरोहित्य से आय बहुत थोड़ी होती थी। सन्तोष वृत्ति से ही निर्वाह करना पड़ता था। फिर पूज्यपाद जी के पिताजी श्रीकृष्ण शास्त्री जहां भी काम करते रहे वहां अच्छा वेतन पाते रहे। अतः सम्मिलित परिवार उनकी ही आय से चलता था। शास्त्री जी की प्रथम पत्नी, अर्थात् पूज्यपाद जी की माता, सन् १९०६ में ही शिवधाम को जब सिधार गईं तो सन् १९०७ में उनका दूसरा विवाह हुआ। दूसरी पत्नी के गर्भ से उत्पन्न हुआ बच्चा भी अभी शैशव में ही था कि असमय में श्रीकृष्ण शास्त्री भी शिवधाम को सिधार गए। उस घटना से कुछ ही समय पूर्व दोनों भाई सम्पत्ति का विभाजन करके पृथक्-पृथक् रहने लगे थे। तो पिताजी के न रहने पर पूज्यपाद जी के ऊपर अपनी विमाता के अपने छोटे भाई के और अपने आपके पालन-पोषण का भार आ पड़ा। घर में धन-संपत्ति कुछ थी नहीं। श्रीकृष्ण शास्त्री के अनेकों ऐसे मित्र थे जो ऐसी स्थिति में आर्थिक सहायता कर ही देते, परन्तु पूज्यपाद जी को पूर्व जन्म के राजप्रासाद के जीवन का गहरा संस्कार पड़ा हुआ था उसके कारण वे अत्यन्त स्वाभिमानी थे। किसी के सामने अपनी दरिद्रता और दीनता को उन्होंने कभी प्रकट नहीं किया। वे सीधे-सादे परन्तु साफ सुथरे वेष में वाराणसी में विचरण करते थे तो कोई इस बात को जान ही नहीं पाता था कि इनके घर में कुछ भी नहीं है। उधर से श्रीकृष्ण शास्त्री अच्छे-अच्छे पदों पर काम करते रहे थे और काफी व्यय भी करते थे। उससे जनसाधारण में यही धारणा बैठी थी कि इनके घर में काफ़ी धन-सम्पत्ति है। इस तरह से लोग पूज्यपाद जी के घर को भी एक धनाढ्य घर समझा करते थे।

सन् १६१५ से आगे उनके घर का निर्वाह कैसे चला करता था इस बात को ईश्वर ही जानता है। जैसा कि उन्होंने स्वयं लिख रखा है सन् १६२१ से उन्हें कोई **माधोलाल स्कालरशिप** मिलता रहा। दो वर्ष तो प्रतिमास पांच रुपए, सन् १६२३ **में** दस रुपए, १६२४ **से** १६२७ तक पन्द्रह रुपए और १६२८ **में** २० **बीस** रुपए। इसके अतिरिक्त संस्कृत महाविद्यालय से भी उन्हें **सन् १६२४ से** पहले तीन, फिर चार और पांच रुपए की छात्रवृत्ति मिला करती थी। परन्तु सन् १६१५ से लेकर सन् १६२० तक के पांच वर्ष वे घर को कैसे चलाते रहे, इस बात पर उन्होंने कुछ लिखकर नहीं रखा है। दान तो कभी लेते ही नहीं थे, कथा भी नहीं करते थे। पौरोहित्य कार्य भी कभी उन्होंने नही किया। बच्चों को घर जाकर पढ़ाने का व्यवसाय तब जरा भी गर्म नहीं था। फिर उन्होंने उस विषय में न तो कुछ लिखा है और न कभी कुछ कहा। बहुत सम्भव यही है कि वे घर जाकर पढ़ाने के कार्य को भी करते नहीं थे। एक बार पूछने पर मुझसे इतना ही कहा था कि चौखम्बा आदि संस्कृत ग्रन्थ प्रकाशक छपने वाली पुस्तकों के प्रूफों का संशोधन उनसे करवा लेते थे और उससे इतनी आय आती थी कि उस समय के सस्तेपन में घर का व्यय पूरा हो ही जाता था।

उन्होंने आत्मचरित के एक श्लोक में ऐसा भी लिखा है कि विमाता उनके साथ ठीक व्यवहार नहीं करती थीं। मेरा ऐसा अनुमान है कि वह यह चाहती रही होंगी कि श्रीकृष्ण शास्त्री के सुपरिचित और हितैषी तथा धनाढ्य मित्रों से कोई आर्थिक सहायता ली जाए जिससे घर का व्यय सुचारु ढंग से चले। शास्त्री जी काफी धन कमाते थे और व्यय भी बहुत करते थे। अतः उनकी धर्मपत्नी को भी काफी व्यय करने की आदत पड़ी रही होगी। उस व्यय के अनुकूल आय का प्रबन्ध न होने के कारण उन्हें कुढ़न होती रही होगी और उसी कारण से उनका व्यवहार पूज्यपाद जी के साथ अच्छा नहीं रहा होगा।

पूज्यपाद जी को धर्म की सनातन परम्परा पर और वर्ण आश्रम के नियमों पर पूरी श्रद्धा थी, परन्तु उस श्रद्धा में विवेक भी था और सहृदयता भी थी। चाण्डाल स्पर्श का वे भी सदा निवारण करते रहे। परन्तु एक दिन ऐसी घटना हुई कि उनके घर में सफाई करने वाली चाण्डाली को सफाई करते-करते ऊपर से ईंट गिरने से बाजू में गहरी चोट आई और खून बहने लगा। उस दृश्य को देखते हुए उनसे रहा नहीं गया। अपने हाथों उस चाण्डाली के बाजू का खून साफ करके दवा लगा दी, खून बहना बन्द कर दिया और ऊपर पट्टी लगा दी। कोई क्या कहे, इस बात की परवाह नहीं की। तदनन्तर गंगा जी में नहाये और नए धुले हुए कपड़े पहन लिए, पीछे पहने हुए कपड़े धोबी को धोने के लिए दे दिए। ऐसी अनेकों समस्याएं जब-जब उपस्थित होती थीं तो सहृदयता को न

छोड़ते हुए ही यथार्थ शास्त्र दृष्टि को लेकर के ही पूज्यपाद जी समुचित समाधान किया करते थे ।

उस युग में काशी में एक **नेपाली बाबा** हुआ करते थे । वे अच्छे अभ्यासी भी थे और सिद्धि सम्पन्न भी थे । पूज्यपाद जी कभी-कभी उनके आश्रम में उनसे सत्संग किया करते थे । बाबा ने एक बार भांग घोट ली । उसे अभिमन्त्रित किया । एक गिलास स्वयं पी गए और एक पूज्यपाद जी को पीने को दे दिया । उसके पीने से उन्हें एक विचित्र अनुभूति हुई—अध्यात्म के विषय में कई एक प्रकार की शंक्काएं उठती गई और साथ-साथ अनके समाधान सूझते गए । साथ विशेष आह्लाद भी होता रहा । तदन्तर कुछ समय बीत जाने पर बाबा के एक पट्ट शिष्य ने पूज्यपाद जी से कहा कि बाबा उन्हें दीक्षा देकर अपना शिष्य बनाना चाहते हैं । इस बात को सुन कर पूज्यपाद जी एक बार बाबा के पास जब गए तो उनसे पूछा कि उनका शिष्य ऐसी-ऐसी बाते कह रहा था तो क्या ये बातें सत्य हैं ? इस पर बाबा बोले —"हां, मैं समझता हूं कि आप एक योग्य पात्र हैं । इस कारण अपनी साधना विद्या आपको देना चाहता हूं ।" पूज्यपाद जी ने उत्तर दिया, "मैंने प्रतिज्ञा की है कि किसी मानव से दीक्षा न लेकर देवता से ही लूंगा ।" इस पर बाबा बोले कि देवता आपको आमने-सामने कब और कैसे मिलेगा ?" पूज्यपाद जी ने उत्तर दिया "देखिए, मैं इस विषय में किसी ऐसे महानुभाव को देवता समझूंगा जो एक सफल वेधदीक्षा[1] कर सके और दूसरे जिसे अपने इष्ट मन्त्र के अभ्यास का फल भी प्राप्त हुआ हो ।" इन दो बातों को सुनने पर बाबा बोले 'शास्त्र में जैसा विधान बताया गया है, वैसे विधान से मैं वेधदीक्षा को कर सकता हूं ।" पूज्यपाद जी बोले कि उस दीक्षा का जो फल बताया गया है वह भी शिष्य को प्राप्त हो जाना चाहिए और तीसरे मैं उस महापुरुष को देवता समझूंगा जिसे अपने इष्टदेव के दर्शन उस तरह से आमने-सामने हुए हों जैसे इस समय हम एक दूसरे को देख रहे हैं ।" पूज्यपाद जी ने मुझसे कहा कि ज्यों ही उन्होंने यह तीसरी शर्त सुना दी तो बाबा के नेत्रों से अश्रुजल का प्रवाह बहने लगा और कण्ठ में हिचकी लगने लगी । इस पर पूज्यपाद जी को बहुत खेद हुआ,

---

१. गुरु अपनी अनुग्रह शक्ति के बल से ही शिष्य की कुण्डलिनी शक्ति को जगा कर छहों चक्रों का भेदन (वेध) कराते हुए उसकी आरोह अवरोह की दोनो गतियों को कराता है, उससे शिष्य को अपूर्व आत्म आनन्द के साथ ही साथ अपने वास्तविक स्वरूप का साक्षात्कार हो जाता है । ऐसी दीक्षा को वेधदीक्षा कहते हैं।

और उन्होंने पूछा कि क्या उनके मुख से कोई ऐसी अनुचित बात निकली जिसे निकलना नहीं चाहिए था। इस पर बाबा बोले—"आपने जो कुछ कहा सब ठीक कहा। इन लोगों के छोटे-मोटे काम लगातार बनते गए और मैं स्वयं वैसे का वैसा ही रह गया। इन लोगों में मुझे लूट लिया।"

इस घटना से पूर्व एक और घटना उनके निकट सम्बन्धियों के एक उत्सव में घटी थी जिससे सन्त्रस्त होकर पूज्यपादा जी ने दीक्षा के विषय में वैसी प्रतिज्ञा की थी। उनके सम्बन्धी लोग शक्ति के उपासक थे। उनमें कौल सम्प्रदाय की परम्परा जैसे तैसे चलती ही थी। एक बार उन्होंने तान्त्रिक चक्रयाग का प्रबन्ध किया यद्यपि याग को वस्तुतः सफल बनाने की सामर्थ्य वाला कोई भी कौलगुरु उनके भीतर विद्यमान नहीं था उन्होंने यह चाहा था कि पूज्यपाद जी को भी कौलिक दीक्षा द्वारा दीक्षित कर देवें। इसलिए उत्सव पर उन्हें भी निमन्त्रित किया था। उन्हें यह नहीं बताया था कि उत्सव में क्या होगा और उसे कैसे मनाया जाएगा। केवल इतना ही कहा था कि शाक्त पूजा का एक विशेष उत्सव मनाया जा रहा है, उसमें आपको भी सम्मिलित होना चाहिए। तदनुसार वे गए और कौलों के तांत्रिक चक्रयाग के प्रारम्भ से पूर्व ही कुलचक्र के द्वारों को बन्द कर दिया गया और चक्रयाग की क्रियाएं चलने लगी, विकट रूप से चलती रहीं, पशुपान आदि अवाञ्छनीय क्रियाएं होने लगीं, परन्तु शिव-समावेश किसी को भी हुआ नहीं। अन्तःसार से सर्वथा विहीन वाह्य क्रियाओं का ऐसा आडम्बर चलता रहा जिसे देख देख कर पूज्यपाद जी अतीव खिन्न होते रहे। कुलचक्र के द्वार बन्द थे, अतः खिसक भी नहीं सकते थे। अस्सहाय बन कर एक कोने में बैठे बैठे इस कलियुग लीला को तटस्थ भाव से बस देखते रहे, किसी भी क्रिया में भाग नहीं लिया। उसी दृश्य के परिप्रेक्ष में उन्होंने वहीं पर इस बात की प्रतिज्ञा की थी कि "दीक्षा लेनी हो तो केवल देवता से लूंगा, साधारण मानव से नहीं।" उनकी वह इच्छा और प्रतिज्ञा आगे जगदम्बा ने तब पूरी कर दी जब उन्होंने व्याकरण मध्यमा परीक्षा की तैयारी करनी थी।

वाराणसी में गङ्गा जी में दक्षिण दिशा में बहती हुई दो सहायक नदियां आ मिलती हैं। वे नदियाँ है '**वरणा**' और '**असी**' इनमें से असी नदी के उस पार एक अवधूत तान्त्रिक उपासक रहा करते थे उनका नाम था **श्री रामेश्वर आश्रम।** उनका सारा रंग ढंग तान्त्रिक ही था। अवधूत भाव में रहते हुए वे श्रौत स्मार्त्त आचार की ओर ध्यान नहीं देते थे। अतः वैदिक आचार वाले महानुभाव प्रायः उनसे दूर ही रहा करते थे। पूज्यपाद जी एक बार उनके पास गए, काफी देर तक बातें हुईं। दोनों ही परस्पर वार्तालाप से खूब प्रसन्न हो गए। वहां से जब पूज्यपाद जी चलने को थे तो अवधूत महात्मा ने पुनः कभी कभी

दर्शन देने के लिए आग्रह किया। पूज्यपाद जी ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि मैं एक कट्टर वैदिक ब्राह्मणों के समाज से सम्बद्ध हूं। वे लोग आपके तान्त्रिक आचार को अच्छा नहीं समझते हैं। अत: आपके पास अधिक आने जाने से मेरे लिए समस्याएं खड़ी हो जाएंगी। हां मैं तभी आने का वचन दूंगा जब आप मेरे यहां आते रहने की बात किसी के सामने प्रकट नहीं करेंगे। महात्मा जी ने वैसा ही करने का वचन दे दिया। तब पूज्यपाद जी कभी कभी जरा गुप्त जैसे ढंग से उधर आया जाया करते थे।

एक दिन जब वहां गए तो नदी में पानी बहुत आया था। साधारण मानव पार नहीं जा सकता था। दोपहर का सम्य था। महात्माजी का चेला उनके लिए खाना ले आकर नदी के इसी पार खड़ा था। उस पार महात्माजी खाने की प्रतीक्षा में तट पर ऊपर नीचे टहल रहे थे। उन्हें बहुत भूख लगी थी। परन्तु न वे नदी को पार करके इस तट पर आ सकते थ और न चेला ही खाना लेकर उसपार जाने का साहस कर रहा था। ऐसी स्थिति देखते हुए पूज्यपाद जी ने अपने कपड़े उतार कर बांध लिए और सिर पर रख लिए। उनके ऊपर भोजन के पात्र की गठड़ी धर दी और दोनों हाथों से उसे थाम कर धीरे धीरे छाती तक गहरे जल में से चलते चलते उस पार पहुंच गए। महात्मा जी को भूख बहुत सता रही थी। भोजन प्राप्त हो जाने पर उन्हें अपार हर्ष हुआ और बड़ी प्रसन्नता से बोले—"यह बालक बरसों से सेवा करता रहा। रहस्यमय "**मालामन्त्र**" का उपदेश चाहता रहा। इसके भाग्य में नहीं था। वह आपके भाग्य में है। लो इसे सावधानतया ग्रहण करो" ऐसा कहते हुए उन्होंने "**कर्पूरस्तवराज**" पूज्यपाद जी को सुना दिया। उसकी साधना की विशेष विधियों को भी सिखाना चाहते थे, परन्तु पूज्यपाद जी को उन्हें सीखने में रुचि नहीं हुई। अतः उन्होंने उनको सीखा नहीं। फिर महात्मा जी बोले "अच्छा जब चाहो इस स्तोत्र का पाठ मात्र किया करो, अभीष्ट सिद्धि हो जाएगी।" इस तरह से पूज्यपाद जी को अत्यन्त रहस्यगर्भ कर्पूरस्तोत्र की दीक्षा श्रीरामेश्वर आश्रम ने दे दी। अपने द्वारा पूजनीय महापुरुषों की सूची में पूज्यपाद जी ने श्रीरामेश्वर आश्रम का नाम भी लिख रखा है तथा पूर्वोक्त नेपाली बाबा का भी।

कविराज **श्री गोपीनाथ** जी का नाम भी उस सूची में है। पूज्यपाद जी उनका गुणगान बहुधा किया करते थे। वे काशी में उस समय संस्कृत महाविद्यालय के प्रधानाचार्य थे। पूज्यपाद जी से बहुत स्नेह करते थे। पूज्यपाद जी भी उन्हें पिता के समान मानते हुए उनको हृदय से बहुत आदर देते थे। उनके साथ परस्पर स्नेह, श्रद्धा आदि के विषय में उन्होंने प्रभावशाली भाषा में लिख रखा है। उनके इकासीवें जन्मदिवस पर पूज्यपाद जी वाराणसी में थे और

उत्सव में विशेष भाग लेते हुए उन्होंने उनके लिए एक '**प्रशस्ति**' भी अतीव सुन्दर श्लोकों में लिखी। वह प्रशस्ति कविराज जी की जन्मशताब्दी उत्सव के प्रारम्भिक ग्रन्थ में पुनः छपी है। कविराज जी का बहुत घना स्पर्क स्वामी **विशुद्धानन्द** जी के साथ था। एक बार वे पूज्यपाद जी को भी अपने साथ उनके निवास पर ले गए। वहां पहुंच कर जब वे आसन पर बैठे ही थे तो स्वामी जी ने हथेली से हथेली को मलते हुए एक हथेली को पूज्यपादजी की नाक के सामने कर दिया और पूछा "यह केवड़े का गन्ध है न।" तुरन्त फिर हथेलियों को मल कर जब सामने कर दिया तो बोले "यह चमेली का गन्ध है न?" पूज्यपाद जी को शाम्भवी योग साधना से **पराद्वैतदर्शन विद्या** के उत्कृष्टतर सिद्धान्तों की साक्षात् अनुभूति तो पहले ही हो चुकी थी। उस अनुभूति के सामने इस विविधगन्ध के प्रदर्शन को वे एक विशेष दर्जे का इन्द्रजाल जैसा समझ बैठे। इससे उन पर जरा भर भी कोई अच्छा प्रभाव पड़ा नहीं। अतः तटस्थ हो कर बैठे रहे। कुछ कहा नहीं। मैंने उनसे पूछा था कि श्रीकविराज जी ऐसी बातों से क्यों प्रभावित होते थे, उन्होंने उत्तर दिया कि वे स्वभावतः बहुत अधिक भावुक और श्रद्धालु थे, अतः साधुओं की ज़रा ज़रा सी सिद्धियों को देखकर बहुत प्रभावित हुआ करते थे। पूज्यपाद जी फिर कभी भी स्वामी विशुद्धानन्द जी से मिले ही नहीं। अतः उनकी आध्यात्मिक स्थिति का गहरा अध्ययन उन्होंने कभी नहीं किया, क्योंकि "प्रथमे ग्रासे मक्षिकापातः" पहले ग्रास में ही मक्खी पड़ने वाली बात हो गई।

वाराणसी में तारादेवी का एक प्राचीन मन्दिर है। बंगाली लोगों ने उसका निर्माण किया है और उसका प्रबन्ध भी बंगालियों के हाथ में है। वहां उस युग में ऐसी अफवाहें चल पड़ी थीं कि बंगाली लोग वहां देवी को सन्तुष्ट करने के लिए नरबलि भी दिया करते हैं। इस अफवाह के कारण लोग वहां जाने से ही डरते थे। अतः वहां पूजापाठ करने या माथा टेकने को कोई जाता नहीं था। स्थान एकदम सुनसान था। उस कारण से और भी भयावह बना था। पूज्यपाद जी को एक बार बहुत इच्छा हो गई कि भगवती तारादेवी के दर्शन कर ही आएं। उधर से नरबलि कीं बात से डर भी लगा। अतः कई दिन हिचकिचाते ही रहे। अन्ततोगत्वा मन में यही विचार आया कि हमारी नर-बलि लग भी जाए तो उससे भी ऊर्ध्वगति हो ही जाएगी, एकदम किसी शाक्त लोक में पहुंच जाएंगे। ऐसा निश्चय करके तारा देवी के मन्दिर की ओर चल पड़े। बहिर्द्वार के पास पहुंचे तो सारी जगह सुनसान दिखाई दी। मन्दिर का द्वार खुला था। भीतर जाकर प्रणाम करके बैठ गए और मन्त्र जप करने लग गए। इसी बीच में उन्हें अकस्मात सिरदर्द से वेदना होने लगी। मन में यह विचार हुआ कि देवी को चिरकाल से कोई बलि नहीं मिली है,

अतः वह हमारा रुधिर चूसने लगी है। इस विचार से जरा भयभीत से होकर उन्होंने जप की एक माला वेग से पूरी कर ली और पुनः प्रणाम करके बाहिर निकलने ही लगे थे कि पास वाले तख्तपोश पर बैठी एक बंगाली महिला को देखा। उसने बंगाली ढंग से साड़ी पहन रखी थी और एक ओर से चाबियों का गुच्छा उसमें लगाकर रखा था। महिला एक दम बोल उठी "बच्चा मां किसी का खून नहीं पीती है, फिर एक ब्राह्मण का, जो गायत्री का उपासक हो।" पूज्यपाद जी कुछ झुंझलाए से थे, अतः एकदम मन्दिर के द्वार से बाहर आ गए। बाहिर आते ही विचार हुआ कि इस बंगाली महिला से क्यों न पूछा जाए कि देवी के द्वारा खून पीने की बात के हमारे विचार का पता उसे कहां से लगा। ऐसा विचार करके जब पुनः मन्दिर में प्रविष्ट हुए तो वहां कोई भी महिला कहीं भी नहीं दिखाई दी। फिर बाहिर आए और आंगन में इधर उधर उस महिला को ढूंढने लगे कहीं भी नहीं दिखाई दी। एक कुटिया में एक बूढ़ा बंगाली बाबा मिला। उससे भी महिला के बारे में पूछा, उसने कहा "अरे बाबा यहां तो कोई पुरुष भी आता नहीं, तो महिला कहां आएं।" जब पूज्यपाद जी ने बूढ़े को सारा वृत्तान्त सुना दिया तो वह नतमस्तक होकर कहने लगा, "आप धन्य हो पहली बार आते ही जगदम्बा के दर्शन पाए। हम बीस वर्ष से यहां रहते आए हमें मां ने कभी दर्शन नहीं दिए।" ऐसी बात सुनने पर पूज्यपाद जी आश्चर्यचकित होकर, भगवती को पुनः प्रणाम करके घर लौट आए।

पूज्यपाद जी तैरने में अतीव निपुण थे। गंगा जी के आर पार तैरा करते थे। गहरे जल में डुबकियां लगाने और गंगा जी के तल को छू लेने में प्रवीण थे। एक दिन गंगा जी में नहा चुकने पर उन्होंने देखा कि घाट पर एक महिला और उसके नौकर चाकर बहुत ही परेशान हैं। कारण पूछने पर उन्हें विदित हुआ कि महिला किसी देसी राज्य की रानी है और गंगा जी में नहाते नहाते उसकी सोने की नत्थ खो गई जिसमें एक बहुमूल्य रत्न भी जड़ा था। ऐसा विदित होने पर पूज्यपाद जी ने रानी से कहा कि उस विशेष स्थान को दिखा दो जहां आपने नहाया। तब रानी ने उस विशेष स्थान को दिखा दिया। उसे देख कर पूज्यपाद जी ने कपड़े उतार दिए, मुख में सरसों का तेल भर लिया और ठीक उसी जगह डुबकी लगा दी। सीढ़ी के तल को छूते ही मुख में भरे तेल को श्वासवायु के बल से बाहर उगल दिया। ऐसा करते ही तेल मिश्रित जल के बीच में से देख सकने वाली नेत्रों की दर्शन शक्ति अबाध हो गई और सीढ़ी के तल पर पड़ी हुई नत्थ साफ दिखाई दी। उसे उठाकर तट पर आए तो कार्य की सफलता पर अपार हर्ष हुआ। उसने पारितोषिक देना चाहा, परन्तु पूज्यपाद जी ने स्वीकार नहीं किया। मेरे पूछने पर उन्होंने बताया कि

साधारण तया जल नेत्रों की दर्शन शक्ति को रोक लेता है। परन्तु उसमें तेल मिला हो तो दृष्टि जल के आरपार जाती है। गंगा स्नान के विषय में एक और अतीव महत्वपूर्ण घटना को भी वे प्रायः सुनाया करते थे। उसके विषय में अगले पृष्ठों में विस्तार से लिखा जाएगा। उससे पहले एक और महत्वपूर्ण घटना का वर्णन यहां किया जा रहा है।

पूज्यपाद जी ने पूरे यौवन में घर छोड़कर परिव्राजकता को अपनाया। इस बात के कारणों को वाराणसी में उनके परिचित, स्नेही, मित्र, सगे संबंधी आदि में से कोई भी जानता नहीं। परन्तु उन कारणों को उन्होंने लिखकर रखा है। उनमें से मुख्य कारण यह था—उन्होंने प्रतिज्ञा कर रखी थी कि विवाह तभी करेंगे जब जगदम्बा वैसा करने के लिए अनुज्ञा दे देवेंगी। परन्तु एक ओर से विमाता के साथ बनती नहीं थी, इस कारण से दुःखी रहते थे, अतः घर में एक अनुकूल साथी की आवश्यकता का अनुभव कर रहे थे। दूसरी ओर से अपने निकट सम्बन्धियों ने भी इस बात के विषय में आग्रह किया होगा जैसा कि कई एक महानुभावों का विचार है। मैंने इस विषय में स्वयं उनसे कभी कुछ पूछा नहीं और उन्होंने भी स्वयं मुझसे कुछ कहा नहीं। परन्तु उन्होंने काशी के पण्डितों के नाम एक पत्र लिख रखा है, जिसमें यह कहा गया है कि उन्होंने नासमझी से जगदम्बा से अनुज्ञा लिए बिना ही विवाह कर लिया और उस नासमझी का फल उन्हें यह मिला कि पत्नी के साथ समागम से पहले ही घर को छोड़ना पड़ा। इस तरह से उनके गृह त्याग का मूल कारण है जगदम्बा की अवहेलना। वह पत्र इस अध्याय के अन्त में उद्धृत किया गया है। एक वाराणसेय विद्वान् साधक श्री **बटुकनाथ** खिस्ते ने मुझसे एक बार कहा कि एक दिन एक सज्जन महानुभाव उनके पिता जी **श्री नारायण शास्त्री खिस्ते** के पास आए और उनसे प्रार्थना की कि उनकी कन्या का विवाह श्री वैद्यनाथ शास्त्री (पूज्यपाद) जी के साथ नियत करा देवें क्योंकि खिस्ते जी को उनसे काफी घनिष्ठता है। इस पर श्री खिस्ते जी ने उन्हें मना किया और कहा कि ऐसा कार्य मत करिए क्योंकि शास्त्री जी की जन्म कुण्डली में परिव्रज्या का योग है। तब उन सज्जन ने उस विचार को छोड़ ही दिया।

पूज्यपाद जी ने अपने घरेलू जीवन को सुखी बनाने की आकांक्षा से विवाह करने का स्वयं संकल्प किया। फिर एक अच्छे धनी और मान्य महाराष्ट्री ब्राह्मण **श्री राजाराम जी आकूत** की कन्या **कृष्णा** जी के साथ विवाह निश्चित हो गया। **वैशाख शुक्ल पक्ष संवत् १९८४** (ई० १९२७) में विवाह हो भी गया। श्वशुर कुल की ओर से वधू का शीलवती नाम रखा गया। परन्तु विवाह के अनन्तर पूज्यपाद जी के सम्बन्ध श्वशुर गृह के साथ अच्छे नहीं रहे। मेरा

ऐसा अनुमान है कि आकूत जी ने यह समझ रखा था कि पूज्यपाद जी एक धनवान पण्डित के पुत्र हैं, अतः इनके घर में काफी सम्पत्ति होगी । इसी विचार से उन्होंने कन्या उस घर में दे दी । परन्तु विवाह उत्सव पर ही कन्या पक्ष को इस बात का पूरा ज्ञान हो गया होगा कि पूज्यपाद जी का घर धन-हीन है । इस कारण से कुछ अनबन हो गई होगी और उसी कारण से दुल्हन का द्विरागमन (गौना) साल डेढ़ साल तक भी होने नहीं पाया, और तदनन्तर पूज्यपाद जी घर को छोड़कर चले भी गए । फलतः वर-वधू का समागम होने ही नहीं पाया । पूज्यपाद जी ने लिखकर रखा है कि विवाह के अनन्तर श्वशुर गृह के सम्बन्धी उनकी निर्धनता के कारण उनका अत्यन्त अनादर करते रहे और उन्हें इस तरह से अत्यन्त सन्ताप देते रहे । उस बात को सहन न कर सकना उनके गृहत्याग का तात्कालिक निमित्त कारण बन गया । उन्होंने यह भी लिख रखा है कि उससे पूर्व सौतेली मां उनके साथ सदैव दुर्व्यवहार ही करती रही । उससे भी उन्हें घर में सदा सन्ताप ही बना रहता था । उस बात से उस विमाता के साथ उनको विशेष आसक्ति भी कभी नहीं बनी जो उन्हें गृहत्याग करने से रोक लेती ।

ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि स्वयं श्री राजाराम आकूत ने जब उनको काफी अपमानकारिणी बातें सुना दीं तो उन्होंने एकदम गृहत्याग का निश्चय किया । यह तो कई बार कहा जा चुका है कि पूज्यपाद जी के स्वभाव पर एक ओर से विद्याधर लोक के जीवन के और दूसरी ओर से अपने भूतपूर्व तीसरे जन्म के राजाधिराज जीवन के संस्कारों का काफी प्रभाव था । राजाधिराज होने के संस्कारो से वे अपमान को जरा भर भी सहन नहीं कर सकते थे । फिर श्वशुर घर से प्रत्येक मानव विशेष सत्कार की आशा बनाए रखता है । वहीं से जब सन्तापकारी अनादर होता रहा और अन्ततोगत्वा अत्यन्त सन्तापकारी बन गया तो वह उसे जरा भर भी सहन नहीं कर सके और एक-दम गृहत्याग के लिए तत्पर हो गए ।

असमय में गृहत्याग का तीसरा बड़ा कारण गंगा माता ने उपस्थित कर दिया । यह बात बताई गई है कि वे तैरने में अतीव निपुण थे । एक बार गंगा जी के वेगवान् जल में तैरते-तैरते वे एक भयानक और खूब वेगवाले भंवर में इस तरह से फंस गए कि उससे निकल ही नहीं सके । कुछ ही क्षणों में वह भंवर उन्हें गंगा जी के तल पर धकेल कर ले गया । उन्हें ऐसी निश्चित आशंका हो गई कि अब शरीर छूट ही जाएगा । ऐसी दैवाधीन कष्टमयी स्थिति में उन्होंने भगवान् शिव जी से प्रार्थना की कि वे ही उनकी प्राण रक्षा करें । साथ यह भी प्रतिज्ञा कर ली कि यदि उनकी प्राणरक्षा हो जाएगी तो वे शेष जीवन भगवान् शिव को ही अर्पण करेंगे, अर्थात् शैव संन्यास का व्रत

लेकर उसे जीवन भर निभा लेंगे। ऐसा करके कुछ ही क्षणों में अचेत हो गए। भगवान् शिव जी की विचित्र कृपा से गंगा जी ने भंवर की अनोखी गति के द्वारा उन्हें ऊपर धकेल दिया और एक लहर के द्वारा उन्हें तट पर फेंक दिया। यह सब कुछ किस तरह से हुआ, इस बात का उन्हें कुछ भी पता नहीं लगा। जब वे पुनः होश में आए, तो अपने आपको गंगा जी के बहुत नीचे वाले किसी घाट के रेतीले तट पर पाया। उठ कर जरा सम्भलकर वहां से गलियों में से होते हुए वस्त्रहीन अवस्था में धीरे-धीरे उस घाट पर पहुंच गए जहां उन्होने नहाने के वस्त्र उतार कर रखे थे। वस्त्र पहन कर चले आए और इस घटना की जरा भर भी जानकारी किसी को नहीं हुई। मैंने उनसे पूछा था कि घाट पर और भी अनेकों नहाने तैरने वाले लोग जब थे तो उनकी ओर किसी ने ध्यान क्यों नहीं दिया। इस पर उन्होंने यही कहा कि सभी लोग भली-भांति जानते थे कि वे एक नम्बर के तैराक हैं अतः यही समझे होंगे कि लहरों में तैरने की क्रीड़ा कर रहे होंगे। फिर मेरे अनुमान से उन्होंने इस विषय में किसी से कुछ पूछा भी नहीं होगा। तो यौवन में ही गृहत्याग का तीसरा मुख्य कारण इस घटना में की गई वह प्रार्थना ही बन गई।

गंगा जी में डूब जाने की यह घटना विवाह के अनन्तर लगभग छः मास के भीतर बन गई। इस घटना के पश्चात् लगभग एक वर्ष तक सोच-विचार करते रहे कि भगवान् शिव जी के साथ की गई प्रतिज्ञा को पूरा कैसे किया जाए। वर्ष भर विचार-विमर्श करने पर भी जब कोई भी पक्का निश्चय नहीं बना पाया तो भगवान् शिव जी की कृपा से उनके श्वशुर श्री राजाराम आकूत के दुर्व्यव्यवहार ने उस प्रतिज्ञा को पूरा करने के लिए तदनुकूल तात्कालिक निमित्त को बना ही दिया और **मार्गशीर्ष कृष्ण पक्ष तृतीया, संवत् १९८५ (सन् १९२८) को प्रातः ९ वजे** घर छोड़कर चले ही गए। किसी विधान के अनुसार घर को छोड़ा नहीं, अपितु इच्छा-पूर्वक चले गए। यह भी प्रतिज्ञा नहीं की कि पुनः उस घर में नहीं आना है। अपितु अविधिपूर्वक सामान्य ढंग से चल ही पड़े। चलने के अनन्तर भी कई एक बार संकल्प किया कि पुनः घर को देखने जाएं। परन्तु जगदम्बा ने हेतु ऐसे उपस्थित कर दिए कि वर्षों जा ही नहीं पाए। अनन्तर सन् **१९६५** में जब वाराणसी में 'तन्त्र-सम्मेलन' हुआ था तो उस समय वहां जाकर अपने घर भी गए, परन्तु बस एक अतिथि के रूप में घर के सदस्य के रूप में नहीं। तब अपनी पत्नी से भी मिले, परन्तु पति के रूप में नहीं, अपितु गुरु के रूप में। वैसे पत्नी से बहुत पहले भी एक बार भेंट हुई थी और उसके साथ पत्र व्यवहार कुछ वर्ष पहले से ही चल रहा था। उन बातों पर अगले प्रकरणों में विस्तार से प्रकाश डाला जाएगा।

तन्त्र सम्मेलन के अनन्तर पूज्यपाद जी का पत्र व्यवहार अपने छोटे भाई

से भी चलता रहा। आगे कुछ वर्षों में कभी-कभी वाराणसी आते भी रहे और अपने निकट सम्बन्धियों की आर्थिक सहायता भी करते रहे। उनके सूटकेस से प्राप्त सम्बन्धियों के द्वारा लिखे गए पत्रों से इन बातों पर प्रकाश पड़ता है। अपनी सौतेली माता के निधन के अवसर पर भी वे वाराणसी आए। तदन्तर अपने कनिष्ठ भ्राता **श्री रामचन्द्र शास्त्री** के तथा अपनी पत्नी **श्रीमती शीलवती** के देहावसान पर भी वाराणसी आए। पत्नी का क्रिया कर्म भी भली भांति करवाया। बहुत वर्ष पूर्व उन्होंने लायलपुर से उनको एक पत्र लिखा था जिसमें आध्यात्मिक उन्नति के मार्ग में प्रगति के लिए उपदेश लिखकर भेजा था। कई वर्षो के अनन्तर वृन्दावन में पत्नी से उनकी भेंट भी हुई थी और उस अवसर पर उन्होंने उसे शाम्भवी योग-विद्या सिखा दी थी। उनके एक सम्बन्धी ने **श्री रत्नलाल जी** को जो बातें कह दी हैं उनके अनुसार उनकी पत्नी शीलवती ने आध्यात्मिक क्षेत्र में योग साधना के द्वारा काफी प्रगति की की थी।

वाराणसेय जीवन के एक साथी के विषय में उन्होंने एक विचित्र घटना को स्वयं सुनाया था। तदनुसार जब वे वाराणसी में अध्ययन करते थे तो वहां उनकी घनी मित्रता एक मध्य भारतीय युवक से हुई थी। वह युवक मध्य भारत के किसी नगर में, सम्भवतः उज्जैन में (मुझे पूरी तरह से स्मरण नहीं) एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न हुआ था। छोटी अवस्था में ही अपने घर वालों से आग्रह करता रहा कि उसका उपनयन किया जाए। तदनुसार उचित आयु में उसका उपनयन संस्कार हुआ। तब से वह गायत्री-उपासना भी करता रहा और विद्याध्ययन के लिए वाराणसी आया। प्रति-मास उसे घर से पच्चास रुपए का मनीआर्डर आया करता था। फिर भी वह सन्तोष वृत्ति से हीं रहता था। अल्प व्यय से गुजारा करता था। मनी आर्डर को लेते ही केवल उतने रुपए अपने पास रखता था जितने से सन्तोष वृत्ति से निर्वाह चले। शेष रुपए दरिद्र छात्रों को दान दिया करता था। उसका नाम था **श्यामाचार**। वह स्थान-स्थान पर दीवारों पर चाक से अपना नाम लिख दिया करता था। ऐसी उसकी आदत थी।

वाराणसी में श्यामाचार ने विद्याध्ययन को पूरा नहीं किया। अधूरी शिक्षा प्राप्त करके ही साधु बनकर हिमालय को चला गया। कई वर्षों के पश्चात् पुनः वाराणसी आकर अपने मित्रों से मिला। उन्हें अपने साधु जीवन की कई एक अनोखी घटनाएं सुना दीं। उनमें से एक घटना यह है—कोई साधु उसे अपने साथ हिमालय की किसी घाटी में ले गया। वहां दोनों ने दो दिनों के लिए पक्के 'रोठ' (एक प्रकार की घी से मिश्रित सूखी रोटी) बनाकर साथ लिए और एक कन्दरा में प्रवेश किया। दूसरे दिन कन्दरा के दूसरे द्वार

से जब बाहर निकले तो पर्वतमालाओं से घिरी हुई एक अतीव सुन्दर स्थली में प्रविष्ट हो गए। उस दिव्य स्थली में अनेकों सुन्दर स्त्रियां विचरण कर रही थीं। सबकी सब नग्न घूम रही थीं। वहां उन्हें कोई भी पुरुष कहीं नहीं दीख पड़ा। फिर एक स्त्री उनके लिये खाना-दाना लेकर आई और उनके ठहरने के बाद एक और नग्न स्त्री ने आकर कहा कि उनकी स्वामिनी का यह आदेश है कि इस युवा अतिथि को वापस भेज दिया जाए, क्योंकि इसे यहां रहने का अधिकार नहीं है। दूसरे दिन उसी तरह से रोठ बनाकर उसे दे दिये गए और उसी गुफा के मार्ग से वापस लौटाया गया।

दूसरी बात उसने यह बताई कि उसने निकृष्ट धातुओं को सोने में परिवर्तित करना भी सीख लिया है। फिर अपने एक मित्र को और पूज्यपाद जी को सोना बनाने की विधि को सिखा देने का भी वचन दिया। तदनन्तर अपनी धनराशि का कुछ भाग उस दूसरे मित्र के पास रखकर श्यामाचार उज्जैन चला गया। वहां से लौटकर धनराशि को वापस लेने की और सोना बनाने की विधि को सिखाने की बात को पुनः कह गया। कुछ ही समय के पश्चात् यह सुना गया कि श्यामाचार ने उज्जैन में शरीर छोड़ दिया। उसके मित्र ने उसकी धनराशि में कुछ और धन डालकर उसके निमित्त से भण्डारा किया। साधुओं को खिला दिया। श्यामाचार के द्वारा बताई गई ऐसी बातों पर पूंज्यपाद जी को बड़ा आश्चर्य होता रहता था। उन बातों को वे असत्य भी नहीं घोषित कर सकते थे, क्योंकि श्यामचार असत्य नहीं बोला करता था। तो पूज्यपाद जी पारमेश्वरी लीला की विचित्रता को ऐसी घटनाओं में देखा करते थे।"

उस युग में वाराणसी में **श्री तारानन्द** नाम के एक संन्नासी आया करते थे। वे वेदान्त केविवर्त्तवाद पर विशेष श्रद्धा रखते थे। पूज्यपाद जी के साथ उनका वाद-विवाद हुआ। अपरोक्ष अनुभव पर आश्रित उनकी युक्तियों से श्री तारानन्द जी प्रभावित तो हो गए, परन्तु विवर्त्तवाद के प्रति विशेष श्रद्धा के कारण उनसे यह कहा कि ऐश्वर्यवाद की पुष्टि के लिए शास्त्र प्रमाण प्रस्तुत करें। पूज्यपाद जी ने तब पारमैश्वर्य सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने वाले ग्रन्थों का विशेष अध्ययन नहीं किया था। अतः श्री तारानन्द जी बोले—"शास्त्र अनन्त हैं। आप उनमें से अभीष्ट प्रमाणों को स्वयं ढूंढ़ लेवें। मुझे प्रमाण ढूंढ़ने की कोई भी आवश्यकता नहीं है। मेरे पास तो अपनी अपरोक्ष अनुभूति ही एक दृढ़तर प्रमाण है।"

बाल्यकाल में और नवयौवन में पूज्यपाद जी को **कांग्रेस** के साथ काफी सम्पर्क रहा। स्वतन्त्रता-आंदोलन में उन्हें काफी दिलचस्पी रही। सरदार भगतसिंह के साथी **राजगुरु** से उनकी घनिष्ठ मैत्री थी। कांग्रेस के

जलसों में भी वे भाग लेते रहे। पूज्यपाद जी को **गांधी जी** के आन्दोलन के साथ दिलचस्पी तो थी परन्तु धर्म में उनका हस्तक्षेप उन्हें पसन्द नहीं था। उसे वे उनकी एक अत्यन्त अनधिकार चेष्टा समझते थे। एक बार गांधी जी जब वाराणसी आए थे तो वे उनसे मिले। मिलने पर पूछा कि क्या आप शास्त्रों में बताए हुए और ऋषियों के द्वारा उपदिष्ट धर्म के सिद्धांन्तों को जानते हैं। गांधी जी ने उत्तर दिया कि वे न तो शास्त्रों को जानते हैं और न ही ऋषियों के विचारों को। फिर यह भी कहा कि इन बातों को पण्डित लोग जानते हैं। इस पर पूज्यपाद जी ने इस तरह से आक्षेप किया—"**आपका वेष तो ऋषियों का जैसा है तो उससे लोगों को धोखा लगा करता है। वे यह समझ बैठते हैं कि आपके धर्मोपदेश ऋषियों और शास्त्रों के उपदेश हैं। आप इस तरह से अन्याय करते हैं। आपको चाहिए कि उपदेश देने से पहले अपनी वास्तविक स्थिति को जतलाते हुए श्रोताओं को स्पष्ट कह देवें कि—भाइयों यदि आपको शास्त्रों और ऋषियों के धार्मिक विचारों को जानने की इच्छा हो तो आप पण्डितों के पास जाएं। यदि मेरे अपने व्यक्तिगत विचार सुनने हों तो यहां सुनें**। उनके ऐसे आक्षेप करने पर पास बैठे महानुभाव पूज्यपाद जी को अबोध बालक समझ कर डांटने लगे। परन्तु गांधी जी ने उन्हें रोकते हुए कहा कि इसे मत रोको कहने दो जो कहना चाहता है। फिर पूज्यपाद जी ने खरी-खरी सुनाते हुए कई एक प्रश्न किए। गांधीजी शान्ति-पूर्वक सुनते रहे। कोई भी उत्तर नहीं दिया। तदनन्तर पूज्यपाद जी मां कस्तूरबाबाई से मिले। उनसे भी धर्मोपदेश की बातें छेड़ लीं। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में यही कहा कि उन्हें गांधी जी के अनेकों तरीके जरा भर भी पसन्द नहीं परन्तु वह क्या करें। पतिव्रता होते हुए पति के आदेशों पर चलना पड़ता है, चाहे वे जैसे भी हों।

कांग्रेस के जलसे में पूज्यपाद जी भी एक स्वयंसेवक के रूप में जब काम करते रहे तो एक बार एक स्थान पर किसी महिला ने दस रुपए का नोट कांग्रेस जलसे के व्यय के लिए दे दिया। उस नोट को स्वयंसेवकों का एक नायक खा गया, चन्दे में जमा नहीं करवाया। पूज्यपाद जी ने ऊपर के कई एक अधिकारियों के पास शिकायत की, परन्तु किसी ने कोई भी दिलचस्पी नहीं ली। तब से पूज्यपाद जी ने कांग्रेस के कार्यों में सक्रिय भाग लेना ही छोड़ दिया, यद्यपि स्वतन्त्रता के लिए किए गए आन्दोलनों में उन्हें सदैव घनी दिलचस्पी बनी ही रही।

स्वतन्त्रता आन्दोलन जिन दिनों बहुत जोरों पर चलता था, उन दिनों की एक और घटना उन्होंने सुनाई। उस समय **एनीबेसेंट** नामक यूरोपीय महिला भारत में **थियोसोफिकल सोसाइटी** को चलाती हुई धर्म-प्रचार कर रही थीं।

लोगों के हृदयों में उनके प्रति बड़ा सम्मान था। आन्दोलन के दिनों एक बार ऐनीबेसेंट ने एक विज्ञापन छपवाकर उसे वाराणसी के बाजारों में स्थान-स्थान पर दीवारों पर लगवा दिया। उस विज्ञापन में ऐनीबेसेंट नेअपनी आध्यात्मिक अनुभूति को इस प्रकार से लिखा था।

"कल रात को जब मैं ध्यान में मग्न हो गई थी तो मैं ऊपर के एक दिव्य लोक में पहुंच गई। वहां मुझे एक दिव्य महानुभाव के दर्शन हुए। उन्होंने अपने आपको मैत्रेय बुद्ध बताते हुए मुझे कहा कि भारत के लिये अंग्रेजी राज्य बहुत हितकर है। यह राज्य चिरकाल तक बना रहेगा। इस कारण भारतीय जनता से कह दो कि इस शासन के विरुद्ध आन्दोलन को बन्द करके शान्ति को अपनाएं।" उस विज्ञापन के उत्तर में पूज्यपाद जी के विद्यालय में किसी उच्च श्रेणी में पढ़ने वाले एक युवा छात्र ने उस विज्ञापन पत्र से चौगुने कागज पर एक विज्ञापन को छपवा कर दूसरे ही दिन बाजारों में सभी दीवारों पर लगवा दिया। उस विज्ञापन में यह लिखा था **"कल सायंकाल जब मै ध्यान में मग्न था तो मैं एक दिव्य लोक में पहुंच गया वहां मुझे कैलास पति भगवान् शिव जी के दर्शन हो गए। उन्होंने बड़े प्यार से मुझे कहा कि शाबाश भारतवासियों शाबाश खूब आन्दोलन मचाओ और अंग्रेजी शासन से मुक्त होकर स्वतन्त्र हो जाओ। भारत माता की खूब सेवा करो। मेरा आशीर्वाद तुम्हें है तुम लोग शीघ्र ही विदेशीय शासन से स्वतंत्र हो जाओ। हिम्मत मत हारो। जल्दी स्वतन्त्र हो जाओगे।"**

उन दिनों उत्तरी भारत में आर्य समाज के प्रचार का बड़ा जोर था। समाजी नेता अपनी रुचि के अनुसार शास्त्रों के वाक्यों को लेकर के और अपने अभिप्राय के अनुसार उनकी व्याख्या करते हुए सनातन धर्म पर बड़े आक्षेप किया करते थे। पूज्यपाद जी तब बालक ही थे। उन्होंने स्वयं धर्मशास्त्रों का अध्ययन नहीं किया था। इन एक पक्षीय उपदेशकों से कुछ समय प्रभावित होते रहे। एक बार आर्यसमाज के मंच पर से वे भी सनातन रीतियों की आलोचना कर बैठे। दूसरे ही दिन जब बाजार से जा रहे थे तो सामने एक पूजनीय विद्वान् के दर्शन हुए। पूज्यपाद जी ने उन्हें प्रणाम किया, परन्तु पण्डित जी ने मुख दाईं ओर फेर कर उनके प्रणाम को स्वीकार नहीं किया। वे भी दाईं ओर मुड़कर जब प्रणाम करने लगे तो पण्डित जी बाईं ओर को मुड़ गये। दो तीन बार ऐसा करने के पश्चात् उन्होंने पण्डित जी से पूछा कि वे उनके प्रणाम को स्वीकार क्यों नहीं कर रहे हैं। इस पर पण्डित जी बोले कि "तुम धर्म के विरुद्ध प्रचार क्यों कर रहे हो। आर्य समाज के मंचों पर सनातन परम्परा के विरुद्ध भाषण क्यों दे रहे हो।" पूज्यपाद जी ने उत्तर दिया—**"बीसों विद्वान् तरह-तरह के भाषण देते रहते हैं। मैं अभी एक अबोध बालक हूं। मेरे**

भाषण का क्या महत्त्व है। इसका प्रभाव सनातन जनता पर क्या पड़ेगा।" तब पण्डित जी बोले—'देखो तुम एक विद्वत्कुल के पुत्र हो। तुम्हारे कुल की प्रतिष्ठा के कारण तुम्हारे द्वारा कही हुई बातों में लोग काफी वजन मान सकते हैं और उससे सनातन धार्मिक परम्परा पर काफी दुष्प्रभाव पड़ने की आशंका है। फिर मैं यह पूछ रहा हूं कि तुम औरों के द्वारा कही जाने वाली बातों में क्यों बहक जाते हो। स्वयं शास्त्रों का अध्ययन करके स्वयं जान लो कि कौन-सी बात शास्त्रों के अनुकूल है और कौन प्रतिकूल है।" इस उपदेश को सुन लेने पर उन्होंने पण्डित महोदय की बात को मान कर जब स्वयं शास्त्रों को पढ़ा तो उन्हें इस बात का निश्चय हो गया कि आर्य समाजी प्रचारक शास्त्रों में कहे हुए अनेकों वाक्यों को अपने बिचारों के अनुसार एक कड़ी में बांध कर उनकी अयथार्थ व्याख्या करते हुए तथा अयथार्थ सिद्धान्तों का प्रचार करते हुए शास्त्रों के साथ घोर अन्याय करते हैं। तब से उन्होंने पुनः कभी भी आर्यसमाजी मंच का आश्रय नहीं लिया। परन्तु सनातनी परम्पराओं पर स्थिरतया चलते हुए भी विचारों में और व्यवहारों में सदा काफी उदारता को अपनाते रहे। उन्होंने कभी भी संकुचित दृष्टि को नहीं अपनाया। सदा समुचित ढंग से यथार्थ विचार को करते हुए उदारतया जीवन व्यवहार को चलाते रहे। स्पर्श दोष का सदा निवारण करते हुए भी अस्पृश्य माने जाने वाले लोगों से हार्दिक सहानुभूति का और उनकी हितकामना का परिचय सदा देते रहे। उनका यह सिद्धान्त था कि अस्पृश्य जनता का वैसा उद्धार किया जाना चाहिए जिससे वह भी इस तरह से स्पृश्य बन जाए कि स्पर्श दोष की शंका के लिए भी कोई अवसर शेष न रहने पाए।

जब पूज्यपाद जी अभी एक बालक विद्यार्थी ही थे तो वाराणसी के विद्वानों ने सन् १९२३ ई० में एक कवि सम्मेलन का आयोजन किया। उस सम्मेलन में तोतों की जोड़ी के परस्पर वार्तालाप के विषय पर कविताएं सुना दी गई। उस अवसर पर पूज्यपाद जी यद्यपि एक अल्पवयस्क विद्यार्थी थे, फिर भी उन्होंने भी एक लघुकविता का निर्माण करके उस सम्मेलन में उसे सुना दिया। उसे सुन लेने पर वह सारा विद्वत् समाज इस तरह से अतीव सन्तुष्ट हो गया कि उस **"पिक प्रत्युक्ति"** नामक कविता संग्रह में बाल-कवि श्री वैद्यनाथ की उस कविता को भी प्रकाशित कर दिया। इस तरह से उनका नाम कवियों की गणना में बाल्यकाल में हीआ ा गया।ऐस ा प्रतीत होता है कि उनकी उपलब्ध कृतियों में वह पिक प्रत्युक्ति **सर्व प्रथम रचना है।**

पूज्यपाद जी के जयपुर वाले भक्तों ने "आचार्य श्री अमृतवाग्भव दर्शन स्मारिका में सन् १९८४ में जिस **"देव्या स्तोत्रम्"** को प्रकाशित कर दिया, वह स्तोत्र भी सम्भवतः उनके बाल्यकाल की ही एक और रचना है। उसमें

वार

निम
आर
दी,
के
के
परं
उन
निवे
विद्व
प्रक

चरि
हमा
से
मिले

प्राप
१६
शरी
न क
कर
प्रति
इस
विव
के
कि
को
कृ.
इच
की
को
दुः

है

अध्याय ५

विद्याभ्यास

पूज्यपाद जी ने विशेष विद्याभ्यास वाराणसी में तात्कालिक **गवर्नमेंट संस्कृत कालेज** में ही किया। उस कालेज को कभी **कुईंज संस्कृत कालेज** कहते थे। अंग्रेजी राज्य के प्रारम्भिक काल में जब वार्न हेस्टिंग्स भारत के गवर्नर-जनरल थे तो उस समय सरकार ने कलकत्ता में और वाराणसी में एक-एक कालेज की स्थापना की थी। दोनों ही विद्यालय प्राचीन पद्धति से संस्कृत में शिक्षा देते रहे। अंग्रेजी ढंग की शिक्षा बहुत वर्षों के पश्चात् भारत में प्रचलित कर दी गई। वाराणसी का वही संस्कृत कालेज अब '**संपूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय**' कहलाता है। गत शताब्दी के बड़े-बड़े प्रकाण्ड विद्वानों में से अधिकांश महानुभावों ने उसी महाविद्यालय में विद्या को ग्रहण किया है। वर्तमान युग तक संस्कृत-शिक्षा पद्धति में उसी संस्था की सर्वोच्च प्रधानता मानी जाती रही। यद्यपि स्वतन्त्रता के युग में वहां की शिक्षा का स्तर क्रम से घटता ही आ रहा है। पूज्यपाद जी को संस्कृत भाषा का ज्ञान अपने घर में ही अपने ताया **श्री मोरेश्वर शास्त्री** से प्राप्त हुआ था। बुद्धि अत्यन्त प्रखर थी। अत: महाविद्यालय में जिस-जिस ग्रन्थ को वे पढ़ते रहे उस-उस ग्रन्थ के वास्तविक तात्पर्य को भली-भांति समझ भी लेते रहे और उसे दूसरों को समझा भी सकते थे।

उस युग में उस महाविद्यालय में अनेकों प्रकाण्ड विद्वान् अध्यापन किया करते थे। जिन-जिन विद्वानों से उन्होंने विद्या प्राप्त की उन सबके प्रति उन्होंने अपनी श्रद्धांजलियां श्लोकबद्ध रचना के द्वारा लिखकर रखी हैं। फिर यह भी लिखकर रखा है कि कालेज से बाहिर भी किस-किस विद्वान् से उन्होंने किस-किस ग्रन्थ का अध्ययन किया। उन-उन विद्वानों के प्रति भी श्रद्धांजलियां संस्कृत श्लोकों में लिखी हैं। संस्कृत महाविद्यालय में प्रविष्ट होने से पूर्व उन्होंने गणित को **श्री त्र्यम्बक दीक्षित नेने** से और **श्री अण्णा साहिब** से भली-भांति सीख लिया। साथ इतिहास भूगोल आदि भी पढ़ते रहे।

महाविद्यालय में प्रविष्ट हो जाने पर वहां उन्होंने **श्री भालचन्द्र जी तैलंग** से **लघुकौमुदी, रघुवंश, अभिज्ञान शाकुन्तल किरातार्जुनीय, शिशुपालवध**

आदि ग्रन्थों के वे अंश पढ़ लिए जो उस समय परीक्षाओ में नियत थे। तैलंग जी **श्री गंगाधर शास्त्री सी० आई० ई०** के पुत्र थे और राजकीय संस्कृत महा-विद्यालय में अध्यापक थे। इसी महा विद्यालय में पूज्यपाद जी ने **श्री दामोदर लालजी गोस्वामी** से **न्याय सिद्धान्त मुक्तावली** के अनुमान प्रकरण को और **नैषधीय चरित** महाकाव्य के कई एक सर्गों को पढ़ लिया।

कौङ्कण ब्राह्मण **श्री गोपाल शास्त्री नेने** से पूज्यपाद जी ने सारे के सारे **पाणिनीय व्याकरण**, की ओर अंशतः **न्याय दर्शन वैशेषिक दर्शन, वेदांत, मीमांसा, काव्य** आदि की और **स्मृति शास्त्रों** की भी शिक्षा प्राप्त की। वे भी राजकीय संस्कृत महाविद्यालय में अध्यापक पद पर काम करते थे। उनसे पूज्यपाद जी ने ग्रन्थ सम्पादन और ग्रन्थ संशोधन की समुचित प्रक्रियाओं को भी सीख लिया।

उस समय काशी में एक विशेष योग्यता वाले प्रकाण्ड विद्वान् **श्री वीरेश्वर शास्त्री** थे, जो जयपुर के राजकीय संस्कृत महाविद्यालय में सुप्रतिष्ठत थे। प्रायः काशी आते रहते थे। विशेषकर अवकाशों के अवसरों पर। वे अनेकों ही विधाओं में सुनिष्णात विद्वान् थे और सारे भारत में सुविख्यात थे। उनसे पूज्यपाद जी ने **पूर्वमीमांसा शास्त्र** को, कई एक धर्मशास्त्रों (स्मृतियों) को तथा **सांख्य-शास्त्र** को और **योग-शास्त्र** को पढ़ा।

पूज्यपाद जी के विशेष गुरु **महामहोपध्याय श्री नित्यानन्द जी** पन्त थे। वे अल्मोड़ा के निवासी थे। अतः उन्हें श्री नित्यानन्द पन्त पर्वतीय कहा जाता था। उनसे पूज्यपाद जी ने **मीमांसा शास्त्र** के कई एक दुरूह ग्रन्थों को पढ़ा, शास्त्र रहस्य विज्ञान की प्रक्रिया को सीखा, लेखन शैली और वाद-विवाद की शैली को ग्रहण किया तथा अन्य-अन्य अनेकों ग्रंथों पर उनके भाषण सुने। वेदान्त विषय में भामती सहित **ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य** के प्रारम्भिक भाग पर अर्थात् चतुसूत्री पर, जो व्याख्यान उन्होंने कई एक बड़े-बड़े पण्डितों को सुना दिए, उन्हें पूज्यपाद जी ने भी सुना और यथार्थतया समझ भी लिया। तद-नन्तर पन्त जी बीमार हो गए और अगले प्रकरणों पर व्याख्यान नहीं दे पाए। पन्त जी का नामोल्लेख पूज्यपाद जी ने बहुत अधिक किया। राजकीय महाविद्यालय में पूज्यपाद जी ने क्रम से संस्कृत की अनेकों परीक्षाएं पास कीं और बड़े-बड़े सम्मान प्राप्त किए। तदनुसार **ई० सन् १९२०** में भगवान दुर्वासा की कृपा के फलस्वरूप **सम्पूर्ण व्याकरण मध्यमा** में उत्तीर्ण हो गए और स्वर्णपदक भी प्राप्त किया। **सन् १९२३** में **व्याकरण शास्त्री प्रथम खंड** में उत्तीर्ण हुए। उनके परिवार से घनिष्ठ सम्बन्ध रखने वाले विद्वान **श्री नारायण शास्त्री खिस्ते** उनकी विशेष तीव्र बुद्धि और सारग्राहिणी प्रज्ञा से काफी परिचित भी थे और प्रभावित भी थे। वे चाहते थे कि पूज्यपाद जी धर्म-

भाषण का क्या महत्त्व है। इसका प्रभाव सनातन जनता पर क्या पड़ेगा।" तब पण्डित जी बोले—'देखो तुम एक विद्वत्कुल के पुत्र हो। तुम्हारे कुल की प्रतिष्ठा के कारण तुम्हारे द्वारा कही हुई बातों में लोग काफी वजन मान सकते हैं और उससे सनातन धार्मिक परम्परा पर काफी दुष्प्रभाव पड़ने की आशंका है। फिर मैं यह पूछ रहा हूं कि तुम औरों के द्वारा कही जाने वाली बातों में क्यों बहक जाते हो। स्वयं शास्त्रों का अध्ययन करके स्वयं जान लो कि कौन-सी बात शास्त्रों के अनुकूल है और कौन प्रतिकूल है।" इस उपदेश को सुन लेने पर उन्होंने पण्डित महोदय की बात को मान कर जब स्वयं शास्त्रों को पढ़ा तो उन्हें इस बात का निश्चय हो गया कि आर्य समाजी प्रचारक शास्त्रों में कहे हुए अनेकों वाक्यों को अपने बिचारों के अनुसार एक कड़ी में बांध कर उनकी अयथार्थ व्याख्या करते हुए तथा अयथार्थ सिद्धान्तों का प्रचार करते हुए शास्त्रों के साथ घोर अन्याय करते हैं। तब से उन्होंने पुनः कभी भी आर्यसमाजी मंच का आश्रय नहीं लिया। परन्तु सनातनी परम्पराओं पर स्थिरतया चलते हुए भी विचारों में और व्यवहारों में सदा काफी उदारता को अपनाते रहे। उन्होंने कभी भी संकुचित दृष्टि को नहीं अपनाया। सदा समुचित ढंग से यथार्थ विचार को करते हुए उदारतया जीवन व्यवहार को चलाते रहे। स्पर्श दोष का सदा निवारण करते हुए भी अस्पृश्य माने जाने वाले लोगों से हार्दिक सहानुभूति का और उनकी हितकामना का परिचय सदा देते रहे। उनका यह सिद्धान्त था कि अस्पृश्य जनता का वैसा उद्धार किया जाना चाहिए जिससे वह भी इस तरह से स्पृश्य बन जाए कि स्पर्श दोष की शंका के लिए भी कोई अवसर शेष न रहने पाए।

जब पूज्यपाद जी अभी एक बालक विद्यार्थी ही थे तो वाराणसी के विद्वानों ने सन् १९२३ ई० में एक कवि सम्मेलन का आयोजन किया। उस सम्मेलन में तोतों की जोड़ी के परस्पर वार्तालाप के विषय पर कविताएं सुना दी गईं। उस अवसर पर पूज्यपाद जी यद्यपि एक अल्पवयस्क विद्यार्थी थे, फिर भी उन्होंने भी एक लघुकविता का निर्माण करके उस सम्मेलन में उसे सुना दिया। उसे सुन लेने पर वह सारा विद्वत् समाज इस तरह से अतीव सन्तुष्ट हो गया कि उस "**पिक प्रत्युक्ति**" नामक कविता संग्रह में बाल-कवि श्री वैद्यनाथ की उस कविता को भी प्रकाशित कर दिया। इस तरह से उनका नाम कवियों की गणना में बाल्यकाल में ही आ गया। ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी उपलब्ध कृतियों में वह पिक प्रत्युक्ति **सर्व प्रथम रचना है।**

पूज्यपाद जी के जयपुर वाले भक्तों ने "आचार्य श्री अमृतवाग्भव दर्शन स्मारिका में सन् १९८४ में जिस "**देव्या स्तोत्रम्**" को प्रकाशित कर दिया, वह स्तोत्र भी सम्भवतः उनके बाल्यकाल की ही एक और रचना है। उसमें

निर्माण काल का निर्देश नहीं किया गया है। पूज्यपाद जी को नव यौवन् के आरम्भ में ई० सन् १६१६/२० में भगवान् दुर्वासा ने जो शैवी योगदीक्षा दे दी, उस के अनुसार **"शाम्भवी योगविद्या"** का अभ्यास करने से उन्हें शैवदर्शन के छत्तीस तत्त्वों के रहस्यात्मक स्वरूप का साक्षात्कार हो गया उस साक्षात्कार के अनुसार सन् १६२६ ई० में उन्होंने छत्तीस तत्त्वों के रूप में प्रकट होते हुए परमेश्वर की जो स्तुति **"परमशिवस्तोत्रम्"** इस शीर्षक से लिखी, वह भी उनके विद्यार्थी जीवन की ही रचना प्रतीत होती है। उस में निर्माण काल का निर्देश नहीं किया गया है। अपने विवाह के विषय में जो पत्र उन्होंने काशी के विद्वानों के नाम लिख कर रखा था वह उनके कागजों में हमें मिला। वह इस प्रकार है— श्रीः

"मेरे प्यारे मित्रो, यह पत्र इसलिए लिखा है कि हमारे जीवन चरित्र पर अज्ञानवश कोई कलङ्क न लगाए। यद्यपि कलङ्क लगाने पर भी हमारा कोई नुकसान नहीं तो भी दुर्जनों से सदा ही डरना पड़ता है। सज्जनों में से कोई अगर इस पुरुष का जीवन चरित्र लिखे तो उसको इससे सहायता मिलेगी।

मैंने अपने पूज्य पिता जी से जगदम्बाराधना की दीक्षा उपनयन के समय प्राप्त की थी। सावित्री (गायत्री) तथा त्र्यक्षरी बाला त्रिपुराम्बा का मन्त्र सं० १६६६ चै. शु०.१० के दिन पूर्वाह्ण में प्राप्त हुआ। दुर्दैववश पिता जी का शरीर सं० १६७२ आश्विन शु ४ मं. के दिन छूट गया, अतः वे पुरश्चरणादि न करा सके। बाद मैं अनाथ और अबोध बालक था फिर भी कुछ जपादि करने लगा। उससे भगवती ने कुछ चमत्कार दिखायाया और हमने भगवती से प्रतिज्ञा की कि जब तक तेरी आज्ञा न होगीतब तक विवाह न करूंगा। परन्तु इस प्रतिज्ञा को मूर्खतावश तोड़ कर सं १६८४ वैशाख शु. १० बु. के दिन विवाह कर लिया। परन्तु भगवती रुष्ट हो गई और और इस विवाह से सुख के बदले अतीव दुःख हो गया। स्त्री समागम के पहले ही घर छोड़ना पड़ा क्यों कि अगर पुत्राद्युत्पत्तिकी ही होती तो और ज्यादा दुःख उठाना पड़ता।भगवती की आज्ञा घर छोड़ने की हुई। एकाएक उठकर चलना पड़ा सं० १६८५ मार्ग कृ. ३ शु. सुबह घर छोड़ चला गया। अब प्रारब्ध शेष दिन बिता रहा हूं। कोई इच्छा नहीं है। चित्त प्रसन्न है। भगवती ने कृपा भी कर दी है। अब सूखे पत्ते की तरह निरिच्छ परन्तु आनन्दमय जीवन बीत रहा है। कोई चिन्ता नहीं है। कोई दुःख नहीं है। कोई शङ्का नहीं है। आनन्द ही आनन्द है। आपेक्षिक सुख दुःख, सर्दी गर्मी, रात दिन आदि सभी जोड़े आनन्द रूप हो चुके हैं।

नमो मह्यं शिवायेति पूजयन् स्यां तृणान्यपि। समस्त ही जगदम्बा स्वरूप है। यहां जो जो है सच्चिदानन्द ही है। अस्तु ! शिवम् (आपका—आनंद)

शास्त्रों का पूरा अध्ययन करके सारे भारत में सच्चे धर्म के प्रकाश का प्रसार करते रहें, और इस विषय में काशी का सदा से आता हुआ सर्वश्रेष्ठ स्थान आगे भी उनके द्वारा सर्वश्रेष्ठ ही बना रहे। अतः उनकी प्रेरणा से पूज्यपाद जी सन् १९२३ में **धर्मशास्त्र शास्त्री** में प्रविष्ट हुए। **सन् १९२४ में** धर्मशास्त्र शास्त्री प्रथम खंड में कालेज की ओर स्वर्णपदक लेते हुए उत्तीर्ण हो गए। सन् १९२५ में इसी प्रकार द्वितीय खण्ड की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। उस पर उन्हें महाराष्ट्र धर्मसभा की ओर से सम्मानपूर्वक **रजत पदक** भी प्राप्त हो गया। आगे सन् १९२६ में वे तृतीय खण्ड में उत्तीर्ण हुये **आगे सन् १९२७ में** वे धर्मशास्त्र-आचार्य के प्रथम खण्ड में उत्तीर्ण हो गए। सन १९२८ में उन्होंने धर्म शास्त्र-आचार्य के द्वितीय खण्ड की परीक्षा उत्तीर्ण की।

उस युग में संस्कृत महाविद्यालय के प्रधानाचार्य **महामहोपाध्याय श्री गोपीनाथ जी कविराज** थे। वे बालक वैद्यनाथ की प्रखर बुद्धि और सारग्राहिणी प्रज्ञा पर अतीव प्रसन्न थे। उन्हीं की प्रेरणा से पूज्यपाद जी आगमिक विद्या के ग्रंथों के अध्ययन में प्रवृत्त हुए और **परमार्थसार, महार्थमंजरी परिमल** तथा **तत्व प्रकाश** को स्वयं पढ़ा और ठीक समझ लिया। श्री कविराज जी से पूज्यपाद जी का काफी घना सम्बन्ध अनेकों वर्षों तक चलता रहा। इनके विषय में पूज्यपाद जी ने स्वयं इस तरह से लिखकर रखा है—

"पूज्यवर्य पं० गोपीनाथ कविराज (वाराणसी)—इनका मेरे ऊपर अत्यन्त वात्सल्य रहा। १३ वर्ष की अवस्था मेरी थी जब पहला परिचय हुआ। ये २९ वर्ष के थे। हमारे प्रिंसिपल भी थे। मैं जब रिसर्च स्कालर हुआ तब ये ही हमारे अध्यक्ष रहे। घरवाले माता-पिता के समान इनका हमारा सम्बन्ध हो गया था। १२ वर्ष इनका सम्बन्ध अधिक रहा। (मिलना-जुलना) पाँच वर्ष तो बहुत अधिक रहा।"

पूज्यपाद जी इनके साथ अपने सम्बन्ध के विषय में बहुत बातें सुनाया करते थे। उन्होंने एक स्थान पर अपने तात्कालिक आय का ब्यौरा देते हुए यह लिखा है कि उन्हें सन् १९२१ से माधोलाल स्कालर शिप सन् १९२८ तक मिलता रहा, जो पांच रुपए से बढ़ते-बढ़ते पहले दस, फिर पन्द्रह और १९२८ में बीस रुपए हो गया था। मेरा अनुमान यह है कि यह छात्रवृत्ति उन्हें महाविद्यालय के सरस्वती भवन पुस्तकालय में ग्रन्थ सम्पादन आदि शोधकार्य के लिए मिलती रही होगी। तदनुसार उन्होंने बड़ी योग्यता से कई एक सूक्ष्म विचारपूर्ण ग्रन्थों का भी बहुत अच्छा सम्पादन किया। फिर उन्हें प्राचीन लिपियों का और प्रस्तर कला के ऐतिहासिक अध्ययन का भी बहुत अच्छा ज्ञान था। उससे यही सिद्ध होता है कि **सन् १९२१ से १९२८** तक उनका घनिष्ठ सम्बन्ध शोधकार्य के साथ बना रहा। इस कार्य को हाथ में ले लेने के विषय में उन्होंने स्वयं मुझसे ऐसा कहा था—

एक बार श्री कविराज जी ने स्वयमेव उनसे कहा कि वे सरस्वती भवन पुस्तकालय में कुछ शोधकार्य भी साथ-साथ करते रहें, साथ-साथ धर्म शास्त्र विषय का अध्ययन भी करते रहें और परीक्षाएं भी देते रहें। इस बात को पूज्यपाद जी ने एक शर्त पर स्वीकार किया। वह शर्त यह थी कि समय पर उपस्थिति का बन्धन उन पर न रहे। वे अन्य शोधकारों की अपेक्षा अधिक मात्रा में और अधिक योग्यता से काम करेंगे, परन्तु प्रतिदिन समय पर उपस्थित नहीं हो सकेंगे। श्री कविराज जी इस शर्त को मान गए। तदनुसार वे शोधकार्य में भी प्रवृत्त हो गए और पहले पहल **वृत्तरत्नाकर की नारायणीय टीका** का बहुत सुन्दर सम्पादन **सन् १९२७ में** किया और उस पर स्थान-स्थान पर संक्षिप्त या विस्तृत आवश्यक टिप्पणियां भी लिख दीं। तदनन्तर उसी वर्ष **शुद्धिचान्द्रका** को सम्पादित किया। आगे उसी वर्ष उन्होंने **नवरात्र प्रदीप** का भी सम्पादन किया। तदतिरिक्त उनके लेख के अनुसार **अधिकरण कौमुदी** का भी सम्पादन कर रखा, जिसका प्रकाशन आगे **सन् १९२७ में** हुआ जैसा कि उन्होंने मुझसे कहा है। १९२७ ई० में उनके द्वारा सम्पादित **त्रिपुरा रहस्य** (ज्ञान खण्ड) का भी प्रकाशन आगे हुआ। आगे सन् १९२८ में जब वे घर छोड़कर परिव्राजकवत् उत्तर भारत में घूमने लगे तो धर्मशास्त्र आचार्य के तृतीय खण्ड की परीक्षा उन्होंने दी ही नहीं।

लगभग **सन्** १९१९ ई० **से** १९२८ ई० तक पूज्यपाद जी का विशेष सम्बन्ध अध्ययन से, शोधकार्य से शास्त्रचर्चाओं से और विविध शास्त्रों के विशेषज्ञों से और तरह-तरह के विद्वानों से होता रहा। इस अवधि में वे स्वातन्त्र्य प्राप्ति के लिए कांग्रेस के द्वारा चलाए गए आन्दोलनों में भी काफी दिलचस्पी लेते रहे। जैसा कि पिछले अध्याय में कहा गया है। एक बार वाराणसी में **जब गांधी जी** आए थे तो उनसे भी मिले थे। उनकी धर्मप्रचार में हस्तक्षेप की कुनीति पर उनसे कुछ जटिल परन्तु यथार्थ प्रश्न भी किए थे तथा आक्षेप भी सुना दिए थे। उन सभी बातों को गांधी जी शान्तिपूर्वक सुनते रहे, परन्तु कोई उत्तर नहीं दिया। मां कस्तूरबा से भी मिले थे। उनके स्वभाव से और विचारों से काफी प्रभावित हुए थें। कांग्रेस में काम करने वालों में उन्होंने उस युग में भी स्वार्थी लोगों की संख्या को जब बढते देखा तो कुछ तटस्थ ही होते गए। परन्तु स्वातन्त्र्य के लिए किए गए आन्दोलनों की प्रगति को जान लेने में आजीवन दिलचस्पी रखते रहे। उस जीवन में विशेषतया शास्त्र-अवगाहन और शास्त्र-विचारण में ही सक्रिय बने रहे। जिन वर्षों में पूज्यपाद जी संस्कृत महाविद्यालय में पढ़ते रहे उन बर्षों में उस महाविद्यालय के वृहत्पुस्कालय के अध्यक्ष **श्री नारायण शास्त्री** खिस्ते थे। वे साहित्य-शास्त्र के रसिक थे और बहुत बड़े विद्वान् भी थे। काव्य-रचना में बहुत दिलचस्पी

रखते थे। वे भी महाराष्ट्री ब्राह्मण थे और उनके साथ पूज्यपाद जी का काफी सम्पर्क बना रहता था। उनके घर के साथ उनके काफी स्नेहपूर्ण संबंध तो सदा बने ही रहे। अतः उनके घर प्रायः आया-जाया करते थे। वहां विविध प्रकार की शास्त्र-चर्चा भी होती रहती थी। श्लोक रचना, समस्यापूर्ति आदि का क्रम चलता ही रहता था। खिस्ते जी पूज्यपाद जी की विलक्षण प्रतिभा पर मुग्ध हो जाया करते थे। उन्हें भी उन्हें खिस्ते जी की शास्त्रज्ञता औरर सिकता के कारण उनके प्रति सदा आकर्षण बना ही रहता था। खिस्ते जी के पुत्र **श्री वटुकनाथ जी शास्त्री** आयु में पूज्यपाद जी से छोटे ही थे, परन्तु उन्हें भी उनके साथ चलती रहती विद्वद्गोष्ठियो की स्मृतियां अभी तक मस्तिष्क में जागरूक ही हैं। उस समय के बड़े-बड़े प्रतिष्ठित विद्वान् पूज्यपाद जी को काफी सम्मान की दृष्टि से देखा करते थे। जैसा कि गत अध्याय में कहा गया है। एक बार उन पण्डित पुंगवों ने '**पिकोक्ति**' नामक पत्रिका का निर्माण किया। अनेकों ही बयोवृद्ध प्रौढ़ विद्वानों ने उस साहित्य सम्बन्धी उत्कृष्ट कार्य में बड़ी दिलचस्पी लेकर अतीव सुन्दर श्लोकों की रचना करते हुए अपनी काव्य-कला का खूब परिचय दिया। उस अवसर पर बड़े-बड़े गण्यमान्य विद्वानों के उस कविता-संग्रह में पूज्यपाद जैसे बालक की रचना पिकप्रत्युक्ति को भी समुचित स्थान मिल गया।

एक बार वाराणसी में विविध नगरों से आए हुए विद्वानों की सभा में शास्त्रार्थ हुआ। एक विकट समस्या सनातनी जनता के सामने खड़ी हो गई थी। वह यह थी कि जिस किसी ग्राम में एक ही कुआं है उस ग्राम में जहां से ब्राह्मण आदि उच्च वर्णपानी भरते हैं, क्या वहीं से "हरिजनों" को भी पानी भरने का अधिकार दिया जाए या नहीं। उन ग्रामों में रहने वाले ईसाई और मुसलमान तो उच्च वर्णों के कुएं में से पानी भरा ही करते थे, परन्तु तात्कालिक चमारों, भंगियों आदि चाण्डालों को वहां पानी भरने नहीं दिया जाता था। उन्हें ईसाइयों और मुसलमानों की अपेक्षा विशेष अपवित्र माना जाता था। पूज्यपाद जी तब यौवन में थे और उनके विचार ऐसी बातों में काफी उदार तो थे, परन्तु शास्त्र विरुद्ध भी नहीं थे। उन्होंने अपना यह मत प्रस्तुत किया कि "हरिजन" हिन्दु हैं; अतः वे मुसलमानों और ईसाइयों की अपेक्षा पवित्र हैं। तो व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि प्रत्येक ग्राम में तीन-तीन कुएं हों। एक में से तीन वर्णों की जनता पानी भरे, दूसरे में से हरिजन भरें और तीसरे में से ईसाई और मुसलमान जिन्हें शास्त्रों में "म्लेच्छ" कहा गया है। उन्होंने यह तर्क दिया कि तथाकथित "चाण्डाल" म्लेछों की अपेक्षा पवित्र हैं और 'म्लेछ' उनकी तुलना में अपवित्र हैं। तो जहां एक ही कुआं हो वहां यदि मुसलमान और ईसाई त्रैवर्णिकों के कुएं में से ही पानी भरते

हो वहां उनसे पहले 'हरिजन' पानी भरने के अधिकारी हैं। उन्होंने यह प्रमाण प्रस्तुत किया कि धर्मशास्त्र में कहा गया है कि गंगाजल यदि चाण्डाल के पात्र में भी भरा गया हो तो वह उच्छिष्ट नहीं हो जाता है। इस पर दूसरे पक्ष के विद्वानों ने यह कहा कि धर्मशास्त्रों के ऐसे वाक्य अर्थवाद मात्र है जिनका प्रयोजन गंगाजल की महिमा को जतलाना है, चाण्डाल पात्र की पवित्रता। को नहीं इस तर्क के उत्तर में पूज्यपाद जी ने एक और स्मृति वाक्य प्रस्तुत किया जिसमें यह बताया गया है कि म्लेच्छपात्र में रखा हुआ गंगाजल भी उच्छिष्ट हो जाता है। उस वाक्य के आधार पर उन्होंने धर्मशास्त्र के प्रमाणों से इस बात का स्पष्टीकरण कर दिया कि म्लेच्छापात्र चाण्डाल पात्र की अपेक्षा अधिक उच्छिष्ट होता है। अतः चाण्डाल म्लेच्छों की तुलना में अपेक्षाकृत शुद्ध हैं। इसलिए जिस गांव में एक ही कुआं हो उसमें से त्रैवणिकों के अनन्तर पानी भरने का अधिकार पहले हरिजनों को मिलना चाहिए और तदनन्तर मुसलमानों और ईसाइयों को, जो हिन्दू हैं ही नहीं। इस बात पर उपस्थित सभी विद्वानों ने पूज्यपाद जी को साधुवाद दिया और **श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी** ने कहा कि देश को ऐसे ही विद्वानों की आवश्यकता है जो समस्त हिन्दू समाज को ही हाथ में रखें, किसी को ठुकराएं नहीं और फिर भी प्राचीन परम्पराओं को शास्त्रों के आदेशों के अनुसार निभाते ही रहें और साथ-साथ शास्त्र वाक्यों के यथार्थ तात्पर्य को भी समझाते रहें।

वैसे पूज्यपाद जी प्रायः शास्त्रार्थ करने में रुचि नहीं लेते थे। उन्हें डर लगता था कि यदि किसी वयोवृद्ध और सम्मानार्ह पण्डित को शास्त्रार्थ में हराना पड़े तो उसके मन को खेद हो जाएगा जिसका फल शुभ नहीं होगा। कभी किसी प्रसंग में कोई अयथार्थ बात सामने यदि आती थी तो विनय पूर्वक बड़ी बुद्धिमत्ता से उसका संशोधन उस तरह से करवाते थे कि किसी भी विद्वान् का निरादर नहीं होने पाता था। श्री नारायण शास्त्री खिस्ते साहित्य के अतीव मर्मज्ञ विद्वान् थे, परन्तु बहुत बार उनके द्वारा की गई श्लोक रचना या समस्यापूर्ति इतनी यथार्थ और हृदयङ्गम नहीं होती थी जितनी पूज्यपादजी के द्वारा की गई। खिस्ते जी को उनसे बहुत स्नेह था, अतः ऐसे अवसरों पर उन्हें ईर्ष्या और द्वेष के बदले आह्लाद ही होता था, ठीक वैसे ही जैसे चक्रव्यूह के युद्ध में अभिनन्यु की शस्त्रों और अस्त्रों में बालन की योग्यता को देखते हुए द्रोणाचार्य को बड़ा हर्ष हुआ था और उन्होने कहा था—

अर्दयन्नपि में प्रणान् पोडयन्नपि सायकैः।
अति मां नन्दयत्येष सौभद्रो विचरन् रणे ॥

अर्थ—युद्ध में फुर्तीलेपन से विचरण करता हुआ "यह सुभद्रापुत्र अभिमन्यु अपने बाणों से मुझे पीड़ित करता हुआ भी और मेरे प्राणों तक को क्लेश देता हुआ भी मुझे अतीव आनन्द दे रहा है।" इस तरह से वाराणसी का सारा विद्वत्समाज पूज्यपाद जी को उनकी युवावस्था में ही पर्याप्त सम्मान दिया करता था, यद्यपि कुछ क्षुद्रजन द्वेष भी करते थे।

पूज्यपाद जी की सारग्राहिणी बुद्धि के ऐसे विलक्षण विकास के कारणों में से एक तो उनके विद्याधर लोक के संस्कार ही थे परन्तु उसके अतिरिक्त मुख्य तीन कारण थे। एक कारण यह था कि वे बिना प्रमाद के नित्यप्रति गायत्री मन्त्र का जप तथा अपनी इष्ट देवी बाला त्रिपुरा की आराधना नियमपूर्वक किया करते थे। जैसा कि पीछे कहा गया है, यह त्रैपुरी विद्या उनकी कुल क्रमागत विद्या थी और उपनयन के समय उनको अपने पूज्य पिता श्रीकृष्ण शास्त्री से प्राप्त हुई थी। शास्त्री जी को इस विद्या की दीक्षा अपने चाचा वामनभट्ट ने दी थी, जिन्हें यह विद्या अपने पूज्य पिता श्री रामकृष्ण भट्ट से मिली थी।

दूसरा कारण एक विचित्र घटना के परिप्रेक्ष में बन गया। बात ऐसी हुई कि यद्यपि पूज्यपाद जी विद्याधर संस्कार से अतीत मेधावी थे, शास्त्र तत्व को शीघ्र ही यथार्थतया समझ लेते थे और उस तत्त्व की स्मृति भी उन्हें ठीक रहती थी, फिर भी परीक्षा की तैयारी करने के नीरस उपक्रम में उनका चित्त प्रायः लगता ही नहीं था। शास्त्र का अध्ययन उन्हें सरस लगता था, परन्तु परीक्षा की तैयारी नीरस लगती थी। अतः जब वे सोलह वर्ष की आयु के थे तो उन्होंने पीछे व्याकरण मध्यमा के प्रथम खण्ड की परीक्षा दी ही नहीं थी। आगे द्वितीय खण्ड को भी तैयार करना था। इस तरह से एक साथ ही आठ पत्रों की तैयारी करनी थी। उस भारी और अत्यन्त रूक्ष काम में उनका चित्त लगता हीं नहीं था।

ऐसी परिस्थिति में एक बार उनके कोई सहपाठी तथा अन्य ईर्ष्यालु छात्र बालगोष्ठी में उनकी योग्यता की निन्दा करने लगे। उस गोष्ठी में उनका एक स्नेही मित्र भी उपस्थित था। उसने ललकारते हुए कहा कि वे सारे ही पत्रों की परीक्षा एक साथ दे देवेंगे और अच्छे अङ्क लेकर सम्पूर्ण मध्यमा परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाएंगे। छात्र-गोष्ठी को ऐसी ललकार सुना कर वे मित्र महा-विद्यालय के दफ्तर में गए और मध्यमा परीक्षा के दोनों खण्डों के फार्म ले आए। ले आकर अतीव आग्रह करते हुए पूज्यपाद जी से फार्म भरवा दिए और फीस भी दिलवा दी। ऐसी स्थिति में पूज्यपाद जी को अतीव चिन्ता होने लगी कि आठ पत्रों की तैयारी कैसे की जा सके, जब एक की भी तैयारी नहीं की है। बड़े ही व्याकुल हो गए। अन्ततोगत्वा जब कोई उपाय नहीं सूझा तो

उन्होंने अपनी इष्ट देवी बाला त्रिपुरा की शरण ले ली । काव्य माला के तेरहवें गुच्छक में से भगवान दुर्वासा के द्वारा निर्मित **'श्रीत्रिपुरामहिमस्तोत्र'** की नकल उतार ली और यह संकल्प किया कि चालीस दिन अर्धरात्रि के समय धूप दीप जला कर इस स्तोत्र का पाठ किया करूं । ऐसे अनुष्ठान को उन्होंने समुचित मुहूर्त्त पर आरम्भ कर ही दिया । अठतीस दिन तो नियम पूर्वक पाठ अच्छी तरह से किया, परन्तु उन्तालीसवें दिन पाठ करते करते नींद आ गई । पाठ का भङ्ग हो गया तो पुनः आरम्भ से ही पाठ करने लगे । फिर नींद आ गई । और पाठ टूट गया । इस तरह से बीसों बार आरम्भ से ही पाठ करने का यत्न किया, परन्तु एक बार भी पाठ पूरा नहीं हो सका, जब तक उषः कालका प्रकाश चारों ओर फैल गया । इस घटना से अत्यन्त निराश और खिन्न हो गए । अगले चालीसवें दिन सोचा कि पाठ करने में फल की आशा नहीं रह गई थी । फिर भी विचार यही ठहरा कि पाठ कर ही लिया जाए । करने में कोई हानि नहीं । कुछ न कुछ पुण्यफल तो है ही । ऐसा निश्चय करके पूर्ववत् पाठ करने बैठे और पाठ पूरा हो गया । पाठ के पूरा होते ही भवन में कोई विचित्र प्रकाश छा गया और उस प्रकाश के भीतर एक **महापुरुष के दर्शन** हुए । उन्होंने बड़े ही स्नेह से व्यवहार किया और बड़ी दिलचस्पी से पूज्यपाद जी को शाम्भवी मुद्रा के समेत उत्कृष्टतर निर्विकल्प शाम्भवयोग की प्रक्रिया को सर्वाङ्ग सम्पूर्ण ढङ्ग से सिखा दिया । सिखाते हुए कहा, कि **"आप बस इसी योग का अभ्यास करते रहें । इससे आपकी सभी व्यवहारिक और पारमार्थिक समस्याएं स्वयमेव सुलझ जाएंगी । आप को कुछ और करने की कोई आवश्यकता ही नहीं है ।"** उस योग साधना को भली भांति सीख कर पूज्यपाद जी ने उनसे प्रश्न किया, **"आप कौन महानुभाव हैं ।"** इसका उत्तर उन्होंने यह दिया, **"जिस स्तोत्र का पाठ आप करते आए हैं, उसी का ऋषि मैं हूं ।"** तब पूज्यपाद जी समझ गए कि ये महापुरुष **भगवान् दुर्वासा** हैं। **सन् १९६२** में जब पूज्यपाद जी कश्मीर में **कुलग्रामनामक** स्थान पर हमारे घर में कुछ समय ठहरे थे तो उन्होंने मेरी प्रेरणा से भगवान् दुर्वासा के यथा दृष्द शब्दचित्र का निर्माण किया उसे **"देषिक दर्शनम्"** इस शीर्षक में प्रकाशित किया जा चुका है ।

इस घटना से पूज्यपाद जी की चिन्ता दूर हो गई । पुस्तकों की आवृत्ति करते रहे । परीक्षा के समीप आने पर जिस पत्र की परीक्षा आने वाली होती थी उस पत्र के कई एक प्रश्न उनकी दृष्टि के सामने लेखबद्ध रूप में चमक उठते थे । ऐसी घटना उस शाम्भवी साधना के अभ्यास के अन्त पर हुआ करती थी । पूज्यपाद जी ने ग्रन्थ तो सभी पढ़े भी थे और यथार्थतया समझ भी लिए थे । तो जिन प्रश्नों के अक्षरों का दर्शन उन्हें हो जाया करता था, उन्हीं की

अर्थ—युद्ध में फुर्तीलेपन से विचरण करता हुआ "यह सुभद्रापुत्र अभिमन्यु अपने बाणों से मुझे पीड़ित करता हुआ भी और मेरे प्राणों तक को क्लेश देता हुआ भी मुझे अतीव आनन्द दे रहा है।" इस तरह से वाराणसी का सारा विद्वत्समाज पूज्यपाद जी को उनकी युवावस्था में ही पर्याप्त सम्मान दिया करता था, यद्यपि कुछ क्षुद्रजन द्वेष भी करते थे।

पूज्यपाद जी की सारग्राहिणी बुद्धि के ऐसे विलक्षण विकास के कारणों में से एक तो उनके विद्याधर लोक के संस्कार ही थे परन्तु उसके अतिरिक्त मुख्य तीन कारण थे। एक कारण यह था कि वे बिना प्रमाद के नित्यप्रति गायत्री मन्त्र का जप तथा अपनी इष्ट देवी बाला त्रिपुरा की आराधना नियमपूर्वक किया करते थे। जैसा कि पीछे कहा गया है, यह त्रैपुरी विद्या उनकी कुल क्रमागत विद्या थी और उपनयन के समय उनको अपने पूज्य पिता श्रीकृष्ण शास्त्री से प्राप्त हुई थी। शास्त्री जी को इस विद्या की दीक्षा अपने चाचा वामनभट्ट ने दी थी, जिन्हें यह विद्या अपने पूज्य पिता श्री रामकृष्ण भट्ट से मिली थी।

दूसरा कारण एक विचित्र घटना के परिप्रेक्ष में बन गया। बात ऐसी हुई कि यद्यपि पूज्यपाद जी विद्याधर संस्कार से अतीत मेधावी थे, शास्त्र तत्व को शीघ्र ही यथार्थतया समझ लेते थे और उस तत्त्व की स्मृति भी उन्हें ठीक रहती थी, फिर भी परीक्षा की तैयारी करने के नीरस उपक्रम में उनका चित्त प्रायः लगता ही नहीं था। शास्त्र का अध्ययन उन्हें सरस लगता था, परन्तु परीक्षा की तैयारी नीरस लगती थी। अतः जब वे सोलह वर्ष की आयु के थे तो उन्होंने पीछे व्याकरण मध्यमा के प्रथम खण्ड की परीक्षा दी ही नहीं थी। आगे द्वितीय खण्ड को भी तैयार करना था। इस तरह से एक साथ ही आठ पत्रों की तैयारी करनी थी। उस भारी और अत्यन्त रूक्ष काम में उनका चित्त लगता हीं नहीं था।

ऐसी परिस्थिति में एक बार उनके कोई सहपाठी तथा अन्य ईर्ष्यालु छात्र बालगोष्ठी में उनकी योग्यता की निन्दा करने लगे। उस गोष्ठी में उनका एक स्नेही मित्र भी उपस्थित था। उसने ललकारते हुए कहा कि वे सारे ही पत्रों की परीक्षा एक साथ दे देवेंगे और अच्छे अङ्क लेकर सम्पूर्ण मध्यमा परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाएंगे। छात्र-गोष्ठी को ऐसी ललकार सुना कर वे मित्र महा-विद्यालय के दफ्तर में गए और मध्यमा परीक्षा के दोनों खण्डों के फार्म ले आए। ले आकर अतीव आग्रह करते हुए पूज्यपाद जी से फार्म भरवा दिए और फीस भी दिलवा दी। ऐसी स्थिति में पूज्यपाद जी को अतीव चिन्ता होने लगी कि आठ पत्रों की तैयारी कैसे की जा सके, जब एक की भी तैयारी नहीं की है। बड़े ही व्याकुल हो गए। अन्ततोगत्वा जब कोई उपाय नहीं सूझा तो

उन्होंने अपनी इष्ट देवी बाला त्रिपुरा की शरण ले ली। काव्य माला के तेरहवें गुच्छक में से भगवान दुर्वासा के द्वारा निर्मित **'श्रीत्रिपुरामहिमस्तोत्र'** की नकल उतार ली और यह संकल्प किया कि चालीस दिन अर्धरात्रि के समय धूप दीप जला कर इस स्तोत्र का पाठ किया करूं। ऐसे अनुष्ठान को उन्होंने समुचित मुहूर्त्त पर आरम्भ कर ही दिया। अठतीस दिन तो नियम पूर्वक पाठ अच्छी तरह से किया, परन्तु उन्तालीसवें दिन पाठ करते करते नींद आ गई। पाठ का भङ्ग हो गया तो पुनः आरम्भ से ही पाठ करने लगे। फिर नींद आ गई। और पाठ टूट गया। इस तरह से बीसों बार आरम्भ से ही पाठ करने का यत्न किया, परन्तु एक बार भी पाठ पूरा नहीं हो सका, जब तक उषःकालका प्रकाश चारों ओर फैल गया। इस घटना से अत्यन्त निराश और खिन्न हो गए। अगले चालीसवें दिन सोचा कि पाठ करने में फल की आशा नहीं रह गई थी। फिर भी विचार यही ठहरा कि पाठ कर ही लिया जाए। करने में कोई हानि नहीं। कुछ न कुछ पुण्यफल तो है ही। ऐसा निश्चय करके पूर्ववत् पाठ करने बैठे और पाठ पूरा हो गया। पाठ के पूरा होते ही भवन में कोई विचित्र प्रकाश छा गया और उस प्रकाश के भीतर एक **महापुरुष के दर्शन** हुए। उन्होंने बड़े ही स्नेह से व्यवहार किया और बड़ी दिलचस्पी से पूज्यपाद जी को शाम्भवी मुद्रा के समेत उत्कृष्टतर निर्विकल्प शाम्भवयोग की प्रक्रिया को सर्वाङ्ग सम्पूर्ण ढङ्ग से सिखा दिया। सिखाते हुए कहा, कि **"आप बस इसी योग का अभ्यास करते रहें। इससे आपकी सभी व्यवहारिक और पारमार्थिक समस्याएं स्वयमेव सुलझ जाएंगी। आप को कुछ और करने की कोई आवश्यकता ही नहीं है।"** उस योग साधना को भली भांति सीख कर पूज्यपाद जी ने उनसे प्रश्न किया, **"आप कौन महानुभाव हैं।"** इसका उत्तर उन्होंने यह दिया, **"जिस स्तोत्र का पाठ आप करते आए हैं, उसी का ऋषि मैं हूं।"** तब पूज्यपाद जी समझ गए कि ये महापुरुष **भगवान् दुर्वासा** हैं। **सन् १६६२ में** जब पूज्यपाद जी कश्मीर में **कुलग्रामनामक** स्थान पर हमारे घर में कुछ समय ठहरे थे तो उन्होंने मेरी प्रेरणा से भगवान् दुर्वासा के यथा दृष्ट शब्दचित्र का निर्माण किया उसे **"देषिक दर्शनम्"** इस शीर्षक में प्रकाशित किया जा चुका है।

इस घटना से पूज्यपाद जी की चिन्ता दूर हो गई। पुस्तकों की आवृत्ति करते रहे। परीक्षा के समीप आने पर जिस पत्र की परीक्षा आने वाली होती थी उस पत्र के कई एक प्रश्न उनकी दृष्टि के सामने लेखबद्ध रूप में चमक उठते थे। ऐसी घटना उस शाम्भवी साधना के अभ्यास के अन्त पर हुआ करती थी। पूज्यपाद जी ने ग्रन्थ तो सभी पढ़े भी थे और यथार्थतया समझ भी लिए थे। तो जिन प्रश्नों के अक्षरों का दर्शन उन्हें हो जाया करता था, उन्हीं की

तैयारी झटपट कर लेते थे। इस तरह से सभी पत्रों में अच्छे अंक लेकर उतीर्ण हो गए और महाविद्यालय में स्वर्णपदक भी प्राप्त किया तथा छात्रवृत्ति भी मिलने लगी। आगे वे इस योग विद्या का अभ्यास जब नियमपूर्वक करते रहे तो उसके फलस्वरूप उन्हें **पराद्वैत शैवदर्शन** के मुख्य सिद्धांत स्वयमेव अनुभव में आते गए। उन्हें एक ओर से ऐसा अनुभव हुआ कि विश्वोतीर्ण, असीम, सर्वशक्ति सम्पन्न और सर्वथा शुद्ध चेतना मात्र ही उनका वास्तविक स्वरूप है। दूसरी ओर से उन्हें ऐसी बात साक्षात् अनुभव में आ गई कि समस्त विश्व उनकी अपनी ही पारमेश्वरी शक्तियों का बहिर्मुख प्रतिबिम्ब मात्र है। तीसरी बात यह अनुभव में आ गई कि इस ब्रह्माण्ड के सृष्टि संहार आदि कृत्य उनकी अपनी ही इच्छा शक्ति से चल रहे हैं। ऊपरोक्त प्रतिबिम्ब न्याय से ही परिणामन्याय से या विवर्त्तन्याय से नहीं। चौथी बात यह साक्षात् अनुभव में आगई कि छत्तीसों तत्व उनके अपने शुद्ध चिद्रूप के भीतर ही प्रतिबिम्बित होते हुए चमक रहे हैं और उनका चिन्मात्र स्वरूप इन प्रतिबिम्बों से खचित होता हुआ अतीत सुन्दरता से चमक रहा है। पांचवीं बात यह अनुभव में आ गई कि अद्वैत भाव, द्वैतभाव, द्वैताद्वैतभाव, सभी ही भावों के रूप में उनका अपना पराद्वैत चित्स्वरूप ही सदा अपनी इच्छा के अनुसार उस उस तरह से चमक रहा है। पराद्वैत शैव दर्शन के ऐसे ऐसे मूल सिद्धान्त उन्हें अपने भीतर स्वतः चमक उठे। तब वे उस योगविद्या को एक अपूर्व चिन्तामणि समझने लगे। ऐसा समझते हुए उन्हें अतीव खेद होता रहा कि ऐसी उत्कृष्ट योगविद्या का प्रयोग उन्होंने एक क्षुद्र प्रयोजन के लिए अर्थात परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए, क्यों किया। इस बात का खेद उन्हें जीवन भर होता ही रहा।

इस घटना को उन्होंने मुझे स्वयं विस्तारपूर्वक सुनाया है। जब सन् १९६२ ई० में वे कुलगाम (कश्मीर) में हमारे घर में ठहरे थे। विद्या के अभ्यास के सम्बन्ध में एक और घटना उन्होंने मुझे सुनाई थी वह यह है—यद्यपि शास्त्रों की पंक्तियों का तात्पर्य उन्हें पूरी तरह से समझ में आया करता था, फिर भी उनके लिखने की शैली ऐसी थी कि उनके विद्या गुरु श्री पन्त जी को पसन्द नहीं आती थी। एक बार किसी विषय पर उन्हें लिखने को कहा गया। उन्होंने लिखा तो सही, परन्तु गुरु जी ने उसे जरा भर भी पसन्द नहीं किया। जब अनेकों बार ऐसा ही होता रहा तो उन्होंने संकल्प किया कि भगवान् श्रीकृष्ण की आराधना करके लिखने के ढंग को सीखा जाए। फलतः उन्होंने एक मुहुर्त निकाला सोमवार युक्त शुक्ल एकादशी का। उस दिन प्रातः नींद से जागते समय उनका श्वास सोम स्वर से चल रहा था। तो दिन भर फलाहार ही किया और लगातार इस महामन्त्र का जाप करते रहे—

"कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्म सम्मूढचेताः ।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधिमां त्वां प्रपन्नम् ।"
(भ० गी० २-७)

अर्थ—हे भगवान् श्रीकृष्ण जी मैं आपका शिष्य हूं, आपकी शरण में आया हूं। क्षुद्रता के दोष से मेरा वास्तविक स्वभाव दब गया है। धर्म क्या है इस विषय में मेरी बुद्धि मोहग्रस्त हो गई है। अतः मैं आपसे ही पूछ रहा हूं। जो बात मेरे लिए कल्याणकारिणी हो वही बात निश्चय पूर्वक मुझे बताइए आप ही मुझे उचित शिक्षा दीजिए।" दिन भर इसी मन्त्र का जप करते हुए ही सो गए। ऐसा ही प्रयोग अगली दो शुक्ल एकादशियों को जब किया तो उस तीसरी एकादशी के दिन भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वप्न में दर्शन देकर यह आदेश दिया, "**शिवलिंग पर जलकुम्भ धर दो। जल बूंद-बूंद टपकता रहे और आप भगवान् शिव का ध्यान करके उन्हें नवाह्निक पातञ्जल व्याकरण महाकाव्य सुना दीजिए। चालीस दिन ऐसा ही कीजिए तो आपकी लेखन शैली सुन्दर, परिमार्जित, सार प्रकाशिनी तथा प्रभावशालिनी बन जाएगी**" पूज्यपाद जी ने ऐसा ही किया। चालीस दिन के पश्चात् जब उन्होंने शास्त्र की किसी एक पहेली का निरूपण पूर्वोत्तरपक्ष की दृष्टियों को लेकर के भली-भांति लिख लिया तो श्री पन्त जी के सामने उसे प्रस्तुत कर दिया। वे उसे पढ़कर आश्चर्य चकित होकर कहने लगे, हां, **कहीं से नकल उतार कर लाए, तुम्हें तो जरा भर भी लिखने का ढंग आज तक कभी आया ही नहीं। आज ऐसे परिमार्जित ढंग से कैसे लिख सके।**" इस पर पूज्यपाद जी ने आग्रहपूर्वक कहा कि उन्होंने स्वयं सोच समझकर लिखा है और गुरु जी किसी भी बात को लेकर के प्रश्न करें और उत्तर को सुनकर स्वयं निर्णय करें कि स्वयं अपनी बुद्धि से लिखा है या कहीं से इसे उतार लिया है। तब उनसे कुछ एक प्रश्न पूछे गए, जिनका उत्तर उन्होंने यथार्थतया और परिमार्जित शैली में दे दिया। उनकी ऐसी सुन्दर और यथार्थ लेखन-शैली और सम्भाषण-शैली को देखकर श्री पन्त जी आश्चर्य चकित भी हो गए और हर्षगद्गद भी हो गए। फिर पूछा कि यह तो बताओ कि इस तरह से अति सुन्दर ढंग से लिखना कैसे सीखा। इस प्रश्न का स्पष्ट उत्तर पूज्यपाद जी ने नहीं दिया। अस्पष्ट शब्दों के द्वारा संकेत मात्र से दे दिया जिसे कोई स्पष्टतया समझ नहीं पाया।

पूज्यपाद जी ने आगे भी अनेकों समस्याओं का समाधान भगवान् श्रीकृष्ण से इसी प्रकार से प्राप्त किया। **भगवद्गीता के तात्पर्य को समझने के विषय में जहां कहीं भी जो कोई समस्या उनके बुद्धिदर्पण में उपस्थित हो गई, उस समस्या का समाधान उन्हें स्वप्न में भगवान् श्रीकृष्ण से ही होता रहा। इसीलिए उन्होंने श्रीकृष्ण जी को अपने विशेष गुरुओं में गिना है। उनके पिता जी** का नाम भी श्री

कृष्ण ही था। परिव्राजक जीवन में जब वे कश्मीर में भ्रमण करते रहे तो, उन्होंने एक ग्राम में रहते हुए **सन् १९३० ई० में महागुरु श्रीकृष्ण स्त्रोत** का निर्माण किया। उसमें अपने गुरुवर श्रीकृष्ण की स्तुति की गई है। वह एक श्लेषमयी रचना है जिसके प्रत्येक पद्य का तात्पर्य एक ओर से भगवान् श्रीकृष्ण के साथ और दूसरी ओर से उनके पूज्य पिता श्रीकृष्ण शास्त्री के साथ लगता है।

आगमिक पराद्वैत के सिद्धान्तों की अनुभूति उन्हें भगवान् दुर्वासा के द्वारा सिखाई गई शाम्भवी योग-विद्या के अभ्यास से स्वयं हो चुकी थी। उस दर्शन के ग्रंथों को उन्होंने पढ़ा नहीं था। एक बार श्री कविराज जी ने उनसे कहा कि वे **आ० अभिनव गुप्त के 'परमार्थसार'** को पढ़ें। उन्होंने उस बात की ओर ध्यान नहीं दिया। कुछ दिनों के बाद जब कविराज जी ने इस विषय में पुन: पूछ लिया तो उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि उस ग्रन्थ को उन्होंने नहीं पढ़ा। ऐसा सुनने पर कविराज जी बोले कि आपकी बुद्धि तीव्र है। अत: आपको आगमिक शैव दर्शन अवश्य पढ़ना चाहिए। ऐसा कहकर चपरासी को पुस्तकालय भेजकर अपने नाम पर परमार्थसार नामक पुस्तक को निकलवाकर पूज्यपाद जी को पढ़ने को दे दिया। उस पर **योगराज की विस्तृत व्याख्या** भी थी। उन दिनों **आ० वीरेश्वर शास्त्री** भी वाराणसी में ही थे। तो पूज्यपाद जी पुस्तक को लेकर शास्त्री जी के पास गए और उन्हें उसे पढ़ाने को कहा। शास्त्री जी बोले—"इस ग्रन्थ को आपने स्वयं कितनी बार पढ़ा है।" पूज्यपाद जी ने उत्तर दिया कि अभी-अभी तो पुस्तकालय से ले आए हैं, अभी पढ़ा नहीं और नया विषय होने के कारण उनसे इसे पढ़ना चाहा। शास्त्री जी ने आदेश देते हुए कहा—"**आप व्याकरण को भली-भांति जानते हैं। तर्क शास्त्र भी आपने पढ़ा है। आप इस ग्रन्थ को भली-भांति समझ सकेंगे। इसे कम से कम दो बार तो स्वयं पढ़ लो। फिर जहां कहीं कोई शंकर रह जाए तो उस पर मेरे साथ बात कर लो। मैं स्पष्टीकरण कर दूंगा।**" तब पूज्यपाद जी ने परमार्थसार को स्वयं पढ़ा तो उन्हें बिना आयास के सारा समझ में आ गया। विषय की अनुभूति तो उन्हें पहले से ही थी, अत: उसके शब्दात्मक प्रतिपादन को समझने में उन्हें देर नहीं लगी। पुस्तकालय पर जाकर उसे लौटा दिया और **महेश्वरानन्द के "महार्थमंजरी परिमल"** को वहां से लेकर कुछ ही दिनों में पढ़ लिया। वह ग्रन्थ भी उन्हें अनायास ही समझ में आ गया। उसके अनन्तर भोज के "**तत्व प्रकाश**" को भी लेकर स्वयं पढ़ लिया। तदनन्तर कुछ दिनों के पश्चात् श्री वीरेश्वर शास्त्री ने जब परमार्थसार के अध्ययन के विषय में पूछा तो उन्होंने तीनों ही ग्रन्थों को पढ़ चुकने की बात उनसे कह दी। इस पर वे अतीव प्रसन्न होकर बोले—"**शास्त्रों को इसी तरह से पढ़ते रहना चाहिए। एक-एक पंक्ति को पढ़ने के**

लिए गुरु के पास नहीं जाना चाहिए।" कुछ दिनों पश्चात् जब श्री कविराज जी ने परमार्थसार के विषय में पुनः पूछा तो उनसे भी तीनों ही ग्रन्थों को पढ़ चुकने की बात पूज्यपाद जी ने सुना दी। इस पर वे अतीव आह्लादित हो गए। आगमिक शैवदर्शन के उत्कृष्ट ग्रन्थों का अध्ययन पूज्यपाद जी ने तब ही किया जब वे परिव्राजक के रूप में कश्मीर देश का भ्रमण करते हुए श्रीनगर में काफी देर रहे। वहां **ईश्वर प्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी, शिवदृष्टि, तन्त्रालोक विवेक, 'पराजीशिका विवरण'** जैसे अत्यन्त दुरूह तथा सूक्ष्मतर विचारों से पूर्ण ग्रन्थों को भी उन्होंने बिना आयास के समझ लिया। जब **सन् १९३५ ई०** में वे श्रीनगर में गुप्तगंगा तीर्थ पर एक धर्मशाला में निवास करते थे तो **स्वामी लक्ष्मणजू** के आश्रम में जाकर उनसे तन्त्रालोक का एक-एक खण्ड लेकर उसे पढ़ते रहे और चार-चार या पांच-पांच दिनों में पूरी तरह पढ़कर लौटा दिया करते थे। स्वामी जी को आश्चर्य होता था कि इतने थोड़े से समय में ही वे ऐसे दुरूह और रहस्यात्मक सार से परिपूर्ण ग्रन्थों को कैसे पढ़ पाते थे। एक बार उन्होंने अपनी शिष्या श्री **शरिका देवी** से कहा भी था कि **"क्या ये महानुभाव इन ग्रन्थों को पढ़ते भी हैं या केवल पन्ने पलट-पलट कर ही लौटा देते हैं।"** यह बात देवी जी ने स्वयं मुझे कही है। उन्हीं दिनों पूज्यपाद जी ने श्री टिकालाल खजांची के घर में ईश्वर प्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी जैसे दुरूह और सारगर्भ दर्शन ग्रन्थ के दोनों भागों को कुछ ही दिनों में पढ़ा और पूरी तरह से समझ भी लिया, क्योंकि उन ग्रन्थों के तात्पर्य को वे पहले ही उनकी अपरोक्ष अनुभूति के द्वारा जान ही चुके थे। वह अनुभूति उन्हें भगवान् दुर्वासा के द्वारा सिखाई गई शाम्भवी योगविद्या के अभ्यास से हो गई थी।

पूज्यपाद जी गुरुओं का बड़ा आदर सत्कार किया करते थे। परन्तु शास्त्रों के सिद्धांतों के विषय में उनके द्वारा बताई गई या किसी ग्रन्थ में कही गई कोई बात यदि उन्हें युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होती थी तो उसे कभी भी श्रद्धाजाड्यवश स्वीकार नहीं करते थे। उदाहरणार्थ एक बार **न्याय शास्त्र** को पढ़ाते हुए अध्यापक महोदय ने समझाया कि शब्द तो **वीचीतरंगन्याय** से फैलता हुआ प्राणी के कर्णछिद्र में जब **शब्द शब्द की परम्परा** के रूप में पहुंच जाता है तो प्राणी अपने श्रवण-इन्द्रिय के द्वारा उसे जान जाता है। इस बात को पूज्यपाद जी मान गए। दूसरे दिन उन्हीं गुरु जी ने यह समझाया कि नेत्र अर्थात् **चक्षु इन्द्रिय** की किरणें किसी रूपवान् विषय पर जब पड़ती हैं तो ठीक उसी तरह से वापिस मुड़ती हुई प्राणी के चक्षु इन्द्रिय में पुनः जब समा जाती हैं तो अपने साथ उस रूपवान् विषय के रूप को भी पकड़कर ले आती हैं और इन्द्रिय के सामने प्रस्तुत कर देती हैं। तब चक्षु इन्द्रिय उस विषय के रूप आदि

का ग्रहण करता है। इस बात पर पूज्यपाद जी ने बड़ी आपत्ति उठाई। उन्होंने कहा कि यह कैसे हो सकता है कि शब्द स्वयं श्रवण-इन्द्रिय प्रविष्ट में होकर उस इन्द्रिय का विषय बन जाता है और चक्षु इन्द्रिय अपनी किरण को विषय के पास भेजकर उसे पकड़ लेती है। या तो श्रोत्र की शक्ति भी बाहर जाकर वहीं से शब्द को पकड़ लेगी नहीं तो रूप भी स्वयं चक्षु इन्द्रिय में प्रविष्ट होकर उसका विषय बन जाएगा। दो इन्द्रियों के साथ पृथक दो न्याय बर्ते नहीं जा सकते।" गुरुजी ने जब यह कहा कि 'विश्वनाथ पंचानन ने न्याय सिद्धांत मुक्तावली में ऐसा ही कहा है।" तो पूज्यपाद जी ने उत्तर दिया कि वे भी बड़े होकर जब ग्रन्थ रचना करेंगे तो और ही बात लिख देंगे। किसी के लिखने मात्र से क्या होता है। प्रत्येक युक्ति तर्क संगत होनी चाहिए। सभी, बाह्य इन्द्रियों के साथ एक जैसा न्याय बरता जाना चाहिए।" ऐसा कहकर उन्होंने पुस्तक बन्द करके पाठ को ही बन्द करवा दिया। यह कहा कि जब तक इस समस्या का समाधान नहीं हो जाता है तब तक पाठ आगे नहीं चलेगा। दूसरे दिन भी पाठ इसी तरह से बन्द रहा। तीसरे दिन गुरुजी ने स्वीकार किया कि विश्वनाथ का मत यथार्थ नहीं है। फिर यह भी कहा कि इस विषय का स्पष्टीकरण **अप्पय दीक्षित ने अपने सिद्धान्त लेश में** कर रखा है। पश्चात् कश्मीर आकर जब उन्होंने तन्त्रालोक को पढ़ा तो तदनुसार वे इस निश्चय पर पहुंच गए कि प्रत्येक इन्द्रिय के विषय का प्रतिबिम्ब जब इन्द्रिय गोलक के भीतर पड़ जाता है तो इन्द्रिय उस विषय को ग्रहण करती है। जैसे श्रोत्र शब्द के प्रतिबिम्ब को पकड़ लेता है वैसे ही चक्षु में रूप का प्रतिबिम्ब जब पड़ जाता है तो चक्षु उसका ग्रहण करती है। इसी तरह गन्ध रस और स्पर्श का प्रतिबिम्ब भी नाक, जीभ और त्वचा में पड़ जाता है तभी इन इन्द्रियों से उन विषयों का ग्रहण होता रहता है। तन्त्रालोक में प्रतिपादित यह **बिम्ब प्रतिबिम्बवाद** एक अतीव सूक्ष्मतर विचारपूर्ण और ऐसा युक्तियुक्त सिद्धान्त है जिसको वर्तमान भौतिकी विज्ञान विद्या के द्वारा भी यथार्थ ठहराया जा सकता है यदि सूक्ष्मतर दृष्टि को ले करके उस विद्या का उपयोग इस विषय में किया जाए। पूज्यपाद जी ने अपनी स्वाभाविक तीक्ष्ण बुद्धि के ही द्वारा अपने एक वरिष्ठ अध्यापक के विचारों में भी इस विषय में परिवर्तन करवा दिया।

पूज्यपाद जी बाल्यकाल में ही इस निर्णय पर पहुंच चुके थे कि दर्शन विद्या के अध्ययन के साथ ही साथ साधना का अभ्यास करना अत्यन्त आवश्यक होता है। उसी से दर्शन सिद्धांत साक्षात् अनुभूति के विषय बन सकते हैं। उसके बिना अधीत विद्या लगभग शुक विद्या जैसी बनी रहती है। उस समय वेदान्ती विद्वान् प्रायः कोरे तर्कों की ही रट लगाते रहते थे और समझ बैठते

थे कि उतने से ही वे जीवन्मुक्त बन सकेंगे। पूज्यपाद जी को उनकी वह नीति जरा भर भी अच्छी नहीं लगती थी। न ही निरीश्वरता की ओर तथा शून्य वाद की ओर झुकने वाला **विवर्तवाद प्रधान** वेदान्त उन्हें अच्छा लगता था। इस कारण अद्वैत वेदान्त के अध्ययन में उन्हें रुचि थी ही नहीं। उन्हें शाम्भवी योगविद्या के अभ्यास से पारमैश्वर्य सिद्धांत पर ठहराये हुए परम-अद्वैत सिद्धांत का साक्षात अपरोक्ष अनुभव हो चुका था अतः उन्हें जगत् का कारण बनी हुई "**माया या अविद्या ब्रह्म से पृथक उसकी उपाधि के रूप में न दीखती हुई उसकी स्वतन्त्र शक्ति ही के रूप में अनुभव में आया करती** थी। तदनुसार उन्हें इस बात पर पक्का विश्वास हो गया था कि **एकमात्र परब्रह्म ही अपनी स्वभावभूत परमेश्वरता के स्वतन्त्र विलास की लीला के भीतर माया का आभासन करते हुए स्वमेव नटवत् जीव के रूप में प्रकट होता रहता है। वही स्वयं अपने किसी आत्मभूत जीव पर जब कभी अनुग्रह करता है तो उसके फलस्वरूप वह जीव अपने परमेश्वरात्मक वास्तविक स्वरूप को पुनः पहचान कर पूर्णतया कृतकृत्य हो जाया करता है**। अतः उन्हें अद्वैत वेदान्तियों का **भ्रान्तिवाद** जरा भर भी अच्छा नहीं लगता था। उनके कहने के अनुसार ऐसे अद्वैत वेदान्ती प्रायः केवल भ्रमवाद की रट ही लगाए रहते हैं। वे स्वयं तो भ्रम के घने आवर्तों में उलझे ही रहते हैं और दुनिया भर के लोगों को भी उन्हीं में फंसाते रहते हैं। केवल विवर्तवाद के अनुकूल तर्कों को ही सुनाया करते हैं। कोई भी उपासना कभी तो करते ही नहीं और समझ बैठते हैं कि वैसे तर्कों को दुहराने से ही मुक्त हो जाएंगे। किसी आर्ष साधना का अभ्यास न करते ही हैं और नक राते ही हैं। पूज्यपाद जी के विद्यागुरु श्री नित्यानन्द जी पन्त जब काफी वृद्ध थे तो कुछ एक महानुभाव उनसे "**ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य**" पढ़ने को आए। सभी महानुभाव अच्छे पण्डित थे और पन्त जी से वेदान्त शास्त्र के वास्तविक रहस्य को समझना चाहते थे। उन्होंने इस बात को स्वीकार किया और पूज्यपाद जी से भी कहा कि आप भी उन सभी के साथ आकर ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य को पढ़ो। पूज्यपाद जी नें कई एक आपत्तियों को उपस्थित करते हुए इस कार्य में कुछ अरुचि प्रकट की। उनके कहने के अनुसार श्री पन्त जी के साथ उस समय इस प्रकार का वार्तालाप हुआ—

पन्त जी—"यहां के कई एक अच्छे पण्डित मुझसे ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य पढ़ना चाहते हैं, तो आप भी उसे पढ़ लो।"

पूज्यपाद आचार्य जी—"मुझे वेदान्त पढ़ने में रुचि है ही नहीं।"

पन्त जी—"क्यों नहीं है।" **आ० जी**—"ये वेदान्ती जगत को वन्ध्यासुत की तरह सर्वथा मिथ्या ठहराते हैं।" **पन्त जी**—"आप वैसा मत करो और मत कहो।" **आ० जी**—"फिर ये लोग भ्रम-भ्रम की रट लगाते हुए स्वयं भी

भ्रम में डूबे रहते हैं और जनता को भी भ्रम में ही डुबो देते हैं।"

पं० जी—"हां ऐसा प्रायः हुआ करता है, परन्तु आप वैसा मत करो।" **आ० जी**—"ये वेदान्ती तर्कवितर्कों और परिभाषाओं को केवल रटते ही रहते हैं और समझ बैठते हैं कि इतने से ही हम मुक्त हो गए। तत्त्व के वास्तविक साक्षात्कार के लिए कोई अभ्यास करते ही नहीं।" **पं० जी**—'आप तर्क वितर्क को भी समझ लो और साथ अभ्यास भी करते रहो। दोनों कार्य उपयोगी हैं।"

आ० जी—"अच्छा मैं सोच-विचार कर आपको बता दूंगा।" **पं० जी०**—"अरे इस समय मैं जीवित हूं और आप सभी को वेदान्त विद्या का सार समझा सकूंगा। आगे ये बातें कौन बताएगा।" **आ० जी०**—"अच्छा, तो मैं भी वेदान्त दर्शन आप से सुन लूंगा। ऐसा अब निश्चय हो गया।"

पं० जी०—"पर देखो ठीक समय पर आया करना। मैं देर से आने वालों की प्रतीक्षा नहीं करूंगा।" **आ० जी**—"बहुत अच्छा।"

ऐसा निश्चय होने पर दूसरे दिन से श्रीं पन्त जी ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य पढ़ाने लगे और अन्य विद्वान् महानुभावों के साथ पूज्यपाद श्री आचार्य जी भी उनके द्वारा विधिपूर्वक पढ़ाए जाते हुए ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य को सावधान तया पढ़ने लगे। उन्हें औपनिषद वेदान्त की उस वास्तविक अद्वैत सिद्धांत की साक्षात् अनुभूति तो भगवान् दुर्वासा के द्वारा सिखाई गई शाम्भवी योगविद्या के अभ्यास से हो ही चुकी थी। अतः पन्त जी उस वेदान्त विद्या के रहस्यों की व्याख्या करते थे वे रहस्य उन्हें अनायास ही समझ में आते रहते थे। फिर ब्रह्मसूत्र के प्रारम्भिक अधिकरण में परमेश्वरता सिद्धांत का ही निरूपण किया गया है। विवर्त्तवाद का विशेष प्रतिपादन उस अधिकरण के भाष्य में किया ही नहीं गया है। अतः उन्हें किसी भी विषय पर शंका या आपत्ति का अवसर आया ही नहीं।

एक बार श्री पन्त जी ने पूछा कि "आप कभी कोई शंका को उठाते ही नहीं, कुछ पूछते ही नहीं। ऐसी स्थिति या तो उस छात्र की बनती हैं जिसे कुछ समझ ही नहीं आए या उसकी जिसे सब कुछ पूरी तरह से समझ आए। तो आपको किस वर्ग में गिनें।" पूज्यपाद जी ने कहा कि "मुझे कोई शंका उठी ही नहीं। आप जैसा उचित समझें वैसा मुझे गिना लें। इस पर श्री पन्त जी ने कई एक गूढ़ विषयों पर जब प्रश्न किए तो पूज्यपाद जी ने युक्तियुक्त उत्तर देते हुए अपनी विज्ञता का परिचय दिया। इस पर गुरुदेव अतीव सन्तुष्ट हो गए। अभी दो तीन सप्ताह पाठ चला था कि श्री पन्त जी बीमार हो गए और पाठ बन्द हो गया। उनका स्वास्थ्य बिगड़ता ही गया और जल्दी ही वे इस संसार को छोड़कर बार्हस्मतों के लोक को सिधार गए। ब्रह्मसूत्र

शांकर भाष्य की केवल सर्वप्रथम चतुःसूत्री के ही अध्यापन को वे उस पण्डित समाज को करा पाएं।

एक बार पर्वतीय प्रदेशों के ग्रामीण सनातनी काशी आए। उनके ग्रामों में आर्य समाजियों ने बड़ा ही आतंक मचाया था। उसी आतंक का एक अंग यह था कि उन्होंने वहां के नाइयों को उकसा कर त्रैवणिक जनता के साथ असहयोग पर उतारू कर दिया था। तदनुसार नाई कहते थे कि या तो हमारे साथ रोटी-बेटी के सम्बन्ध करदो नहीं तो हम तुम्हारे बाल कभी काटेंगे ही नहीं। इस संकट से संत्रस्त होकर वे काशी के पण्डितों की शरण में आए थे। पूज्यपाद जी से जब मिलें अपना दुःखड़ा उनके सामने रख दिया तो उन्होने उनकी समस्या का समाधान ऐसे किया—

"धर्म की सुरक्षा के लिए साहसपूर्वक काम करना होता है और देश-कांल-परिस्थिति के अनुसार कष्टों को सहन करना होता है। हमारे विचार में आप के संकट को निवारण करने का सर्वोत्तम उपाय यह है कि आप प्राचीन ऋषियों की तरह बालों को कटवाना छोड़ देवें, केश रखें, दाढ़ी मूंछ रखें और इस विषय की चिन्ता को छोड़ ही देवें। दूसरा उपाय यह है कि आप लोग स्वयं क्षुरक्रिया को कर लेना सीख लेवें और एक दूसरे के बाल स्वयं काटते रहें। तीसरा उपाय यह है कि आप लोग किसी अन्य प्रदेश से और नाइयों को ले आकर उनको अपने ग्रामों में बसाएं। फिर यदि आपमें उन कार्यों में से किसी को भी करने का उत्साह नहीं है तो पतित होकर वैसा ही करें जैसा कि आर्य समाजी कह रहे हैं। पतित न होना चाहें तो धैर्य धारण करके उपरोक्त उपायों को अपनाएं। धर्म की रक्षा तप से, धैर्य से और सहनशीलता आदि से होती है। जिस समाज में इन बातों के लिए जरा भर भी उत्साह न हो वह समाज संसार में जीवित रहने के लिए पतित हो ही जाता है।" विद्याभ्यास के जीवन में पूज्यपाद जी कई एक बार ग्रीष्म-अवकाशों में हरिद्वार जाया करते थे। एक बार वहां पहुंचकर सोचने लगे कि ठहरें कहां तो एकदम विचार आया कि किसी पाठशाला में जाएं। तो एक पाठशाला के छात्रावास में गए। छात्रों से परिमार्जित संस्कृत वाणी में वार्तालाप किया। उससे वे काफी प्रभावित हो गए और बड़े सम्मान से वहां सेवा होती रही। एक बार एक विशाल धर्मशाला की निचली छत में एक कमरा लेकर वहां रहते रहे। उस धर्मशाला के ऊपरी छतों में एक सुप्रतिष्ठित मण्डलेश्वर और उनके अनुयायी रहा करते थे। पूज्यपाद जी प्रायः एकान्त में तटस्थ भाव से रहते हुए शाम्भवी साधना का और शास्त्रों के अध्ययन का अभ्यास करते रहे। एक दिन वहां के वे मंडलेश्वर स्वामी उनके कमरे में प्रविष्ट हो गए। पूज्यपाद जी ने आदरपूर्वक आसन देकर बिठाया। तब मण्डलेवर पूछने लगे—"**आपको अकेले चित्त लगता**

है क्या।" उन्होंने कहा "हां खूब लगता है" फिर यह पूछा—"चित्त शान्ति का भी अनुभव होता है क्या।" उत्तर उन्होंने यह दिया—"हां, अवश्य अनुभव होता रहता है।" संन्यासी ने प्रार्थना की—"हमें भी उस बात की प्रक्रिया बता दीजिए।" पूज्यपाद जी ने कहा—"मैं एक बालक हूं, आप सम्मानार्ह, वयोवृद्ध महापुरुष हैं। मैं आपको क्या बताऊं।" संन्यासी बोले, "इस विषय में आयु, सामाजिक स्थिति, धनाढ्यता आदि का कोई नियम नहीं। बालक भी वृद्ध को साधना अभ्यास सिखा सकता है। आप मुझेअ वश्य ही चित्त शान्ति की प्रक्रिया सिखा दीजिए।" इस पर पूज्यपाद जी बोले—"परन्तु ये बातें समुचित मुहुर्त्त का निश्चय करके समुचित विधि से सिखाई जा सकती हैं।" संन्यासी जी बोले "हां, हां, वह बात ठीक है। आप मुहुर्त्त का निश्चय करके विधिपूर्वक मुझे समुचित प्रक्रिया सिखा दीजिए।" ऐसा निश्चय होने पर पूज्यपाद जी ने पंचांग खोलकर उचित मुहूर्त निकाला। उस मुहूर्त्त पर उस मण्लेश्वर को शाम्भवी योगविद्या सिखा दी। उन्होंने उसका अभ्यास बड़े उत्साह से विधिपूर्वक किया। थोड़े ही समय में उन्हें अपूर्व शान्ति और आनन्दमयता का अनुभव होने लगा। मास डेढ़ मास के अनन्तर वहां पूज्यपाद जी के कोई वरिष्ठ संबंधी आए और मण्डलेश्वर के अतिथि बन कर रहे। पूज्यपाद जी अपने को उनकी दृष्टि से बचाते ही रहे। एक दिन मण्डलेश्वर जी ने उस अतिथि महोदय से कह दिया कि एक बालक गुरु से दीक्षा लेकर वे आनन्दमयी चित्त शान्ति का अनुभव करने लगे हैं। इस पर अतिथि महोदय को भी उस बालक गुरु को देखने की जब इच्छा हो गई तो पूज्यपाद जी को ऊपर बुलाया गया। ऊपर आते ही जब उन्होंने अपने उस सम्बन्धी को देखा तो चरण वन्दना करके बैठ गए और मण्डलेश्वर जी ने कहा कि ये ही हमारे बालक गुरु हैं। इस पर अतिथि महोदय कहने लगे—"इसे तो हम पहले से ही जानते हैं, यह हमारा ही एक संबंधी बालक है।" प्रायः किसी भो महापुरुष की महिमा को उनके निकट सम्बन्धी समझा ही नहीं करते हैं. विशेष कर एक बालक की। उनकी दृष्टि में बालक योगीश्वर होता हुआ भी प्रायः बालक ही बना रहता है।" अतः पूज्यपाद जी के उन सम्बन्धी महोदय ने मण्डलेश्वर संन्यासी की बातों की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया; परन्तु संन्यासी महोदय को अपने निजी अनुभव से पूज्यपाद जी की महिमा का जो परिचय हो गया था, उसे वे कैसे भुला सकते थे। तो वे लगातार हृदय से पूज्यपाद जी को सतत सम्मान देते ही रहे।

पूज्यपाद जी ने अपने जीवन की कुछ एक घटनाओ और उपलब्धियों की तालिका को स्वयं लिख रखा है। तदनुसार वे निम्नलिखित ईसवी सनों में भिन्न परीक्षाओं में उत्तीर्ण हुए—

सन् १९२० में व्याकरण सम्पूर्ण मध्यमा परीक्षा

,, १९२३ में व्याकरण शास्त्री प्रथम
,, १९२४ में धर्मशास्त्र शास्त्री प्रथम
,, १९२५ में ,, ,, द्वितीय
" १९२६ में ,, ,, तृतीय
" १९२७ में ,, आचार्य प्रथम ख
"१९२८ में ,, ,, द्वितीय

१. धर्मशास्त्र शास्त्री प्रथम खण्ड में एक सुव
वाराणसी से तथा तीन रुपये मासिक छात्रवृ
२. धर्मशास्त्र शास्त्री द्वितीय वर्ष में चार रुपए
३. ,, ,, तृतीय वर्ष में पांच रुपए
स्वर्ण पदक
४. ,, आचार्य प्रथम खण्ड में पांच रुपए
मिले।
५. ,, ,, द्वितीय खण्ड में उत्तीर्ण ह

तदनन्तर गृहत्याग करने पर तृतीय खण्ड की प
माधोलाल स्कालर शिप के विषय में उन्होंने य

सन् १९२१ जुलाई से सन् १९२२ जून तक
,, १९२२ ,, ,, १९२३ ,,
,, १९२३ ,, ,, १९२४ ,,
,, १९२४ ,, ,, १९२५ ,,
,, १९२५ ,, ,, १९२६ ,,
,, १९२६ ,, ,, १९२७ ,,
,, १९२७ ,, ,, १९२८ ,,
" १९२८ ,,

१९२६ में शास्त्री पदवी के लिए—काशीस्थ
से एक रजत पदक मिला था।

अध्याय ६

परिव्राजक जीवन में प्रवेश

पीछे ये बातें कही जा चुकी हैं कि बाल्य और नवयौवन में पूज्यपाद जी को अपने छोटे से परिवार के पालन का भार उठाना पड़ा जब उनके पूज्य पिता जी श्रीकृष्ण शास्त्री असमय में ही शिवधाम को सिधार गए। यह भी कहा जा चुका है कि समुचित धन के अभाव के कारण सौतेली मां पूज्यपाद जी से सन्तुष्ट नहीं रहा करती थीं। उस बात के फलस्वरूप उन्हें घर में सुख और शान्ति का अनुभव कभी नहीं हुआ करता था। अतः पारिवारिक जीवन को सुखमय बनाने की अभिलाषा से **सन् १९२७ में मई महीने** में उन्होने एक प्रतिष्ठित महाराष्ट्री ब्राह्मण **श्री राजाराम आकूत** की कन्या **कृष्णा** के साथ विवाह किया। जैसा कि पीछे कहा गया है, कृष्णा जी के सगे सम्बन्धी अर्थात् पूज्यपाद जी साले आदि उस विवाह उत्सव के अनन्तर उनकी निर्धनता के कारण उनका बहुत अधिक अनादर किया करते रहे। उस बात से वे लगातार असह्य सन्ताप का अनुभव किया करते रहे।

मेरा ऐसा अनुमान है कि अन्ततोगत्वा जब श्री राजाराम आकूत ने भी पूज्यपाद जी की निर्धनता को लेकर के स्वयं भी उनका तिरस्कार किया तो वे इतने सन्तप्त हो गए कि शैशव से परिचित प्यारी काशी को भी और अनेकों तपस्वी विद्वानों को आश्रय देने वाले अपने पैतृक घर को भी छोड़ देने का उन्होंने दृढ़ निश्चय कर लिया। पूज्यपाद जी जीवन में जो भी महत्वपूर्ण पग उठाया करते थे उसके विषय में पहले अपनी इष्टदेवी बाला त्रिपुरा से अनुज्ञा लिया करते थे। उनके परिव्राजनक जीवन में भी हम लोगों ने बहुत बार देखा है कि जब कभी भी वे किसी पग को उठाने में स्वयं निश्चय नहीं कर पाते थे तब जगदम्बा का ध्यान करके पर्चियां डाल लेते थे। उनका नाम लेकर एक पर्ची उठा लिया अथवा उठवा लिया करते थे। उस पर्ची में जैसा आदेश लिखा रहता था, वैसा ही पग उठाया करते थे। जैसा कि उन्होंने स्वयं लिख कर रखा है, उन्होंने जगदम्बा से अनुज्ञा लिए बिना ही विवाह के विषय में

निश्चय भी किया और विवाह कर भी लिया। उस युग में विवाह होते ही और पति पत्नी का परस्पर समागम हुए बिना ही बधू पुनः पिता के घर को ही जाया करती थी। पश्चात् एक और उत्सव मनाया जाता था, जिस उत्सव पर वधू सजधज कर पुनः पति के घर आया करती थी और वास्तविक विवाहित जीवन का आरम्भ किया करती थी। उससे पहले विवाहित हो चुकने पर भी ब्रह्मचारिणी ही बनी रहती थी। पूज्यपाद जी की निर्धनता के कारण से जब श्वशुरगृह से लगातार अनबन और कलह की ही परम्परा चलती रही तो वधू कृष्णा (**शीलवती**) का वास्तविक समागम पूज्यपाद जी के साथ होने ही नहीं पाया। लगभग डेढ़ वर्ष ऐसे ही बीत गया और श्री राजाराम जी आकूत के दुर्व्यवहार से सन्तप्त होकर वे (मार्गशीर्ष कृष्ण तृतीया सं० १९८५ शुक्रवार अर्थात् **नवम्बर सन् १९२८**) को प्रातः काल ६ बजे घर छोड़ कर चले ही गए।

रेल में बैठकर लखनऊ पहुंचे। वहां से सीतापुर होते हुए दो तीन दिन में नैमिषारण्य पहुंच गए। उस समय उनकी जेब में केवल साढ़े सात रुपए थे। उन्हे वाराणसी से नैमिष तक पांच रुपये और दस आने व्यय हुएथे। उस राशि को साढ़े सात के साथ जोड़ लेने से यह बात सिद्ध होती है कि घर से चलते समय उनके पास केवल तेरह रुपए ही थे। अधिक से अधिक पन्द्रह रुपए हो सकते हैं। उन दिनों रेल का किराया बहुत थोड़ा होता था—एक मील के लिए एक पैसा। खाना पीना भी सस्ता होता था। चार से आठ पैसे तक की अल्प राशि के व्यय से एक समय के आहार का गुजारा हो जाया करता था। फिर पूज्यपाद जी अत्यन्त अल्प व्यय किया करते थे। पिता जी के असमय में ही शरीर छोड़ देने के अनन्तर उन्हें अल्पव्ययी तो बनना ही पड़ा था। अतः कभी एक दो आने व्यय करके जलेबी और दूध पर ही निर्वाह करने लगे। कभी एक दो आने की किशमिश पर दिन काटते रहे। बहुत बार एक पैसे के चने और एक पैसे का गुड़ लेकर उसी पर दिन काटते रहे। कभी कभी भूखे ही रात काटते रहे। कई बार प्रदोषव्रत का परायण दो दाने सूखे चावल से ही करते रहे। किसी किसी स्थान पर कोई कोई सज्जन महानुभाव आदर पूर्वक अच्छा भोजन भी खिलाया करते थे। इस तरह से "**यदृच्छा लाभ सन्तुष्टः**" रहते हुए उन्होंने परिव्राजक जीवन के कई एक वर्ष सुखदुःख को समान रुप से स्वीकार करते हुए बिताए। उस जीवन के प्रारम्भिक भाग में उन्हें कोई भी विशेष सुख मिला नहीं। परन्तु कुछ ही वर्षो के अनन्तर भगवान शिव की और जगदम्बा की कृपा से उनका जीवन आनन्दमय ही बन गया। उन्हें सुखद और दुःखद दोनों ही प्रकार की घटनाओं से आनन्द के ही चमत्कार का आस्वाद आने लगा, विशेष कर तब जब उन्होने भगवान् दुर्वासा के द्वारा सिखाई गई शाम्भवी योगविद्या का अभ्यास अहोरात्र में चार सन्ध्याओं में नियमित ढङ्ग से

है क्या ।" उन्होंने कहा "हां खूब लगता है" फिर यह पूछा—"चित्त शान्ति का भी अनुभव होता है क्या ।" उत्तर उन्होंने यह दिया—"हां, अवश्य अनुभव होता रहता है।" संन्यासी ने प्रार्थना की—"हमें भी उस बात की प्रक्रिया बता दीजिए ।" पूज्यपाद जी ने कहा—"मैं एक बालक हूं, आप सम्मानार्ह, वयोवृद्ध महापुरुष हैं। मैं आपको क्या बताऊं ।" संन्यासी बोले, "इस विषय में आयु, सामाजिक स्थिति, धनाढ्यता आदि का कोई नियम नहीं। बालक भी वृद्ध को साधना अभ्यास सिखा सकता है। आप मुझेअ वश्य ही चित्त शान्ति की प्रक्रिया सिखा दीजिए ।" इस पर पूज्यपाद जी बोले—"परन्तु ये बातें समुचित मुहुर्त्त का निश्चय करके समुचित विधि से सिखाई जा सकती हैं।" संन्यासी जी बोले "हां, हां, वह बात ठीक है। आप मुहुर्त्त का निश्चय करके विधिपूर्वक मुझे समुचित प्रक्रिया सिखा दीजिए ।" ऐसा निश्चय होने पर पूज्यपाद जी ने पंचांग खोलकर उचित मुहूर्त निकाला। उस मुहूर्त्त पर उस मण्लेश्वर को शाम्भवी योगविद्या सिखा दी। उन्होंने उसका अभ्यास बड़े उत्साह से विधिपूर्वक किया। थोड़े ही समय में उन्हें अपूर्व शान्ति और आनन्दमयता का अनुभव होने लगा। मास डेढ़ मास के अनन्तर वहां पूज्यपाद जी के कोई वरिष्ठ संबंधी आए और मण्डलेश्वर के अतिथि बन कर रहे। पूज्यपाद जी अपने को उनकी दृष्टि से बचाते ही रहे। एक दिन मण्डलेश्वर जी ने उस अतिथि महोदय से कह दिया कि एक बालक गुरु से दीक्षा लेकर वे आनन्दमयी चित्त शान्ति का अनुभव करने लगे हैं। इस पर अतिथि महोदय को भी उस बालक गुरु को देखने की जब इच्छा हो गई तो पूज्यपाद जी को ऊपर बुलाया गया। ऊपर आते ही जब उन्होंने अपने उस सम्बन्धी को देखा तो चरण वन्दना करके बैठ गए और मण्डलेश्वर जी ने कहा कि ये ही हमारे बालक गुरु हैं। इस पर अतिथि महोदय कहने लगे—"इसे तो हम पहले से ही जानते हैं, यह हमारा ही एक संबंधी बालक है।" प्रायः किसी भो महापुरुष की महिमा को उनके निकट सम्बन्धी समझा ही नहीं करते हैं. विशेष कर एक बालक की। उनकी दृष्टि में बालक योगीश्वर होता हुआ भी प्रायः बालक ही बना रहता है।" अतः पूज्यपाद जी के उन सम्बन्धी महोदय ने मण्डलेश्वर संन्यासी की बातों की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया; परन्तु संन्यासी महोदय को अपने निजी अनुभव से पूज्यपाद जी की महिमा का जो परिचय हो गया था, उसे वे कैसे भुला सकते थे। तो वे लगातार हृदय से पूज्यपाद जी को सतत सम्मान देते ही रहे।

पूज्यपाद जी ने अपने जीवन की कुछ एक घटनाओ और उपलब्धियों की तालिका को स्वयं लिख रखा है। तदनुसार वे निम्नलिखित ईसवी सनों में भिन्न परीक्षाओं में उत्तीर्ण हुए—

सन् १६२० में व्याकरण सम्पूर्ण मध्यमा परीक्षा

,,	१६२३	में	व्याकरण शास्त्री	प्रथम खण्ड
,,	१६२४	में	धर्मशास्त्र शास्त्री	प्रथम खण्ड।
,,	१६२५	में	,, ,,	द्वितीय खण्ड।
"	१६२६	में	,, ,,	तृतीय खण्ड।
"	१६२७	में	,, आचार्य	प्रथम खण्ड।
"	१६२८	में	,, ,,	द्वितीय खण्ड।

१. धर्मशास्त्र शास्त्री प्रथम खण्ड में एक सुवर्णपदक गवर्नमेंट कालेज वाराणसी से तथा तीन रुपये मासिक छात्रवृत्ति मिली।

२. धर्मशास्त्र शास्त्री द्वितीय वर्ष में चार रुपए मासिक छात्रवृत्ति मिली।

३. ,, ,, तृतीय वर्ष में पांच रुपए मासिक वृत्ति तथा एक स्वर्ण पदक तथा शास्त्री-पदवी मिली।

४. ,, आचार्य प्रथम खण्ड में पांच रुपए वृत्ति तथा एक स्वर्णपदक मिले।

५. ,, ,, द्वितीय खण्ड में उत्तीर्ण हो गए।

तदनन्तर गृहत्याग करने पर तृतीय खण्ड की परीक्षा दी ही नहीं। माधोलाल स्कालर शिप के विषय में उन्होंने यह लिख रखा है—

सन् १६२१	जुलाई से	सन् १६२२ जून तक	पांच रुपए	प्रतिमास।
,, १६२२	,,	,, १६२३ ,,	पांच रुपए	,, ।
,, १६२३	,,	,, १६२४ ,,	दस रुपए	,, ।
,, १६२४	,,	,, १६२५ ,,	पन्द्रह रुपए	,, ।
,, १६२५	,,	,, १६२६ ,,	पन्द्रह रुपए	,, ।
,, १६२६	,,	,, १६२७ ,,	पन्द्रह रुपए	,, ।
,, १६२७	,,	,, १६२८ ,,	पन्द्रह रुपए	,, ।
" १६२८	,,		बीस रुपए	,, ।

१६२६ में शास्त्री पदवी के लिए—काशीस्थ महाराष्ट्र धर्मसभा की ओर से एक रजत पदक मिला था।

करने में काफी समय बड़ी सावधानता से यत्न किया। वस्तुतः जगदम्बा से अनुज्ञा लिए बिना ही जो उन्होंने विवाह कर बैठने का साहस किया, उससे जगन्माता रुष्ट हो गईं और उनके उस रोष के कारण पत्नी के साथ समागम से पहले ही घर छोड़ देना पड़ा और परिव्राजक जीवन के प्रारम्भिक दौर में उन्हें अनेकों ही कष्टों का अनुभव करना पड़ा। पश्चात् जगदम्बा ही की कृपा से परिव्राजकपन में घूमते हुए ही उन्हें अनेकों स्थानों पर विशेष सत्कार भी मिलता रहा और सुख देने वाली सेवा भी मिलती रही। वस्तुतः माता रुष्ट हो भी जाएं तो भी अधिक देर तक रुष्ट नहीं रहती हैं, जल्दी ही अनुग्रह करने लग जाती हैं, यदि सच्चे हृदय से मानव उनकी शरण ले लेवे।

पूज्यपाद जी ने अपने परिव्राजक जीवन की घटनाओं को क्रम से अपनी डायरियों पर लिख रखा था। उनमें से कुछ एक डायरियां उनके सामान में से मिल गई और कुछ नहीं मिलीं। जो मिलीं उन्हीं के आधार पर और उनके द्वारा स्वयं कही हुई बातों के आधार पर उनके उस जीवन की यह गाथा कई एक प्रकरणों में लिखी जा रही है।

नैमिष तीर्थ उस समय एक नागा बाबा के अधिकार में था। बाबा अतीव दुश्चरित्र और कपटी था। पूज्यपाद जी से कहने लगा, "यहां चोरों का बड़ा जोर रहता है। एक एक पैसे के लिए मनुष्य को मार देते हैं। इसलिए आपके पास जितनी भी धन राशि हो उसे मेरे पास रख दो और स्वयं निश्चिन्ततया आसपास जहां चाहो विचरण करते रहो। जाते समय उस धनराशि को मेरे से लेकर जाओ।" पूज्यपाद जी उसकी चिकनी चुपड़ी बातों से धोखे में आ गए और साढ़े सात रुपए, जो उनके पास थे, वे नागा बाबा के हवाले कर दिए। तदनन्तर आसपास घूमते रहे। प्रदोष व्रत खेदेवेश्वर महादेव के मन्दिर में मनाया। पारायण दो दाने चावल से किया। वहां से आगे जाते हुए गोमती के तट पर एक "अयोध्या" नामक स्थान पर पहुंचे। वहां एक कान्य कुब्ज ब्राह्मण से परिचय हुआ। वह एक तपस्वी महानुभाव था। गोमती के जल में खड़े रह कर गायत्री जप किया करता था। वहां एक साधु ने दो झोपड़ियां भी बना रखी थीं। हनुमान जी का मन्दिर भी वहां था। कन्हैया नाम वाले उस तपस्वी ब्राह्मण का एक सम्बन्धी वहां रहता था जो पूज्यपाद जी के साथ स्नेह भरा व्यवहार करता रहा। पूज्यपाद जी इस स्थान पर मार्ग कृ. चतुर्दशी से पौ० शु. चतुर्थी तक रहे। तपस्वी ब्राह्मण का सम्बन्धी उन्हें बड़े प्रेम से साबूदाने की खीर खिलाया करता था। पूज्यपाद जी ने इस स्थान पर एक लाख गायत्री जप किया। कन्हैयालाल ने वहाँ गोमती के तट पर उनके लिए एक पर्णकुटी बनवा दी थी। कई दिन रात को वहीं सोया करते थे। जब बहुत ठण्ड पड़ने लगी तो मन्दिर में आकर रहने लगे। बीच में एक दिन **चक्रतीर्थ** पर पुनः गए

और कपटी नागा बाबा से साढ़े सात रुपए वापिस देने को कहा। उसने बहुत आनाकानी की और बहुत मुश्किल से पूज्यपाद जी को उससे केवल चार रुपए वापिस मिल गए। उन्होंने "अयोध्या" आकर चार रुपए कन्हैया लाल के सम्बन्धी के पास दूध के लिए रख दिये और वह प्रतिदिन साबूदाने की खीर बनाकर खिलाता रहा। इस तरह से पौ० शु० चतुर्थी तक वहां रहे। मकर संक्रान्ति भी वहीं हुई।

पौ० शु० चतुर्थी को बिना टिकट वे रेलगाड़ी पर चढ़े और **"बालामाऊ"** स्टेशन पर उतरे। दो आने की मिठाई खाकर रात एक दुकान में काटी। प्रात: पुन: बिना टिकट के रेल में सवार हो गए **"कारता"** नामक स्टेशन पर टी.टी. ने जब रेल गाड़ी से उतार दिया तो पैदल चल कर **'हरदोई'** पहुंच गये। वहां धर्मशाला में ठहरे। रात को खिचड़ी बनवाकर खाई। प्रातः भिक्षा करके कुछ पैसे प्राप्त किए। उनसे हलवाई से पूड़ी मिठाई लेकर उस पर निर्वाह किया। रात को पाठशाला के एक पण्डित के पास रहे। भोजन वहीं किया और पण्डित जी से छः पैसे भी मिले। चौथे दिन पांच मील चलकर एक गांव में **'मुन्ना सिंह"** की चौपाल में ठहरे। दूसरे दिन छः मील चल कर एक गांव में एक अकेले रहने वाले ब्राह्मण के पास ठहरे। वहीं प्रदोष व्रत भी किया। वहां से **'शाहाबाद'** होकर एक और गांव में रात को रहे। दूसरे दिन पन्द्रह मील चलकर **'शाहजहांपुर'** पहुंचे। वहां **'रामगङ्गा'** के तट पर साधुओं के एक ठिकाने में रात को ठहरे। यहां खाने को प्रसाद मिला। पूर्णिमा यहां कटी।

माघ कृ० प्रतिपदा को सब्जी मण्डी के एक पण्डित ने सीधा दिया जिससे मन्दिर में जाकर खिचड़ी बनाई और खाई। यहां भी भीख मांग कर कुछ पैसे प्राप्त किए। रामानुज सम्प्रदाय के एक ब्राह्मण ने यहां आठ आने दे दिए। यहां से बिना टिकट रेल यात्रा करके **'बीसलपुर'** पहुंच गए। रात एक धर्मशाला में काट ली। तत्पश्चात **'रामभरोसे'** लाल नाम के एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण के घर कुछ दिन भोजन और निवास करते रहे। वे बड़े गुणवान थे और उनके साथ मैत्री का सम्बन्ध हो गया। उन्होंने चन्दा करके एक तो साढ़े छः रुपए का एक कम्बल खरीद कर दे दिया और **'पीलीभीत'** स्टेशन तक का किराया भी दे दिया। साथ ही उन्होंने **"चार पैसे" का भगवती दुर्गा का प्रसाद** भी दे दिया और देते हुए यह आदेश दिया कि इन चार पैसों में से आवश्यकता पड़ने पर एक एक पैसा खर्च करना चाहिए और ज्यों ही पैसे कहीं से मिल जाएं तो चार पैसे पुनः पूरे कर के रखने चाहिए। साथ यह भी कहा कि यह भगवती का खजाना है। इसे अपने पास रखते रहने से आपको कभी भी जीवन निर्वाह के लिए पैसे का अभाव नहीं रहेगा। वे चार पैसे पूज्यपाद जी के पास जीवन

भर विद्यमान रहे। कभी कभी उनमें से वे यदि एक पैसा व्यय कर लेते तो पैसे मिलने पर तुरन्त ही उस चार पैसों की राशि को पुनः पूरा कर दिया करते थे। वहां दो रुपए लाला गोपीनाथ ने भी दिए थे। वहां से छः आने का टिकट लेकर 'पीलीभीत' आ गए। वहां लाला **मङ्गल सेन** के घर में भोजन आदि करत हुए आठ दिन रहे। वहां शहर के बाहर **दूधधारी महादेव का मन्दिर** है। उस मन्दिर में ठहरे और खाना अपने पैसों से खाते रहे। वहां से आठ आने का टिकट लेकर **'टनकपुर मण्डी'** पहुंच गए। कुछ मिठाई खाकर रात को शिव मन्दिर में रहे।

सन् १९२८ माघ. कृ. अमावस्या को प्रातः सरयू नदी पर स्नान आदि करके नदी को पार करके **'टुनास'** गए। वहां से **पूर्णगिरि** के दर्शन को गए। पहाड़ी मार्ग था। सारा सुनसान था। उन्हें आगे एक घाटी के मार्ग से जाना था, परन्तु परिचय न होने से दूसरी घाटी के मार्ग से चल पड़े। काफी ऊपर पहुंच कर मध्याह्न के समय उन्हें यह बात अनुभव में आ गई कि वे गलत रास्ता पकड़ कर काफी दूर आ गए हैं। उधर से भूख भी लग रही थी। स्थान बड़ा बीहड़ था नदी के उस पार घूमता हुआ एक शेर भी दीख पड़ा। अब क्या करें। भूखे प्यासे बहुत दूर चलकर पूर्णगिरि कैसे पहुंच सकें। इन विचारों से अतीव व्याकुल हो गए।

ऐसी स्थिति में एक सुविचित्र घटना घटी। उनके कानों में बांसुरी की ध्वनि सुनाई पड़ी। जिधर से वह ध्वनि आ रही थी उधर की ओर दृष्टि डालते हुए देखा कि पास वन में तीन पहाड़ी स्त्रियां द्रान्तियों से घास काट रही हैं और एक पुरुष पास बैठा बांसुरी बजा रहा है। उस पुरुष ने पूछा, "किधर जाना है आपने।" पूज्यपाद जी ने उत्तर दिया "पुन्ना गिरी के दर्शन को।" इस पर उस पुरुष ने एक पगडण्डी की ओर हाथ से संकेत करते हुए कहा।" इस पगडण्डी से जाओ, जल्दी ही विश्राम योग्य स्थान पर पहुंच जाओगे। कोई चिन्ता मत करो।" पूज्यपाद जी ने उस पतली सी पगडण्डी को देख लिया। उस पर से कुछ ही पग चलने पर उन्हें उन "पर्वतीय लोगों से कुछ और वार्तालाप करने की इच्छा हुई, तो पीछे मुड़ कर जब स्थल की ओर देखने लगे तो वहां न ही घास काटती हुई वह स्त्रियां ही कहीं दीख पड़ीं और न ही वह बांसुरी बजाने वाला पुरुष ही इस घटना से बड़े ही आश्चर्य चकित रह गए। फिर पगडण्डी सेजब चल पड़े तो घड़ी दो घड़ी में ही एक पडाव पर पहुंच गए। इतने थोड़े समय में इतनी दूर यात्रा को उन्होंने कैसे पार किया, इस बात पर वे विशेषतया आश्चर्य चकित हो गए। वह पुरुष और तीन स्त्रियां कौन महानुभाव थे इस बात के विषय में वे कोई भी निर्विवाद निश्चय नहीं ले सके। इस आश्चर्य मयी घटना को उन्होंने अपने **सिद्ध महारहस्य** ग्रन्थ में लिख कर रखा है।

अस्तु ! उस स्थान पर दुर्गा देवी का एक मन्दिर था। वहीं विश्राम करके वापिस 'टुनास' लौट आये। क्योंकि नौ मील के बदले चौदह मील चलना पड़ा था। उससे बहुत थकान हो गई थी। अतः काफी दूर पुनः चल पड़ने की इच्छा नहीं हुई। टुनास में एक क्षत्रिय जमीदार से भेंट हुई। उसके आग्रह से वहां नौ दिन ठहरे। वहां से तीन चार बार पूर्णगिरि के दर्शन को गए। पूर्णगिरि के शिखर पर कोई जाता नहीं। प्रसिद्धि वहां ऐसी है कि यदि कोई शिखर पर जाने का यत्न करे तो देवी के कोप से उसकी मृत्यु हो जाती है। पूज्यपाद जी को वहां एक नागा संन्यासी मिला जो प्रायः पूर्णगिरि के शिखर पर भी चढ़ा करता था। बहुत कठिन पहाड़ी मार्ग होने के कारण पूज्यपाद जी शिखर पर चढ़ नहीं पाये, परन्तु उस नागा संन्यासी को उन्होंने अपनी आंखों से पूणगिरि के शिखर पर देखा।

पूज्यपाद जी टुनास से चलकर टनकपुर मण्डी पहुंचे। वहां एक शिवमन्दिर में ठहरे। किसी ने भोजन के लिए पूछा नहीं। दो दिन भिक्षा करके भोजन किया। वहां से सरयू पार करके नेपाल की मण्डी—**ब्रह्मदेव मण्डी** पहुंच गए। वहां सिद्ध-मन्दिर के दर्शन किए। मण्डी में एक खाली कुटी में तीन दिन रहे। माघ त्रयोदशी का शिव प्रदोषव्रत वहीं किया। माघ पूर्णिमा को फिर टनकपुर आकर वहां चार दिन ठहरे। यहां भोजन कठिनाई से मिलता था। एक दिन श्री राभभरोसे के द्वारा दिए गए दुर्गा देवी के प्रसाद के चार पैसों में से एक पैसे के चने और गुड़ को खरीद कर दो समय भोजन का निर्वाह किया। तदनन्तर एक सज्जन महानुभाव वहां आया और भोजन की व्यवस्था के विषय में उसने पूछा। वास्तविक स्थिति जब उसे विदित हो गई तो उसने मन्दिर के सभी कर्मचारियों को डांटा और भोजन की व्यवस्था कर दी। इस घटना को पूच्यपाद जी ने मुझे स्वयं सुनाया था। डायरी में संक्षेप से ही संकेत किया है। यहां एक कुमैया ब्राह्मण **लक्ष्मीदत्त तिवारी** ने घर ले जाकर कुछ चावल और आठ आने पैसे दिए। आठ आने का टिकट लेकर वहां से 'पीलीभीत' पहुंच गए। वहां दो दिन ठहरे। एक दिन मङ्गलसेन चूड़ी वाले के घर और दूसरे दिन **दुर्गाशङ्कर शुक्ल** के। वहां से लारी के द्वारा **बरेली** आ गए। लारी का का किराया शुक्ल जी ने दिया। वहां एक रात शिवालय में रहे और दूसरे दिन लाला **रामदास अग्रवाल** के घर गए। उससे उनका परिचय कभी पीछे हरिद्वार में हुआ था। उनके घर चार दिन रहे। उन्होंनें पूज्यपाद जी को चार रुपये और एक दुपट्टा दे दिया। फाल्गुन कृष्ण त्रयोदशी के प्रदोषव्रत का पारायण लाला रामदास कें घर किया। फिर बरेली सें टिकट लेकर रेल द्वारा **राजपाट नरौरा** आ गए। शिवरात्रि (चतुर्दशीं) को प्रातः गंगा स्नान करकें कई जगहों को देखते हुए काफी धूम धाम कर एक बाग कें बीच एक कुटी में ठहरे। वहां

पांच रात्रि रहे ।

फाल्गुन शु. तृतीयाको वहां से पैदल चलकर गंगा कें तट पर स्थित **'कर्णवास'** नाम कें क्षेत्र पर पहुंच गए । वहां देखा कि हाथरस का एक धनाढ्य वैश्य गायत्री पुरश्चरण करवा रहा है । वहां पच्चीस तीस ब्राह्मण जप कर रहे थे । पुरश्चरण करानें वाला आचार्य **पं० मोतीलाल नागर** था । पूज्यपाद जी का काशी का पूर्वपरिचित पण्डित था । यजमान कें प्रतिनिधि के रूप में काम करनें वाला ऋत्विक् पूज्यपाद का सजातीय ब्राह्मण **पं विश्वनाथ था** । पूज्यपाद जी को देखते ही दोनों महानुभाव बहुत प्रसन्न हो गए । उन्हें बहुत आदर से पुरश्चरण में अपनें साथ रख लिया । फलतः फा. शु. तृतीया सें चै. कृष्ण त्रयोदशी तक पूज्यपाद जी उनके पास कर्णवास में ही रहे । बीच में एक दिन **भृगु-आश्रम** भी देख आए । पुरश्चरण में **स्वामी विमलानन्द जी** और ब्रह्मचारी जीवनदत्त और महात्मा **ओडिया बाबा** भी आए थे । उन सभी सें काफी वार्तालाप होता रहा । वहीं पर लाहौर के **पं० नृसिंह देव** के गुरु **स्वामी विशेश्वरानन्द** कें भी दर्शन हुए । इन्ही स्वामी जी सें न्यायसिद्धान्त-मुक्तावली को पढ़ कर पं० नृसिंह देव जी नें उस पर "प्रभा" नाम की टीका का निर्माण किया था । वहीं **उग्रानन्द** महात्मा के दर्शन हुए ।

पुरश्चरण के दिनों एक बार स्वामी विमलानन्द जी से गायत्री मन्त्र के छन्द की अक्षर गणना के विषय पर शास्त्रार्थ भी हुआ । पूज्यपाद जी ने शास्त्र के प्रमाणों को देते हुए विषय पर जो निर्णय दे दिया उससे सभी श्रोतागण सन्तुष्ट हो गए और स्वामी विमलानन्द के हठ तर्क को किसी ने पसन्द नहीं किया । वे कहते रहे कि प्रणव के मिलाकर के सावित्र मन्त्र का गायत्र छन्द चौबीस अक्षरों वाला बनता है । परन्तु पूज्यपाद जी ने छन्दः शास्त्र के सूत्र **"इयादिपूरणः"** के आधार पर "वरेण्यं" पद के "वरेणियं" ऐसे उच्चारण में चार अक्षरों को गिनते हुए गायत्री के चौबीस अक्षरों को स्थापित कर दिया । उस पुरश्चरण में पूज्यपाद जी का काफी संवाद स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी के साथ भी हुआ । उन्होंने बहुत सारे प्रश्न किये और पूज्यपाद जी सभी के उत्तर यथार्थतया देते रहे । इस पर स्वामी जी बहुत सन्तुष्ट हो गए । पूज्यपाद जी ने भी स्वामी जी को न्याय दर्शन के एक प्रकाण्ड विद्वान् के रूप में पाया । इस बात पर वे भी बहुत सन्तुष्ट हो गए ।

पुरश्चरण के ही दिनों वहां महात्मा ओड़िया बाबा की अध्यक्षता में पूज्यपाद जी ने **"गायत्री माहात्म्य"** पर एक लम्बा चौड़ा भाषण भी दे दिया । भाषण देते हुए वे बीच में किसी प्रसक्त विषय से तत्सम्बन्धी अनुप्रसक्त विषय में काफी देर इतनी दूर चले गए कि निपुण श्रोता लोग ऐसा समझने लगे कि वे मुख्य विषय को छोड़कर विषयान्तर में चल गए हैं । परन्तु उस अनुप्रसक्त विषय

का समाधान करके वे पुन: प्रसक्त विषय पर आ करके अपने वैदुष्य से, योग्यता से ओर शास्त्रानुकूल तर्कों से सभी श्रोताओं को पर्याप्त मात्रा में सन्तुष्ट कर गए। उस भाषण पर बाबा जी अतीव सन्तुष्ट हो गए और पूज्यपाद जी की भूरि-भूरि प्रशंसा की। काशी के पण्डित जन भी अतीव प्रसन्न हो गए। वैसे भी उन्हें इस बात का अच्छा अनुभव हुआ कि पूज्यपाद जी के उधर आ जाने से उनके अनुष्ठान में मानो विशेष जनसंचार हो गया और अनुष्ठान पर्याप्त मात्रा में सजीव हो गया। स्वामी विमलानन्द को भी पूज्यपाद जी के यथार्थ निर्णय के साथ सहमत होना पड़ा।

व्याख्यान के पूरा हो चुकने के अनन्तर दो पण्डित महानुभाव पूज्यपाद जी से अलग मिले। वे किसी सनातन धर्म संस्था में काम करते थे। कथा वाचकता में प्रवीण थे। वे पूज्यपाद जी से कहने लगे कि ज्योंहीं वे अनुप्रसक्त विषय में काफी दूर जाने लगे तो उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि उनका भाषण मुख्य विषय के मार्ग से इतना भटक गया है कि पुन: उस पर आ ही नहीं सकेगा। फिर यह भी कहा कि जब वे विषयान्तर में काफी दूर जाने के पश्चात् भी पुन: अपने मुख्य विषय पर ही आकर उसका प्रतिपादन प्रामाणिक ढंग से कर गए तो उन्हें अतीव आश्चर्य भी हुआ और पूज्यपाद जी की योग्यता पर, उनके वैदुष्य पर तथा उनकी यथार्थ शास्त्र-दृष्टि पर पर्याप्त सन्तोष हुआ। वे दोनों महानुभाव पूज्यपाद जी से प्रार्थना करने लगे कि समुचित वेतन पर उनकी संस्था में काम करें। संस्था एक पाठशाला को भी चला रही थी। वे दोनों महानुभाव ऐसा सोचते रहे कि पूज्यपाद जी अध्यापन और व्याख्यान दोनों ही कलाओं में संस्था के ध्येय को काफी आगे ले जा सकते हैं। परन्तु पूज्यपाद जी ने उनके वैसे निमन्त्रण को स्वीकार नहीं किया।

चैत्र कृष्ण द्वादशी को वाराणसी के विद्वान् और अन्य ब्राह्मण महानुभाव अपने-अपने घरों को चले गए। पूज्यपाद जी ने वहां पुश्चरण क दिनों दस दिन चण्डी पाठ भी किया। दस रुपए, एक लोटा, एक गडवी आचमनी गोमुखी, आसन आदि उन्हें वहां से मिले और मथुरा तक का रेल का किराया भी मिला। यहां से त्रयोदशी के दिन प्रात:काल पास वाले रेलवे स्टेशन तक पैदल जाकर वहां से टिकट लेकर मथुरा पहुंच गए। वहां यमुना स्नान किया और **अमृतराम नागर** के घर गए। प्रदोष व्रत का पारायण वहीं किया। अमृतराम के साले से बहुत परिचय हो गया। चतुर्दशी को स्नान भोजन आदि करके तांगे से वृन्दावन पहुंच गए। अमावस्या को पैदल नौ मील चलकर **'भाण्डीर वन'** पहुंच गए। वहां दो रातें चना-गुड़ खाते हुए बिता दीं। **सं० १९८६ की वर्ष प्रतिपदा** भाण्डीर वन में हुई। वहां से पैदल चलकर उधर की तहसील वाले स्थान पर पहुंचे। दो रातें ऐसे कटीं। एक रात तो गुड़-चना खाकर

कटी। दूसरे दिन किसी बनिये ने सूखा अन्न दिया और उसे पकाकर खाया। मार्ग में कुछ मिठाई लेकर खाई। वहां हनुमान जी के एक मन्दिर के दर्शन किए। उधर हनुमान जी का भक्त एक बूढ़ा महात्मा मिला। वह पूज्यपाद जी से उधर ही रहने को कह रहा था। परन्तु वे वहां से सात मील चलकर **'हसनपुर'** आ गए। वहां एक रात्रि **ग्यासी राम के बाग** में रहे। ग्यासीराम से मिले हुए सूखे अन्न को पकाकर खाया। फिर पैदल छः मील चलकर **'खामी'** पहुंच गए। वहां किसी सज्जन ने दूध पिलाया। वहां से गांव-गांव आते हुए **'पल्वल'** पहुंच गए। वहां संस्कृत पाठशाला में ठहरे। पाठशाला के अध्यापक **मनोहर लाल गौड़** थे। उन्हें एक प्रमाणपत्र लिखकर दे दिया। दो दिन उनके पास भोजन किया। वहां **भैरव गिरि** से भी परिचय हो गया। वहां से पैदल चलते हुए रात को एक मन्दिर में ठहरे और दूसरे दिन **'बल्लभ गढ़'** पहुंचे। मिठाई और दूध खरीदकर उसी पर निर्वाह किया। आगे पैदल चलकर **'कालिका देवी'** पहुंचे जो पुरानी दिल्ली से सात मील पर है। देवी के दर्शन किए। चैत्र शु० सप्तमी को वहां मेला लगा। वहां मिठाई-दूध खरीद कर निर्वाह किया। फिर लारी द्वारा **दिल्ली** पहुंच गए। रात भर यमुना के तट पर सोए। प्रातः **निगमबोध घाट पर यमुना स्नान किया**। फिर एक बनिये के घर भोजन किया। रामनवमी वहीं हुई। सायंकाल को यमुना के किनारे-किनारे तीन मील चलकर एक **गुरुद्वारे में** रात काटी। वहां एक विपत्ति का मारा कान्यकुब्ज ब्राह्मण मिला जिसने रोटी पकाकर खिलाई, सीदा सिक्खों ने दे दिया। सायंकाल को वहां से सात मील चलकर एक बगीचे में ठहरे। वहां एक महाराष्ट्री ब्राह्मण संन्यासी मिला। उसने भात खिला दिया। अगले दिन पैंतीस मील पैदल चलकर **'गडी'** में रात भर रहे और एक ब्राह्मण ब्रह्मचारी ने दाल-रोटी पकाकर खिला दी। वहां से **'गन्नौर'** होते हुए रेल से **कुरुक्षेत्र** आ गए।

वहां स्नान आदि करके आठ मील दूर एक देवी के मन्दिर के दर्शन किए। वहां रात को प्रदोष व्रत का पारायण दो दाने चावल से किया। दूसरे दिन हलुआ खाकर दो मील दूर **पापहरण तीर्थ** पर गए। वहां उडीया वैरागी के पास रात ठहरे। रोटी-दाल पकाकर खाई। सीदा वैरागी ने दिया। पूर्णिमा को पैदल चलकर पुनः कुरुक्षेत्र आ गए। वहां का उस समय का मानवीय वातावरण उन्हें बहुत बुरा लगा। तभी उन्होंने लिखकर रखा है कि "यहां के लोग निर्दयी डाकू हैं, भूमि तो जैसे खाने को ही दौड़ती है। यहां चोरी व्यभिचार आदि पाप बहुत हैं।" वहां कुण्ड पर ही एक वैष्णव स्थान पर खाने को खीर भोजन मिला। पटियाला हाऊस के पास वहां दूर से ही काशी के एक परिचित **पण्डित श्री पद्मनाभ नैयायिक** पर जब पूज्यपाद जी की दृष्टि पड़ी

तो उसकी दृष्टि से बचकर दूसरी ओर चल दिए और लारी में सवार होकर **अम्बाला** की ओर प्रस्थान किया।

अम्बाला शहर में तीन दिन एक शिव मन्दिर में ठहरे। वैशाख कृष्ण प्रतिपदा को यहां के पुजारी ब्राह्मण ने भोजन खिलाया और एक आना दे दिया। दूसरे दिन एक बनिये के घर भोजन किया और तीसरे दिन अपने हाथ से बनाकर खाया। भगवती अम्बिका के दर्शन करके तृतीया को वहां से **'शहजादपुर'** आ गए। रात को एक मन्दिर में ठहरे। दूसरे दिन वहां मुसलमानी वेष वाले एक पण्डित सज्जन ने आदर पूर्वक रोटी खिला दी। उस पंडित ने कहा कि **'छोटा त्रिलोकपुर'** में कोई पण्डित आया है। उसे शास्त्री जी कहते हैं। वह मनुष्य के दिल की बात बता देता है। परन्तु पूज्यपाद जी को उधर जाने की इच्छा नहीं हुई। वहां **रामप्रसाद वैद्य** से भी बातचीत हुई। सायंकाल को वहां से पैदल चलकर **'कक्कड़ माजरा'** आ गए। वहां एक पाठ शाला भी थी, परन्तु पण्डित जी वहां नहीं थे। एक चौपाल में रहे। किसी ने रोटी-दाल वहीं लाकर खिला दी। वहां से पैदल चले। रास्ता भूल कर एक गांव में पहुंचे। वहां एक ब्रह्मचारी ने किसी ब्राह्मणी से रोटी बनवा कर खिला दी फिर **'राणी रायपुर'** पहुंचे। वहां एक साधु के मन्दिर के बाहर मैदान में सोए। दूसरे दिन प्रातः उठकर पांच मील पैदल चलकर **'छोटा त्रिलोकपुर'** पहुंचे। वहां एक जोगियों का स्थान है। उसमें प्राचीन महात्माओं की समाधियां हैं। हमारे विचार में वह समाधियां गोरखपंथी जोगियों की होंगी। यहां पूज्यपाद जी के भोजन और निवास का प्रबन्ध भी हो गया। उस पूर्वोक्त शास्त्री को भी उन्होंने वहां देखा। उन्हें वह महामूर्ख लगा। संस्कृत शुद्ध तो जानता ही नहीं था। किसी छल से महन्त को फंसा रखा था और बड़ा ही आडम्बर चला रखा था। मद्य-मांस का भी सेवन करता था। अपने आपको शाक्त बताता था और अमृतसर वाले **हरदत्त शास्त्री** को अपना गुरु बताया करता था। बस अण्ड-भण्ड भड़-भड़ करता हुआ लोगों पर अपना प्रभाव जमाने का यत्न किया करता था। दूसरे दिन कुछ विनम्र होकर पूज्यपाद जी से रघुवंश पढ़ाने को कहने लगा। जिला करनाल के किसी गांव में उसका घर था और नाम था **सोमदत्त**।

पूज्यपाद जी वहां से चलकर **'पलासर'** पहुंचे। दूसरे दिन वहां से आठ नौ मील चलकर **'खट्टी'** पहुंच गए। वहां कनैतों के कुछ घर रहा करते थे। उनका पुरोहित **भगवान दास** बड़ा सज्जन था। उसके आग्रह से वहीं भोजन किया। उसके साथ पांच मील चलकर **'बलोह'** पहुंच गए। जगह अतीव सुन्दर दीख पड़ी। पहाड़ी के ऊपर एक मैदान था वहां एक दूधाहारी महात्मा की प्राचीन समाधि थी पक्की धर्मशाला थी पास एक बड़ी सुन्दर बावड़ी थी।

जिसमें पानी वर्ष भर रहता था। आसपास चीड़ के वृक्षों का अच्छा वन था। जगह तब **सिरमौर स्टेट** में थी। वहां एक बूढ़ा पहाड़ी कनैत संन्यासी रहता था। पूज्यपाद जी वहां ग्यारह दिन ठहरे। वहां से एक महाराष्ट्री राजपूत संन्यासी के साथ दो मील चलकर **'काठी'** नामक गांव में पहुंचे। दूसरे दिन वहां से **'मामल'** गए। वहाँ स्वयं दाल-भात पकाकर भोजन किया। वहां से कनैतों के एक और ग्राम **'दार्डा'** पहुंच कर वहां तीन दिन रहे। भोजन स्वयं पकाकर खाते रहे और संन्यासी को भी खिलाते रहे। वहां से पैदल चलकर फिर **'क्लोह'** आ गए। वहां कोई था नहीं। इसलिए डेढ़ मील चलकर **'कंधोल'** पहुंचे। वहां एक गौड़ ब्राह्मण संन्यासी से परिचय हो गया। वे अम्बाला जिले के **माजरी** ग्राम में रहते थे। नाम उसका **फरौटी गिरि** था। उससे काफी स्नेह हो गया। गांव यह भी कनैतो का था। वहां **चूरसिंह** कनैत के साथ ब्रह्मचारी के बाग में एक रात्रि रहे। वहाँ एक **बंगाली युवा संन्यासी** रहता था। दूसरे दिन चूरसिंह चला गया और पूज्यपाद जी सीदा संन्यासी से पाकर स्वयं भोजन पका ही रहे थे कि वहां के एक टिब्बे पर रहने वाला वह संन्यासी आ गया जिससे पूज्यपाद जी मिलना चाहते थे। वह संन्यासी जन्म से जोशी वंश का एक कूर्मांचली ब्राह्मण था, अच्छा पढ़ा लिखा था। संस्कृत भी जानता था। अभ्यासी भी था। उसने भी भोजन वहीं किया। फिर पूज्यपाद जी उसी के साथ टिब्बे को चल दिये। मार्ग में एक गांव में छाछ के साथ भोजन खाकर टिब्बे पर रात भर उस संन्यासी के पास ठहरे। पास चीड़ के वृक्षों का वन था। हवा बड़ी तेज चलती थी। रात को ठण्ड जरा लगी। पानी काफी दूरी पर था। स्थान बड़ा एकान्त लगा। साधना के लिये उपयुक्त प्रतीत हुआ। पहाड़ी पर एक प्राचीन पक्का मन्दिर है। किसी सिद्ध पुरुष की समाधि है। वहां काफी दूर जाकर बावड़ी पर स्नान किया। फिर भोजन पकाया। एकमात्र फूटी पतीली वहां थी। उसी में पहले दाल पकाई फिर चावल। तवा पत्थर का था और थाली भी पत्थर की। वह स्थान **नाहन स्टेट में** था। वहां के राज परिवार से ब्रह्मचारी को काफी सम्मान मिलता था। आसपास के ग्रामों में उसकी काफी प्रशंसा होती थी। उसकी कुछ निन्दा भी सुनी जाती थी। ब्रह्मचारी को पूज्यपाद जी का वहां रहना अच्छा नहीं लगा। इस कारण वे दूसरे दिन सायं वहां से चल पड़े। चलते समय पर ब्रह्मचारी ने काफी प्रेम का व्यवहार किया।

वहां से चलकर एक गांव में किसी राधास्वामी मत वाले ब्राह्मण के घर में ठहरे। उसके साथ काफी सिरखपाई करनी पड़ी। भोजन अपने आप बनाकर खाया। दूसरे दिन पैदल चलकर **'नैना टिकर'** होकर एक वैश्य साधु के स्थान में एक रात्रि ठहरे। वह स्थान **पटियाला राज्य** का था। फिर एक पाखण्डी

वैष्णव साधू से भेंट हुई। रात को कुछ भी नहीं खाया। दूसरे दिन **'भरत ताल'** पैदल आये। वहां 'सदाबरत' से चावल दाल लेकर पकाये और खाये। 'सदाबरत' पटियाला का था। यहाँ से १४ मील पैदल चलकर एक गांव में पहुंचे। वहां **'गडखल'** का एक धनी ब्राह्मण **तुलाराम** रहता था। उसने खाने को भी नहीं पूछा। वहां से पुनः चौदह मील पैदल चलकर **'जावली'** पहुंचे और एक सारस्वत ब्राह्मण की दुकान में रात भर रहे। तिथि बैशाख शुक्ल एकादशी थी। वहां से फिर पैदल चलकर गडखल पहुंचे। वहां तुलाराम का भाई **काशीराम** रहता था। वह भी बड़ा दुष्ट प्रतीत हुआ। दूसरे दिन काशी राम के नौकर ने अपने पैसे से दूध पिलाया और **'कसौली'** के एक दुकानदार के नाम पत्र भी लिखकर दे दिया। कसौली पहुंचने पर उस दुकानदार ने रसद दे दी और खाना पकाकर खाया। प्रदोषव्रत वहीं हुआ। दूसरे दिन लारी से **चण्डी के गांव** पहुंचे। दुर्दैव से वहां जुआ खेला। ग्यारह रुपये हार दिये। फिर किसी ने एक रुपया दे दिया। वह रुपया भी एक और जुआड़ी जीतकर ले गया। फिर रोते-रोते दस मील पैदल चलकर **'कुम्रां बाई'** आये। रात भर एक मन्दिर के बाहर सोये। गर्मी बहुत थी। एक ब्राह्मण ने दाल-रोटी भेज दी। दूसरे दिन पैंदल चलकर एक गांव में पहुंचे। वहां एक कनैत ने लस्सी सत्तू खिला दिये। वहां से एक दो गांव में से गुजरते हुए **'चाकली'** पहुचे। इसी तरह से कभी भूखे, कभी-कभी कुछ खाकर कुछ दिन ग्राम-ग्राम होते हुये सं० १९८६ ज्येष्ठ कृष्ण अष्टमी को **'सम्रलोटा'** पहुंचे। वहां देवी के मन्दिर में माता के दर्शन किये। वहां दुर्गा सप्तशती का पाठ भी किया। कर्णवास के पुरश्चरण में जो एक नारियल का गोला मिला था, उसे देवी को चढ़ाया। मंदिर एक पहाड़ी के शिखर पर है। आस-पास ब्राह्मण पुजारियों के दस-बारह घर हैं। कोई बसे हैं, कोई उजाड़ हैं। स्थान बहुत पुराना है। एक दुर्ग के खण्डहर भी हैं। एक पुजारी के आग्रह से भात वनाकर खाया। दूसरे दिन वहां से डेढ़ मील चलने पर वहां का एक पुजारी **आसाराम** मिला। उससे परिचय हो गया। उसके कहने पर कुछ जन्मपत्रियां देखीं। उसी के आग्रह से फिर ऊपर आ गये और भोजन उसी के घर स्वयं बनाकर खाया। रात को वहीं ठहरे। वहां **राधेकृष्ण** नाम के एक महानुभाव आये। उनसे परिचय हो गया। उनकी जन्म-पत्रियां भी देखीं। उनके आग्रह से वहां नौ दिन ठहरे। एक दिन **पं० रामलाल** के घर भी गये। परन्तु भोजन दोनों समय राधेकृष्ण के घर करते रहे। वह स्थान बहुत अच्छा लगा, परन्तु पानी डेढ़ मील नीचे। वहां से पैदल पन्द्रह मील चलकर **'बड़ा त्रिलोक पुर'** नामक स्थान पर पहुंच गये। वहां **"बाला त्रिपुरा देवी"** के दर्शन किये। रात-भर वन-विभाग की चुंगी के दफ्तर में काट ली **'उदयराम'** के पास। भोजन अपनें हाथ से बनाकर खाया,

उदयराम को भी खिलाया। इसी तरह कई दिन हिमाचल में ग्राम-ग्रास चलते-चलते कहीं रोटी, कहीं चावल, कहीं सत्तू खाते-खाते 'बराड़ा' स्टेशन पर पहुचे।

बराड़ा से रेल द्वारा हरिद्वार आ गए। एक रात मिठाई खाकर किसी धर्मशाला में ठहरे। वहां एक उदासी साधु से सम्पर्क हुआ। **उसके सङ्ग के प्रभाव से मन में बुरे विचार उठने लगे**। दूसरे दिन प्रातः सात मील पैदल चल कर सत्यनारायण मन्दिर में ठहरे। अगले दिन पैदल चलकर **ऋषिकेश** पहुचे। वहां चार दिन ठहरे। गङ्गादशहरा और निर्जला एकादशी यहीं मनाई। एक ब्राह्मण वहाँ रोटी खिलता रहा। वहीं पर **"शिवाष्टक"** नामक स्तोत्र का निर्माण किया। एक सन्यासी जो पहले दिल्ली में मिला था, वह यहां भी मिला। बड़ा ही दुष्ट था। पूज्यपाद जी का कम्बल बेच कर पैसे खा गया। फिर उनसे अनुचित पापमय व्यवहार के लिये यत्न करने लगा। बड़ी कठिनाई से पूज्यपाद जी ने अपनेआपको उसके हाथ से छुड़ा लिया। सत्यनारायण में भूल से लोटा खो डाला जो मिला नहीं। वहां से पैदल लक्ष्मण झूला आ गये। एकादशी को सायं सत्यनारायण लौट आये। चार आने की मिठाई खाकर रात बिताई। अगले दिन हरिद्वार लौट आये। **भीमगोड़ा** में **"पंजाब सिन्ध क्षेत्र"** में वहां के पुजारी **नारायणाचार्य** के पास ठहरे, भोजन दोनों समय वहीं किया। अगले दिन वहीं प्रदोषव्रत नियमानुसार रखकर उसका पारायण किया। "पवननन्द नाष्टकम्" **(मारुतिस्तोत्र)** नाम की हनुमान जी की स्तुति का निर्माण किया। ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा तक नारायणाचार्य के पास ही ठहरे। उस दिन वहां से **कनखल** होकर **चण्डी पर्वत** पर देवी के दर्शन किये। कानपुर से आये हुये एक ब्राह्मण यात्री ने वहां गुड़ और चने खाने को दिये। वहां से **गौरीशङ्कर** मन्दिर आये। उधर सायंकाल को भोजन एक वैरागी ने खिला दिया। द्वितीया को वहां कनखल आ गये। भोजन करके रात को **ज्वालापुर** आकर एक धर्मशाला में रहे। दूसरे दिन फिर कनखल आ गये। दिन भर दक्षेश्वर घाट पर रहे। रात **सूरजमल** की धर्मशाला में बिताई। मैनेजर ने वहां भोजन खिलाया। रात को दक्षेश्वर घाट पर सोये। वहां मेरठ के एक गौड़ ब्राह्मण ब्रह्मचारी से परिचय हो गया। चतुर्थी को ब्रह्मचारी के साथ फिर ज्वालापुर आ गये। वहां एक लोहार बनिये ने कुछ सत्तू और आम दे दिए। उन्हें खाकर दोनों एक मन्दिर में सो गये। वहां एक दण्डीस्वामी के पैर रगड़ दिये। अगले दिन प्रातः पांच मील चलकर **'भगवानपुर'** पहुंच गये। एक मन्दिर में अपने हाथ भोजन बनाकर खाया, सीधा एक ब्राह्मण ने दिया। वहां उनकी जन्मपत्री को भी देखा। एक मन्दिर में तीन दिन रहे। एक दिन एक सेठ ने दोनों समय भोजन भेजा एक दिन एक ब्राह्मण ने खिलाया। तीसरे दिन सायं

पांच मील चल कर **'चौली'** पहुंचे। वहां एक मन्दिर में एक नाथ के पास दो दिन ठहरे। एक ब्रह्मचारी के साथ वहां से वारह मील चलकर आषाढ़ कृष्ण द्वादशी को **सहारनपुर** से आठ मील पर स्थित **'बहेडा'** नामक गांव में पहुंचे। उधर अषाढ शुक्ल षष्ठी तक ठहरे। वहां **हरनाम सिंह नामक गौड़** ब्राह्मण के पास ग्यारह दिन रहे। उसकें पुत्र **अनन्त राम** ने चलते समय एक रुपया दे दिया। वहां **भरतसिंह** नाम कें एक राजपूत जमीदार ने एक दिन निमन्त्रण दिया और हलुवा पूड़ी का भोजन खिलाया। एक अंगोछा और एक रुपया भी दिया। इसके भाई सब आर्यसमाजी थे। इस गांब का रहने वाला **रामदत्त** गुरुकुल कांगड़ी में अध्यापक था। वह एक दिन हरनाम सिंह कें यहां आया। उसका पूज्यपाद जी के साथ शास्त्रार्थ हुआ जिसमें वह हार कर भी हठ करता ही रहा। यहां एक वैद्य से भी परिचय हुआ और दो साधुओं से भी। आ० शु० षष्ठी को वहां से पैदल चलकर सहारनपुर आ गये और रात को एक मन्दिर में ठहरे। एक ब्राह्मण ने मिठाई और पूरी खिला दी। दूसरे दिन बाईस मील पैदल चलकर **'अब्दुल्लापुर'** पहुचे। यमुना नहरके पास एक मन्दिर में एक बैरागी के पास रोटी खाई। दूसरे दिन तीन मील चलकर **जगाधरी** पहुंचे। एक मन्दिर में ठहरे। ऐक सन्यासी ने वहां भोजन खिलाया। वहां दो रातें ठहरे। तीसरे दिन छः मील चल कर ऐक गांव में ऐक सन्यासी के पास रात भर ठहरे। ऐकादशी को पैदल **'मुस्तफाबाद'** आ गऐ। वहां ऐक ब्राह्मण दुकानदार के आग्रह से उसकी दुकान में ही ठहरे। वह शराबी था। भांग पीता था। पूज्य-पाद जी को भी बलात् भांग पिलाने लगा था। वे जैसे तैसे उसकी नजर बचाकर रात को ऐक मन्दिर में आकर सो गऐ। दूसरे दिन प्रातः वहां से **'बराड़ा'** आ गऐ। वहां से बिना टिकट के रेल से अम्बाला कैण्ट पहुंच गऐ। वहां ऐक धर्मशाला के बाहर सो गऐ। दूसरे दिन प्रातः पैदल छः मील चलकर **अम्बाला** शहर में पहुंचे। रास्ते में वर्षा से काफी भीग गऐ। वहां कुछ खा पीकर १८ मील दूर **'राजपुरा'** आ गए। उस दिन प्रदोष व्रत था। ऐक ब्राह्मण भी अम्बाला से साथ था। मिठाई और दूध से व्रत का परायण किया और उस ब्राह्मण को भी खिलाया। ऐक मन्दिर में सो गये। अगले दिन छः मील चलकर **सरहिन्द** पहुंचे वहां से बिना टिकट रेल में बैठकर **कुराली** पहुंच गऐ। उस दिन **आषाढ़ शुक्ल चतुर्दशी** थी। कुराली में गुसांइयाणा गऐ और रात को वहीं रोटी खाई। रात भर वहां ठहर कर अगले दिन आ० शु० पूर्णिमा को दोनों समय रोटी गोसांइयाणा में ही खाई। वहां तब महन्त **सन्ध्यागिरि** थे। जन्म से राजपूत होते हुऐ भी कृपण थे और टांग से लंगड़े थे। उनकें चेले **भीमगिरि** और **बलभद्रगिरि** भी अच्छे नहीं थे। जले बर्तनों को मंजवाने आदि का काम करवाते रहे। अगले दिन भी भोजन वहीं किया। उसी दिन **श्रावणकृष्ण**

प्रतिपदा को वहां कुराली निवासी ज्योतिषी **मुकुन्द वल्लभ "मिश्र"** आए। उनसे परिचय हो गया। फिर उनके घर भी गए। फिर द्वितीया को गोसांइ-याणा में भोजन करके मुकुन्द वल्लभ के ही पास गए। श्रावण शुक्ल द्वितीया बुधवार तक उन्ही के घर में रहे। यहां तक की यह गाथा **नवम्बर १९२८ से** जुलाई १९२९ तक की है।

परिव्राजक जीवन के प्रारम्भिक काल का यह वृत्तान्त पूज्यपाद जी ने एक छोटी सी कापी पर स्वयं लिख कर रखा है। तदनुसार वे नवम्बर १९२८ को घर से निकले। जगह जगह घूमते रहे। कहीं सम्मान मिला कहीं नहीं मिला। कहीं सेवा मिली कहीं भूखे ही रहना पड़ा। कभी स्वादु भोजन मिला, कभी दूध और जलेबी खरीद कर खाकर निर्वाह किया। कभी चने लेकर और भिगो कर उन्हें ही खाकर निर्वाह किया। कभी जेब में पैसे रहे कभी नहीं रहे। कभी भूखे ही रातें काटनी पड़ी। कभी प्रदोषव्रत का पारायण भली भांति किया, कभी केवल दो दाने चावल पर ही किया। कभी रेल का टिकट लेकर यात्रा करते रहे, कभी बिना टिकट के ही। बहुत बार तो प्राय: पैदल ही चलते रहे। सज्जन और दुर्जन दोनों प्रकार के लोग मिलते रहे। माघ कृष्णपक्ष में **बीसलपुर** में देवी के पुजारी रामभरोसे ने जो चार पैसें देवी के प्रसाद के रूप में दिये थे उनमें से कभी कभी एक पैसें के चने खाते रहे और कहीं से पैसें मिल जाने पर उन चार पैसो को पुन: पूरा करते रहे। इस तरह से उन्होनें लगभग **आठ महीने** प्राय: कष्टमयी परिस्थियों में ही बिताये।

आगे **अगस्त १९२९ से दिसम्बर १९३०** का जीवन वृत्तान्त भी उन्होंने अवश्य ही लिख कर तो रखा ही होगा, परन्तु उनकी पुस्तकों और उनके लेखों में वह कापी कहीं भी नहीं मिली। तदनन्तर **जनवरी १९३१** से लेकर आगे का वृत्तान्त जिस डायरी पर उन्होंने लिख कर रखा है उससें ऐसा प्रतीत होता है कि हिमाचल प्रदेश के कई एक स्थानों और वहां के अनेकों महानुभावों के साथ उनका परिचय १९३१ से काफी पहले हो ही चुका था। उन्होंने अपने सिद्ध महारहस्य नामक ग्रन्थ में इसी वर्ष की कई एक दिव्यदर्शनो वाली घटनाओं का वर्णन किया है। तदनुसार वे इसी वर्ष कश्मीर भ्रमण करते रहे और सारा शीत काल उन्होंने कश्मीर में बिताया। फिर पूज्यपाद जी इस वर्ष की कई एक घटनाओं का वृत्तान्त प्राय: स्वयं भी कभी कभी सुनाया करते थे। उन सभी आधारों का आसरा लेकर के परिव्राजक जीवन के इस भाग को लिखा जा रहा है।

ऐसा प्रतीत होता है कि कुराली में ज्यो० मकुन्द वल्लभ से परिचय होने से लेकर पूज्यपाद जी को प्राय: सज्जनों से ही सम्पर्क होता रहा और पहले जैसे कष्टों का अनुभव करने के अवसर घटते गये। फिर यह भी प्रतीत होता है कि

कुराली से पूज्यपाद जी कुछ एक दिन पश्चिमी हिमाचल तीर्थों के दर्शन करते रहे। विशेष करकें कांगडा मण्डल में जो अनेकों सुप्रसिद्ध देवियों के स्थान हैं, उनके दर्शन करते करते आगे बढ़ते गये। इस प्रकार से भ्रमण करते हुये उन्हें कांगडा मण्डल के अनेकों स्थानों पर गुण ग्राही सज्जनों से भेट होती रही और परिचय भी होता रहा। कांगड़ा मण्डल कें अगले भ्रमण की वार्ताओं में स्थान-स्थान पर वैसे सज्जनों का उल्लेख मिलता है। फिर यह भी प्रतीत होता है कि उस मण्डल कें सज्जन उनकी आर्थिक सेवा भी करते रहे। तभी तो थोड़ें ही दिनों तक वहां भ्रमण करते हुए वे कश्मीर यात्रा में प्रवृत्त हो गए और अमरनाथ महादेव के दर्शन को चल पड़े।

पूज्यपाद जी श्रावण शुक्ल तृतीया को कुराली से सम्भवतः कांगडा मण्डल की ओर चल कर और वहां से पठानकोट, कठुआ आदि होते हुये लगभग श्रावन शुक्ला नवमी को जम्मू पहुंचे। जम्मू से वे सीधे अमर नाथ की यात्रा को चले। उस यात्रा का वर्णन उन्होंने एक बार मुझे सुनाया था। परन्तु अब मुझे सभी बातें क्रम से स्मरण नहीं हैं। जितना भी स्मरण है तदनुसार वे जम्मू से अति वेग से आगे बढ़ते गये, एक एक दिन में दो दो दिन का मार्ग पार करते गए और चतुर्दशी को अन्धेरा पड़ने से पहले ही पंचतरणी पहुंच कर उसी दिन आगे चलकर अमरेश्वर की गुफा में भगवान् शिव के विचित्र दर्शन को पा गये उस यात्रा का क्रमिक वर्णन अगले अध्याय में विस्तार पूर्वक किया जाएगा।

अध्याय ७

कश्मीर यात्रा नं० १

पूज्यपाद जी की यह पहली कश्मीर-यात्रा अतीव महत्त्वमयी है। इस यात्रा को करते समय वे पूर्ण यौवन में थे। उनका शरीर स्वस्थ और बलवान् था। उनकी इच्छा शक्ति काफी प्रबल थी। फिर इस यात्रा से पहले तथा यात्रा के चलते चलते और कई वर्ष उसके अनन्तर भी वे भगवान् दुर्वासा के द्वारा उपदिष्ट उत्कृष्टतम शाम्भवी योगसाधना का अभ्यास प्रायः नियम-पूर्वक किया करते रहे। उसके फलस्वरूप उन्हें कश्मीर मण्डल के अनेकों देवस्थानों में अपूर्व दिव्यदर्शन होते रहे। अनेकों देवता अपने विचित्र रूपों में उन्हें दर्शन देते ही रहे। विशेष करके **अमरनाथ** की गुफा में जो शिवशक्ति का दर्शन उन्हें प्राप्त हुआ वह अत्यन्त आश्चर्य कारक है। इसी तरह से भगवती **शारदा माई** ऐसे विचित्र रूप में उनके सामने प्रकट हो गई जिसे वे उस समय समझ ही नहीं पाए। सबसे अधिक महत्त्व वाला **दिव्य दर्शन** उन्हें **बारामुला** में भगवती शैल पुत्री के स्थान में हुआ। जैसा विश्वरूप दर्शन अर्जुन को भगवान् कृष्ण ने दिखाया था, उसी दर्शन के समकक्ष दिव्य दर्शन को वहां भगवती शैलपुत्री ने पूज्यपाद जी को दिखा दिया। उन्हों ने उस दर्शन को **"आत्म साक्षात्कार"** नाम दे रखा है, क्योंकि उन्हें उस दर्शन में अपनी विश्वात्मकता का साक्षात् अनुभव हो गया। उसी यात्रा में पूज्यपाद जी को श्रीनगर में एक अज्ञात **सिद्ध मानव के दर्शन शारिका देवी के आँगन** में हुए। उस सिद्ध मानव ने उन्हें एक शून्य भवन में ले जाकर वेध दीक्षा के द्वारा कुण्डलिनी शक्ति के आरोहण-अवरोहण आदि का साक्षात्कार बिना यत्न के करवा दिया। इन ऐसी घटनाओं को दृष्टि में रखते हुए इस यात्रा का वर्णन विस्तार से किया जा रहा है।

पूज्यपाद जी जब अभी छोटे से बालक ही थे तब श्री **जगदीश चन्द्र चैटर्जी** वाराणसी आए थे और उनके पूज्य पिताजी श्री कृष्ण शास्त्री की विविध विषयों का अवगाहन करने वाली प्रतिभा पर और विशेष करके आगम शास्त्रों की दर्शन विद्या और साधना विद्या के विषय में उनके अपूर्व ज्ञान पर काफी रीझ गए थे। अतः उन्होंने उन्हें श्रीनगर आने का निमन्त्रण देते हुए वहां के कश्मीर सरकार के

राजकीय शोधसंस्थान में **उपनिदेशक** (Deputy Director) के पद पर नियुक्त कराने का वचन भी दे दिया था। शास्त्री जी ने भी इस प्रस्ताव को स्वीकार किया था। तभी से पूज्यपाद जी के बालक हृदय में कश्मीर यात्रा के लिए विशेष उत्सुकता के भाव अपना स्थान बना गए थे। परन्तु जैसे कि पीछे कहा जा चुका है, शास्त्री जी के परिवार के लोगों ने उन्हें कश्मीर जाने ही नहीं दिया। परन्तु फिर भी तभी से कश्मीर दर्शन के प्रति तीव्र उत्कण्ठा पूज्यपाद जी के हृदय में स्थान बना गई थी। ऐसी बात उन्होंने मुझ से स्वयं कह दी थी। जब **सन् १९२९ का जुलाई** का मास आया तो पूज्यपाद जी कांगड़ा मण्डल के तीर्थों के दर्शन करते रहे। आगे शीघ्र ही श्रावण पूर्णिमा आने वाली थी। अतः वे कुराली से त्वरित गति से कांगड़ा वाले तीर्थों का दर्शन करते हुए जम्मू आ गए। तब श्रावण पूर्णिमा तक कुछ ही दिन रह गए थे। वे तुरन्त जम्मू से चल पड़े। मार्ग का कुछ भाग पैदल चले और कुछ भाग लारी के द्वारा पूरा कर दिया। श्रावण शुक्ल द्वादशी को **अनन्त नाग** पहुंच कर उसी दिन लारी में बैठकर **पहलगाम** पहुँच गए। रात को वहां ठहर कर दूसरे दिन पैदल दो पड़ाव पार करके '**शेषनाग**' पहुंचे। तीसरे दिन वहां से चल कर अपराह्न में **पंचतरणी** पहुंच गए। यात्रा वहीं रात के लिए रुक गई। अगले दिन पूर्णिमा को यात्रा ने अमरनाथ की गुफा की ओर चल पड़ना था। उस दिन चतुर्दशी तिथि जल्दी समाप्त हो गई थी और पूर्णिमा तिथि का प्रारम्भ हो चुका था। अतः पूज्यपाद जी उसी दिन अपराह्न में घूमते घूमते आगे बढ़ते गए और सायङ्काल होने से पूर्व ही अमरनाथ की गुफा के पास पहुंच गए। अमरगङ्गा में स्नान करके गुफा में प्रवेश किया और सीधे खड़े हुए दो हिमलिङ्गों को देखा, दाएं हाथ वाला लिङ्ग बाएं हाथ वाले से ज़राभर ऊंचा था। पूज्यपादजी प्रणाम करके हिम लिङ्गों के सामने पूजा करने के लिए बैठ गए। उस समय एक अतीव अद्‌भुत घटना घटी—

पूजा आरम्भ करते ही पूज्यपाद जी के मन में अकस्मात् एक विचार यह उठा, "यहां केवल हिम ही है या और भी कुछ माहात्म्य है।" ऐसे विचार के उदित होते ही सामने एक दिव्य दृश्य दिखाई दिया। पूज्यपाद जी के सामने उनके दाएं हाथ की दिशा में नग्न शरीर में भगवान् शिव जी के दर्शन हुए और इसी तरह से बाएं हाथ वाली दिशा में भगवती जगदम्बा पार्वती के दर्शन हुए। दोनों परस्पर आलिङ्गित खड़े थे और **शिव-शक्ति संघट्ट मुद्रा** में स्थित थे। जगदम्बा के सिर के बाल नितम्बों तक लटक रहे थे। दोनों की टांगें और पैर खूब चमकीले तप्त स्वर्ण के रंग को लिए हुए थे। ऊरु भी ऐसे ही थे और खूब परिपुष्ट थे। शरीर दोनों के इतने विशाल थे कि कमर से ऊपर दृष्टि जाती ही नहीं थी। अतः दोनों में से किसी के भी मुखमण्डल को देखा नहीं जा सका। केवल कमर से नीचे वाला शरीर का भाग देखने में आया। ऐसा दर्शन करते हुए पूज्यपाद जी शेष

सारे संसार को मुहूर्त्त भर के लिए भूल ही गए। अपने विषय में, यात्रा के विषय में, जीवन की प्राक्तन घटनाओं के विषय में तथा वर्तमान और भविष्य के विषय में सब कुछ भूल ही गए। रोमहर्ष होता रहा और शरीर थरथराने लगा मुहूर्त्त भर के लिए ऐसी स्थिति रही और तदनन्तर धीरे धीरे वह दिव्यातिदिव्य दृश्य अदृश्य होता गया और पुन: गुफा और हिमलिङ्ग ही शेष रह गए। कुछ वर्ष बीत जाने पर पूज्यपाद जी ने एक बंगाली महात्मा श्री **गङ्गानन्द** जी को यह घटना जब सुना दी तो उन्होंने कहा कि ऐसी बातें किसी को सुनानी नहीं चाहिएं।

पूज्यपाद जी ने मुझ से कहा कि गुफा के ऊपर पर्वत के शिखरों और ढलानों पर जो बर्फ पड़ी रहती है उसी का पानी बन कर चट्टानों में से रिसता हुआ गुफा में बून्द बून्द बरसता रहता है। गुफा के ऊपरी भाग का झुकाव जिस ओर है उस ओर पानी अधिक मात्रा में टपका करता है। वही पानी नीचे गिरते ही सर्दी की अधिकता से जम जाता है। चट्टानों की जिन नोकों से बहुत अधिक जल बिन्दु गिरते हैं उनकी सीध में नीचे जल जम कर धीरे धीरे ऊंचा होते होते लिङ्गाकार आकृति को धारण करता है। यह एक प्राकृतिक घटना है। परन्तु ऐसे निर्जन एकान्त स्थानों में शिव और शक्ति भक्तजनों की पूजा को ग्रहण करने के लिए उपस्थित होकर उन हिम लिंगों में अवस्थित रहते हैं। जिनकी आत्मा पर जमे हुए मल योग आदि के अभ्यास के द्वारा काफी धुल गए हों, उनको शिव-शक्ति के साक्षात् दर्शन हुआ करते हैं। अन्य लोगों को केवल हिम, पत्थर, धातु आदि की प्रतिमाओं के ही दर्शन होते हैं। पूज्यपाद जी ने उपरोक्त दर्शन का वर्णन **'अमरेश्वर दर्शनम्'** में भी किया है और उसे **'सिद्ध महारहस्य'** में प्रकाशित भी किया है। यह घटना **सन् १६२६** में घटी।

पूज्यपाद जी अमरनाथ से वापिस उस पर्वतीय मार्ग से आए जहां से प्राचीन समय में यात्रा लौट आया करती थी। वे अकेले अकेले उस मार्ग से आ रहे थे। एक स्थान पर गुज्जरों की एक बस्ती थी। उन्होंने अकेले यात्री को चलते हुए देखा तो रुपय्या पैसा छीन लेने का विचार किया। एक गूजर ने पूज्यपाद जी के थैले का स्पर्श करते हुए पूछा, "इसमें क्या है।" उन्होंने कहा "माल है।" दूसरा गूजर बोला, "जप करने की माला होगी।" उस पर पूज्यपाद जी बोले "नहीं माल है, रुपय्या है।" तिस पर एक और गूजर उनके साधुओं जैसे वेष और रंग ढंग को देख कर कहने लगा, "अरे जाने दो, इसके पास क्या हो सकता है।" यह सुनते हुए पूज्यपाद जी आगे बढ़ गए। चलते चलते सायं पहलगाम पहुंच गए। वहां से लारी के द्वारा **मट्टन** (मार्तण्ड क्षेत्र में) पहुंचे। मार्तण्ड से लारी पर सवार होकर दूसरे दिन श्रीनगर पहुंचे। वहां कुछ दिन ठहरे। कहां ठहरे, यह

बात न तो हमने उनसे कभी पूछी और न ही उनके द्वारा स्वयं लिखित यात्रा वर्णन में कुछ लिखा हुआ मिला। कारण, जैसा कि पीछे कहा गया, **अगस्त १९२९ से दिसम्बर १९३०** तक लगभग डेढ़ वर्ष की अवधि की डायरी उनके कागज़ों में से कहीं भी मिली ही नहीं। जैसी उनसे कई एक बार बातचीत होती रही उससे यही प्रतीत होता है कि श्रीनगर में कुछ ही दिन ठहर कर वे सोपुर इलाके में स्थित "**साधुमाल्युन**" नामक तीर्थ को चले गए। उस तीर्थ को **साधुगङ्गा** भी कहते हैं। स्थान काफी प्राचीन है। तीर्थ के महन्त के पास काफी भूसम्पत्ति भी थी। भवन सम्पत्ति अब भी है। वहां यात्री और साधु सन्त, प्राय: ठहरा करते थे। उनको ठहरने को स्थान और खाने को भोजन मिलता था। पूज्यपाद जी वहां कुछ देर ठहरे और आश्रम पर भोजन करते रहे। महन्त में कोई आध्यात्मिक विशेषता उन्होंने पायी नहीं। परन्तु वहां एक '**देवकाक**' नाम वाला अर्द्ध-वृद्ध साधु रहा करता था। उसे पूज्यपाद जी के साथ विशेष स्नेह हो गया। साधु एक अलग कमरे में जाकर अपनी साधना करता था। जब उस कमरे में प्रवेश करता था तो साथ एक थैले में कोई वस्तु छिपाकार ले जाया करता था। वह वस्तु क्या थी, इस बात को कोई नहीं जानता था। महन्त का उत्तराधिकारी देव काक से वैर करता था। उसे तांत्रिक जादूगर कहता था। पूज्यपाद जी को भी साधु के थैले के विषय में जिज्ञासा हुई। एक दिन जब वह थैला लेकर कमरे से बाहिर आने को ही था तो वे द्वार पर खड़े होकर कहने लगे, "इस थैले में क्या रखा है। मुझे दिखा दो, नहीं तो एक कदम आगे बढ़ने नहीं दूंगा।" इस पर देव काक बोले, "चलो कहीं बैठ कर बता दूंगा।" फिर एक स्थान पर एकान्त में देव काक ने पूज्यपाद जी को बताया, "अपने गुरु जी के आदेश के अनुसार मैं कोई साधना करता आया हूं। उसी साधना की अङ्गभूत कोई वस्तु इस थैले में रखी है। आप स्वयं विद्वान् हैं। आप ही बताइए कि गुरु जी की आज्ञा के बिना मैं इस रहस्य को कैसे खोलकर किसी को वह वस्तु दिखा दूं। गुरु जी से पूछकर ही दिखा सकूँगा।" पूज्यपाद जी ने जब इस बात को सुना तो उन्होंने अपने हठीले व्यवहार को छोड़कर पूछा कि उनके गुरुजी कौन हैं और कहां हैं। इस पर देवकाक जी ने कहा कि वे एक "**आकाशचारी सिद्ध**" हैं, कभी कभी आकर दर्शन देते हैं और साधना के विषय में निदेश भी दे जाते हैं। यह सुनकर पूज्यपाद जी ने उनके गुरु जी के दर्शन करने की इच्छा जब प्रकट कर दी तो देवकाक ने आश्वासन दिया कि 'जब वे फिर आकर दर्शन देंगे तो मैं उनसे पूज्यपाद जी के विषय में कह दूंगा और उन्हें दर्शन देने का प्रस्ताव भी सामने रख दूंगा।' पूज्यपाद जी इस बात से सन्तुष्ट हो गए और आकाशचारी सिद्ध के दर्शन पाने की आशा करने लगे।

साधु माल्युन आश्रम के युव महन्त ने एक दिन प्रातः पूज्यपाद जी के पास आकर कहा "आपको ऊपर वाले लोक का बुलावा आया है।" पूज्यपाद जी उस बात का तात्पर्य नहीं समझे। पूछने पर युव महन्त ने कहा कि उसे स्वप्न में यह आदेश हो गया कि पूज्यपाद जी से कह देवें कि उन्हें "**शारदा देवी**" के स्थान के दर्शन करने के लिए आना चाहिए। ऐसा आदेश सुनने पर पूज्यपाद जी ने शारदा दर्शन को जाने का सङ्कल्प किया। कुछ ही दिनों पश्चात् चल पड़े और पहाड़ी मार्ग से क्रम से चलते चलते दो ढाई दिनों में शारदा पीठ के केन्द्र स्थान पर पहुंच गए। शारदा मन्दिर के दर्शन किए और शारदा माता की अर्चना भी की। वहां वे कई एक दिन ठहरे। और भी कई एक सज्जन, साधु, माहात्मा शारदा दर्शन को आए थे और कई एक दिन वहां रुके रहे। उनमें लाहौर वाले महात्मा **प्रणवानन्द** (भूतपूर्व डा० सोमया जी) भी थे। वहां दो विचित्र घटनाएं घटीं—एक दिन सायङ्काल को एक यात्री को किसी विशालकाय, कृष्ण वर्ण भूत जैसे किसी व्यक्ति के दर्शन हुए। वह उस दर्शन से बहुत घबरा गया बड़ी झुंझलाहट की स्थिति में वहां आ गया जहां यात्री लोग बैठ कर वार्तालाप कर रहे थे। जो कुछ उसने बताया उसे सुन कर पूज्यपाद जी ने उस यात्री को सान्त्वना देते हुए कहा कि जिसे उसने देखा, वह कोई भूत प्रेत नहीं था। वह तो **शाण्डिल्य** मुनि हो सकता है जिसने प्राचीन काल में यहां तपस्या करके शारदा माता के दर्शन किए थे।

कुछ दिनों बाद एक और विचित्र दृश्य को सभी एकत्रित यात्रियों ने देखा—मन्दिर के आङ्गन में एक वृक्ष पर तीन विचित्र पक्षी बैठे हुए दिखाई दिए। आकृति उनकी **शारी पक्षी** (मैना) की जैसी थी। परन्तु शरीर काफी बड़ा, और परिपुष्ट था। चोंचें श्वेत रंग की थीं, पंजे पीले न होकर खूब लाल रंग के थे। और शरीर श्यामल वर्ण का था। उन्हें देखने पर यात्रियों में काफी चर्चा के बाद यह बात ठहर गई कि शारी पक्षी की किसी पर्वतीय उपजाति के ये पक्षी होंगे जो मैदानी प्रदेशों के उन पक्षियों की अपेक्षा विशालतर शरीर के हैं, जैसे पहाड़ी कव्वे मैदानी कव्वों की अपेक्षा अधिक काले और बड़े शरीरों वाले हुआ करते हैं। बात यहीं पर समाप्त हो गई। परन्तु पूज्यपाद जी अपनी **दूसरी कश्मीर यात्रा में जब १९३३ ई० के जून में** **ह्वाल गांव** में थे तो वहां उन्होंने **लस्स बायू** के घर एक प्राचीन पाण्डुलिपि में से शारदा माहात्म्य को सुना तो तब उन्हें पक्षियों के दर्शन का रहस्य खुल गया। तब तक उनका विचार यही था कि शारदा माता ने साक्षात् दर्शन नहीं दिए। परन्तु उस माहात्म्य ग्रन्थ में स्पष्ट लिखा था कि जिस भक्त साधक पर मां प्रसन्न हो जाती है उसे तीन सारिका पक्षियों के रूप में दर्शन दिया करती है। यह शुभ घटना **आश्विन शुक्ल पक्ष की नवमी के दिन घटित हुई।**

शारदा पीठ से पैदल चलकर दो तीन दिन में पूज्यपाद जी वापिस साधु

माल्युन ग्राम में पहुंच गए। ज्यों ही आश्रम में पहुंचे त्यों ही देवकाक बड़े प्रेम से मिले। गद्‌गद वाणी में कहने लगे—"आपने अपने रहस्य को छिपाए रखा, मुझे बताया नहीं। आप बड़े सिद्ध हैं और यह बात आपने मुझ से छिपा कर रखी।" पूज्यपाद जी ने कहा, "आपने कौन सी बात पूछ ली, जिसे मैंने बताया नहीं।" देवकाक पुनः बोले "मेरे आकाशचारी सिद्ध गुरु आए थे। मैंने उनको आपका परिचय जब बताया तो वे कहने लगे कि आप तो एक अत्युत्कृष्ट उपासना मार्ग के उपासक सिद्ध योगी हैं। अपने इस रहस्य को आपने मेरे सामने प्रकट नहीं किया। मैं आप को एक साधारण साधु समझता रहा। परन्तु अब मुझे, आपकी महिमा का पता लग गया है अपने यथार्थवक्ता गुरु जी से।" पूज्यपाद जी ने फिर कहा कि उन्हें भी वे उस आकाशचारी सिद्ध महात्मा के साथ सम्पर्क करा देवें। इस पर देवकाक बोले "वे महात्मा अब आगे शिव रात्रि के पश्चात् दर्शन देंगे। उससे पहले नहीं। फिर वे कभी मुझे भी अपने लोक को ले चलेंगे जब मेरी यहां वाली उपासना पूरी तरह से और सफलता पूर्वक पक्की हो जाएगी।" पूज्यपाद जी का विचार था कि शरद् ऋतु तक कश्मीर मण्डल में स्थित किन्हीं बड़े बड़े देवस्थानों के दर्शन करके सर्दी पड़ने से पहले ही हिमाचल, पंजाब आदि देशों की ओर चल पड़ेंगे, क्योंकि कश्मीर में शीतकाल में बर्फ पड़ती है और सर्दी असह्य रूप को धारण करती है। उससे नित्य स्नान आदि के नियमों में बाधा पड़ती है। परन्तु अब उस आकाशचारी सिद्ध के दर्शन की अभिलाषा को लेकर के उन्होंने शीतकाल को कश्मीर में ही बिताने का निश्चय किया।

इस निश्चय के अनुसार उन्होंने कश्मीर में घूमने का सङ्कल्प किया। तदनुसार कुछ दिन साधु माल्युन में रहकर वहां से बारामुला (वराह मूला) आ गए। उस कस्बे के सामने वितस्ता नदी के बाएँ तट पर भगवती शैल पुत्री देवी का स्थान है, जिसकी महिमा को सभी लोग बहुत मानते हैं, पूज्यपादजी उसी स्थान पर आकर ठहरे। वहां एक चतुष्कोण जलकुण्ड (चश्मा है) जहां से जल का प्रवाह एक प्रपात के रूप में बाहिर आ गिरता है। उसी प्रपात के जल से भक्त लोग नहाते हैं और नहाकर ऊपर आकर कुण्ड के भीतर जलरूप में ही ठहरी हुई देवी **शैलपुत्री** की पूजा करते हैं। अब तो उस कुण्ड के बीच में एक मन्दिर का निर्माण हुआ है और उसमें वृषभवाहना भगवती शैलपुत्री की प्रतिमा की भी प्रतिष्ठा की गई है और भक्त जनता उस प्रतिमा की भी और जलरूपिणी देवी की भी पूजा किया करते हैं। कुण्ड के पश्चिम की ओर एक विशाल धर्मशाला बनी है जिसका सामने से खुला एक विशाल बरामदा कुण्ड के साथ सटा हुआ है। पूज्यपादजी प्रायः उसी बरामदे में सोया करते थे। खाना एक दो बार तीर्थ की धर्मशाला में रहने वाले एक कश्मीरी साधु के पास खाया। आगे प्रायः कस्बे का कोई पण्डित घर बुलाकर खिलाया करता था। कश्मीर मण्डल में घूमते हुए पूज्यपाद

जी को खाने-पीने के विषय में कभी भी उन कष्टों का सामना नहीं करना पड़ा जो कष्ट उनको परिव्राजक जीवन के प्रारम्भिक दौर में कभी कभी उठाने पड़े। कश्मीर की पण्डित जनता सर्वत्र ही आदरपूर्वक सेवा करती रही। पूज्यपाद जी कई एक दिन शैलपुत्री के स्थान में रहे।

कार्त्तिक मास के शुक्ल पक्ष की दशमी को यहां रात के समय एक ऐसी अपूर्व घटना घटित हुई जिससे पूज्यपाद जी अपनी साधना को भली भांति सफल और अपने आपको कृतकृत्य समझने लगे। उन्होंने इस घटना को **"आत्म-साक्षात्कार"** ऐसा लिखकर रखा है। इस घटना का विस्तृत श्लोकबद्ध वर्णन उन्होंने अपने ग्रन्थ "सिद्धमहारहस्य" में भी लिख रखा है और हमारे जैसे भक्तजनों को स्वयं विशेष विस्तार से सुना भी दिया है। घटना इस प्रकार घटी—

बरामदे में एक साधु सोया हुआ था। पास ही पूज्यपाद जी आसन पर बैठे अपना आयन्तन पूजा पाठ और साधना-अभ्यास करते रहे। उस नित्य कृत्य को पूरा करके लगभग **साढ़े नौ बजे रात को** वे उठे, बिस्तर बिछा दिया और सङ्कल्प किया कि नीचे उतर कर बाहिर लघु शङ्का से निवृत्त होकर जाएं और सो जाएं। ऐसा सङ्कल्प करते-करते ही उन्हें सामने एक विचित्र दृश्य दिखाई पड़ा। सामने एक सुविशाल शून्य क्षेत्र दीख पड़ा और उसमें एक दिव्य प्रकाश छाया हुआ देखने में आया। फिर उसके भीतर एक सुविशाल भूमण्डल एक विचित्र ध्वनि को उपजाता हुआ मण्डलाकार गति से घूमता हुआ और एक ओर से प्रकट होकर दूसरी ओर गमन करता हुआ और आगे बढ़ता हुआ अदृश्य होता गया। ऐसा होते ही एक और मण्डल उसी तरह से सामने से गुजरता गया। वैसे ही क्रम से इतने मण्डलाकार लोक लोकान्तर सामने से गुजरते रहे। सभी मण्डल अपने सुविचित्र गति से दायें से बाये को संचार करते जा रहे थे। उनकी गति में अपने-अपने ढंग के विचित्र घोष भी सुनाई देते रहे। प्रत्येक मण्डल में अपने-अपने ढङ्ग के प्राणी दिखाई पड़े। किन्हीं-किन्हीं मण्डलों के प्राणी आपस में मिलते जुलते थे और किन्हीं में हमारे इस भूमण्डल का जैसा जन-जीवन दिखाई दिया। परन्तु असंख्य मण्डल ऐसे दिखाई दिए जिनमें प्राणियों का जीवन भिन्न भिन्न प्रकार का था। वे प्रकार भी अतीव विचित्र थे। कोई कोई तो ऐसे विचित्र थे जिनका वर्णन हमारी वाणी के द्वारा किया ही नहीं जा सकता है। फिर पूज्यपादजी को एक आश्चर्य जनक दृश्य यह भी दीखा कि कई एक मण्डलों में उन्होंने अपने तात्कालिक शरीर के सर्वथा सदृश शरीर में स्थित प्राणी-विशेष को भी देख लिया। उस सुविशाल और सुविचित्र दृश्य को देखते-देखते उन्हें विशेष आनन्द आया। कुछ देर वह चल-चित्र का जैसा दृश्य लगातार चलता हुआ दिखाई दिया। फिर धीरे-धीरे समाप्त हो गया। पूज्यपाद जी को उस दृश्य के देखने पर अपार हर्ष भी हुआ, आश्चर्य

भी हुआ और सन्तोष भी हुआ। अभी तक उन्हें मन में इस बात पर ज़रा सा खेद भी था कि शारदा माता ने दिव्यदर्शन से कृतार्थ नहीं किया। अब उन्हें सन्तोष हो गया कि माता ने यदि शारदा मन्दिर में अपने साक्षात् दर्शन नहीं दिए तो यहां शैलपुत्री के स्थान में पहुंच जाने पर अपने दिव्यातिदिव्य विश्वरूपी स्वरूप के साक्षात् दर्शन अब तो दे ही दिए। ऐसा विचार करके पूर्व सङ्कल्प के अनुसार वे सो जाने की इच्छा से सोने से पहले लघु शङ्का निवृत्ति के लिए नीचे उतर आए। नीचे उतरकर उन्होंने जो जल प्रपात के नीचे लोगों को नहाते देखा तो उन्हें आश्चर्य हो गया कि दस बजे रात के समय ये लोग क्यों नहा रहे हैं। पूछने पर उन लोगों ने कहा कि रात तो समाप्त हो गई है, अब प्रातः पांच बजे का समय है। इस बात को सुनने पर पूज्यपादजी को और अधिक आश्चर्य हुआ। वे तो ऐसा समझ रहे थे कि दिव्यातिदिव्य दृश्य तो लगभग मुहूर्त्त भर ही चलता रहा। परन्तु अब उन्हें यह बात समझ में आ गई कि वह दिव्य मुहूर्त्त इस भूलोक के तीन पहरों के बराबर है, क्योंकि रात के तीनों पहर उनके द्वारा देखे गए उस दिव्य दृश्य के एक मुहूर्त्त में ही समाप्त हो गए थे। उस दिव्यदर्शन का गुणगान पूज्यपाद जी बहुत बार बड़े उत्साह और आह्लाद से किया करते थे। अपने अनेकों भक्तों को उन्होंने उस दिव्यदर्शन को सुना दिया है। श्रीनगर में श्री **दीनानाथ शास्त्री** को उन्होंने इस दर्शन के विषय में यह भी कहा था कि जिस तरह से भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को "**विश्वरूप दर्शन**" दिखा दिया था। उसी प्रकार से जगदम्बा शैलपुत्री ने उन्हें अपनी इस विचित्र विश्वरूपता के दर्शन करा दिए। शास्त्रों में काल के विषय में यह कहा गया है कि काल गणना भिन्न भिन्न स्तर की सृष्टियों में भिन्न भिन्न प्रकार की हुआ करती है। जैसे हमारा एक वर्ष देवताओं के एक अहोरात्र के बराबर होता है। पूज्यपाद जी कहा करते थे कि काल गणना के इस सिद्धान्त की साक्षात् अनुभूति उन्हें उस समय हुई जब उस दिव्यदर्शन की मुहूर्त्त भर की स्थिति में मानवोचित काल के तीन पहर बीत गए और कैसे बीत गए, इस बात का कुछ पता भी नहीं चला। पूज्यपादजी इस दिव्यदर्शन को जगदम्बा की सर्वोत्तम तथा तीव्र गति वाली कृपा का फल समझते रहे। वे यह भी कहा करते थे कि इस प्रकार से समाधिस्थ अवस्था में जो समय गुजरता है वह मनुष्य की अन्यथा से निश्चित आयु में सम्मिलित नहीं होता अर्थात् उतना काल उसकी आयु में जुड़ जाता है तथा प्राचीन युग में तपस्वी ऋषियों के सहस्रों वर्षों तक जीवित रहने के वृत्तान्त इसी प्रकार की घटनाओं पर ही आधारित हैं।

उस दिव्यदर्शन के अनन्तर भी पूज्यपाद जी कुछ समय के लिए शैलपुत्री के क्षेत्र में ही ठहरे। उन दिनों देवी के सारस्वत स्वरूप का उन पर ऐसा विशेष अनुग्रह होता रहा जिसके प्रभाव से उनके मुख से अतीव सुन्दर और मनोहर तथा भावपूर्ण और कोमल पदावलियों वाली कविता प्रवाह रूपतया निकलती रही।

उसके फलस्वरूप जब जब वे विश्राम पूर्वक बैठे रहते थे तो वाणी में अतीव सुन्दर श्लोक रचना बिना किसी यत्न के स्वयमेव स्फुरित हुआ करती थी। देवी की इस कृपा की विभूति को वे देवी को ही अर्पण करते रहे; अर्थात् देवी के ही गुणों का गान सुन्दर और मनोहर स्तोत्र काव्य के द्वारा करते रहे। उसके फलस्वरूप उन्होंने **मन्दाक्रान्ता छन्द में** देवी की एक सुन्दर स्तुति का निर्माण किया। कुछ ही दिनों में लगभग सत्तर श्लोकों की रचना हो गई। उनका यह सङ्कल्प था कि षोडश-उपचारों की पूजा के विषय में कम से कम और सोलह श्लोकों की रचना करके स्तोत्र का उपसंहार करें। परन्तु वह सङ्कल्प पूरा नहीं हो सका। कारण यह बना कि साधु माल्युन से देवकाक जी आ गए और उन्हें उधर आने के लिए प्रेरित कर दिया। वे भी उनकी बात मानकर उधर चले ही गए। परन्तु उधर जाकर उनकी वाणी में वह स्वाभाविक प्रवाहशीलता का परिस्पन्दन नहीं हुआ। यत्नपूर्वक श्लोक रचना का काम उन्होंने किया नहीं। वर्षों प्रतीक्षा करते रहे कि वाणी में वैसी स्वतः सिद्ध प्रवाहशीलता आ जाए तो स्तोत्र को पूरा कर देवें। परन्तु उस प्रकार की स्वाभाविक प्रवाहमयी स्फुरता वाणी में जीवन भर में कभी भी नहीं आई। अतः देवी की वह स्तुति अधूरी ही रह गई। अधूरी होने ही के कारण चिरकाल तक उसका प्रकाशन भी नहीं हुआ। अन्ततोगत्वा जब **सन् १९७२ में मैं** हिमाचल विश्व-विद्यालय में शिमला में सेवारत था तो उनसे मिलने के लिए सोलन गया। वहां मैंने उनके सामने यह प्रस्ताव रख दिया कि स्तोत्र जहां तक निर्मित हुआ है वहीं पर उसका उपसंहार किया जाए और उसे प्रकाशित कर ही दिया जाए। उन्होंने ऐसी बात मान ली और उपसंहार करके मुझे उसका अनुवाद कर देने का आदेश दिया। मैंने स्तोत्र का अनुवाद हिन्दी में कर दिया, जिसे कुछ वर्षों के पश्चात् दिल्ली में रवि शर्मा त्रिवेदी ने प्रकाशित किया। स्तोत्र का नाम **"मन्दाक्रान्ता स्तोत्र"** रखा गया। तदनन्तर जोधपुर के श्री **रमानन्द शास्त्री** ने उस स्तोत्र पर एक विस्तृत हिन्दी टीका लिखकर उसको पुनः प्रकाशित कर दिया। इस समय दोनों ही संस्करण उपलब्ध हैं।

साधु गङ्गा में आकर पूज्यपाद जी ने **"बालकं मां पाहि"** इस शीर्षक से एक छोटे से देवी स्तोत्र का निर्माण किया। वह स्तोत्र दिल्ली से विद्वद्वरकल संस्था द्वारा दो ढाई वर्ष पूर्व 'अमृत स्त्रोत्र संग्रह" में प्रकाशित किया गया है।

'साधु माल्युन' से पूज्यपाद जी आस-पास के अन्य-अन्य देवस्थानों के दर्शनों को जाते रहे। उस प्रदेश के किसी गांव में एक पटवारी से उनका घना परिचय हो गया। पटवारी जी थे **'सोफ'** (**कोकरनाग**) ग्राम के निवासी **सुदर्शन कौल** जिन्हें लोग **सादे काक** कहा करते थे। वे गृहस्थी होते हुए भी योगसाधना के अभ्यास में पर्याप्त सफलता प्राप्त कर चुके थे। उन्हें पूज्यपाद जी से काफी स्नेह

हो गया। उन्हें वे अपने घर 'सोफ' भी ले गए और यह प्रेरणा दी कि शीतकाल में वे 'मट्टन' (मार्तण्ड क्षेत्र) में निवास करें। क्योंकि वहां सूर्य भगवान के चश्में में शीतकाल में गर्म जल होता है और इस विशेषता के कारण वहां जनवरी मास में भी नित्यस्नान के नियम में कोई बाधा नहीं आएगी। वहां पटवारी जी के ससुराल थे जिन्हें उन्होंने पूज्यपाद जी की सेवा करने का सन्देश भी भेज दिया। इसके अतिरिक्त पूज्यपाद जी को **ब्रारी आंगन (उमानगरी)** ग्राम के रहने वाले एक गृहस्थ महात्मा **श्री शङ्कर पण्डित का** भी पता दिया। सम्भवत: शङ्कर पण्डितजी को पत्र भी लिखा। तदनुसार पूज्यपादजी अनन्तनाग जाकर कई एक स्थानों का भ्रमण करते हुए क्रम से ब्रारी आंगन गए और वहां श्री शङ्कर पण्डित जी से मिले। पण्डितजी एक आदर्श वैदिक ब्राह्मण थे। नित्य अग्निहोत्र करने वाले और नित्य पञ्चमहायज्ञ करने वाले थे। उस युग में कश्मीर मण्डल में वे ही एक-मात्र **आहिताग्नि ब्राह्मण** थे। उनके देवलोक को सिधार जाने पर उस देश में कोई भी दैनिक अग्निहोत्र करने वाला आदर्शभूत श्रौतस्मार्त्त ब्राह्मण शेष नहीं रहा। वे घर से सम्पन्न थे। उनके पास काफी भूसम्पत्ति थी। अत: अपरिग्रही थे। उनका घर मानो एक आश्रम ही था। स्थान स्थान से साधु, ब्रह्मचारी आदि आकर उनके घर में रहा करते थे। वहीं खाते पीते थे, घर का काम काज भी किया करते थे और साथ साथ अध्ययन भी करते थे। पण्डितजी वेदान्तशास्त्र में काफी प्रवीण थे। कश्मीर के दक्षिणी भाग में कई एक साधु आश्रम उस समय विद्यमान थे। सभी आश्रमों के गुरुजनों ने वेदान्त विद्या श्री शङ्कर पण्डित से ही पढ़ी थी। बारामुला में एक गङ्गा भगवती का तीर्थ है। वहां **'नान काक'** नामक एक विद्वान् तपस्वी वेदान्ती महात्मा ने आश्रम बनवाया था। वे महात्मा भी **"शङ्कर पण्डित"** से ही वेदान्त विद्या को पढ़े थे। वेदान्त विद्या को जीवन में पूरी तरह घटा देने वाले एक ब्रह्मचारी भी उस समय कश्मीर में विद्यमान थे। वे थे हमारे **चाचा "महागणेश पण्डित"** जो प्राय: **रैणावारी** श्रीनगर में या बारामुला में रहा करते थे। उन्होंने भी वेदान्त विद्या श्री शङ्कर पण्डित से ही पढ़ी थी। **गौतम नाग** और **गुसाईं कुण्ड** के आश्रमों के सुप्रसिद्ध और सुप्रतिष्ठित महन्त स्वामी **"गाश काक" जी** और स्वामी **'आत्मारामजी'** भी वेदान्त विद्या में श्री शङ्कर पण्डितजी के ही शिष्य थे। ऐसे गुणज्ञ पण्डित के घर में पूज्यपादजी को काफी स्नेह और सम्मान मिलता रहा। अभी पूज्यपादजी को उधर आए कुछ ही दिन हुए थे कि पण्डितजी के साथ वार्तालाप करते करते उन्होंने कमीज की ऊपरी जेब से रूमाल को जब निकाला तो उसके साथ वे कागज भी निकल कर फर्श पर पड़ गए जिन पर पूज्यपादजी ने मन्दाक्रान्ता स्तोत्र के श्लोकों को लिखा था। पण्डितजी ने उन कागजों को झट से उठा लिया और एक एक श्लोक को पढ़ते गए। अपार हर्ष से उनके नेत्रों में विशेष प्रकार का विकास आता गया। आश्चर्य पूर्वक पूछा, "ये

श्लोक किसने लिखे हैं।" पूज्यपादजी बोले —"मैंने"। पण्डितजी ने फिर पूछा "कागज पर लिखे तो आपने हैं, मूलतः इनकी रचना किसने की है।" पूज्यपाद जी ने फिर कहा "मैंने ही।" इस पर पण्डितजी बोले "तब तो आप एक बड़े भारी विद्वान् आचार्य हैं। मैं अभी तक आपको एक साधारण ब्रह्मचारी समझता था।" उस दिन से पण्डितजी उनसे और भी विशेष स्नेह करने लगे और हार्दिक सम्मान-पूर्वक उनकी सेवा करते रहे। ब्रारी आंगन के अनेकों अन्य पण्डितों से भी पूज्य पाद जी का परिचय होता गया। कभी वे लोग भी भोजन के लिए बुलाया करते थे। परन्तु श्री शङ्कर पण्डित आग्रहपूर्वक रोकने का यत्न करते थे। वे चाहते थे कि पूज्यपाद जी केवल हमारे घर ही भोजन करें।

ब्रारी आंगन से पूज्यपाद जी आसपास देवस्थानों के दर्शन करते रहे। जैसाकि श्री सुदर्शन कौल ने उन्हें कहा था कि शीतकाल में मट्टन (मार्तण्ड क्षेत्र) में निवास करना चाहिए, तदनुसार उन्होंने शीतकाल के प्रारम्भ से ही यह बात श्री शङ्कर पण्डित से कह दी। सुनकर वे स्वयं मट्टन जाने को तैयार हो गए। पूज्यपाद जी को साथ लेकर वहां गए और वहां पं० **नन्दलालजी खार** के साथ उनका परिचय करा दिया। तदनन्तर पं० सुदर्शन कौल के ससुराल भी पूज्य-पादजी को ले गए। वहां उस समय कौल महोदय के प्रधान सम्बन्धी श्री **शिवजी फोतेदार** घर में नहीं थे। वे सरकार के वन विभाग में अकाउंटेंट के पद पर कहीं काम कर रहे थे। उनका परिवार मट्टन में था। उनके साथ भी श्री शङ्कर पण्डित ने पूज्यपादजी का परिचय करा दिया। पश्चात् शीतकाल में जब पं० शिव जी घर आए तो वहां उन्हें पूज्यपाद जी से परिचय हो गया। पं० शिवजी उन्हें देखते ही बड़े प्रभावित से हो गए और हृदय में उनके प्रति बहुत सम्मान का भाव उपज गया। पं० शिवजी के ज्येष्ठ पुत्र श्री **जियालाल फोतेदार** एकदम ही पूज्यपाद जी के परम भक्त बन गए। पूज्यपाद जी के हृदय में भी जियालाल जी के प्रति एक स्वाभाविक स्नेह के भाव का उदय हो गया। दोनों महानुभावों के ये पारस्परिक भाव आजीवन अक्षुण्ण बने रहे। पं० शिवजी के सगे सम्बन्धी **पं० नारायण** जू भी पूज्यपाद का बड़ा आदर सत्कार करने लगे। पं० नन्दलालजी खार के बड़े भाई **पं० हरगोपाल खार** और उनके चचेरे भाई **पं० माधवराम खार** भी पूज्यपाद जी का बड़ा सम्मान करने लगे। कुछ दिन वहां ठहर कर वे पुनः अन्य स्थानों का दर्शन करने गए। पूज्यपादजी सोफ नामक गांव के विषय मे भी बहुत बार बातें किया करते थे। पं० सुदर्शन कौल वहीं के निवासी थे। उनके पुत्र को भी पूज्यपाद जी की स्मृति हृदय में चिरकाल तक जागती रही। इन बातों से ऐसा प्रतीत होता है कि पूज्यपाद जी वहां काफी देर रहते रहे होंगे। एक बात उन्होंने यह भी सुनाई थी कि सुदर्शन कौल की कन्या का विवाह था। पूज्य-पाद जी भी उस अवसर पर वहीं थे। मार्गशीर्ष का महीना था। विवाह की खूब

तैयारी हो रही थी। अकस्मात् बादल छा गए। वर्षा होने लगी। घड़ी भर में हिमवृष्टि होने लगी। रात होते होते भूमि पर काफी बर्फ जम गई। दूसरे दिन प्रातःकाल 'वेरीनाग' से बारात आनी थी और मध्याह्न के समय बारातियों को खाना खिलाना था। सभी परेशान थे कि क्या किया जाए। आशङ्का यह थी कि 'इतनी जोरदार हिमवृष्टि से कल प्रातःकाल तक कितनी बर्फ भूमि पर जम जाएगी; मार्ग यातायात के योग्य बने रहेंगे या नहीं; बारात बेरीनाग से सोफ तक आ भी सकेगी या नहीं। बारात के लिए खाना बनाया जाए या अभी प्रतीक्षा की जाए।' अन्ततोगत्वा पूज्यपाद जी से आदेश लेकर के प्रबन्ध में आगे बढ़ने का निश्चय किया गया। सभी लोग आकर बैठे और चिल्ला चिल्लाकर पूछने लगे "स्वामीजी हमें आदेश दो कि हम क्या करें।" पूज्यपाद जी भीतर बैठे थे। उन्होंने भविष्यत् के दर्शन करने की व्यावहारिक विद्या का कभी भी अभ्यास नहीं किया था। वे एकमात्र आत्मदर्श ही के लिए सदा इच्छुक बने रहे थे। अतः बड़े असमंजस में पड़े रहे कि इन श्रद्धालु लोगों को क्या आदेश देवें। पं० सुदर्शन कौल उनके पास बैठे थे। कहने लगे, "स्वामीजी इन्हें कह दीजिए कि जल्दी बादल हट जाएंगे, कल खुल्ली धूप पड़ेगी, बारात आराम से आएगी। अतः भोजन बनाने के काम को आरम्भ कर दिया जाए।" पूज्यपाद जी ने शङ्का प्रस्तुत कर दी कि यदि ऐसा नहीं हुआ तो क्या होगा। उस बात पर श्री सुदर्शन कौल ने कहा "बादल अवश्य हट जाएंगे। धूप अवश्य पड़ेगी। आप चिन्ता न करें। मुझे इस बात पर पूरा विश्वास है।" पूज्यपादजी फिर बोले "यदि आपको पक्का विश्वास है तो आप ही स्वयं कह दीजिए। मुझसे आप क्यों कहलवा रहे हैं।" कौल महोदय ने उत्तर दिया। "इन लोगों को मेरी बात पर तनिक विश्वास नहीं होगा। आपके कहने पर पक्का विश्वास हो जाएगा।" ऐसा सुनने पर पूज्यपाद जी खिड़की के पास आकर आंगन में खड़े सभी परेशान लोगों से कहने लगे "आप चिन्ता न करो। बादल हट जाएंगे। हिमवर्षा रुक जाएगी। धूप निकलेगी और बारात आराम से समय पर आ जाएगी।" ऐसी बातों को उनके मुख से सुनकर लोग तरह-तरह के भोजन बनाने में लग गए। दो घण्टे पश्चात् बादल हट गए। चांदनी चमकने लगी। प्रातःकाल बारात आ गई। विवाह बिना विघ्न के सम्पन्न हो गया। पूज्यपादजी कहा करते थे कि सुदर्शन कौल अच्छा उपासक था। सफल उपासक था। परन्तु लोग और विशेष करके अपने लोग उन्हें इस रूप में जरा भर भी जानते नहीं थे। व एक गुप्त साधक थे। साधना-अभ्यास में पर्याप्त मात्रा में सफल हो चुके थे।

जैसाकि पूज्यपाद जी ने मुझ से एक बार कहा था, उन्हें कश्मीर में मानव जीवन में रहते हुए दो ही अनुभूति सम्पन्न सफल साधक मिले; एक ये ही सुदर्शन कौल थे और दूसरे श्रीनगर में रहने वाले महात्मा **नीलकण्ठजी** थे जो औपनिषद्

वेदान्त के सच्चे उपासक थे और स्थितप्रज्ञ की अवस्था में श्रीनगर, अनन्त नाग, गौतमनाग आदि स्थानों में विचरण किया करते थे। अगले वर्ष अनन्त नाग में, वेदान्ती साधुओं की एक सङ्गोष्ठी में पूज्यपाद जी स कई एक प्रश्न किए गये। वे वेदान्ती साधु इनकी परीक्षा करना चाहते थे। उनका विचार था कि पूज्यपाद जी वस्तुत: तान्त्रिक साधक हैं और बाहिर बाहिर से ही औपनिषद् वेदान्त की बातें सुनाते हैं। पूज्यपाद जी तर्क की अनेकों युक्तियां जानते थे। उन्होंने सभी प्रश्नों के उत्तर उपनिषदों के वाक्यों को आधार बनाकर दे दिए, विवर्तवाद को न तो सराहा और न ही उसका खण्डन ही किया। उस सङ्गोष्ठी में महात्मा नीलकण्ठजी भी उपस्थित थे। संगोष्ठी के अनन्तर वे उन्हें अलग ले जाकर कहने लगे कि इन शास्त्रार्थों से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है। कोई अनुभूति की बातचीत आपस में बैठकर करें। वस्तुत: वहां केवल नीलकण्ठ जी ही पूज्यपाद जी के वास्तविक महत्त्व का समझ पाए। उनके साथ एकान्त में जो वार्तालाप पूज्यपादजी का हुआ उसी से वे समझ गए कि ये महापुरुष स्थितप्रज्ञ की स्थिति में हैं। ऐसा पूज्यपाद जी ने स्वयं कहा है। इन दो महानुभावों को छोड़कर जो और सिद्ध पूज्यपाद जी को कश्मीर में मिले, जैसे—**सारिका देवी के आंगन में शिवजी नाम के** सिद्ध, या मार्तण्ड और **'बिजबिहारा'** के बीच की **अटवी में जलसन्तरणी विद्या** में निष्णात एक फकीर इत्यादि, वे मानव जीवन में स्थित थे या सिद्धों के शरीर में रहते थे। इस विषय में वे कोई भी निश्चय नहीं कर पाये। मानव शरीरस्थ अनुभूति सम्पन्न महात्मा उन्हें ये दो ही मिले। साधक महात्मा और विद्वान् तो बहुत मिले, जैसे—साधु माल्युन के देवकाक, ब्रारी आंगन के श्री शङ्कर पण्डित, गौतमनाग के श्री गाश काक जी, गुसाइं कुण्ड के श्री आत्माराम जी, बारामुला के महात्मा नानकाक जी कुलगाम के **श्री रामजी** इत्यादि। परन्तु उनकी दृष्टि में वे सभी साधक ही थे। अनुभूति सम्पन्न सिद्ध नहीं थे। अस्तु।

आगे कश्मीर में हेमन्त और शिशिर दोनों ही ऋतुएं बहुत अधिक ठण्ड की होती हैं। पानी जम जाता है। स्नान करने में बहुत कष्ट का अनुभव होता है। अत: पूज्यपादजी ने इन दो ऋतुओं को मार्तण्ड क्षेत्र (मट्टन) में ठहरने का निश्चय किया। श्री शङ्कर पण्डित ने वहां के कई एक महानुभावों के साथ उनका परिचय करा दिया था। अत: वहां ठहरने में उन्हें कोई भी असुविधा नहीं हुई। डेरा उन्होंने मार्तण्ड क्षेत्र की धर्मशाला के एक कमरे में जमाया था। भोजन प्राय: या तो श्री नन्दलाल खार के घर या शिवजी फोतेदार के घर किया करते थे। मट्टन में अनेकों सज्जन उनके पास गोष्ठी लगाने और धर्म, दर्शन, साहित्य, इतिहास आदि की बातें सुनने आया करते थे। कभी कभी अपने अपने घर भोजन को भी बुलाया करते थे। प्रदोष व्रत का पारायण प्राय: श्री नन्दलाल खार के यहां किया करते थे। पं० शिवजी फोतेदार का बड़ा लड़का, जियालाल फोतेदार

उनका बड़ा भक्त बन गया और उनसे मन्त्र दीक्षा लेने के लिए बहुत आग्रह करता रहा। पूज्यपादजी अपने इष्ट मन्त्र की दीक्षा किसी को भी नहीं दिया करते थे। कोई बहुत आग्रह करता तो **"षडक्षर शिवमन्त्र"** लिखकर दिया करते थे और शिवजी के चरणों में धरकर कल्पना द्वारा उन्हीं से उसे ग्रहण करने का उपदेश दिया करते थे। किसी विशेष प्रयोजन को चाहने वाले साधक को तदनुकूल मन्त्र इसी तरह से लिखकर दिया करते थे। उसे वे साधक या तो तदनुकूल देवता से या भगवान् शिव से उसी तरह कल्पना के द्वारा ग्रहण किया करते थे। बहुतों को उन उन मन्त्रों द्वारा समुचित देवता की उपासना से अभीष्ट लाभ होता रहा। वे कहते थे कि **शिवजी सब मन्त्र विद्याओं के आदिगुरु** हैं अतः साधक को किसी ऐसे शिवस्थान पर जाना चाहिए जहां शिवलिंग या शिवमूर्ति की प्रतिष्ठा किसी सामर्थ्यवान् सिद्ध योगी ने की हो। वहां जाकर शिव जी की पूजा करके **"एकलव्य" की तरह** उपरोक्त कल्पना के द्वारा शिवजी से मन्त्रोपदेश ले लेना चाहिए। तब मन्त्र वीर्यवान् बनता है और अभीष्ट फल को दे सकता है। वे यह भी कहते थे कि शिवमन्त्र को देवी के मुख से भी उसी तरह ग्रहण किया जा सकता है। चण्डीगढ़ के समीप एक ग्राम है **सुहाणा** नाम का वहां पूज्यपाद जी बहुत बार महीनों तक लगातार रहते रहे। भौतिक शरीर को छोड़ने से दो तीन ही वर्ष पूर्व वहां उनके भक्तों ने शिव मन्दिर को बनाया और उन्हीं के हाथों शिवलिंग की और हनुमानजी की मूर्त्ति की प्रतिष्ठा करा दी। गत वर्ष जब मैं सुहाना गया था तो उनके उधर के भक्तों ने मुझे बताया कि उन लोगों के सामने जो कोई भी समस्या आ जाए, उसे ले करके वे पूज्यपादजी के द्वारा बताये विधान के अनुसार उसी मंदिर में शिवजी की शरण में आ जाते हैं और उससे उनकी समस्याएं अनायास ही सुलझ जाती हैं और अभीष्ट फल भी मिलते रहते हैं। उनके लेखों से यह भी विदित होता है कि किसी किसी महानुभाव को वे **कल्याण वृष्टि स्तव या ललिता-सहस्रनाम** सुना दिया करते थे। उसी बात को वे मन्त्र दीक्षा समझते हुए उसी स्तोत्र का पाठ करते रहे। किसी किसी योग्य साधक को वे शाम्भवी योग विद्या भी सिखा दिया करते थे। इस बात के सङ्केत उनके लेखों से मिलते हैं। श्री जियालाल फोतादार से जो बातें मेरी हुई उनसे मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि **उन्हें भी पूज्यपादजी ने शाम्भवी योगविद्या का उपदेश किया है। अस्तु।**

दिसम्बर मास में जब कश्मीर में शिक्षा संस्थानों में शीतावकाश हो गए तो श्रीनन्दलाल खार की बहन के पुत्र श्री **"श्रीनाथ तिक्कू"** श्रीनगर से मट्टन आ गए। उनका घर भी वहीं है। श्रीनगर में वे संस्कृत पाठशाला में प्राज्ञ श्रेणी में पढ़ा करते थे। श्रीनन्दलाल जी ने उनका सम्पर्क पूज्यपाद जी से करवा दिया। सारे शीतावकाश में वे प्रायः प्रतिदिन पूज्यपाद जी के पास आया करते रहे और विविध विषयों के रहस्यों को उनसे सुनते रहे। आगे श्रीनगर में भी उनका

सम्पर्क पूज्यपाद जी से लगातार चलता ही रहा। तदनन्तर जब श्रीनाथ जी शास्त्री परीक्षा में उत्तीर्ण होकर काशी हिन्दु विश्वविद्यालय में आयुर्वेद विद्या को सीखते रहे तो ग्रीष्मावकाशों पर आते जाते प्रायः उनसे समागम के लिए सफल यत्न करते ही रहे। श्रीनगर में जब वे विशारद शास्त्री श्रेणियों में अध्ययन करते रहे तब भी उनके समागम से काफी लाभ उठाते रहे। वे उनके साथ कश्मीर के कई एक देवस्थानों की यात्राएं भी करते रहे। बहुत बार कश्मीर की शारदा लिपि में लिखे हुए प्राचीन ग्रन्थों की पाण्डुलिपियों को उन्हें पढ़कर सुनाया करते थे। स्वातन्त्र्योत्तर युग में दिल्ली में पूज्यपाद जी बहुत बार उनके आवास में ठहरा करते रहे। पूज्यपाद जी ने **सन् १९८२ में जब मानव शरीर को छोड़** दिया तो तब भी श्री तिक्कू जी दिल्ली में ही थे और मर्त्यजीवन के अन्तिम दो तीन दिन पूज्यपाद जी उनके द्वारा ही दी गई आयुर्वेदिक औषध का सेवन करते रहे। पूज्यपाद जी के भक्तों में से जिन्हें उनके साथ सबसे अधिक काल तक, अर्थात् **सन् १९२९ से सन् १९८२** तक लगातार सम्पर्क का सौभाग्य प्राप्त हुआ है वे डा० श्रीनाथ जी तिक्कू ही हैं। वे इस समय दिल्ली में ही रह रहे हैं और कालिका माई के मन्दिर के पास **चान्दीवाला ट्रस्ट के चिकित्सालय** में सेवारत हैं।

मार्तण्ड क्षेत्र में एक बहुत बड़ा जलस्रोत भूगर्भ से प्रस्फुटित होता है। वह स्रोत एक सुविशाल कुण्ड को भरकर जब आगे बहता है तो एक विशालतर कुण्ड को भी भरकर उससे बाहिर निकलता है और एक लघु नदिया के रूप में सारे मार्तण्ड क्षेत्र में से बहता हुआ आगे बढ़ता है। इसके उन दो कुण्डों को **कमल नाग** और **विमल नाग** कहते हैं और नदिया का नाम है **'चाका'**। **यह क्षेत्र मलमास के अधिष्ठातृदेव त्रयोदश सूर्य का तीर्थ है**। पौराणिक गाथा के अनुसार अदिति ने तेरह अण्डों को जन्म दिया था जिनमें से एक अण्डा, मृत-प्राय सा था। शेष बारह अण्डों में से बारह आदित्यों का जन्म हुआ और उस मृत-प्राय अण्ड में से तेरहवें सूर्य ने जन्म लिया जिसे मार्तण्ड कहते हैं। इस तीर्थ पर पितरों का श्राद्ध किया जाए तो उनकी सद्गति होती है। ऐसा वरदान भगवान् शिव ने इस तीर्थ को दिया है। वैसे तीर्थ का अधिष्ठाता देवता भगवान् सूर्य है। विमलनाग की पृष्ठभूमि में भगवान् आदित्य का अतीव सुन्दर मन्दिर बना है। कुण्डों के बाएं ओर एक धर्मशाला है जिसमें बहुत सारे छोटे छोटे कमरे हैं। उन्हीं में से एक कमरे में पूज्यपाद जी ठहरे थे। **सन् १९३० के माघ महीने के** शुक्ल पक्ष की दशमी को रात के दूसरे पहर में पूज्यपाद जी को भगवान् मार्तण्ड ने एक सुविचित्र रूप में दर्शन दिए। तदनुसार उन्हें एक ऐसे **अत्यन्त भास्वर, शान्त और सौम्य तथा असीम प्रकाश के दर्शन हुए जो बिजलियों से, चन्द्रमा से और अग्नि से भी अधिक चमकीला था और चारों ओर सर्वत्र फैला हुआ था**। देवता क्रीडनशील हुआ करते हैं। जिस रूप में चाहें उस रूप में दर्शन दिया करते हैं। तो पूज्यपाद जी

को इस प्रकार के शान्त भास्वर और असीम प्रकाश के रूप में ही भगवान् आदित्य ने दर्शन दिए।

वसन्त काल के प्रारम्भ में पूज्यपाद जी मार्तण्ड से **साली नामक ग्राम** को गए। वहां से कुछ दूर तक नाग देवता का स्थान है। उस नाग देवता को कश्मीर में **'कार्कोट नाग' कहते हैं।** कश्मीर के ब्राह्मणों में प्रचलित पूजा पद्धतियों में और बलि, वैश्वदेव, होम आदि के विधानों में अन्य-अन्य देवताओं के साथ आठ नाग देवताओं को भी बलि दी जाती है और विधिवत् उनकी भी पूजा होती है। उन्हें आठ कुल नाग कहते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि कश्मीरी ब्राह्मणों के भिन्न भिन्न कुलों की जिस प्रकार से शारिका, ज्वाला, राज्ञी, शिवा इत्यादि कुल देवियां होती हैं, उसी तरह से उन कुलों के अपने अपने नाग देवता भी हुआ करते थे। उन्हीं नाग देवताओं को कुल नाग कहा करते हैं। उन्हीं कुल नागों में से एक नाग देवता कार्कोट नाग है **—कश्मीर के शासकों के वंशों में सब से अधिक प्रतापी जो वंश हुआ है उसकी उत्पत्ति इस कार्कोट नाग से ही मानी गई है।** उसी वंश में प्रतापादित्य, ललितादित्य, जयापीड जैसे प्रतापी शासक प्रकट हुए। पूज्यपाद जी उस कार्कोट नाग के तीर्थ पर एक धर्मशाला में कुछ समय के लिए एकान्त वास करते रहे। **चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की पञ्चमी को वहां प्रातःकाल के समय उन्हें एक विचित्र दृश्य दिखाई दिया।** उन्हें ऐसा दीखा कि वे एक असीम, स्फटिक वर्ण और भास्वर तेजो मण्डल के भीतर हैं। वहां से वे उस मण्डल के भीतरीय भाग में प्रवेश करते जाते हैं। भीतर भीतर प्रवेश करते करते उस मण्डल का विस्तार सङ्कुचित होता जा रहा है और उसका वर्ण भी बदलता जाता है। भास्वर स्फटिक वर्ण मण्डल के भीतरी भाग में उन्हें जरा भर सीमित विस्तार का क्षीरवर्ण मण्डल दीखा। उसके भीतर और सङ्कुचित तथा पीतवर्ण वाले मण्डल में वे प्रविष्ट हो गए। उसे भी पार करके वे एक और भी सङ्कुचित आकार के रक्तवर्ण मण्डल में प्रविष्ट हो गए तथा आगे अत्यन्त सङ्कुचित कृष्ण वर्ण मण्डल में पहुंच गए। वर्ण एकदम नहीं बदलते गए। अपितु स्फटिक वर्ण आगे आगे घना होता हुआ श्वेतवर्ण बन गया। वह भी घना होते होते धीरे धीरे पीलेपन को प्राप्त हो गया। इसी तरह भीतर भीतर वर्ण और घना होता हुआ क्रम से लाल और लाल से काला बनता गया। यह भीतर प्रवेश क्रिया का दृश्य उन्होंने स्वयं अनुभव किया।

फिर उस अतीव सङ्कुचित काले मण्डल से बाहिर आते हुए क्रम से विशाल विशालतर ज्योतिर्मय मण्डलों को पार करते करते अन्ततोगत्वा सर्वथा असीम स्फटिक-भास्वर प्रकाश पुञ्ज में पुनः पहुंच गए। उन्होंने ऐसा समझा कि नागराज कार्कोट ने कृपा करते हुए उन्हें **"पञ्चकोषों"** का साक्षात् दर्शन करा दिया। तदनुसार अन्नमय कोष अत्यन्त सङ्कुचित है। और घन अज्ञानमय है। **प्राणमय,**

पञ्चकोष

पञ्चकोषों से अतीत सर्वथा असीम चिदानन्दात्मक संवित् स्वरूप आत्मदेव।

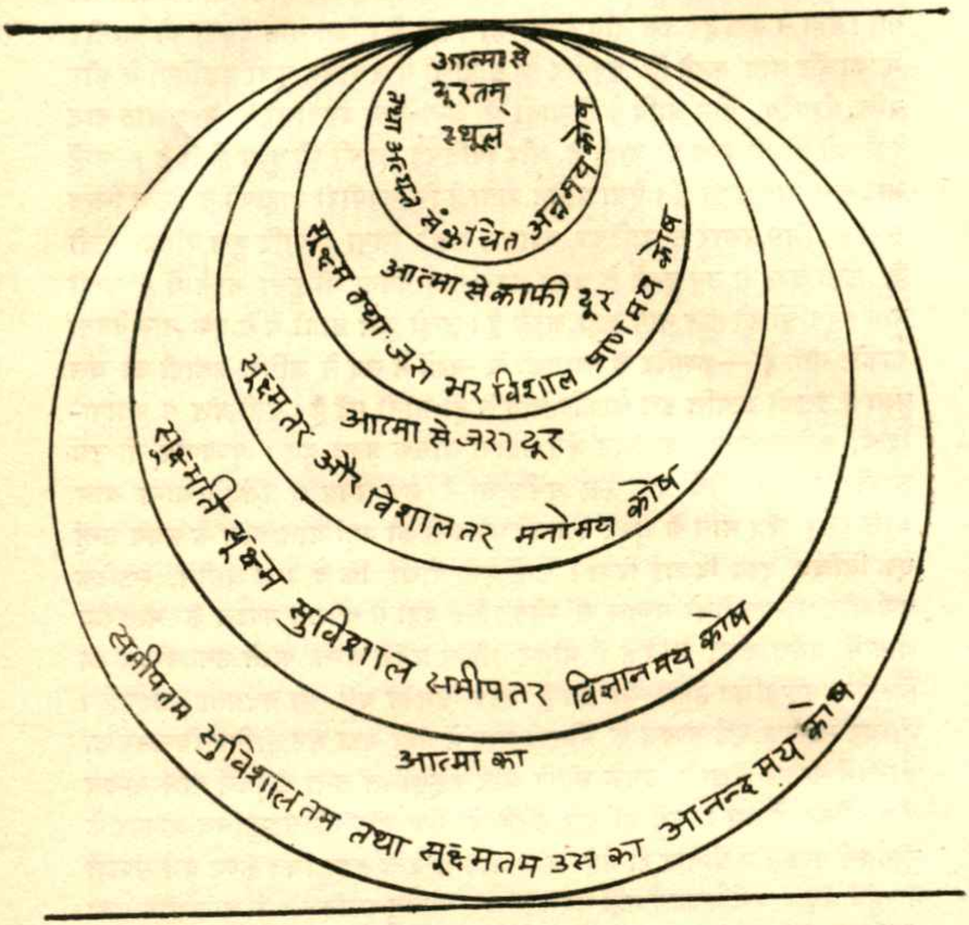

कोषातीत सर्वथा असीम चिदानन्द स्वरूप शुद्ध संविदात्मक आत्मदेव।

इन कोषों में भिन्न-भिन्न रंग भरें। यथा—(१) अन्नमय में सांवला, (२) प्राणमय में गुलाबी, (३) मनोमय में पीला, (४) विज्ञानमय में बसन्ती और (५) आनन्दमय में स्फटिक जैसा श्वेत। स्थूल कोषों की परिधि की वक्रता अधिक अधिक तथा सूक्ष्म सूक्ष्म कोषों की परिधि में वक्रता की न्यूनता स्थूल स्थूल कोषों का परिमाण छोटा छोटा और सूक्ष्म सूक्ष्म कोषों का परिमाण विशाल विशालतर आदि। आत्मदेव कोषों से बाहर सर्वथा असीम और सर्वथा सूक्ष्मातिसूक्ष्म तथा सवतः अनन्त। समरेखा का कहीं अन्त नहीं।

मनोमय और विज्ञानमय कोषों में क्रम से सङ्कोच का क्षय और विशालता का उदय होता जाता है और साथ ही अज्ञान का अन्धकार घटता जाता है और ज्ञान का प्रकाश भास्वर होता जाता है। अन्ततोगत्वा आनन्दमय कोष में प्राणी सर्वथा असीम हो जाता है और उसके ज्ञान का प्रकाश पूरी तरह से प्रभास्वर हो जाता है। वह कोष विशाल विशालतर बनते बनते सर्वथा असीम सच्चिदानन्द रूपता को प्राप्त करता है। साथ वाले चित्र से इस बात को समझ लेने में सहायता मिल सकती है।

गीता प्रेस वाली पुस्तकों में पञ्चकोषों का जो चित्र छपा है उसमें आनन्द-मय कोष सबसे छोटा और अन्नमय कोष सबसे विशाल दिखाया गया है। वह बात यथार्थ नहीं है। गीता प्रेस के चित्रकार को उपनिषद् के "अन्तरतमः" शब्द ने धोखे में डाला है। उपनिषदों में **आन्तर** पद का अर्थ है शुद्ध और असीम चिन्मय स्वरूप के समीप, समीपतर और समीपतम, परन्तु चित्रकार ने उसका अर्थ समझा एक दूसरे के भीतर।

उसी दिन पूज्यपाद जी ने वहां **"महागुरु श्रीकृष्णस्तोत्र"** का निर्माण किया। वसन्ततिलका छन्द में रचा हुआ यह सुन्दर स्तोत्र द्व्यर्थक है। अर्थश्लेष के द्वारा इस स्तोत्र से पूज्यपाद जी ने एक ओर से भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति की है और दूसरी ओर से अपने पूज्यपिता श्रीकृष्ण शास्त्री की।

पं० शिवजी फोतेदार के एक भाई श्रीप्रेमनाथ फोतादार **'ब्राह'** नामक ग्राम में रहा करते थे। पूज्यपाद जी कार्कोट नाग से जब मट्टन लौट आए तो वहां से 'ब्राह' ग्राम को चले गए। वहां रहते हुए उन्होंने **'श्रीबाल कृष्ण दशकम्'** नाम के एक अतीव सुन्दर स्तोत्र का निर्माण द्रुतविलम्बित छन्द में किया। इसका निर्माण सं० १८८७ मैं चैत्र शुक्ला द्वादशी को किया गया। यह स्तोत्र भी दिल्ली से **"अमृतस्तोत्र संग्रह"** में छप गया है। स्तोत्र छोटा सा ही है, परन्तु अतीव मनोहर है।

सन् १९२९ में जब पूज्यपाद जी शारदा मन्दिर के दर्शन करके साधु गङ्गा लौट आए थे तो देवकाक जी ने उनसे यह भी कहा था कि उनके आकाशचारी सिद्ध गुरु आने वाली शिवरात्रि के पश्चात् ही कभी पुनः आकर दर्शन देंगे। यह भी कहा था कि जब वे दर्शन देंगे तो पूज्यपाद जी को भी दर्शन देने की प्रार्थना वे उनसे करेंगे। वे सिद्ध गुरु देवकाक को पांच छः महीने बीत जाने पर ही पुनः देखने आया करते थे। अतः पूज्यपाद जी वसन्त के प्रारम्भ को बिता कर पुनः साधु गङ्गा गए। वहां उन्होंने देवकाक को मिलना चाहा; परन्तु किसी से भी देवकाक का कुछ भी पता नहीं लगा। जहां जहां भी जो जो परिचित व्यक्ति थे उन सबसे मिलकर देवकाक के विषय में पूछा, परन्तु कोई भी उनके विषय में कुछ भी बता नहीं सका। वे तब जीवित थे या शरीर छोड़ गए थे, इस विषय में भी

कहीं से भी कुछ भी पता नहीं लगा। पीछे एक बार देवकाक ने पूज्यपाद जी से कहा था कि उसके आकाशचारी गुरु उसे कुछ समय के पश्चात् अपने लोक को ले चलेंगे। उस बात का स्मरण करते हुए पूज्यपाद जी इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि या तो देवकाक किसी अज्ञात ढङ्ग से शरीर छोड़ गए होंगे, अथवा उनके गुरु उन्हें इसी देह के समेत दिव्य लोक को ले गए होंगे। वैसे महापुरुष अपनी दिव्य सामर्थ्य से भौतिक देह को भी दिव्य देह में उस तरह से बदल सकते हैं जिस तरह से रस-सिद्ध महात्मा ताम्बे का स्वर्ण बना देते हैं। अस्तु।

साधु गङ्गा (साधु माल्युन) से पूज्यपाद जी घूमते घूमते श्रीनगर से होते हुए शुपयान के मार्ग में स्थित '**ह्वाल**' नाम के ग्राम में पहुंचे। वहां कई एक धनाढ्य लोग रहते थे, अनेक सज्जन महानुभाव भी रहते थे। एक विद्वान् पुरोहित भी वहां रहते थे जो कर्मकाण्ड में निष्णात थे और अच्छे उपासक भी थे। उनका नाम था **लस्सा बोय** (लस्सा भाई)। उनके घर में शारदा लिपि में लिखित अनेकों पाण्डुलिपियां भी थीं। हंस वागीश्वरी देवी के वे उपासक थे। उस देवी का स्थान वहां भी है। वहां देवी को "**बीड़ा भगवती**" कहते थे, क्योंकि देवी का मुख्य स्थान भेडगिरि नामक पर्वत की अधित्यका में विद्यमान है उस 'भेड' शब्द का ही अपभ्रंश 'बीडा' बन गया है। वहां के निवासियों में से **दम खान्** (दामोदर खाना) और **राधा माली** नामक व्यक्तियों के नामों का उल्लेख पूज्यपाद जी के लेख सामग्री में बहुत बार आया है। वहां वे भोजन प्रायः दामोदर खान के यहां किया करते थे और निवास राधामाली के घर में। उस ग्राम में **कण्ठ भट्ट** नाम के एक महानुभाव भी रहते थे जो पूज्यपाद जी की सेवा भी काफी करते रहे और उनसे लगातार सत्सङ्ग का लाभ भी उठाते रहे। उन्होंने पूज्यपाद जी को ऐसी तीव्र प्रेरणा कर दी जिसके कारण से पूज्यपाद जी ने संसार को एक ऐसी बहुमूल्य देन दे दी जिस से वास्तविक तत्त्व के जिज्ञासुओं को शताब्दियो तक उपकार प्राप्त होता रहेगा। पूज्यपाद जी से आध्यात्मिक विषयों पर संवाद सुनते सुनते एक बार पुलकायमान होते हुए कण्ठभट्ट ने यों कहा "हां इन बातों को कोई बोल सकते हैं, परन्तु भली भांति लिखकर नहीं रख सकते। कोई भली भांति लिख तो सकते हैं परन्तु समझा नहीं सकते।" इस पर पूज्यपाद जी कुछ आवेश में आकर बोल उठे, "देखो, मैं लिख भी सकता हूं, समझा भी सकता हूं और बोल भी सकता हूं।" कण्ठभट्ट ने कहा "अच्छा मैं भी देख लूंगा कि आप क्या लिख सकेंगे और कैसे समझा सकेंगे।" वस्तुतः परम अद्वैत सिद्धान्त को भली भांति समझना, समझाना, उस पर लिखना और उस पर बोलना सचमुच कोई आसान काम नहीं है। समझना, समझाना, लिखना, बोलना आदि सभी कार्य द्वैत के ही क्षेत्र में सम्भव हो सकते हैं। परम अद्वैत की अनुभूति में समझने वाला, समझा जाने वाला और समझने की क्रिया तथा समझा जाने वाला विषय सब कुछ एक रूपतया ही चम-

कता है। फलतः वहां समझने वाला अपने स्वात्म प्रकाश के द्वारा स्वयं चमकते हुए अपने आप को स्वयमेव अपने ही दिव्य प्रकाश के द्वारा स्वात्म रूपतया विमर्शन किया करता है। तब उसे दूसरे को कैसे समझाया जा सके। परन्तु यथार्थ और पूरी स्वात्म साक्षात्कार की अनुभूति से सम्पन्न महापुरुषों की वाणी में ऐसी सामर्थ्य आ जाती है कि वे जिस पर अनुग्रह करना चाहें उसे अद्वैत तत्त्व के वास्तविक तत्त्व को समझने में देर नहीं लगती है। पूज्यपाद जी ने कण्ठ भट्ट को अद्वैव तत्त्व तो समझा ही दिया था। अब लेखनी के द्वारा उस तत्त्व का स्फुट प्रतिपादन करना शेष रह गया था। तो पूज्यपाद जी ने उसे भी पूरा करने का सङ्कल्प किया। उसके फलस्वरूप एक एक दिन में एक एक प्रकरण को लिखते लिखते छः दिन में एक कारिका-बद्ध शास्त्र का निर्माण कर डाला। उस शास्त्र का नाम रखा गया "**आत्मविलास**"। तदनन्तर पूज्यपाद जी ने कुछ एक दिनों में कण्ठ भट्ट को आत्मविलास के छहों प्रकरण विस्तार पूर्वक व्याख्यान करते हुए समझा दिए। तब उसे पूरी तरह से समझ में आ गया कि पूज्यपाद जी अद्वैत तत्त्व को लिख भी सकते हैं। पढ़ा भी सकते हैं, समझा भी सकते हैं और उस पर व्याख्यान भी दे सकते हैं।

आ० गौडपाद और **आ० शङ्कर** ने भी अद्वैत तत्त्व का काफी हद तक यथार्थ निरूपण किया है। अद्वैत सिद्धान्त को दृष्टि में रखते हुए उन्होंने जनता को यह समझा दिया कि केवल परब्रह्म ही एकमात्र सत्य तत्त्व है। वह सच्चिदानन्द स्वरूप है। अर्थात् वह है, अतः उसे सत् कहते हैं। वह चेतन होता हुआ चित् कहलाता। उस शुद्ध चेतना का नैसर्गिक स्वभाव आनन्द है। अतः वह सच्चिदानन्द स्वरूप है। ऐसी बात मान लेने पर एक तो यह शङ्का शेष रह जाती है कि सत्, चित् और आनन्द तीनों ही लक्षण आपेक्षिक हैं, अर्थात् हमारी अपेक्षा बुद्धि पर आश्रित हैं। हम किसी वस्तु को असत् होने की अपेक्षा से ही उसे सत् कहते हैं। सत् कहने का यह तात्पर्य है कि वह असत् नहीं है। इसी तरह से चिन्ता और आनन्दता भी अचिद्रूपता और अनान्दरूपता की अपेक्षा से ही कही जाती है। आपेक्षिक भाव परम सत्य न होता हुआ अपेक्षा बुद्धि के आसरे पर ठहरा रहता है। दूसरी शङ्का यह शेष रह जाती है कि यदि केवल ब्रह्म ही एकमात्र सत्य तत्त्व है तो यह सुख, दुःखमय जगत् और यह बन्धमोक्षप्रपञ्च कहां से आया। इसका उत्तर उन अद्वैतवादियों ने यह दिया कि यह सुख दुःखमय तथा बन्धमोक्षात्मक प्रपञ्च सत्य नहीं है। यह बांझ के बेटे और खरगोश के सींगों की तरह असत्य है। फिर प्रश्न यह उठता है कि इस प्रकार के प्रपञ्च का आभास किसने किया, कैसे किया और क्यों किया। इसका उत्तर उन अद्वैतवादियों ने यह दे रखा था कि जगत् केवल भासता है, न होता हुआ ही उस तरह से भासता है, जिस तरह से स्वप्न संसार केवल भासता ही है, होता नहीं है। स्वप्न संसार के भासने का

कारण अज्ञानी जीव की अनुभूतियों पर आश्रित उनके अपने संस्कार ही हुआ करते हैं। तो इस प्रपञ्च के आभास का कारण अज्ञानी जीवों के अज्ञान के संस्कार ही होते हैं। जब केवल शुद्ध परब्रह्म ही एकमात्र सत्य तत्त्व है। तो सभी जीव, उनका अज्ञान और उस अज्ञान पर आश्रित संस्कार कहां से आए। इस प्रश्न के उत्तर में उन अद्वैतवादियों ने यह कहा था कि जीवों का, उनके अज्ञान का, उनके बन्धन का तथा इस समस्त प्रपञ्च का झूठा आभास अनादिकाल से ही चला आ रहा है। उन उपदेशकों ने यह भी ठहराया कि जहां ब्रह्म एकमात्र अनादि और अनन्त सत्य तत्त्व है वहां साथ ही **माया** नाम का एक आभासमान तत्त्व भी अनादि काल से ही चला आ रहा है। वही अनादि प्रातिभासिक असत्य तत्त्व इस समस्त प्रपञ्च के अनादि आभास का मूल कारण है। उसी माया के झूठे तथा अनादि संसर्ग से एक मात्र ब्रह्म ही एक ओर से ईश्वर के रूप में, दूसरी ओर से जीवों के रूप में तथा उनके आदि अज्ञान के और अनादि कर्मों के रूप में तथा तीसरी ओर से इस निर्जीव जगत् के रूप में अनादि काल से ही भासता रहा है। जीवों के उस अनादि अज्ञान को उन्होंने **अविद्या** नाम दिया। उनकी दृष्टि में एकमात्र ब्रह्म की ही यथार्थ सत्ता का निश्चय हो जाने पर जीव की जीवता भी नष्ट हो जाती है, उसकी अज्ञानमयी दृष्टि भी नष्ट हो जाती है और उसके सामने जीव, ईश्वर, जगत्, बन्धन, संसार सब कुछ एकमात्र पर-ब्रह्म ही दीखने लग जाता है। इस तरह से उन अद्वैतवादियों ने ब्रह्म की त्रैकालिक यथार्थ सत्ता और माया की प्रातिभासिक अनादि सत्ता को मान कर ही जगत् के आभास की और बन्ध-मोक्ष-प्रपञ्च की व्यवस्था की थी।

पूज्यपाद जी को भगवान् दुर्वासा के द्वारा सिखाई गई शाम्भवी योग विद्या के अभ्यास से जो आत्म तत्त्व का साक्षात्कार हुआ था उसके आधार पर ठहरी हुई उनकी दार्शनिक दृष्टि के सामने उन्हें अद्वैत वेदान्तियों का ऐसा अद्वैतवाद एक विशेष प्रकार का द्वैत-वाद ही दिखाई दिया, क्योंकि इस वाद के अनुसार ब्रह्म और माया ये दोनों अनादि तत्त्व सिद्ध होते हैं। चाहे एक को परमार्थ सत्य और दूसरे को प्रातिभासिक सत्य क्यों न माना जाए; हैं तो दोनों भिन्न भिन्न प्रकार के सत्य ही। **फिर माया जैसे जड़ तत्त्व में यह सामर्थ्य कैसे आये कि शुद्ध चैतन्य स्वरूप ब्रह्म तत्त्व को जीव, जगत् और बन्धमोक्ष प्रपञ्च के रूप में आभासित करे।** तीसरी अनुचित बात यह है कि ब्रह्म स्वयं ईश्वर नहीं, ईश्वरता उसका स्वभाव नहीं। उसे मायात्मक जड़ तत्त्व ने ही ईश्वर बना रखा है। तो यह समझिए कि ईश्वरता वस्तुतः माया की ही महिमा है, ब्रह्म की नहीं।

पूज्यपाद जी ने आत्मविलास में यह उपपत्ति दी कि परब्रह्म केवल सच्चिदानन्द ही नहीं है, अपितु **सच्चिदानन्द कन्द** है। अर्थात् परब्रह्म वह मूलभूत कन्द-स्थानीय सदा सत्य परतत्त्व है जिसकी महिमा से आपेक्षिक सत्ता का, चित्ता का,

और आनन्दता का तथा साथ ही आपेक्षिक असत्ता का, अचित्ता का और अनानन्दता का आभास हुआ करता है। ऐसा क्यों हुआ करता है? इस शङ्का के उत्तर में उन्होंने यह उपपत्ति दी—परिपूर्ण तथा असीम आनन्द कन्द होता हुआ वह विलसनशील है अर्थात् सृष्टि सहार आदि और बन्ध मोक्ष आदि क्रीड़ा का आभास करने का लीलात्मक विलास उसका अपना निजी स्वभाव है। इस स्वभाव की महिमा से ही वह परमेश्वर है। अतः परमेश्वरता उसका अपना स्वभाव है, माया रूपिणी उपाधि के कारण से उसमें आया नहीं है। उल्टा उसकी अपनी स्वभावभूता परमेश्वरता के ही विलास की लीला का एक अङ्ग मात्र ही माया का आभास है। तात्पर्य यह है कि **माया परब्रह्म की बाह्य उपाधि न होकर उसकी स्वभावभूता परमेश्वरता का एक बहिर्मुख विलास मात्र होता हुआ परमेश्वरात्मक ही है, उससे भिन्न नहीं है**। अतः उसको ले करके द्वैतवाद की शङ्का को उठाया ही नहीं जा सकता है। परिमित ईश्वर भाव, जीवभाव, जगद्भाव तथा बन्धमोक्ष-प्रपञ्च सब के सब परब्रह्म की स्वभावभूता परमेश्वरता की ही लीला के बहिर्मुख आभास हैं। यह सब कुछ एक असीम, अनादि और अनन्त नाटच कला है। इस नाटच कला का सूत्रधार एक मात्र परमेश्वर है। वही परब्रह्म है। इस नाटक के विभाव, अनुभाव, स्थायिभाव व्यभिचारिभाव, नर, पात्र, रङ्ग भूमि, और दर्शक गणों के रूप में वही स्वयं अपनी परमेश्वरता के लीला विलास की क्रीडा में सतत गति से आभासमान होता रहता है। सब कुछ उसकी परमेश्वरता का बहिर्मुख आभास होता हुआ मूलतः परमेश्वरता ही है। परमेश्वरता परब्रह्म का स्वभाव है अतः परब्रह्म ही है। अतः परब्रह्म ही केवल एकमात्र सत्य तत्त्व है, वही समस्त प्रपञ्च भी है और प्रपञ्च से उत्तीर्ण शुद्ध सच्चिदानन्द कन्द भी वही है। इस प्रकार की परिपूर्ण तथा शुद्ध और अनुपाधिक एकता ही वास्तविक अद्वैत है। इसी वास्तविक अद्वैत का निरूपण आत्मविलास के सभी प्रकरणों में विविध दृष्टियों को लेकर के किया गया है। आयाततः आत्मविलास का निर्माण कण्ठभट्ट के लिए हुआ, परन्तु उसके द्वारा सभी मुमुक्षुओं का उद्धार हो सकता है। उस महामहिम मण्डित ग्रन्थ का निर्माण कश्मीर मण्डल में सन् १९३० में जुलाई के महीने में सम्पन्न हो गया। आगे सन् १९३३ के मई मास में जब पूज्यपाद जी तात्कालिक पंजाब के नालागढ़ नामक नगर में काफी समय तक ठहरे थे तो वहाँ उन्होंने वहां के अपने सभी भक्तजनों को आत्मविलास पढ़कर सुनाया और एक एक कारिका पर हिन्दी भाषा में लम्बी-चौड़ी व्याख्या भी करके सुना दी। उन भक्तजनों में से एक महानुभाव **श्री लब्भुराम जी** थे जो पूज्यपाद जी के व्याख्यान को साथ साथ लिखते गए। कुछ समय तक यह कार्यक्रम लगातार चलता रहा और आत्मविलास की वह हिन्दी व्याख्या पूरी हो गई। और उसका नाम **सुन्दरी रखा** गया। पश्चात् उसे

पूज्यपाद जी ने आद्योपान्त एक बार पढ़ लिया और आवश्यकतानुसार उसका परिमार्जन किया। तदनन्तर अमृतसर में श्री **भवानीशङ्कर त्रिवेदी ने सन् १९३७ ई० में सुन्दरी व्याख्या समेत आत्मविलास का सम्पादन किया** और पूज्यपाद जी ने उसका प्रकाशन करा दिया। **सन् १९८२ में आत्मविलास के द्वितीय संस्करण को जम्मू में** प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखक (डा० बलजिन्नाथ पण्डित) ने सम्पादित करके उसे पूज्यपाद जी के द्वारा स्थापित **"श्री पीठ, सैद्ध दर्शन शोधसंस्थान" की ओर से प्रकाशित किया।** इस संस्करण में एक तो कहीं कहीं व्याख्यात्मक टिप्पणियां दी गईं और अन्त में शैवदर्शन की परिभाषाओं का एक कोष बनाकर जोड़ दिया गया। पूज्यपाद जी के आदेश से ही इस शरीर द्वारा कई एक वर्ष पूर्व आत्मविलास की विमर्शिनी नामक विस्तृत संस्कृत व्याख्या का भी निर्माण किया गया था। उसे पूज्यपाद जी ने एक दो बार पढ़कर स्वयं उसका परिमार्जन भी किया था; परन्तु चिर काल तक उसका प्रकाशन नहीं किया जा सका। अब वह टीका जम्मू में एक मुद्रणालय में छप रही है। आशा है कि सन् **१९८९** में उसका प्रकाशन पूरा हो जाएगा।

ह्वाल से पूज्यपाद जी श्रीनगर आ गए। वे बहुत बार **गौतमनाग** और **गुसाईं** गुण्ड की बातें बताया करते थे। सम्भवतः इस पहली कश्मीर यात्रा में ही उन स्थानों के दर्शन करने गए हों। परन्तु दैनन्दिनी में इस बात का कोई भी उल्लेख नहीं मिला। द्वितीय कश्मीर यात्रा में भी इस बात का उल्लेख नहीं। बहुत सम्भव है कि तृतीय कश्मीर यात्रा में ही उधर गए हों। फिर श्रीनगर में उन्हें **अगस्त १९३० ई० में** शारिका देवी के आङ्गन में एक सिद्ध मानव के दर्शन हुए। और तदनन्तर ही वे जम्मू की ओर चल पड़े। वह सिद्ध मानव दर्शन भी उनके जीवन की एक अद्भुत घटना है जिसे उन्होंने संक्षेप से भी और विस्तार से भी लिख रखा है और विशेष विस्तार से सुनाया भी है। वह घटना इस प्रकार की है।

संवत् १९८७ में भाद्रपद मास के शुक्लपक्ष की त्रयोदशी को पूज्यपाद जी शारिका भगवती के दर्शन को गए। शारिका जी के आङ्गन में बैठकर उन्होंने मधुर और उच्चस्वर में बड़े ही ललित ढङ्ग से श्री **धर्माचार्य कृत लघुस्तव** को गाया। उसे गाकर तथा देवी को प्रणाम करके ज्यों ही उठकर चलने को थे तो क्या देखा कि पास बैठा हुआ एक कश्मीरी ब्राह्मण हाथ के सङ्केत से रुकने को कह रहा है। वे कुछ मिनट रुक गए, जब तक उस पण्डित महानुभाव ने उपांशु ध्वनि में कुछ पाठ पूरा किया और वे भी देवी को प्रणाम करके उठने लगे। उठ कर पूज्यपाद जी से परिचय आदि पूछ कर कहा कि "आपकी और मेरी इष्ट देवी एक ही है। आप ऊंचे ऊंचे स्वर से स्तोत्र गा रहे थे तो मेरा ध्यान उधर को ही जा रहा था, अतः मेरा अपना पाठ तब तक रुका रहा जब तक आपका स्तोत्र-

पाठ चलता रहा। इधर से मैं आपके साथ कुछ वार्तालाप करना चाहता था। इसी कारण से आप को कुछ समय के लिए रुक जाने का सङ्केत किया। आपके द्वारा गाए गए स्तोत्र में जो "**माया कुण्डलिनी**" पद्य है, मैं आपके मुख से उसका अर्थ सुनना चाहता हूं।" पूज्यपाद जी अर्थ बताना मान गए और शारिका पर्वत की विशाल परिक्रमा के तट पर एक जगह वृक्ष की छाया में दोनों महानुभाव बैठ गए। तब पूज्यपाद जी ने व्याकरण, दर्शन और तन्त्र की दृष्टियों से उस श्लोक की व्याख्या सुना दी। सुनते सुनते पण्डित महोदय प्रसन्न होते गए परन्तु अन्त पर ज़रा भर मुस्कराए। पूज्यपाद जी ने पूछा कि क्या उन्होंने श्लोक की व्याख्या यथार्थ ढङ्ग से नहीं की। इस पर वे महानुभाव बोले—"आपने जो व्याख्या की वह अतीव वैदुष्य पूर्ण है। ऐसी बातें कश्मीर मण्डल में अब कोई नहीं जानता है। परन्तु सारी व्याख्या विद्या के बल से की गई, अनुभूति के आधार पर नहीं की गई।" इस पर पूज्यपाद जी ने अनुभूति के आधार पर व्याख्या सुनाने की जब प्रार्थना की तो वे बोले कि उसी को तो सुनाने के लिए मैंने आपको देवी-आङ्गन में रोक लिया था; परन्तु वह व्याख्या इस तरह से मार्ग के तट पर नहीं की जा सकता है, अपितु किसी गुप्त एकान्त भवन में की जा सकेगी। पण्डित महोदय चाहते थे कि जहां पूज्यपाद जी ठहरे हैं, वे वहीं आकर के रहस्यमय तात्पर्य को प्रकट करेंगे। पूज्यपाद जी को वह प्रस्ताव पसन्द नहीं आया। अन्ततोगत्वा यह निश्चय हुआ कि पण्डित जी के ही घर में यह रहस्यात्मक कार्य सम्पन्न हो जाए। तदनन्तर दोनों उठे और नगर को चल दिए। श्रीनगर के प्राचीन उत्तरी भाग में आलीकदल नाम के मुहल्ले में पहुंच कर पण्डित जी एक गली में प्रविष्ट होकर एक मकान के बहिर्द्वार के सामने खड़े हो गए और पूज्यपाद जी से कहा "कल बारह बजे यहां आकर आपने मुझे बुलाना। मेरा नाम **शिवजी है**। मैं आपको तभी इस श्लोक के रहस्यार्थ को समझा दूंगा।" इस बात को सुनकर पूज्यपाद जी ने मकान के बहिर्द्वार पर लकड़ी के कोयले से एक चिह्न लगा दिया और जहां गली से बाज़ार में निकलते हैं उस जगह भी एक दीवार पर उसी तरह से एक चिह्न लगा दिया।

दूसरे दिन पूज्यपाद जी साढ़े ग्यारह बजे वहां आ गए और दो बार बुलाया "शिव जी, शिव जी।" ऐसा करने पर उन्होंने देखा कि ऊपर के कमरे की खिड़की से शिव जी ने उनकी ओर देखते हुए हाथ के इशारे से ऊपर आ जाने का सङ्केत किया। वे ऊपर गए। एक सुसज्जित कमरे में एक अच्छे आसन पर उन्हें बिठाया गया। फिर दोनों ने दूध पिया। तदनन्तर शिवजी बोले कि वे संस्कृत भाषा को नहीं जानते हैं। नव यौवन में उर्दू और फारसी पढ़ते रहे हैं। अत: विशेष शास्त्रीय व्याख्यान नहीं कर सकते हैं। परन्तु गुरु के अनुग्रह से जो अर्थ उनकी अनुभूति में

आ चुका है उसकी अनुभूति वे पूज्यपाद जी को भी करा सकते हैं। फिर उस अनुभूति के लिए उन्हें तैयार होने को कहा। ज्यों ही पूज्यपाद जी ने कहा कि वे तैयार हैं त्यों ही उन पण्डित महानुभाव ने पूज्यपाद जी की ओर अनुग्रहपूर्ण एकाग्र दृष्टिपात किया। उस दृष्टिपात के प्रभाव से पूज्यपाद जी के मूलाधार चक्र में विचित्र गतिशीलता आ गई और कुण्डलिनी शक्ति जागृत होकर ऊपर नीचे आरोहण अवरोहण करने लगी। श्लोक में दिए गए एक एक नाम के साथ एक एक चक्र में प्रवेश करती गई और दूसरे दूसरे नाम के साथ उस उस चक्र को पार कर करके विश्राम लेती रही। इस तरह देवी के बारह नामों के विमर्शन के साथ छः चक्रों को पार करती हुई ऊपर ऊपर आरोहण करती गई और शेष बारह नामों के विमर्शन के साथ ही साथ उन्हें पुनः पार करती हुई नीचे आरोहण करती हुई "इत्यसि" शब्द के विमर्शन के साथ मूलाधार कमल की कर्णिका में प्रवेश करती रही। उस श्लोक को यहाँ दिया जा रहा है --

माया कुण्डलिनी क्रिया मधुमती काली कला मालिनी
मातङ्गी विजया जया भगवती देवी विद्या शाम्भवी।
शक्तिः शङ्करवल्लभा त्रिनयना वाग्वादिनी भैरवी
ह्रींकारी त्रिपुरा परापरमयी माता कुमारीत्यसि॥

काफी देर तक यह प्रक्रिया चलती रही और इसके चलते चलते पूज्यपाद जी को सुविचित्र आत्मानन्द का अनुभव होता रहा। अन्ततोगत्वा जब शिवजी ने अपनी एक टक दृष्टि को अन्यत्र फेर लिया तो कुण्डलिनी शक्ति की वह आनन्द प्रदायिनी गति भी रुक गई। शैवी साधना की दृष्टि से विचार करने पर इस प्रक्रिया को **"वेधदीक्षा"** का कोई विशेष प्रकार कहा जा सकता है। पूज्यपाद जी के कथन के अनुसार वेषभूषा से, वाणी से, तथा रंग ढंग से शिवजी तात्कालिक कश्मीरी ब्राह्मण मालूम पड़ते थे। श्रीनगर के **श्री दीनानाथ शास्त्री** कहते थे कि पूज्यपाद के कथन के अनुसार उस पण्डित जी का पूरा नाम 'शिवजी कौल' था। परन्तु मुझे पूज्यपाद जी ने उसका नाम केवल "शिवजी" इतना ही बताया है।

इस अपूर्व अनुभूति से पूज्यपाद जी अतीव प्रसन्न और अतीव प्रभावित हो गए। वे जम्मू लौट जाने की सोच रहे थे। चलने की तिथि का निश्चय होने पर उन्हें इच्छा हुई कि प्रस्थान से पहले एक बार शिवजी के दर्शन पुनः कर आएं। अतः वे पुनः आली कदल गए। उस गली को भी पहचाना और उस भवन को भी। भवन के द्वार पर ऊंचे स्वर से बहुत बार "शिव जी, शिवजी" कहते हुई उस पण्डित महानुभाव को बुलाते रहे। परन्तु उत्तर कोई नहीं मिला, भवन की कोई खिड़की नहीं खुली। अन्ततोगत्वा आस पास के लोगों ने कहा "आपको भ्रम हो

गया है। यहां कोई भी शिवजी नहीं रहता है। कई वर्षों से यह भवन खाली पड़ा हुआ है। इसका स्वामी एक नवयुवक कहीं बाहिर अध्ययन कर रहा है।" इन बातों को सुनने पर पूज्यपाद जी ने देवी आंगण से लेकर वेधदीक्षा तक का सारा वृत्तान्त जब उन लोगों को सुनाया तो वे कहने लगे कि जगदम्बा ने कृपा करके किसी सिद्ध जन से आपका सम्पर्क करा दिया है। इतने से ही आप अपने को कृतकृत्य समझ लेवें। ऐसी घटनाएं शारिका पर्वत पर कभी कभी हुआ ही करती है। तो आप अपने को धन्य समझ लेवें और शिव जी की तलाश छोड़ देवें। फिर एक व्यक्ति आया। उसके पास भवन की चाबी थी। उसने द्वार खोल कर शून्य भवन पूज्यपाद जी को दिखाया। तीनों भूमिकाओं में सभी कमरों में ताले लगे हुए थे। ऐसा देखने पर पूज्यपाद जी आश्चर्यचकित होकर वहां से लौट पड़े।

इस घटना के आधार पर पूज्यपाद जी इस बात का निश्चय नहीं कर पाये कि शिवजी कोई तात्कालिक मानव था या मानव वेशधारी कोई सिद्ध था। अतः उन्होंने उसे **'सिद्धमानव'** कहा है और इस घटना का श्लोकबद्ध वर्णन **"सिद्धमानव दर्शनम्"** में किया है। वह रचना दिल्ली के **श्री लालबहादुर शास्त्री विद्यापीठ की पत्रिका "शोधप्रभा" में सन् १९७८ के** (अष्टम) अङ्क में प्रकाशित हो गई।

पूज्यपाद जी ने उस सिद्ध मानव समागम के विषय में मुझसे यह भी कहा है कि उस दिव्य अनुभूति के अनन्तर उन्होंने शिवजी के प्रति अपनी साधना के विषय पर प्रकाश डालते हुए उस साधना से प्राप्त स्थिति का वर्णन करके यह पूछा कि आगे उनकी गति क्या होगी। परन्तु शिवजी ने उस बात को बताया नहीं। केवल इतना ही कहा कि यदि वह बात उन्हें बताई जाए तो उनका तात्कालिक शरीर इस लोक में रह नहीं सकेगा, तत्काल शरीर पात होगा और उस शरीर द्वारा जो भी अन्य कार्य करने हैं तथा जो भी कर्मफल भोग प्राप्त करना है वह सब शेष रह जाएगा, जो उनके लिए हितकर नहीं। ऐसा कहते हुए और अत्यन्त स्नेह का प्रदर्शन करते हुए उन्होंने उस बात के लिए आग्रह को छोड़ देने की प्रार्थना की। मेरे विचार में वह गति इतनी आनन्दमयी हो सकती है कि जिसका विचार आते ही इस दुःख बहुल मर्त्य जीवन का परित्याग करने को वे लालायित हुए होते और शेष बचे हुए कर्मफल भोग के लिए उन्हें फिर कभी इस मर्त्यलोक में आना पड़ता। इसी कारण से उस सिद्ध मानव ने वह बात नहीं बताई। पूज्यपाद जी की यह **तेरह महीने वाली पहली कश्मीर यात्रा सन् १९३० के अगस्त मास** के अन्त तक समाप्त हुई। जब वे जम्मू की ओर चल पड़े।

अध्याय ८

हिमाचल यात्रा

सन् १९३० के अगस्त मास में पूज्यपाद जी श्रीनगर से जम्मू की ओर चल पड़े। अगले कई एक महीनों की उनकी यात्रा का कोई ब्यौरा कहीं भी नहीं मिला। अनुमानतः वे इन महीनों में जम्मू प्रान्त में घूमते रहे। फिर पठानकोट होते हुए कांगड़ा मण्डल में प्रविष्ट हो गए। वहां किसी ग्राम में कुछ दिन ठहरे। प्रदोषव्रत वहीं मनाया। वहां से चलकर पैदल **'समलोटी'** पहुंचे। **श्री निहाल पण्डित** के घर भोजन किया। वहां एक मन्दिर के दर्शन किए। यह गांव कांगड़ा वाले **नगरोटा क्षेत्र** में है। वहां से चलकर **'जल बिम्ब'** पहुंच गए। स्थान बड़ा ही रमणीक लगा। वहां एक पक्का शिवमन्दिर है। साथ जल कुण्ड है जिसमें से कई एक स्रोत निकलते हैं। रेल की लाइन से यह स्थान सटा हुआ है। नगरोटा यहां से आधा मील है। यहां भोजन **कृपाराम** ज्योतिषी के घर किया। ज्योतिषी जी सात्त्विक प्रकृति के लगे। यहां से **अवस्थी बद्री दत्त जी** के साथ शेरा ठाणा गये। उनके घर बहुत दिन रहे। भोजन दोनों समय प्रायः उन्हीं के घर करते रहे। कभी कोई और और महानुभाव भी भोजन के लिए बुलाते रहे। ६ जनवरी को श्री बद्रीदत्त जी को **न्यायसिद्धान्त मुक्तावलि** को पढ़ाना प्रारम्भ किया। १३ जनवरी को मकर संक्रान्ति वहीं पर हुई। अगस्त्य कुण्ड में संक्रान्ति का स्नान हुआ। शेराठाणा में ही प्रदोष व्रत नियमानुसार १६ जनवरी को मनाया। वहां से १७ जनवरी को पैदल चलकर **कांगड़ा शहर** (भवन) आए। **जगमाता वज्रेश्वरी के और वीरभद्र भैरव के दर्शन किए।** शाक्त संप्रदाय की परंपरा में कांगड़ा मण्डल को **जालन्धर पीठ** कहते हैं। उस सम्प्रदाय के क्रम में चार पीठों का विशेष माहात्म्य माना गया है। वे हैं—**पूर्व में कामाक्षा पीठ, दक्षिण में पूर्णगिरिपीठ** और **पश्चिम में जालन्धर पीठ**। इस त्रिकोण के बीच में केन्द्रीय पीठ है जिसे **ओडियाम पीठ कहते हैं। वह जगन्नाथपुरी वाला सुप्रसिद्ध पीठ** है। शाक्त पूजा के क्रम में इन चार पीठों को जब प्रणाम किया जाता है तो इनके प्रति विशेष आदर भाव को जतलाने के लिए इनका पूरा नाम न लेते हुए "का-पू-जा-ओ इति पीठ चतुष्टयाय नमः" इस प्रकार से शब्दोच्चारण किया जाता है।

पूज्यपादजी के कथन के अनुसार जालन्धर पीठ के भी पांच केन्द्र हैं। मुख्य केन्द्र में **वज्रेश्वरी** का, पूर्व में **ज्वालामुखी** का, दक्षिण में **तारादेवी** का (जो बैजनाथ में स्थित है), और उत्तर में **त्रिलोकपुर** वाला पीठ है जो कांगड़ा से पठानकोट जाते हुए मार्ग में आता है। उन्हीं के कहने के अनुसार पश्चिम वाला पीठ उस स्थान पर था जहां गजनदी और बाणगङ्गा का सङ्गम है। उन नदियों में एक बार बड़ी बाढ़ आ गई जिसमें वह मन्दिर बह गया। सुना है कि पश्चात् गुलेर के राजपूतों ने किसी अन्य स्थान पर एक नया देवी का मन्दिर बनवाया था। जो अब थीन जलबांध में समा गया। अस्तु।

१८-१-१९३१ को पूज्यपादजी ने प्रातः सूर्य कुण्ड में स्नान करके पुनः जगदम्बा वज्रेश्वरी के दर्शन किए। १९ जनवरी को भी ऐसा ही किया। उसी दिन सायंकाल शेराठाणा आ गए और बद्रीदत्त जी के घर ठहरे। कई दिन वहीं रहे।

२२ जनवरी को श्री बद्रीदत्त जी ने उन्हें नगरौटे से रेल पर बिठाया और वहां से ज्वालामुखी आ गए। वहां के पुजारी श्री **भैरवदत्त** के नाम श्री बद्रीदत्तजी ने पत्र लिख दिया था। उससे उन्होंने अपने पास ठहराया और भोजन की भी व्यवस्था कर दी। वहां भगवती ज्वालामुखी के दर्शन करके पास ही स्थित कपिस्थल, अम्बिकेश्वर और सिद्ध नागार्जुन नामक देवस्थानों के भी दर्शन किए। २३ जनवरी को कपिस्थल में शौच स्नान आदि करके पुनः देवी ज्वालामुखी के दर्शन किए। फिर भैरवदत्त के यहां भोजन किया। जिस **सिद्ध नागार्जुन** के स्थान का उन्होंने यहां उल्लेख किया है वे एक ऐसे अनुभूति सम्पन्न शैव सिद्ध थे जिनको विद्वत् संसार अभी तक जरा भर भी जानता ही नहीं। सुप्रसिद्ध दो तीन नागार्जुन नाम के ग्रन्थकारों से ये नागार्जुन अतिरिक्त ही हैं। दसवीं ग्यारहवीं शताब्दियों के मध्य में कांगड़ा वाले मुख्यपीठ के पीठाधिपति **श्री शम्भूनाथ थे** जो श्रीसिद्धनाथ भी कहलाते थे और जिनके द्वारा रचे गए **क्रमस्तोत्र** के चौदह श्लोक तन्त्रालोक की टीका में **जयरथ** ने उद्धृत किए हैं। ये शम्भुनाथ सर्वशास्त्रज्ञ और परम अनुभवी सिद्ध महापुरुष थे। कश्मीर के **त्रिक आचार** और **मत्स्येन्द्रनाथ** के **कौल आचार** के परिपूर्ण मर्मज्ञ थे। काश्मीर शैव दर्शन के मर्मज्ञ गुरु आचार्य अभिनवगुप्त को भी दर्शन रहस्यों के विषय में और साधना प्रक्रियाओं के रहस्यों के सम्बन्ध में जो कोई भी संशय शेष रह गए थे, उन सभी संशयों का निवारण करने वाले और दर्शन रहस्यों तथा साधना की समस्याओं के जटिल विषयों का स्फुट स्पष्टीकरण करने वाले उनके सर्वोत्तम गुरु ये शम्भुनाथ ही थे। उन्हीं शम्भुनाथ सिद्ध की शिष्य परम्परा में **तेरहवीं शताब्दी** में **नागार्जुन** नामक एक सिद्ध प्रकट हुए। उनके द्वारा विरचित एक स्तोत्र के एक श्लोक को चौदहवीं शताब्दी में **महेश्वरानन्द** ने अपनी **महार्थमञ्जरी** की परिमल नामक टीका में उद्धृत किया है। परन्तु नागार्जुन का नामोल्लेख नहीं किया है। इस नागार्जुन के दो अतीव

और सारगर्भित स्तोत्र इस समय भी विद्यमान हैं। वे हैं **"चित्तसंतोषत्रिंशिका"** और **"परमार्चन त्रिंशिका"**। दोनों स्तोत्र कश्मीर में काफी लोकप्रिय बने हैं और उनके दो संस्करण श्रीनगर में छप चुके हैं। तीसरा संस्करण टीका, अनुवाद और गवेषणात्मक उपोद्घात के समेत जम्मू में श्रीनगर विद्यापीठ ने प्रकाशित किया है, **"शैवाचार्यो नागार्जुनः"** इस शीर्षक से। दार्शनिक दृष्टि से और काव्यकला की दृष्टि से दोनों ही स्तोत्र अत्युत्तम और सुमनोहर हैं। इन्हीं स्तोत्रों के निर्माता सिद्धनागार्जुन की तपस्या का स्थान सिद्ध नागार्जुन स्थान कहलाता है जो ज्वाला मुखी मन्दिर से जरा ऊपर उस पहाड़ी की अधित्यका में विद्यमान् है। इस तरह से ये सिद्ध नागार्जुन एक शैवसिद्ध थे, कोई बौद्ध भिक्षु नहीं थे, न ही कोई आयुर्वेद के आचार्य ही थे। इनके विषय में ऐसी जानकारी यहां प्रसङ्गवशात् दी गई।

२३ जनवरी को भगवती के दर्शन पूजन आदि करके तथा भैरवदत्त के यहां भोजन करके पूज्यपादजी वहां से सात मील पैदल चलकर **कालेश्वर** पहुंच गए। विपाशा (ब्यास) नदी के तट पर स्थित यह एक अति रमणीक स्थान है। पक्के घाट बने हैं। मन्दिर हैं, धर्मशालाएं हैं। यहां पूज्यपाद जी ने कालेश्वर के दर्शन किए। **मेलाराम सूद** की पाठशाला को देखा। मेलारामजी के आग्रह से तीन दिन वहीं ठहरे। साथ भैरवदत्त और **हनुमन्तलाल** भी थे। वहां एक काषाय वस्त्रों वाला साधु मिला जो एक गुप्तचर मालूम पड़ता था। उधर उन दिनों एक उत्सव मनाया जा रहा था, जिसमें पूज्यपादजी ने भाषण भी दिया। वहां रात को जूता गायब हो गया। मेलाराम ने फिर नया जूता खरीद कर दे दिया। २५-१ को भी व्याख्यान दिया। २६-१ को उत्सव पूरा हो गया। प्रातः रथ सप्तमी के दिन विपाशा (ब्यास) नदी में कालेश्वर तीर्थ पर स्नान किया। हनुमन्तलाल के विषय में विदित हुआ कि वे कलकत्ते के एक सेठ थे। सारी सम्पत्ति को मुकदमे-बाजी में नष्ट कर चुके थे। जरा सनकी थे। अच्छे गायक थे। स्वर मधुर था।

२६-१ को ही पूज्यपादजी वहां से चलकर ढाई मील पर **'भागपुर'** पहुंचे। वहां एक ठाकुर के घर ठहरे। मट्टन (कश्मीर) का एक पण्डा **नीलकण्ठ तिक्कू** वहां मिला। उसने साग भात पकाकर खिलाया। २७ को प्रातः **"प्रागपुर"** होते हुए **"चिन्तपूर्णी"** पहुंचे। देवी के दर्शन किए। पुजारी एक ब्रह्मचारी था। उसने बात तक नहीं की। भोजन के लिए भी नहीं पूछा। उत्तर प्रदेश या बिहार का लगता था। २८-१ को प्रातः चलकर **"धर्मसाल"** पहुंचे। वहां **बाबा निकोदर दास** के आश्रम पर ठहरे। निकोदरदास औरंगजेब के समय के एक महात्मा थे। उन्होंने इस साधुओं के डेरे की स्थापना की थी। सरकार की ओर से काफी भूमि पर्याप्त मात्रा में मिली थी। पक्के मकान बने थे। यहां धर्मनिर्णय हुआ करता था। तात्कालिक महन्त **श्री लक्ष्मीधर शास्त्री** थे। बड़े सज्जन प्रकृति के थे। डेरे में प्रतिदिन बीस पच्चीस लोग भोजन पर हुआ करते थे। वार्षिक

आय बीस पच्चीस सहस्र की थी। स्थान जि. होशियापुर में है। २९-१ को धर्मसाल से प्रातः चले। भोजन ऊपर एक मील पर **लक्ष्मीधर** महन्त के अपने घर में खाया। महन्तजी घोड़े पर उधर ले गए थे। रात को महन्तजी से एक रूपय्या भी मिला। ३०-१ को "**डाडा**" पहुंचे। राधाकृष्ण के मंदिर में विश्राम किया। एक गढवाली पण्डित ने दूध पिलाया। पुजारी ने फलाहार करवाया। वहां से १ मील चलते हुए "**चौक**" पहुंचे। वहां दूध पीकर रात को डाडा ही लौट आए। ३१-१ को ब्यास नदी के घाट पर स्नान किया। उस दिन प्रदोष व्रत था। नाव से पार उतरे। वहां '**नरमाणा**' में शिव मंदिर के दर्शन किए। फिर **दीनानाथ** नामक **एक** ग्रामीण स्कूल के अध्यापक एक और ग्राम में ले गए। वहां उसके मित्र **तुलाराम** ने बादाम और मिश्री खिला दी। दूध भी पिलाया। फिर पांच मील चल कर दीनानाथ के गांव '**कतनौर**' पहुंचे। वहां बद्रीदत्त अवस्थी और **वेद गर्भ** भी आए थे। खीर बनी और व्रत का पारायण हुआ। १ फरवरी को वहीं भोजन करके '**परतिपाल**' गए। २-२ को वहीं रहे। रात तुलाराम के घर में रहे। ३-२ को ब्यास में स्नान करके और खा पीकर 'कतनौर' आए। ४-२ को वहीं दीनानाथ के घर भोजन करके वेदगर्भ के साथ आठ मील चलकर '**हरिपुर**' पहुंचे। तालाब पर एक साधु की कुटिया में रात काट ली। ५-२ को प्रातः साढ़े तीन मील चल कर '**मौजे खैरियां**' नामक गांव में पहुंच गए। कुएं पर नहाकर मियां **शेर सिंह** के घर भोजन किया। मियांजी पीछे कश्मीर में शारदा मंदिर में मिले थे। वहां से सात मील चलकर '**देहरा**' पहुंचे। मार्ग में ब्यास के तट पर **कौडा महादेव** के दर्शन किए। सूदों के ठाकुर द्वारे में रात काटी। ६-२ को प्रातः ९ मील चलकर ज्वालाजी पहुंच गए। स्नान करके भगवती के दर्शन किए। फिर भैरवदत्त के घर में स्वयं भोजन बनाकर खाया। सिद्ध नागार्जुन, कपिस्थल और अम्बिकेश्वर के पुनः दर्शन किए; वेदगर्भ और **बाबूराम** साथ थे।

७-२ को प्रातः १२ मील चलकर **रानीताल** पहुंचे। फल, मिठाई और दही खाकर ११ मील और चलकर '**भवन**' (कांगड़ा) पहुंचे। १९-२ तक भवन, नगरोटा, शमलोटी, **अमुवाडी, चामुंण्डा, बाणगङ्गा** आदि स्थानों में घूमते रहे। भोजन, निवास आदि की सेवा भवन में लाला **जानकी प्रसाद, लाला नारायणदास, बालकृष्ण छूण्डी**; शम लोटी में **राव निहाल पण्डित**; अमुवाड़ी में **योगेश्वर पुरोहित; पठियार** में **जोगीश्वर** और पं० **पद्मनाभ**; नगरोटा में **चौधरी कुड्डू, केशवदत्त** क्षत्रिय, वैद्य **कृपाराम, मोतीराम**, शेरा ठाणा में पं० बद्रीदत्त अवस्थी आदि सज्जन करते रहे। इन दिनों देवी वज्रेश्वरी और वीरभद्र के प्रायः दर्शन करते रहे। नगरोटा की पाठशाला को देखा। वहां कांगड़े के पं० **पोलोराम** से बातचीत हुई। पण्डितजी थोड़ा बहुत न्याय शास्त्र पढ़े थे, परन्तु अपने आप को बड़ा विद्वान् समझते थे। पूज्यपादजी के साथ बड़े प्रेम से काफी बातें हुईं। वे

सुजानपुर के पं० **रामकृष्ण के दामाद** थे। चौधरी कुर्डू (नगरोटा) एक तान्त्रिक साधक थे। उनके पास मन्त्र शास्त्र के कई एक ग्रन्थ थे। १६-२ को अमुवाड़ी में **कोटी राज्य के शासक राणा जी** के **मुन्शी शरणदास** से परिचय हुआ। १४-२ को प्रदोष व्रत ठाणा में बद्रीदत्त के घर हुआ। १५-२ को वहीं शिवरात्रि हुई। बद्रीदत्त के परिवार के समेत रात्रि जागरण हुआ। १९-२ को कोटी स्टेट के मुंशी शरणदास पुत्र विवाह पर आने का निमन्त्रण दे गये। उसका वह पुत्र था पद्मनाभ। मुंशी जी का घर ठाणा में ही था। २०-२ को प्रातः भोजन मुंशी शरण दास के घर किया। रात को बारात में गए। बारात ११ मील दूर 'पतियारा' गांव में **पं० ब्रजलाल अवस्थी के घर गई**। साथ ठाणा के बद्रीदत्त अवस्थी और नगरोटा के पं० केशव दत्त क्षत्रिय और उनका पुत्र **त्रिविक्रम** भी थे। अगले दिन वहां एक नेपाली जैसे लगने वाले सन्न्यासी परमहंस से भेंट हुई। २२-२ को ब्याह वालों के यहां भोजन करके ठाणे लौट आए। साथ पद्मनाभ थे। अगले दो दिन शरणदास के यहां ठहरे। फिर फरवरी २४ से मार्च ९ तक बद्रीदत्त के घर रहे। २ मार्च को प्रदोष व्रत वहीं हुआ। १०-३ को भवन आ गए। ११-३ का भोजन बालकृष्ण के घर किया। फिर लाला **बिहारीलाल** और **गौरीशाह** पुराने कांगड़े ले गए। रहे बिहारी लाल के यहां। वहां कुछ एक जन्म-पत्र देखे। एक आर्यसमाजी मनोहर लाल अर्जीनवीस मिला। भगवती के दर्शन किए। फिर देहरा, जि० कांगड़ा के **वैद्य पं० रूपलाल** शास्त्री से परिचय हुआ। १२-३ को भवन लौट आए। एक रूपय्या बिहारीलाल ने दिया। पर पूज्यपादजी ने लिया नहीं। ठहरे बालकृष्ण छूण्डी के घर। रूपलाल शास्त्री फिर मिले। उनका जन्मपत्र देखा। सायं ७ मील चलकर ठाणे पहुंच गये, साथ पद्मनाभ और **रंगील पण्डित** आये। वहां **श्रीनगर के श्रीकण्ठ नेहरू** का पत्र मिला। सायं नगरोटा गये। रात को भूकम्प आया। अगले रोज रात को ७ मील चलकर ठाणे आ गये १२-३ तक वहीं रहे बद्रीदत्त अवस्थी के यहां। १४-३ को वहीं पं० चौधरी के यहां ठहरे। स्वास्थ्य ढीला था। केवल सत्य नारायण का प्रसाद और दूध का आहार किया। १९-३ को भोजनान्तर नगरोटा होकर अमुवाड़ी जोगीश्वर के घर गये। रात को पठियार जाकर पं० पद्मनाभ के घर ठहरे।

भवन (काङ्गड़ा) से ११ मील पूर्व में बाणगङ्गा के उत्तर तट पर चामुण्डा का मन्दिर है। नीचे श्मशान है। मन्दिर छोटा सा परन्तु पक्का है। भीतर देवी की मूर्त्ति है। तीव्र भूकम्पों में भी यह मकान नहीं गिरा। पूर्व की ओर मन्दिर का द्वार है। कुछ पौड़ियां नीचे उतरकर नन्दिकेश्वर का पक्का मन्दिर है। यह बड़े भूकम्प के बाद बना है। साथ चार पांच छोटी छोटी धर्मशालाएं भी हैं। नीचे बाणगङ्गा बहती है। बस्ती आसपास आधा मील दूर है। उत्तर में एक मील दूर **'बर्डोई'** नामक गांव है। दक्षिण में बाणगङ्गा के उस पार **'डाडा'** नामक गांव है।

पूज्यपादजी २०-३ को प्रातः उठकर चामुण्डा पहुंचे। वहां नन्दिकेश्वर की कोठरी में ठहरे ऐसा उन्होंने लिखकर रखा है। स्वयं उन्होंने यह भी कहा है कि वहां किसी कोठरी में किसी कापालिक साधु ने पांच मुण्ड गाड़कर रखे थे। उस कोठरी में कोई भी रात को नहीं ठहरता था। यदि ठहरे तो उसका बड़ा अमङ्गल हो जाता था। परन्तु वे उसी कोठरी में कई दिन ठहरे। रातों अकेले वहां सोए। कोई भी बाधा नहीं आई। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि यह नन्दिकेश्वर की कोठरी वह कापालिक की कोठरी होगी। नवरात्र प्रारम्भ हुआ। पूज्यपादजी नवरात्रों में वहीं रहे। प्रतिदिन विधिपूर्वक दुर्गापाठ करते रहे। अन्न नहीं खाया। सूखे फलों और दूध का आहार करते रहे। दूध प्रतिदिन या तो जोगीश्वर कुड्डू लाते रहे या पद्मनाभ (पठियार)। देवी को कुछ सूखे फलों का नैवेद्य चढ़ाया करते रहे और प्रतिदिन एक पैसा भी चढ़ाते रहे। उस समय एक पैसे का भी बहुत मूल्य होता था। नवरात्रों के अनन्तर विधिपूर्वक अष्टमी के दिन ग्यारह कन्याओं का और एक वटुक का पूजन किया। सभी को चार चार जलेबियां और एक एक पैसा दिया। नवमी को पुनः नौ कुमारियों का पूजन किया। उन्हें भी चार चार जलेबियां भेंट कर दीं और एक एक पैसा दक्षिणा दी। उस दिन तारीख २८ मार्च थी। २७ और २८ मार्च की रात्रि में भगवती चामुण्डा की कृपा से पारमहंस्य भाव का साक्षात्कार हुआ। इस विषय का उल्लेख मात्र पूज्यपाद जी ने कर रखा है। विशेष स्पष्टीकरण नहीं किया है। पीछे पूज्यपाद जी की पहली कश्मीर यात्रा में उन्होंने बारामुला में भगवती शैलपुत्री के तीर्थ पर जो दिव्यदर्शन हुआ था उसे उन्होंने "आत्मसाक्षात्कार" ऐसा लिखकर रखा है और चामुण्डा में हुए दर्शन को "पारमहंस्य-साक्षात्कार" कहा है। उस आत्मसाक्षात्कार का वर्णन उन्होंने 'सिद्धमहारहस्यम्' में लिख भी रखा है और विस्तारपूर्वक हम लोगों को सुनाया भी है। परन्तु इस चामुण्डा में हुए साक्षात्कार का विस्तृत वर्णन कहीं नहीं किया है, न ही मुझे कभी सुनाया है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इस साक्षात्कार में उन्होंने अपने विश्वोत्तीर्ण शुद्ध और असीम संवित् स्वरूप के दर्शन किए होंगे जब कि शैलपुत्री के क्षेत्र में अपने विश्वमय परमेश्वरात्मक स्वरूप के दर्शन किए थे। नवरात्रों की बीच में वहां लट्ठ निरञ्जन मिले। नवमी के दिन जोगीश्वर दूध, घी, चावल, शक्कर ले आया। खीर बनी और व्रत का पारायण हुआ। बीच में एक दिन लट्ठ निरञ्जन आए थे। पूज्यपादजी उनके पास गए। उन्होंने एक रूपय्या दे दिया। वे मूलतः एक मैथिल ब्राह्मण थे। नाम था जगन्नाथ झा। आयु ८० वर्ष की थी। चामुण्डा वासी एक महात्मा आत्मप्रकाश के शिष्य थे। अवधूत थे। ग्रामीण मूर्ख जनता उन्हें सिद्ध समझती थी। एक दिन जोगीश्वर बादाम भी ले आया। पूज्यपादजी देवी को चढ़ाते रहे। २६-३ को मट्टन (कश्मीर) का

पण्डा और नन्दलाल खार का पुरोहित **ठाकुर दास** आया। उसके लिए साग भात का प्रबन्ध किया, जलेबियां खिला दीं। एक रूपय्या भी दे दिया। नवमी को वह पुन: आया। उस दिन उसे भोजन और जलेबी खिला दी, एक आना दक्षिणा भी दे दी। २६-३ को पुन: देवीपूजन किया। एक पैसा और चार बादाम चढ़ाए। अमुवाड़ी आ गए। भोजन जोगीश्वर कुड्डू के घर किया। फिर नगरोटा होकर सायं ठाणा पहुंचे। ३१-३ को वहीं प्रदोष व्रत हुआ। आगे ८ अप्रेल तक ठाणा में ही ठहरे। ६-४ को भवन आ गए। भोजन बालकृष्ण के घर किया। भगवती के दर्शन किए। रात को ठाणे लौट आये। आगे १७-४ तक उसी प्रदेश में घूमते रहे और निम्नलिखित स्थानों के दर्शन करते रहे—बाणगङ्गा का हरिद्वार घाट, सिद्धबाड़ी, घज्जर महादेव, वीरभद्र, धर्मशाल, सेरगञ्ज आदि। इन दिनों भेंट हुई ढुण्ढी ब्रह्मचारी, एक बंगाली सन्न्यासी शतानन्द, आदि से सेरगज में नेपाली पण्डित देवानन्द ने सेवा की। १६-४ को जब वीरभद्र में **वशिष्ठ सिंह** से भेंट हुई तो उन्होंने कोटी स्टेट को चलने का निमन्त्रण दिया। वहां कोटी के युवराज **टीका साहिब** आए थे। उनकी ओर से ताराचन्द एक रूपय्या देने लगे थे, परन्तु पूज्यपादजी ने नहीं लिया। फिर पूज्यपादजी की यह इच्छा हुई कि जोगेन्द्रनगर के पास जो पहाड़ है, उसमें से खोदी जाती हुई डण्डल को देख आएं। उस काम में सुविधा दिलाने के निमित्त से युवराज टीका साहिब ने उधर के दो ठीकेदार **मिर्जा बदरुद्दीन और अब्दुल सलाम** के नाम दो पत्र लिखकर दे दिये। आगे जब पूज्यपादजी कोटी राज्य के भ्रमण को गये तो टीका साहब से उन्हें काफी सेवाएं प्राप्त हुईं। प्रथम परिचय यहीं वीरभद्र में ही हुआ। फिर लौटकर ठाणे आए। निवास श्री बद्रीदत्त के यहां किया।

१८-४ को खा पीकर नगरोटा आए। वहां से रेलयात्रा करते हुए साढ़े तीन बजे दिन के जोगेन्द्रनगर पहुंच गये। वहां से पांच मील चलकर डण्डल पर पहुंचे। वहां मिर्जा बदरुद्दीन से मिलकर उन्हें युवराज की चिट्ठी दे दी। उन्होंने दाल रोटी, हलुआ एक ब्राह्मण से बनवाकर मंगवाया और उन्हें खिलाया। रात को अपनी दुकान में ठहराया। १६-४ को नहाकर पूर्ववत् भोजन खिला ठीकेदार ने उन्हें एक सिक्ख मिस्त्री के साथ ट्रक में बिठा दिया। उसने ले जाकर भीतर से सारी टण्डल दिखा दी। फिर पैदल आगे बढ़ते हुए **बरोट** पहुंच गये। वहां **लाला सूकामल** की दुकान पर विश्राम करके लाला ऊधोराम के साथ वहां वाली टण्डल को भी देख लिया। साथ **लाला ऊधोराम** था। रात को भोजन, निवास वहीं किया। २०-४ को ठीकेदार अब्दुल सलाम से मिले और उन्हें चिट्ठी दे दी। वह बड़ा ही भला आदमी था। उसने टण्डल का भीतरी भाग और सारी मशीनरी दिखा दी। रोटी लाला **बूटामल** ने बनाकर खिला दी। दूध भी पिलाया। अब्दुल

सलाम ने अपनी घोड़ी पहाड़ पर चढ़ने को दे दी। ऊपर पहुंच कर ढाई मील चलकर ट्रकों के स्टेशन पर पहुंच गये। ट्रक में बैठकर उतर आये और उसी दुकान में विश्राम किया। वहां ठीकेदार के नौकरों **रामचन्द्र** और **सिद्धराम** ने समुचित सेवा की। दूसरे दिन जब वहां से चले तो अब्दुल सलाम ने पांच रुपये दिये। बूटामल ने भी पांच रुपए दे दिए। २१-४ को बदरुद्दीन की दुकान पर आए। काफी बातचीत हुई। फिर उसने एक आदमी साथ दिया। उसने ट्रक के द्वारा **'सकरौटी'** पहुंचा दिया। टण्डल में जाने का पास वहां एक **दुष्ट बाबू शर्मा** ने ले लिया। बूटामल ने **सूरजमल** के नाम पर एक पत्र लिखकर दिया था। उससे उसने रोटी होटल पर खिला दी। फिर पैदल चलकर **'टेसू'** पहुंचे। वहां महात्मा तुलाराम जी के भतीजे की दुकान में ठहरे। उसने रोटी खिला दी। २२-४ को **'सन्ता'** पहुंचे। वहां **महात्मा तुलाराम** के साथ काफी बातें हुईं। ये ब्राह्मण थे, बड़े शान्त, विद्वान् और विरक्त महात्मा थे। अपने घर में ही रहते थे। पत्नी उसी वर्ष मर गई थी। लोग कहते थे कि इन्हें श्रीरामचन्द्रजी के दर्शन हुए थे। चेहरा इनका तेजस्वी था। वहां से रेल द्वारा नगरोटा आये। **पं. केशवदत्त श्रोत्रिय** के यहां भोजन खाया। सायं पठियार में पं० पद्मनाभ के यहां से होते हुए रात को चामुण्डा पहुंच गये। रात को वहीं रहे। शिवराम सूद ने दो रुपये दिये। रात्रि नन्दिकेश्वर की कोठरी में सोये। २३-४ को ठाणा में बद्रीदत्त के पुत्र **प्रियंवद** का उपनयन संस्कार हुआ। पूज्यपादजी को एक धोती, एक कमीज़, एक टोपी, और ४ रुपये दिए गये। उपनयन चामुण्डा में हुआ। वहां देवी और नन्दिकेश्वर के दर्शन करके भोजन के पश्चात् अपराह्न में पं० **हरदत्त दीक्षित** के साथ एक गांव में रात भर रहे। प्रातः स्नानादि करके पुनः शेराठाणा आ गये। बद्रीदत्त के यहां आये। उस दिन वहां जेवनार मनाया गया। रात को गाना बजाना खूब हुआ। इतने महीने काङ्गड़ा मण्डल के भिन्न भिन्न देवस्थानों, तीर्थों तथा अन्य दर्शनीय जगहों में भ्रमण करते रहे। तदनन्तर उन्हें पुनः पञ्जाब जाने की और वहां से हिमाचल प्रदेश के पूर्वोत्तरीय भाग में घूमने की इच्छा हुई। अभी तक आसपास के स्थानों के दर्शन करके प्रायः पुनः ठाणा आते रहे। अब काफी समय के लिए ठाणा को छोड़कर अन्यत्र दूर-दूर भ्रमण करने का निश्चय उन्होंने किया। ठाणे में अवस्थी बद्रीदत्त के दोनों पुत्रों को, अर्थात् **वेदगर्भ** और **प्रियंवद** को, पूज्यपादजी के साथ महीनों के सहवास से और विविध विषयों पर उत्कृष्ट प्रकाश डालने वाले वार्तालापों से उनके प्रति इतना घना स्नेह हो गया था कि उनकी इस दीर्घ प्रवास की तैयारी के समय दोनों ही बालक बहुत रोने लगे।

२५-४ को पूज्यपाद जी को चलते समय ठाणा के निवासियों ने इकत्तीस रुपए

जमा करके भेंट किए। उन्होंने एक रुपय्या प्रियंवद को दे दिया। बीस पच्चीस व्यक्तियों ने स्कूल तक अनुगमन किया वहां से साढ़े छः मील चलकर भवन पहुंचे। साथ 'डरोह' के **पं० कृपाराम सुग्गा** थे। बालकृष्ण छुरण्डी के घर ठहरे। भगवती के दर्शन किए। रात्रि वहीं ठहरे। दूसरे दिन प्रातः स्नान आदि बाणगङ्गा के हरिद्वार घाट पर किया। **कृपाराम सुग्गा भी परिव्राजक बनकर साथ चलना चाहते थे**। परन्तु पूज्यपाद जी ने उन्हें समझा बुझा कर वापिस घर लौटा दिया। रात को ढुण्ढी ब्रह्मचारी से मिले। उन्होंने दूध पिलाया और पांच रुपए दिए। २७ को वीरभद्र में स्नान करके भगवती दर्शन और कुमारी पूजन किया। भोजन करके रेलवे स्टेशन पर आ गए। बालकृष्ण ने सवा रुपय्या दिया। रेल का टिकट लिया। डेढ़ बजे गाड़ी चली और साढ़े पांच बजे पठानकोट पहुंची। वहां से दूसरी गाड़ी का टिकट लेकर उससे नौ बजे अमृतसर पहुंच गये। स्टेशन पर लड्डू, गणेरी और शर्बत लेकर फिर एक और गाड़ी पर सवार होकर चले और प्रातः पांच बजे **सरहिन्द** पहुंचे। वहां से एक और गाड़ी पर सवार होकर २८-४ को आठ बजे प्रातः **रोपड़ पहुंच** गए। उस युग में पठानकोट और जालन्धर साक्षात् रेल से जुड़े नहीं थे। अतः अमृतसर होकर ही यात्रा करनी पड़ती थी। रोपड़ में सतलुज में स्नान किया। एक आने का इलायची दाना खाकर, पानी पीकर फिर रेल में सवार होकर कुराली उतरे। वहां ज्यो० मकुन्द वल्लभ के घर भोजन किया। ज्योतिषी जी ने अतीव स्नेह-पूर्वक आतिथ्य किया। ज्योतिषी जी और पूज्यपाद जी के परस्पर सम्बन्ध बहुत वर्षों तक काफी स्नेह सहानभूति और सम्मान देने वाले बने रहे। परन्तु अन्त में ज्योतिषी जी ने न जाने क्यों एक ऐसा काम किया जिसे पूज्यपाद जी ने विश्वासघात समझा। आगे उसका वर्णन किया जाएगा। **वहां गोपाल शास्त्री** से परिचय हो गया। २९-४ को नियमानुसार प्रदोषव्रत का पालन किया। उस समय कुराली में तीन चार सहस्र घर थे, उनमें ब्राह्मणों के घर दो ढाई सौ थे।

३० अप्रैल को मकुन्द वल्लभ के शिष्य **पं० हरदेव** के साथ परिचय हुआ। वे मूलतः राजस्थान के उदयपुर प्रदेश के निवासी गुज्जर गौड ब्राह्मण हैं। आगे कई वर्ष इस **हरदेव शर्मा त्रिवेदी को** पूज्यपाद जी से काफी सम्पर्क रहा उनसे इन्हें काफी सहायता और प्रोत्साहन भी मिलता रहा और अनेकों वर्ष वे पूज्यपाद जी के द्वारा स्थापित **श्री स्वाध्याय** सदन को सोलन में चलाते रहे और उनके द्वारा प्रचालित "**श्री स्वाध्याय**" नाम की पत्रिका का सम्पादन भी करते रहे। परन्तु अन्ततोगत्वा उन्होंने भी स्वार्थवश होकर अत्यन्त कृतघ्नतापूर्वक बड़ा ही विश्वासघात किया। उसका वर्णन भी उचित स्थान पर किया जाएगा। मुकुन्द वल्लभ के यहां एक रेल कर्मचारी **हसनलाल** से भी बातचीत हुई। १-५ को वहां **पं० अयोध्याराम** की दुकान को और घर को देखा। वे स्वयं और उनका पुत्र

आर्यानन्द दोनों अच्छे सज्जन प्रतीत हुए। २ मई को प्रात: भोजन आर्यानन्द के घर किया। और रात को ज्यो० मकुन्द वल्लभ के यहां। वहां अमृतसर के एक अन्धे शास्त्री **हरभानु** के साथ परिचय हो गया। ३-५ को हरदेव के घर भोजन करके चले। मकुन्द वल्लभ ने एक रुपए छ: आने का जूता खरीद कर दिया और एक रुपय्या दो आने नकद भी दिए। ३-५ को हरदेव के घर भोजन करके चले। मोटर द्वारा चण्डी आए, वहां से रेल द्वारा कालका पहुंचे। वहां से पैदल साढ़े सात मील चलकर **जाबली** पहुंचे। वहां एक दुकान में सोए। ४-५ को पैदल साढ़े छ: मील चलकर **धर्मपुर** पहुंच गए। वहां से पौने दो मील चलकर **'जभाचा'** नामक एक स्थान पर पहुंच गए। वहां पहुंचते ही एक ब्राह्मण ने बड़ा दुर्व्यवहार किया। परन्तु एक और ब्राह्मण ने शर्बत पिलाया। एक ब्राह्मणी ने सत्तू खिलाए। वैसे इधर अधिकांशत: दुष्ट लोग ही पाये। एक वृक्ष की छाया में काफी देर बैठे रहे। फिर पैदल चलकर **सपाटू** पहुंच गए। एक मन्दिर में रात को ठहरे। खाया कुछ नहीं। धर्मपुर से सपाटू नौ मील है। ५-५ को स्नान आदि के अनन्तर जि० अम्वाला के एक पण्डित **परमानन्द मिले। उसके आग्रह से भांग पी ली।** सपाटू बाज़ार देखा। सात पैसे की बर्फी खाई। फिर एक मन्दिर में बैठे। वहां किसी ने सागपूड़ी लाकर लिखा दी। सायं एक ठाकुरद्वारे में वही महानुभाव पूज्यपाद जी के लिए बिस्तर ले आया। वह स्थान एक ब्राह्मण आसाराम का है। श्रीराम, हनुमान, शिवजी का मन्दिर भी वहां है। आसाराम के नौकर **रामरखा ब्राह्मण** ने बड़ा प्रेमपूर्ण व्यवहार किया। भोजन निवास रात को वहीं किया। इसी पहाड़ी के ऊपर उसका घर था। अगले दिन भी उधर ही ठहरे। रामरखा ने स्नेहपूर्वक सेवा की। १४ मई तक उधर ही रहे और रामरखा बड़ी सेवा करता रहा। १४ मई को प्रदोषव्रत तथा पारायण नियमानुसार वहीं किया। उस रोज़ रामरखा का मामा डी. बी. मिडलस्कूल का अध्यापक **पं० बुद्धिराम** आया। वह चावल, गाय का दूध, घी और शक्कर लाया था। खीर बनी और व्रत का पारायण हुआ। बुद्धिराम से काफी बातें हुईं। शेराठाणा से प० बद्रीदत्त का पत्र आया। १५-५ को वहां से चले। रामरखा ने बारह आने दिए। टांगे से धर्मपुर आ गए। वहां पेड़े और दही खाया। वहां से रेल द्वारा शिमला आ गए। वहां से पैदल आठ मील चल कर कोटी पहुंचे। वहां कोटी वालों के सभी लोग मेले में गए थे। अत: रात को एक ठाकुरद्वारे में ठहरे। वहां के पुजारी ने घी में भुना हुआ और चीनी से मिश्रित आटा खिलाया। **कोटी ४४ वर्गमील की स्टेट** थी। शिमले को बसाते समय आधी भूमि इसी स्टेट से ली गई थी। राज्य की आय डेढ़ लाख से ऊपर थी। शासक को **"राणा साहिब"** कहा जाता था। वे एक सनातनी विचारों के धर्मनिष्ठ राजा थे। आयु तब ७५ वर्ष की थी। १६-५ को प्रात: झरने पर स्नान किया। मन्दिर में पुजारी के पास भोजन किया। दो

बजे कोटी के युवराज टीका साहिब का पत्र मिला। साथ मुंशी शरणदास आए। उनका पुत्र आकर अपने डेरे ले गया। मुंशी जी ने बड़ा प्रेमपूर्ण व्यवहार किया। वहां कूर्माचली **ब्राह्मण पण्डित भीमादत्त** जोशी से भी परिचय हो गया। वे ही टीका साहिब का पत्र लाए थे। वे वहां के राजगुरु थे। आयु २६ वर्ष की थी। उस दिन से काफी समय तक पूज्यपाद जी की बड़ी सेवा होती रही। राजा के अतिथि के रूप में सर्वत्र बड़ा सम्मान होता रहा। परन्तु आगे कुछ लोगों के हृदय में ईर्ष्या का भाव भी उदित होकर बढ़ता गया। राजप्रासादों में प्रायः ऐसा हुआ ही करता है। १७-५ को राणा साहिब से मिलने का प्रोग्राम बनने लगा। पं० भीमादत्त जोशी ने राणा साहिब को भेंट करने के लिए आध सेर मिश्री ला दी। **आत्माराम** मिश्र भी वहां आए थे। वे लाहौर के ओरियण्टल कालेज के प्रोफेसर श्री हरिचरण शास्त्री के पुत्र और मुंशी शरण दास के भागिनेय (भांजे) थे। पूज्यपाद जी ने राणा साहिब के प्रति आशीर्वादात्मक **पांच श्लोकों की एक प्रशस्ति लिख** डाली। उसकी प्रतिलिपि आत्माराम मिश्र ले गया। राणा साहिब से मिलने का प्रोग्राम २०-५ को निश्चित हो गया। १८ को भोजन करके घोड़े पर शिमला गए। घोड़ा जयसिंह ठीकेदार का था। साथ मुंशी शरणदास और उनका भतीजा भी थे। शिमला देखा। एक 'नाज़र' के यहां गए। उनसे खूब बातचीत हुई। फिर कैलास जाने वाली यात्रा का पता किया। ऐसा विदित हुआ कि यात्रियों की पार्टी १० मई को चली गई है। अतः उस यात्रा का विचार छोड़ देना पड़ा। दो मील चलकर **सञ्जोली** गए। वहां टीका साहब से भेंट हुई। उन्होंने बड़ा सद्व्यवहार किया। सम्मानपूर्वक दूध पीकर रिक्शा से **मशोबरा** गए। वहां भद्रकाली के दर्शन किए। फिर दो मील चलकर **'कयार'** पहुँचे जहां मुन्शी शरण दास रहा करते थे। वे उसी दिन कांगड़ा को चले और पूज्यपाद जी को पांच रुपए देते गए। १९-५ को टीका साहिब से मिले। पं० वासुदेव से खूब बातें हुईं। एक शास्त्रार्थी उदासी साधु भी मिला। उनसे परिचय मात्र हुआ। २०-५ को प्रातः कृत्य करके राणासाहिब के दरबार में गए। भोजन के अनन्तर उन्होंने बुलाया। उनको यज्ञोपवीत, मिश्री और पांच श्लोकों वाली प्रशस्ति भेंट की। वहां दो घण्टे बैठे रहे। श्लोकों को देख कर राणा साहिब ने इतना ही कहा "वाह, बहुत उमदा"। पं० वासुदेव भी साथ साथ "बहुत अच्छा" ऐसा कहते रहे। राणा साहिब विशेष विद्वान नहीं थे। परन्तु साधारण संस्कृत जानते थे। रात को टीका साहिब के यहां गाना सुना, भोजन किया और निवास मुन्शी जी के डेरे पर 'क्यार' में। रात को पं० भीमादत्त के पास भी गए। वहां भी गाना सुना। २१-५ को टीका साहिब की कोठी में सितार सुनी, भोजन किया। फिर सायं को जादू खेल देखा। रात को टीका साहब से काफी बातें हुईं। कई पुस्तकों के नाम और पते उन्हें लिखा दिए। भोजन और रात्रि निवास प्रायः मुन्शी जी के

डेरे में ही करते रहे। इसी तरह से राजकीय आदर सत्कारपूर्वक सेवा पाते हुए वहां ७ **अगस्त** तक रहे। आस पास के स्थानों के दृश्य देखते रहे। देव स्थानों के दर्शन करते रहे। राजकीय विनोदों का भी अनुभव करते रहे। परन्तु टीका साहिब जो अपूर्व सम्मान उन्हें दिया करते थे उससे कई एक सज्जनों के भी हृदय में ईर्ष्या होने लगी और धीरे धीरे बढ़ती भी गई। पश्चात् स्पष्टतया प्रकट भी होने लगी। प्रायः राजदरबारों में ऐसा हुआ ही करता है। भोजन निवास प्रायः या तो मुन्शी शरणदास के डेरे पर करते रहे या पं० भीमादत्त के यहाँ। २४-५ को पं० वासुदेव से बहुत बातें हुईं। उनसे ऐसा प्रतीत हुआ कि उनके हृदय में ईर्ष्या का सञ्चार होने लगा है। २६-५ को कुमार दीवान सिंह से भेंट हुई। पूज्य-पाद जी को आज ऐसा प्रतीत हुआ कि पं० वासुदेव जी उनका वहां रहना हृदय से नहीं चाहते हैं। २७ को मुन्शी जी के तीनों लड़के रामनाथ, अमरनाथ, और मदनलाल अपने घर कांगड़ा चले गए। अतः पूज्यपाद जी भोजन और निवास पं० भीमादत्त के यहां करने लगे। सायं 'कयार' से शिमला गए, साथ पं० भीमा-दत्त थे। रात को शाकली में टीका साहिब की कोठी में ठहरे। टीका साहिब भी मिले। फिर काली बाड़ी में देवी के दर्शन किए। साथ पं० भीमादत्त और टीका साहिब थे। रात को साढ़े ग्यारह बजे ब्राड़ी में आकर थाने में सोए। साथ पं० भीमादत्त भी थे। टीका साहिब शाकली गए। २८ को निर्जला एकादशी थी। दूध और फल खाए। टीका साहिब बराडी में मिले। रहने के लिए बहुत आग्रह करते रहे। फिर शिमला के इम्पीरियल होटल में गाना सुना। तदनन्तर शाकली गए। टीका साहिब वहां नहीं थे। आज कुंवर मङ्गल सिंह और कुंवर शङ्कर सिंह से बातचीत हुई। कुंवर रुद्र सिंह से पहले ही कांगड़े में परिचय हो गया था। रात को टाकी सिनेमा देखा। फिर बराडी में आकर रात को ठहरे। २९-५ को प्रदोषव्रत नियमानुसार हुआ। ९-६ को श्रीनगर से श्रीकण्ठ नेहरू का पत्र आया। ११-६ को पं० जय वल्लभ जोशी के घर गए। वे कूर्माचली ब्राह्मण थे। १२-६ को पं० जीवानन्द जोशी के यहां गए। फिर पं० प्रेमवल्लभ तिवारी के डेरे पर भी गए। दोनों कूर्माचली ब्राह्मण थे। उस दिन प्रातः मुंशी शरणदास के पुत्र रामनाथ ने दूध लाकर पिलाया। १३ को प्रदोषव्रत पारण पं० भीमादत्त के यहां। १४ को कश्मीर से **साधु सर्वानन्द का** पत्र आया। १५-६ को टीका साहिब के साथ उनकी बागीची देखने गए। एक बीकानेरी ब्राह्मण कविराज से भेंट हुई। १९-६ को एक सीलोनी **सोनार दन्तनारायण** से भेंट हुई। २०-६ को घोड़ों की रेस देखने गए। भोजन दोनों समय टीका साहिब के पास किया। रेस में टीका साहिब का ही घोड़ा (गोलडन) प्रथम आया। आज दन्त नारायण की दुकान पर घंटे भर बैठे। निवास शाकली में किया। २१-६ को झाखू देख आए। २२-६ को भोजन कुंवर भरतसिंह के घर, निवास कोटी

हाउस शाकली में पं० भीमादत्त के साथ। आज टीका साहिब क्यार चले गए। २४-६ को प्रात: पं० भीमादत्त के यहां और रात को कुंवर भरतसिंह के घर में भोजन किया। सायं पं० जोगेश्वर दत्त जोशी आया। इसके आग्रह से रात्रि भोजन और निवास उसके यहां बराडी में किया। वह भी आदत्त जोशी का बहनोई था। २७-६ को प्रदोष व्रत का पारण भीमादत्त के घर हुआ। प्रात: पैदल क्यार गए। वहां टीका साहिब से मिले। वे उस दिन बहुत ज्यादा स्नेह प्रदर्शन करते रहे। साथ भीमादत्त भी थे। मुंशी शरणदास के यहां भी गए। ठाणा से पं० बद्री दत्त के पुत्र का पत्र आया। रात को मरासी का गाना सुना।

ऐसा प्रतीत होता है कि शिमला में रहते हुए पूज्यपाद जी ने **सोलन के राजा श्री दुर्गासिंह** की प्रशंसा सुनी होगी। वे बड़े धर्मात्मा सज्जन थे और एक आदर्श राजपूत थे। फिर वहां मेला भी लगने वाला था। तभी तो पूज्यपादजी शिमला से चलकर तीन दिनों में सोलन का चक्कर लगा आए। तदनुसार वे २८-६ को प्रातः शाकली से पैदल चले। स्टेशन पर पहुंचकर सोलन का टिकट ले लिया। वहां पहुंच कर पं० **जमुना दत्त** पाण्डेय के घर ठहरे। वे भी एक कूर्माचलीय ब्राह्मण थे। उनके नाम पं० भीमादत्त जी ने चिट्ठी लिखकर दे दी थी। सोलन में उन्हें **पं० भूपराम वैद्य,** कुंवर दीवानसिंह, तथा मुंशी शरणदास का पुत्र रामनाथ भी मिले। वहां पूज्यपाद जी ने भगवती **शूलिनी देवी** के दर्शन किए। मेला भी देखा। दंगल-कुश्ती भी देखी। टिकट के दो रुपए दीवानसिंह ने दिए। रात को वे ही टिकट लेकर ड्रामा देखने भी ले गए। एक रुपया फलों के लिए भी दिया। रात्रि निवास और भोजन पं० जमना दत्त पाण्डेय के यहां किया। 'सीदा' सरकार की ओर से आया था। २९-६ को रामनाथ और दीवान सिंह शिमला चले गए। पूज्यपाद जी सोलन ही ठहरे। भोजन पूर्ववत् पं० जमुनादत्त के घर किया। राय आत्मा राम से परिचय हुआ। फिर सोलन के शासक राजा साहब दुर्गासिंह के पास गए। साथ पं० भूपराम थे। आर्या छन्द में **चार पद्य** लिखे थे। आशीर्वादात्मक प्रशस्ति के रूप में। वह उन्हें भेंट कर दिए। वे संस्कृत जानते नहीं थे। उनके साथ कोई विशेष बातचीत नहीं हुई। उन्होंने केवल हालचाल ही पूछा—कहां रहते हैं, क्या करते हैं, निर्वाह का साधन क्या है इत्यादि। फिर पं० भूपराम के साथ मेहता **ज्वाला राम के** घर गए। वह राजा साहब की माता का दूध भाई था। ३०-६ को भी भोजन और निवास पं० जमुना दत्त के यहां पूर्ववत् किया। ज्वालाराम के यहां भी गए पं० भूपराम जी के साथ। वे कुछ दिन और रुकने के लिए आग्रह करते रहे। वस्तुत: राजा साहब ने उन्हें पूज्यपाद जी को कुछ समय रुक जाने के लिए आग्रह करने का आदेश दिया था। उनके यहां एक अच्छे विद्वान पं० **मथुरा प्रसाद दीक्षित** थे जो उस समय सोलन में नहीं थे। राजा साहब चाहते थे कि पूज्यपाद जी तब तक सोलन में ही रुकें जब तक पं० मथुरा प्रसाद आ जाएं। तदनन्तर वे

उन दोनों दिद्वानों का परस्पर शास्त्रार्थ करवाना चाहते थे और इस बात की परीक्षा करवाना चाहते थे कि पूज्यपाद जी कितने बड़े विद्वान् हैं। पूज्यपाद जी को वैसी बातों में कोई दिलचस्पी नहीं थी। १-७ को प्रातःकाल ही रेल के द्वारा पूज्यपादजी शिमला लौट आए। और शाकली में कोटी हाऊस में ठहरे। भोजन भीमादत्त के यहां किया। भरतसिंह के घर भी गए। २-७ को क्यार आ गए। पं० भीमादत्त के पास ठहरे। टीका साहब से भी मिले। ३ और ४ जुलाई को भी पं० भीमादत्त के ही यहां रहे। ४-७ को पं० वासुवेव का ईर्ष्याभाव और अभिव्यक्त होने लगा. टीका साहब के साले के साथ परिचय हुआ। वे ठयोग के निवासी थे। पूज्यपादजी ७ अगस्त तक शिमला के आसपास इसी तरह घूमते रहे। भोजन प्रायः पं० भीमादत्त के ही निवास पर करते रहे। कभी कभी टीका साहब के यहां भी ठहरते रहे। किसी किसी दिन अन्यत्र भी कोई आग्रह से भोजन खाने ले जाता रहा। परन्तु उन्हें यह अनुभव हुआ कि राज प्रासादों में सम्मान प्राप्त करते रहना अच्छा नहीं होता है; क्योंकि अकारण ही लोगों के हृदय में ईर्ष्या के भाव उदित होते हैं और बढ़ते जाते हैं। अतः उन्होंने इस राज सम्मान को छोड़कर वहां से चलने ही का निश्चय किया, यद्यपि टीका साहब बड़े प्रेम से रुकने के लिए लगातार आग्रह करते रहे। फिर ८ अगस्त को वहां से चल ही पड़े।

इस बीच में ४-७ को ठयोग के टीका साहब मिलने आए। वे कोटी के टीका साहिब के साले थे। ५-७ को पं० भीमादत्त के बहनोई पं० जोगीश्वर दत्त जोशी मिलने आए थे। ६-७ को पं० मुकुन्द वल्लभ (कुराली) का भेजा हुआ १५ रुपये का मनीआर्डर मिला। १०-७ को कोटी हाउस में भोजन अपने हाथ से पकाकर खाया। १२-७ को टीका साहब के साथ "परशुराम" नाटक देखा। १३-७ को पं० जय वल्लभ ने सुनाया कि पं० वासुदेव पूज्यपाद जी के किसी व्यवहार पर चिढ़ गए हैं और अभियोग (मुकद्दमा) करने की सोच रहे हैं। उस दिन टीका साहिब के साथ घोड़े पर सञ्जोली गए। १४-७ को पं० वासुदेव के विषय में टीका साहिब से बात हुई। उन्होंने कहा कि जाने दीजिए। १५-७ को पुनः घोड़े की सवारी से सञ्जोली आए। वहां से रिक्शा गाड़ी के द्वारा 'क्यार' गए। टीका साहिब साथ थे। वासुदेव जी का व्यवहार और रूखा हो गया। टीका साहिब के सामने उन्होंने शिकायत कर ही दी। बहुत विवाद किया। सुनने वाले टीका साहिब के साथ पं० जयवल्लभ, वकील देवीसिंह, सोमदास, परसराम, अनन्तराम आदि भी थे। विजय पूज्यपाद जी की ही हुई। वासुदेवजी की रूखाई गई नहीं। १०-७ को ऐसा प्रतीत हुआ कि प० वासुदेव का व्यवहार सुधरने लगा है। परन्तु आगे पुनः बिगड़ता ही गया। १७-७ को पं० भीमदत्त की माता देवप्रयाग से घर पहुंच गई। २१-७ को कानूनगो पं० मोलकराम का पुत्र पूज्यपादजी को अपने घर ले गया। दूध पिलाया और आम खिलाया। कूर्माचली पण्डित देवीदत्त जोशी से

परिचय हो गया। पालमपुर के रहने वाले पं० सोहन बड़ुआ से भी जान पहचान हो गई। २४-७-३१ को पूज्यपादजी के जीवन के अठाईस वर्ष पूरे हो गए। उन्होंने लिखा है कि "सांसारिक कोई भी सुख नहीं मिला। आगे जैसा प्रारब्ध" इससे यह प्रतीत होता है कि उस राज सम्मान को भी उन्होंने सुख नहीं समझा। २५-७ को एकादशी के दिन उपवास किया। केवल फलाहार किया। पं० वासुदेवजी के हृदय में जलती हुई ईर्ष्या की अग्नि आज भी प्रकट होती रही। ओरियण्टल कालेज लाहौर के प्रोफेसर हरिचरण शास्त्री का पुत्र **पं० अम्बिका चरन** मिलने को आया। २६-७ को तो पं० वासुदेव का व्यवहार और भी रूखा होने लगा। ३-८ को कूर्माचली ब्राह्मण जय वल्लभ और पं० तारादत्त पुरोहित तथा टीका साहिब के साथ शिमला गए। जय वल्लभ ने बहुत बुरा व्यवहार किया। उससे पूज्यपादजी ने मन में यह निश्चय कर लिया कि अब यहां ठहरना ठीक नहीं है। रात को **'आदर्श मित्र'** नाटक देखा। दो बजे रात लौटे। निवास कोटी हाउस में किया। ४-८ को भरतसिंह ने भी बुरा व्यवहार किया। उससे वहां न रहने का निश्चय और भी पक्का हो गया। ६-८ को दिन का भोजन पं० प्रेम वल्लभ तिवाड़ी के यहां और रात का पं० भीमादत्त के यहां किया। शाकली से प्रातःकाल ही क्यार आ गए थे। ७-८ को माता के श्राद्ध दिन पर कुछ भी तर्पण दान आदि नहीं किया, कारण यह कि किसी को उनके प्राक्तन जीवन वृत्त का कुछ भी पता न लगे।

८ अगस्त को प्रातः उठकर सड़क के रास्ते से ११ मील चलकर 'जणगा' गए। वह स्थान **'क्यौंथल' स्टेट** की राजधानी थी। वहां एक मिडल स्कूल, एक चिकित्सालय और एक पाठशाला थी। पूज्यपाद जी पाठशाला के पण्डित अम्बिका चरन के पास ठहरे। वे वैद्यनाथ के समीप स्थित पेपरोला के रहने वाले थे। १०-८ को राजपण्डित राघवानन्द के बुलाने पर उनके यहां गए। आडम्बरी दीख पड़े। ११-८ को प्रदोषव्रत का पारायण अम्बिकाचरन के यहां किया। १३-८ को पुराने जुणगा में एक बंगली सन्न्यासी से भेंट हुई। १४-८ को वहां से **मणिकर्ण तीर्थ** की यात्रा करने के सङ्कल्प से आगे आगे चलते रहे। यह यात्रा अतीव कष्टों से भरी रही। मार्ग में कहीं कहीं ही लोगों से थोड़ा थोड़ा आतिथ्य मिला। कई बार इलायची दाना और पानी पर निर्वाह करना पड़ा। वस्तुतः वह प्रदेश उस युग में अत्यन्त दरिद्रता का मारा प्रदेश था। वहां शिक्षा का भी अभाव था। उधर की भूमि भी पहाड़ी ढलानों और घाटियों तथा पर्वतों से भरी है। हरे भरे क्षेत्र बहुत थोड़े हैं। मैदानी प्रदेशों वाले संस्कार भी लोगों में नहीं थे। फिर उस यात्रा में वापसी पर पूज्यपादजी जी को चातुर्थिक ज्वर ने भी बहुत ही कष्ट दिया। इन सभी कारणों से वह यात्रा अत्यन्त कष्टमयी ही बनी रही। तब तक कष्ट समाप्त नहीं हुए जब तक वे लौटकर पुनः वैजनाथ नहीं पहुंचे।। १४ अगस्त

१९३१ को वे पं० अम्बिकाचरण के पास भोजन करके पैदल चलकर **चायल** (**चैल**) पहुंचे। वहां महाराज पटियाला का एक प्रासाद है। जंगली मार्ग से १० मील चलना पड़ा। तब वहां ठाकुरद्वारे में ठहरे। पटियाले के राजपण्डित मुकुन्द झा का लड़का वहां रहा करता था। परन्तु उस समय कहीं बाहिर गया था। अतः भेंट नहीं हो सकी। १५-८ को उठकर साढ़े ग्यारह मील चलकर **'मुण्डा'** पहुंचे। दो पैसे की चीनी खाकर पानी पिया। फिर वहां के दुकानदार पं० दीनानाथ ने रोटी खिलाई। रात को भी खिलाई। निवास एक ब्रह्मचारी की धूनी पर किया। १६-८ को वहां से पैदल तेरह चौदह मील चलकर **कुफरी** होते हुए **ठयोग** पहुंच गए। वहां एक सूद दुकानदार ने भोजन को कहा। तो उन्होंने स्नान आदि करके पक्का भोजन खाया। फिर उस सूद के साथ 'बलोय' में एक महात्मा के दर्शन किए। महात्मा कोई बंगाली परमहंस थे। १७-८ को 'ठयोग' से २२ मील चल कर **'नारकण्डा'** पहुंचे। एक आने का अलायची-दाना खाया। रात को एक सराय में ठहरे। बहुत ठण्ड थी। नींद नहीं आई। खाना भी नहीं खाया। १८-८ को १५ मील पैदल चलकर साढ़े दस बजे **"नौला"** पहुंचे। स्नान किया एक आने का अलायची दाने लेकर खाए। वहां एक दुर्गा मन्दिर था। उसके बाहर वाले बरामदे में ठहरे। दो पैसे की किशमिश और तीन पैसे की मिश्री लेकर खाई। रात को अम्बाला के एक लाला दुकानदार के ब्राह्मण नौकर ने रोटी ले आकर खिला दी। उसने पीछे कभी सिरमौर स्टेट मे 'क्लो' में पूज्यपादजी को देखा था। उसका नाम 'सरदाराम' था। यहां उसने पहचान लिया। पूज्यपाद जी ने उसे नहीं पहचाना। रात को दुकान की एक चौकी पर सोये। यह यात्रा उतराई वाली थी। १९-८ को लाला के आग्रह से वहीं रुके। परन्तु उनका दामाद और उनकी लड़की के उधर आने पर परस्पर बहुत कलह हुआ। समझौता होने पर पूज्यपादजी ने भोजन वहीं किया। मन्दिर के खुले बरामदे में सोये। रात को खूब वर्षा हुई। २०-८ को भी वर्षा लगी रही। अतः उधर ही रुक गए। भोजन लाला के घर किया। सोये मन्दिर के बरामदे में। वहां एक वृद्ध ब्राह्मण ब्रह्मचारी आया। उसे पूज्यपादजी ने दो पैसे दे दिए। रात को उसके पैर भी रगड़ दिए। २१-८ को लाला की जन्मपत्री देखी। उसने थोड़ी सी मिश्री दे दी। नाम **उसका गोपाल** दास था। भोजन उसी के पास किया। एक दुकानदार ने बुलाकर सेब खिलाए। आज भी ब्रह्मचारी के पैर रगड़ दिए। लाला ने पूज्यपाद जी के बाल भी काट दिए। २४-८ को साढ़े दस मील चलकर **'बटाली'** पहुंचे। वहां शिव मन्दिर में बैठे। मार्ग में दो दो पैसे के छुहारे और अलायची दाना खाकर निर्वाह किया। मन्दिर में घण्टे भर बैठे रहे। पुजारी एक ब्रह्मचारी था। उसने पूछा भी नहीं। ताला लगाकर कहीं चला गया। पूज्यपाद जी भी उठकर चले। ११ मील चलकर **'सराहान्'** पहुंचे। वहीं तीन पैसे का दूध और डेढ़ आने की जलेबी लेकर खाई। रात को पुजारी ने साग

रोटी लाकर खिला दी। सोये नृसिंह मन्दिर में ही। पुजारी ने एक लोई लाकर दे दी। २५-८ को प्रदोष व्रत था। मौन रहे। एक ब्राह्मण कुछ सेब दे गया। उन्हें खाया। रात को एक दाना चावल पर पारायण किया। आगे २८-८ तक वहीं रहे। भोजन पुजारी केशवराम खिलाता रहा। निवास नृसिंह मन्दिर में करते रहे। रजाई पुजारी ले आया था। सामने भी मां काली का मन्दिर है जो रामपुर के राजा का है। बाहरी आदमी को वहां मन्दिर के दर्शन नहीं कराते। बुशहर का राजा छः महीने यहां रहता है और छः महीने रामपुर में। भीमाकाली देवी के नाम पर काफी मुआफी है। परन्तु प्रायः साधुओं और ब्राह्मणों का उचित सम्मान नहीं होता है। २६-८ को एक उदासी साधु मिला जो पीछे क्यार (कोटी) में भी मिला था। वहां उसकी दाल गली नहीं थी परन्तु यहां उसे परमहंस और विद्वान् माना जाता था। यहां राजपण्डित चन्द्रमणि भट्ट भी आये। उसने पूज्यपाद जी से बस इतना पूछा—"यहां कहां से आए, कब आए, कौन होते हो, राजा साहब के पास रिपोर्ट की।" उसकी वाणी से रूखापन टपक रहा था। २७-८ को स्वास्थ्य कुछ ढीला रहा। **लीलानन्द नाम** का एक गढ़वाली पण्डित मिला। उसने तर्कशास्त्र के कुछ ग्रन्थ पास रखे थे। था शुष्क तार्किक और बड़ा अभिमानी और शास्त्रार्थ करने की इच्छा वाला। २८-८ को उसके पास भोजन किया। राजा की ओर से आटा, गुड़ और एक रुपय्या आया, परन्तु उसे लौटा ही दिया।

२९-८ को पैदल १० मील चलकर 'बटाली' पहुंचे। एक शिव मन्दिर में ठहरे। वहां एक बैरागी ने विशेष मोटे और खूब नमक मिरिच वाले ऐसे टिकड़ बना दिए जिसमें से पूज्यपाद जी एक से अधिक नहीं खा सके। वहां एक ब्रह्मचारी भी था। उसने बात तक नहीं की। वहां से पैदल चलकर सायं रामपुर पहुंचे। श्मशान के पास एक जगह रात को सोए। मार्ग में दो पैसे के अलायची दाने जो लिए थे, वे ही खाए। ३०-८ को प्रातः उठकर सतलुज में नहाकर, नदी को पार करके साढ़े पांच मील की चढ़ाई चढ़कर एक दुकान से मिश्री और काली मिरिच लेकर और खाकर आधा सेर छाछ पीकर, सवा दो मील चलकर अम्बाला जिले के एक बनिए दुकानदार के पास अपने हाथ से खिचड़ी बनाकर खाई। विश्राम करके साढ़े सात मील पैदल चलकर **'सिरहान्'** नाम के पड़ाव पर पहुंचे। साढ़े तीन मील चढ़ाई चढ़नी पड़ी। फिर एक मन्दिर के आंगन में ठहरे। रात को जोर की वर्षा हुई। बैठकर रात काटी। ३१-८ को प्रातः चलकर दो बजे दिन के **'बनजार'** पहुंचे। सिरहान् से वहां तक १९ मील चलना पड़ा। रास्ते में बड़ी मुश्किल से एक जगह दो पैसे के छुहारे और एक पैसे की रेवड़ी लेकर खाई। वहां से रामपुर चौंतीस मील है, कुल्लू बत्तीस मील है और शिमला नब्बे मील है (लूरी के मार्ग से)। वहां दो पैसे के आलू छोले, और दो पैसे की बर्फी लेकर खाई। रात भर **गुरुद्वारा** के बरामदे में निवास किया। १-९ को बनजार से साढ़े ग्यारह मील चल

कर '**गार्जो**' पहुंचे। स्नान आदि करके होटल पर आलू की पतली सब्जी और रोटी खाई। कुछ इलायची दाना और चीनी भी ली। फिर चलकर सायं "**औट**" पहुंचे। वहां शुपयान (कश्मीर) में मिला हुआ एक बूढ़ा ब्राह्मण मोतीराम बैरागी मिला। उसके आग्रह से एक रात एक दुकान में ठहरे। खाया कुछ नहीं। २-९ को प्रातः उठकर **१२** मील चलकर **भ्वन्तर** पहुंचे। वहां दो पैसे की मिश्री लेकर नाथ, बैरागी और पूज्यपादजी ने खाई। बैरागी और नाथ आगे चले। कुछ देर पश्चात् पूज्यपादजी भी चल पड़े। मार्ग में दो पैसे के चने और एक पैसे की मिश्री लेकर खाई। सायं वहां एक ब्रह्मचारी के स्थान पर पहुंचे। नाथ ने रोटी पकाई। और भी साधु इकट्ठे हो गए थे। सबने रोटी खाई। इस दिन २२ मील चले। भ्वन्तर से वहां तक १० मील हैं।

३ सितम्बर को प्रातः उठकर अकेले ११ मील चलकर **मणिकर्ण** पहुंचे। एक वृद्धा पण्डाइन के घर ठहरे। दो पैसे की मिश्री लेकर खाई। फिर वृद्धा ने दाल भात बाहर से लाकर खिलाया। १ पाव चावल की भात तीन पैसे की और दाल डेढ़ पैसे की। वृद्धा ने पैसे नहीं लिए। फिर नाथ और बैरागी भी आ गए। इनको पूज्यपाद जी ने दो आने दिए। **सायं नैनादेवी के मन्दिर** में आए। रात को वहीं सोए। नाथ और बैरागी भी वहीं सोए। ४-९ को जन्माष्टमी थी। उपवास किया। रात को दो आने के सेब लाकर तीनों ने खाए। निवास मन्दिर में किया। ५-९ को मणिकर्ण तीर्थ के तप्त जल में स्नान किया। एक पैसे की मिश्री और एक पैसे का इलायची दाना खाया। फिर वृद्धा के कहने से उसके घर आकर भोजन वहीं किया। वृद्धा कानपुर की रहने वाली एक कान्यकुब्ज ब्राह्मणी थी। उसने दो पैसे दक्षिणा दिए। भोजन के पश्चात् **तीव्र ज्वर आया**। शेष दिन और सारी रात बेहोशी जैसी स्थिति में सोए रहे। वृद्धा ने बिस्तरे का और ओढ़ने का प्रबन्ध कर दिया। रात को कुछ भी नहीं खाया पिया। ६-९ को स्नान आदि किया। फिर वृद्धा ने खिचड़ी बनाकर खिला दी। दो पैसे के सेब भी खाए। फिर ७ मील पैदल चलकर '**जरी**' पहुंचे। रात को सराय में रहे। बूढ़ा बैरागी वहां फिर मिला। रात को खाया कुछ नहीं। ७-९ को प्रातः स्नान आदि करके दो पैसे के चने और दो पैसे का इलायचीदाना खाकर पानी पिया। फिर तीन मील चलकर एक व्रज-वासी ब्रह्मचारी ब्राह्मण के डेरे पर पहुंचे। वहां एक टिक्कड़ खाया और पानी पिया। ग्यारह बजे दिन को फिर ठण्ड लगी और जोर का बुखार आया। साढ़े छः बजे सायं उतर गया। खाया कुछ नहीं। ब्रह्मचारी किसी गांव को चला गया और पूज्यपादजी वहां अकेले ही रहे। ८-९ को प्रातः शौच आदि से निवृत्त होकर चले। आधे मील पर एक दुकान पर से दो पैसे को मिश्री लेकर खाई। फिर चलकर भ्वन्तर पहुंच गये। वहां हलवाई की दुकान से पांच पैसे की जलेबी और तीन पैसे

का दूध लेकर भूख का शमन किया। दिन को बुखार थोड़ा सा आ ही गया। फिर मन्दिर के पास एक चबूतरे पर पड़े रहे। ब्रह्मचारी की कुटी से भ्वन्तर तक दस मील चले। फिर एक पैसे का दही और दो पैसे की खाण्ड लेकर खाई। वहां से चार बजे सायं चले। आठ मील चलकर कुलू पहुंच गए। रात एक मन्दिर में एक साधु की धूनी पर काट ली। उधर आते हुए मार्ग में कुंवर भरतसिंह मिला था और उसने पूज्यपाद जी को अपने ससुराल आने के लिए कहा था, परन्तु वे नहीं गये। सम्भवतः उनके पूर्व व्यवहार के कारण उसके ऐसे निमंत्रण को ठुकराया। बुखार तो सारा दिन थोड़ा थोड़ा रहा।

९-९ को भाद्रपद कृष्णपक्ष की द्वादशी, बुधवार, को उनका प्रदोषव्रत था। **इसी दिन वहां एक अत्यन्त सुविचित्र घटना घटी** :—कुलू में सुलतानपुर के छोर पर नदी के तट पर एक श्मशान था। तब उसके पास एक धर्मशाला थी। पूज्यपाद जी उसी धर्मशाला में एक कमरे में चटाई पर लेट गये। प्रातःकाल का समय था। तभी से इतने जोर का ज्वर चढ़ गया कि शरीर की कोई सुध-बुध नहीं रही। ऐसा प्रतीत हुआ कि वह तीव्र ज्वर प्राण ले ही लेगा। इतने में एक चमत्कार भरी दिव्य घटना इस तरह से घटी—

पूज्यपादजी चटाई के ऊपर पड़े हुए थे। सिर पश्चिम की ओर था और पैर पूर्व की ओर। दाईं ओर से अर्थात् दक्षिण दिशा से तीन दिव्य व्यक्ति आकर पास खड़े हो गये। उनके शरीर की आकृति अतीव सुन्दर थी। वर्ण गौर था। वेष अतीव भद्र और शोभायुक्त था। पैरों में जरी वाले जूते पहने थे। हाथों में ग्रन्थि रहित बांस की छोटी छोटी छड़ियां थीं। यद्यपि वे देखने में अतीव सौम्य तथा सुन्दर थे, फिर भी उन्हें देखते ही पूज्यपादजी को पता नहीं क्यों अतीव भय लगा। इतने में ही बाईं ओर उत्तर दिशा से आकर एक **"त्रिशूलधारी महापुरुष"** प्रकट होकर पास खड़ा हो गया। उसका वर्ण गन्दुमी था। जटाएं खूब लम्बी थीं। कद भी लम्बा था। मुखमंडल से अनुग्रहमयी कान्ति टपकती थी। उसके दूसरे हाथ में एक कमण्डलु था। उस सिद्धमहापुरुष ने पूज्यपादजी को अपने कमण्डलु का जल पिला दिया। जल का अमृत जैसा स्वाद था। फिर उसने पूज्यपादजी को **दिव्य "महामृत्युञ्जय मन्त्र"** का उपदेश देकर लगातार उसका जप करने को कहा। यह भी कहा कि मृत्यु से बचने के लिए इस मन्त्र से बढ़कर और कोई भी उपाय नहीं है। पूज्यपाद जी लेटे लेटे ही उस मन्त्र का मानस जप घंटों ही लगातार करते रहे। वे तीन दिव्य पुरुष और ये त्रिशूलधारी सिद्ध एक दूसरे को देखते ही रहे, परन्तु आपस में उन्होंने कोई वार्तालाप नहीं किया। सारा दिन चारों ही महानुभाव उसी तरह से खड़े रहे। सायं होने को था कि तीन दिव्य पुरुष दक्षिण की ओर तथा त्रिशूलधारी सिद्ध उत्तर को ओर बिना मुड़े ही सरकते सरकते अदृश्य हो गये। उनके अदृश्य

होने के पश्चात् थोड़ी ही देर में पूज्यपादजी ने ऐसा अनुभव किया कि उस प्राणान्तकारी ज्वर से उन्हें मुक्ति मिल गई है। तब तो ज्वर अकस्मात् ही एकदम उतर गया। वे उठे औ बाहिर जाकर एक पैसे के चावल, एक पैसे का दूध और दो पैसे की चीनी लेकर छटांक भर चावल खाकर और दूध पीकर प्रदोष व्रत का पारायण किया। इस दिव्य दर्शन को पूज्यपाद जी ने सुनाया भी है। अपनी दैनन्दिनी में संक्षेप से इसे लिख भी रखा है और पश्चात् जब वे हमारे घर कुलगाम में कुछ समय रहे तो मेरी प्रेरणा से उन्होंने सारी मणिकर्ण यात्रा को और इस दिव्य घटना को लेकर के एक अतीव सुन्दर लघु काव्य का भी निर्माण किया। वह काव्य "**सञ्जीवनी दर्शनम्**" इस शीर्षक से प्रकाशित हुआ है।

१०-६ को प्रातः उठकर वहां से पैदल चलकर पुनः भ्वन्तर आ गए। मार्ग में एक पैसे का मुनक्का लेकर खाया। फिर भ्वन्तर में छः पैसे की बर्फी और तीन पैसे का दही लेकर खाया। फिर चलकर सायं "**औट**" पहुंचे। कुल १६ मील चले। पैरों में जती भी नहीं थी। वहां एक खत्री की दुकान की ऊपरली छत पर रात का निवास किया। रात को फुलके खाये। ११-६ को प्रातः १३ मील चल कर 'विडो' पड़ाव पर एक दुकानदार की ऊपर वाली छत पर आसन लगाया। उस दिन ठण्ड नहीं आई परन्तु बुखार आ ही गया। सायं पांच बजे उतर गया। रात को छ: पैसे की रोटी, चार पैसे का दूध, दो पैसे का मीठा लेकर खाया। रात भर दुकान में सोए। १२-६ को प्रातः साढ़े नौ मील चलकर एक ब्राह्मण की दुकान पर रोटी खाई। चार पैसे की रोटी, एक पैसे का पेड़ा, दो पैसे के छुहारे और एक पैसे की खाण्ड लेकर और खाकर कुछ विश्राम किया। फिर तीन मील चलकर '**मण्डी**' शहर पहुंचे। वहां पहले भूतनाथ मन्दिर में गये। परन्तु पानी की तकलीफ देखकर पार वाली पुरानी मण्डी में रात को एक मन्दिर में सोये। १३-६ को प्रातः ११ मील चलकर एक दुकान पर विश्राम किया। उस समय बुखार चढ़ रहा था। दुकानदार ने पानी तक नहीं दिया। लोग उधर के अत्यन्त निर्दय प्रतीत हुए। फिर चलकर एक पक्की बावली पर बैठे रहे। फिर सो गये और बुखार पूरा चढ़ गया। फिर तदनन्तर एक दुकान पर तीन पैसे का दूध मीठा पी लिया। फिर आगे दो पैसे के पेड़े, दो पैसे के छुहारे और दो पैसे का दूध लेकर निर्वाह किया। तदनन्तर पैदल चलकर सायं '**ओटला**' पहुंचे। वहां एक बन्द दुकान के बाहरी बरामदे में रात भरे सोये। वह जगह मण्डी से १३ मील दूर है। वहां पांच पैसे का आधा सेर दूध और एक पैसे का मीठा लेकर निर्वाह किया। १४-६ को चले ही थे कि वर्षा पड़ने लगी। तब एक दुकान में बैठ गये। कुछ देर बैठकर फिर चले और **जोगेन्द्र नगर** पहुंच कर हलवाई की दुकान से छ: पैसे की जलेबी और तीन पैसे का दूध लेकर खा पी लिया। साढ़े तीन बजे तक दुकान पर एक

खाट पर विश्राम किया। बुखार थोड़ा बहुत आ ही गया। चार बजे वहां से पैदल चलकर आठ बजे रात **बैजनाथ** पहुंच गये। वहां तारापुर में धर्मशाला में रहे। वहां एक मुसाफिर ब्राह्मण ने रात को भोजन खिलाया। वहां के साधु 'बेअन्त' ने पूज्य-पाद जी को नहीं पहचाना। उस दिन २६ मील की यात्रा की। इस तरह से मणि-कर्ण तीर्थ की यात्रा पूरी हो गई। १४ अगस्त को जुणगा से चले थे और १४ सितम्बर को बैजनाथ पहुंच गये। यह एक महीने की यात्रा अत्यन्त कष्टमयी बनी रही। शरीर भी तीव्र ज्वर से पीड़ित रहा। ज्वर के समय विश्राम करते रहे और ज्वर के उतरने पर पुनः पैदल चलते रहे। मार्ग में आतिथ्य भी प्रायः हुआ ही नहीं। अधिकांश लोगों ने निर्दयता का परिचय दिया। ज्वर ने यात्रा को और भी कष्टकर बनाया। अनेकों बार बिना भोजन के रातें काटनी पड़ीं। बहुत बार अलायची दाना या मिश्री और पानी पर ही निर्वाह करना पड़ा। रातें कई बार बिना बिस्तर के काटनी पड़ीं। वह युग अत्यन्त सस्तेपन का था। इस कारण थोड़े थोड़े पैसे व्यय करके निर्वाह बहुत बार करते रहे। फिर एक और कर्मफल चक्र ऐसा सामने आया कि एक दिन छोड़कर दूसरे दिन चढ़ने वाले भयानक ज्वर के समय विश्राम करके उसके उतर जाने पर फिर पैदल चलते रहे। इस तरह से इस यात्रा में बहुत शारीरिक कष्ट को सहना पड़ा और उन्हें पूज्यपादजी तटस्थ भाव से सहन करते रहे और आगे आगे चलते ही रहे। धैर्य को खोया नहीं और निराशा को घेरने नहीं दिया। प्रारब्ध के फल को स्वीकार करते हुए लगातार यात्रा करते रहे जब तक पुनः बैजनाथ पहुंच गये।

वस्तुतः वह सारा प्रदेश पर्वतों के ढलान का प्रदेश है। खुले मैदानों जैसी भूमि वहां है ही नहीं। अतः वह देश अत्यन्त दरिद्र था। छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था। उन राज्यों में शिक्षा का प्रबन्ध बहुत कम था। अतः लोग प्रायः अनपढ़ ही हुआ करते थे और अधिकांश अतीव दरिद्र थे। न तो वहां भगवती महालक्ष्मी की ही कोई कृपा दिखाई देती थी और न ही महासरस्वती की ही। अतः जनता प्रायः संस्कारहीन थी। इस कारण से अतिथि सेवा वहां प्रायः नहीं होती थी। परन्तु अब वे सारे ग्राम काफी धनाढच हो गये हैं। सर्वत्र शिक्षा संस्थान हैं। अतः लोग काफी सभ्य बने हैं। इसलिये अब वहां यात्री को वैसा कष्ट कहीं भी नहीं उठाना पड़ता है। यातायात के साधनों ने फलों की उपज ने और आलुओं की खेती ने उन सभी पर्वतीय ढलानों के निवासियों को काफ़ी धनाढच बना दिया है। १५-९-३१ को बैंजनाथ में प्रातः विनोदा नदी में स्नान करके धर्मशाला में आ गये। वहां पं० **दुर्गाप्रसाद** ने देखा और पहचान लिया। भोजन दिन को उसी ब्राह्मण के घर किया। फिर पं० दुर्गाप्रसाद के आग्रह से वहां से आसन उठाकर दूसरी कुटिया में लगाया। उस दिन बुखार नहीं आया परन्तु सिर भारी रहा और निर्बलता बहुत

प्रतीत हुई। रात को दुर्गाप्रसाद के भाई महेशानन्द ने घर से साग रोटी लाकर खिला दी। रात को वहीं सोये। आगे २२-६-३१ तक बैजनाथ में ही रहे। भोजन कभी दुर्गाप्रसाद के घर जाकर करते रहे, कभी महेशानन्द ले आया करता था। ब्रह्मचारी ज्वर की दवा भी देते रहे। कभी दूध के लिये भी पैसा देते रहे और बाजार से लेकर सेवन करते रहे। महीने भर के कष्ट क अनन्तर पुनः ऐसे स्थान पर रहने लगे जहां महापुरुष की महिमा जानने वाले लोग भी काफी थे और जहां समुचित सहानुभूति और सत्कार भी मिलता रहा। किसी किसी समय शान्तिकृष्ण अन्न-क्षेत्र में भी भोजन करते रहे। १६-६ को पं० माधव प्रसाद वज़ीर ने अगले रोज के लिए भोजन का निमन्त्रण दिया। परन्तु अगले दिन जब वहां से कोई बुलाने के लिए आया ही नहीं तो भोजन पुजारी महेशानन्द के पास ही किया। २१-६ को स्वामी तारानन्दजी आ गये और उनसे रात के ग्यारह बजे तक काफी बातें हुईं। पीछे शिमला में भी इनसे भेंट हुई थी। २२-६ को पुजारी के घर अशौच पड़ गया। अतः तारा भगवती और केदारनाथ शिव की प्रातः पूजा और सायंकाल की आरती पूज्यपादजी ने ही की। दिन को रोटी भी उन्होंने ही सब के लिए पका दी। स्वामी तारानन्दजी के साथ पुनः बातचीत हुई। सायं भोजन अन्न क्षेत्र में किया। २३-६ को भी मन्दिर में पूजा उन्होंने ही की। फिर स्वामी तारानन्द के साथ जम्मू कश्मीर के दीवान वश के पंजाबी खत्री के घर गये। भोजन वहीं किया। खत्री ने एक रुपय्या भी दिया। फिर बैजनाथ स्टेशन पर आकर टिकट लेकर रेल में सवार हुए और ढाई बजे नगरोटा पहुंच गये। वहां कुछ देर बैठे रहे। बर्फी और दही लेकर खाई। दूध भी पिया और सायं ठाणा बद्रीदत्त अवस्थी के घर आ गये। भोजन और रात्रि निवास वहीं किया।

२४-६ से लेकर ३१-१२ तक पूज्यपाद जी कांगड़ा मण्डल में ही रहे। अधिक समय ठाणें में रहे। कभी कभी नगरोटा, भवन, समलोटा, पठियार, अमुवाड़ी, कतनौर आदि ग्रामों में भी जाते रहे। चामुण्डा देवी, वज्रेश्वरी देवी, वीरभद्र नन्दिकेश्वर आदि के दर्शन भी करते रहे। इस प्रदेश में अनेकों ग्रामों में अनेकों सज्जनों से उनका पहले से ही परिचय हो गया था। फिर यहां गुणज्ञ लोगों की कोई कमी नहीं थी। अतः इस प्रदेश में पूज्यपादजी सुखपूर्वक और सम्मान-पूर्वक भ्रमण करते रहे। बहुत लोगों को उनके सान्निध्य से काफी लाभ भी होता रहा। उनके उपदेशों को भी सुनते रहे और उनसे पथ-प्रदर्शन लेते रहे। कई सज्जनों ने उनसे कुछ ग्रन्थ पढ़ भी लिये। नवरात्रों में दुर्गा सप्तशती की कथा भी लोग सुनते रहे। केवल एक कष्ट ही चलता रहा कि कभी कभी बुखार आता रहा। उस त्रिशूलधारी सिद्ध महापुरुष के प्रभाव से और महामृत्युञ्जय मन्त्र के जप के बल से उस प्राणान्तकारी ज्वर ने प्राण तो नहीं लिए परन्तु प्रायः आ आकर

शरीर को कष्ट देता ही रहा और उससे वे बहुत निर्बल हो गये। तथापि यह समय काफी सुख से बीता।

२४-९ को प्रदोषव्रत था। मौन रहे। सायं विधिवत् पारण पं० बद्रीदत्त के यहां किया। २५ को पठियार गये। भोजन रामा साव सूद के यहां किया और निवास पं० पद्मनाभ के घर। २६-९ को प्रातः चामुण्डा गये। साथ पं० पद्मनाभ तथा पं० बद्रीदत्त थे। खा पीकर पद्मनाभ पठियार गये और बद्रीदत्त ठाणा गये। पद्मनाभ रात को लौट आया। रात्रि को चन्द्रग्रहण था। बादल थे। ग्रहण दीखा नहीं। अन्दाजे से ही बाणगङ्गा में स्नान किया। रात को वहां एक लीलाधर नाम का कुमइया तिवाड़ी ब्राह्मण आया। वैद्य था। ३६ वर्ष की आयु का था। विवाह नहीं किया था। २७ को प्रातः ग्रहण छूटने का स्नान तथा दैनिक स्नान एक साथ किया। तीन पैसे ब्राह्मणों को दक्षिणा दे दी। फिर सन्ध्या वन्दन आदि करके पास के एक गांव को वैद्य और राजपुरे का विशनदास ले गये। वहां एक पूर्व परिचित सूद सहदेव के घर भोजन किया। वर्षा के कारण वहीं रुके। २८-९ को प्रातः वर्षा में ही लोई ओढ़कर ढाई मील चलकर **'बंगलोटी'** पहुंचे। वहां गोपा पण्डित के घर गये। वैद्य और विशनदास 'डाडे' को चले गये। वहां शौच स्नान आदि करके वहीं विश्राम किया। वर्षा लगी रही। अतः वहीं रुके। पं० कृपाराम कुईं वहां मिलने आये। दूसरे दिन गोपा पंडित के घर रहे। ३० को प्रातः उठकर शेरा ठाणा गये। चलते समय गोपा पंडित ने एक धोती, एक अंगोछा, एक जनेऊ और आठ आने दे दिये। सायं वैद्य लीलाधर तिवाड़ी भी उधर(ठाणे) आ गया। रात भर रहा। पूज्यपाद जी कई दिन उधर ही रहे। ६-१० को बडूं पुरोहित को तर्कसंग्रह पढ़ाना आरम्भ कर दिया। आगे कई दिन पढ़ाते रहे। ९-१० को प्रदोषव्रत हुआ। १०-१० को दोपहर के खाने के पश्चात् बुखार की हरारत मालूम पड़ी। १२ को 'बलधर' जाकर ठाणे लौट आये। वहां **शङ्कराचार्य कृत 'देवी मानसपूजा स्तोत्र" की व्याख्या को लिखना आरम्भ किया।** नवरात्रों का प्रारम्भ हो गया। पूज्यपादजी ने सप्तशती की कथा का प्रारम्भ कर दिया। कथा शनैः शनैः प्रतिदिन आगे आगे बढ़ती गयी। १३-१० को पूज्यपादजी ने दोपहर को रसोई स्वयं पकाई, आगे भी तीन दिन ऐसा ही किया। १७ को फिर बुखार आया। खाया नहीं। २०-१० को कथा समाप्त हो गई। पुस्तक पर कुल चार रुपये और पन्द्रह आने चढ़े। एक धोती, एक अंगोछा, और एक कपड़ा भी पं० बद्रीदत्त ने चढ़ाया। ज्वर भी रहा। २१-१० को भी ऐसा प्रतीत हुआ कि अब बुखार जीर्ण ज्वर के रूप को धारण कर गया है। २३-१० को प्रदोषव्रत नियमानुसार रखा। कुईं ने पुस्तक पर एक रुपय्या चढ़ाया। स्वास्थ्य काफी खराब मालूम हुआ। २९-१० को घूमने निकले तो काकू पंडित का लड़का आग्रहपूर्वक अपने घर ले गया। भोजन

निवास वहीं किया। अगले दिन भोजन के पश्चात् पं० बद्रीदत्त के यहां चले गये। १-११ को कोटी के युवराज और पं० भीमादत्त को पत्र लिखकर नत्थू पंडित के हाथ भेज दिये। २-११ को नयना देवी के दर्शन कर आये और ३-११ को चामुन्डा के। साथ वेदगर्भ था। ७-११ को प्रदोषव्रत का अनुष्ठान हुआ। पं० रंगीलाराम के साथ फतेह सिंह मिलने आया। उसे संसार से वैराग्य हो रहा था। वैसे 'भागसू' में धर्मशाला में क्लर्क था। १३-११ को सायं 'पठियार' गये और पद्मनाभ के घर ठहरे। १४-११ को प्रातः उठकर चामुण्डा के दर्शन को गये। लौटकर पद्मनाभ के घर भोजन किया। उसके पुत्र का प्रथम वार्षिक जन्मदिन था। गाना बजाना खूब हुआ। कुमैया वैद्य लीलाधर तिवारी भी आया था। पं० कृपाराम भी अपने घर ले गया। वैद्य से सुना कि विशनदास इधर-उधर की बातें बताकर लोगों से रुपय्या लेने का यत्न कर रहा है। अस्तु। १५-११ को पं० पद्मनाभ के घर भोजन करके सायं ठाणा आ गये। १८-११ को शिवराम वेदपाठी आये। उनसे शिमले के समाचार मिले। २०-११ को हरिप्रबोधिनी एकादशी को फलाहार खाया। **२२-११ को 'देवी मानस पूजन' की टीका पूरी हो गई। नाम उसका 'तिलक टीका' रखा।** प्रदोष व्रत का पारण विधिवत् किया। २५ को समलोटी आ गये। रात को पं० गोपाराम के घर ठहरे। २७ को समलोटी से ठाणे आ गये। उस रोज पं० जगदीशराम का लड़का बहुत बीमार था। उनके घर पूज्यपादजी गये। रात को बच्चा मर गया। २८ को घर पुनः गये। १-१२ को गौरी पंडित के घर भोजन किया। उसके लड़के का जन्मदिन था। ४-१२ को सायं समलोटी आये। पं० निहालचन्द के यहां ठहरे। ५-१२ को वहां उमादत्त अवस्थी से बातचीत हुई। वहां के रेलवे स्टेशन और बाजार की सैर की। ६-१२ को भवन से ढुण्ढी ब्रह्मचारी की शिष्या महाजणी के घर गये। हलवा खाया और दूध पिया। फिर पं० निहालचंद के यहां भोजन करके सायं अमुवाड़ी पं० जोगीश्वर कुड्डू के घर पहुंचे। रात को वहीं रहे। बैजनाथ में मिला हुआ ब्रह्मचारी यहां फिर मिला। पूज्यपादजी अपनी गडवी को निहालचन्द के घर ही भूल गये। ७-१२ को नियमानुसार प्रदोष व्रत का पालन किया। प्रातः चामुण्डा और नन्दिकेश्वर से दर्शन कर आये। रात में अमुवाड़ी ही रहे। रात को फिर बुखार आया।

८-१२ को नगरोटा आये और पं० किरू ज्योतिषी के घर रहे। जोगीश्वर कुड्डू से एक गडवी ले ली। वह फूटी निकली। तब उसे किरु ज्योतिषी के घर छोड़कर वहां से दूसरी ले ली। रात को बुखार आया। ९-१२ को चौधुरी के घर भोजन किया। एक रुपय्या चौधुरी ने आग्रह पूर्वक दिया। सात मील चलकर भवन पहुंचे। भगवती के दर्शन किये। रात बालकृष्ण छुण्डी के घर रहे। रात को ज्वर आया। खाना नहीं खाया। १०-१२ को स्नानादि करके वीरभद्र और देवी के

दर्शन किये। बालकृष्ण के घर भोजन किया। गौरीशाह और ढुण्ढी ब्रह्मचारी से मिले। फिर पद्मनाभ कुर्डू के साथ चलकर ठाणे आ गये। और पं० बद्रीदत्त के घर ठहरे। कई दिन बुखार आता रहा। भोजन एक एक ही समय ही खाते रहे, रात को दो पैसे की किशमिश खाते रहे। १३-१२ को जूड़ी का बुखार काफी ज़ोर का आ गया। रंगीले को एक जोड़े जूते और दो कमीजें लाने के लिए चार रुपए दे दिये। १४-१२ को बुखार नहीं आया, परन्तु पसीने आ गये। १६ को फिर बुखार आया। १७ को बुखार नहीं आया। १८ की रात को फिर आ ही गया। किशमिश और छुहारे रात को खाये। १९-१२ को रंगीला कमीजें और जूता ले आया। रात को फिर बुखार आया। २०-१२ को गीता जयन्ती का दिन था। गीता का पारायण किया। २१-१२ को काकू पंडित के घर रहे। २२ को बद्रीदत्त के घर आ गये। प्रदोषव्रत का नियमानुसार पालन, पारण किया। इन दिनों तो बुखार प्रायः आता ही रहा।

२३-१२ को प्रातः नगरोटे आये। पं० बद्रीदत्त ने टिकटें खरीद लीं और दोनों रेल से साढ़े ग्यारह बजे '**मंगवाल**' उतरे। वहां से तीन मील चलकर '**हराडों**' में दीनानाथ से मिलकर उसके घर '**कतनौर**' गये। गाड़ी में तुलसीराम पुरोहित भी मिला था। रात को कतनौर में निवास किया। २४-१२ को दीनानाथ पाधा के घर भोजन करके 'नगरोटा सूरियां' गये। साथ दीनानाथ, बद्रीदत्त और तुलसी राम भी थे। दीनानाथ ने वहां सत्यनारायण की पूजा की। बद्रीदत्त ने कथा बांची। रात को वहीं ठहरे। २५-१२ को दीनानाथ के घर खा पीकर '**जिणोटा**' गये। साथ बद्रीदत्त और दीनानाथ थे। रात को वहां दीनानाथ के श्वसुर के घर जिणोटा में ही रहे। बुखार उस दिन भी आया। जगतराम पण्डित दीनानाथ का साला था। वह भी मिला। फिर "झमाल" और "पण्डितेड" होकर जिणोटा लौट आये। रात को फिर बुखार आया। २६ को जिणोटा में जगतराम के यहां भोजन किया। फिर लौटकर कतनौर आ गये। सायं पुरोहित ध्रुव के गांव 'हराडा' आये। रात को ध्रुव के घर रहे। साथ पं० बद्रीदत्त थे। २७-१२ को खा पीकर चले और '**दुमेटा**' पहुंचे। साथ पं० बद्रीदत्त और पं० दीनानाथ थे। वहां से लौटकर फिर कतनौर आये। अंधेरे में गज नदी को लांघने में बहुत कष्ट हुआ। साढ़े छः मील चले। २८-१२ को दीनानाथ के यहां भोजन करके रात को ध्रुव पुरोहित के यहां निवास किया। ज्वर फिर आ गया। २९-१२ को बद्रीदत्त कांगड़ा चले गये और पूज्यपादजी कतनौर दीनानाथ के घर ठहरे। ३०-१२ को दिन को पड़ूआ जाकर लौट आये। वहां एक साधु के डेरे पर कुछ समय बैठे थे। ३१-१२ को दीना नाथ के घर रहे। ज्वर रात को आ ही गया। १-१-३२ को दीनानाथ के ही घर रहे। फिर वहां से पुनः जम्मू कश्मीर देश की ओर चलने का निश्चय हो गया।

अध्याय ६

कश्मीर-यात्रा नं० २

पूज्यपाद जी २ जनवरी १६३२ को 'कतनौर' से पैदल चल पड़े। दीनानाथ ने चलते समय एक रुपय्या दे दिया। १६ मील चल कर सायं **'सीबो का थाना'** पहुंच गए। वहां एक बूढे ब्रह्मचारी से भेंट हुई। उन्होंने प्रेमपूर्वक आदर सत्कार किया। रात को ब्रजलाल ब्राह्मण के घर भोजन किया तथा निवास ब्रह्मचारी महात्मा के पास। ३-१ को भी महात्मा के साथ एक और ब्राह्मण के घर भोजन किया। रात को बुखार आ गया। ४-१ को पुन: ब्रजलाल ब्राह्मण के घर भोजन करके १० मील पैदल चल कर **नूरपुर रोड** पर पहुंचे। वहां टांगे पर सवार होकर पठान कोट आ गए। पौने छ: बजे वहां पहुंच गए। चार पैसे का मीठा खाकर रातभर एक धर्मशाला में सोए। ५-१ को पैदल १० मील चलकर **कठूआ** पहुंचे। उस दिन प्रदोषव्रत था। रात को एक नाथ के पास शिवाले में ठहरे। व्रत का पारण एक दाना चावल पर किया। थोड़ी थोड़ी बर्फी, पेड़े, किशमिश, खाण्ड और दूध पर निर्वाह किया। ६-१ को एक दुकान पर पांच पैसे के फुलके, दो पैसे की दाल, दो पैसे का इलायची दाना लेकर खाया। फिर पांच मील चलकर **'पडियारी'** में एक नए बने हुए भवन की कोठरी में रहे। कुछ खाया नहीं। रात को फिर ठण्ड लगने लगी। तब उन्होंने भजन शुरू किया। फिर ठण्ड बन्द हो गई और बुखार मामूली सा ही चढ़ा। ७-१ को प्रात: पैदल साढ़े सात मील चलकर एक ग्राम में एक ब्राह्मण नम्बरदार के यहां भोजन करके साढ़े ग्यारह मील पैदल चलकर **शेरपुर** पहुंचे। वहां नृसिंह दयाल नाम के ब्राह्मण नम्बरदार के घर भोजन और रात्रि निवास किया। उसके घर में सभी जंगली जैसे थे केवल वही एक आदमी अतीव सभ्य तथा सत्स्वभाव का था। ८-१ को प्रात: उसके आग्रह से वहीं ठहरे। वहीं एक शिवालय के पास वाली बावड़ी पर स्नान सन्ध्या आदि करके नम्बरदार के घर भोजन खाया। फिर ६ मील चलकर 'अमरूचक' नाम के रेल के स्टेशन पर पहुंचे। वहां तीन पैसे की बर्फी खाकर और टिकट लेकर रात को रेल के डिब्बे में सो गए। रेल प्रात: ५ बजे चली और साढ़े छ: बजे प्रात: **'जस्सड'**

स्टेशन पर पहुंची। फिर पैदल चलकर जस्सड नगर को गए। वहां काशी राम ज्योतिषी के घर गए। उन्होंने पत्र द्वारा उधर आने का निमन्त्रण लिख भेजा था। भोजन केदारनाथ पाधा के घर से कृष्णदत्त ब्रह्मचारी दोनों समय ले आया। रात को ज्वर आया। अत: भोजन नहीं खाया। काशीनाथ बुद्धिमान था, रहने वाला मण्डी स्टेट का था। संस्कृत में भी व्युत्पन्न था। योग के प्रति उसे प्रवृत्ति थी। परन्तु साथ चञ्चलता भी थी। उस दिन रात को दूध पिया। २७-१-३२ तक वहीं ठहरे। भोजन प्राय: उसी ब्राह्मण केदारनाथ के घर से आता रहा, कृष्णदत्त ले आता था। कभी-कभी रात को कृष्णदत्त के यहां भी खाते रहे। निवास ज्योतिषी के पास करते रहे। १४-१ को मकर संक्रान्ति थी। कूप जल से स्नान किया। केदारनाथ दवा भी देते रहे, परन्तु ज्वर कभी कभी आता ही रहा। २०-१ को मन्दिर में भगवान् 'श्रीकृष्ण' की मूर्त्ति की प्रतिष्ठा हो गई। २१-१ को प्रदोषव्रत का पारण कृष्णदत्त के घर हुआ। २३-१ को काशी राम ने एक बहुत बुरी बात कह डाली। उससे चित्त बहुत दु:खी हुआ। फिर २४-११ को चलने की तैयारी की परन्तु कृष्णदत्त ने साथ चलने के बहाने से रोक लिया। भोजन एक और ब्राह्मण के घर किया। फिर कृष्ण दत्त ने भी बुरा बर्ताव किया और बुरे शब्द कहे। अस्तु। जाने का मुहूर्त्त सभी ने मिलकर बिता दिया। अत: वहां कुछ दिन और रहना पड़ा।

२८-१-३२ को प्रात: रेल से **स्यालकोट** आ गए। टिकट केदारनाथ ने लेकर दिया। तीन रुपए काशीराम ने दिए। स्यालकोट में गाडी से उतर कर **तेजासिंह** का मन्दिर देखा। फिर कनक मण्डी के मन्दिर को गए। भोजन खाया नहीं। केवल दूध पिया। रात मन्दिर में ठहरे। २९-१ को प्रात: कृत्य करके बाज़ार गए। बाज़ार में हड़ताल थी। चार पैसे की जलेबी ली परन्तु बहुत खराब थी। अत: उसे फैंक दिया। दोपहर को वहां के बड़े डेरे में भोजन खाया। रात को निवास वहीं किया। खाया कुछ नहीं। ३०-१ को उसी डेरे में रोटी खाई। एक नागर ब्राह्मण से परिचय हो गया। उसकी जन्मपत्री देखी। उसने चार आने दिए। एक आने की रेवड़ी खाई। रात को वहीं ठहरे। ३१-१ को रेल द्वारा **वज़ीराबाद** आ गए। दूध जलेबी खाकर तीन आने देकर टांगे से **गुजरात** आ गए। एक मन्दिर में ठहरे। पुजारी एक मालाबारी नायर था। भोजन उसने खिलाया। एक खत्री ने रात को दूध पिलाया। १-२-३२ को भोजन दोनों समय उसी मन्दिर में खाया। एक खत्री ने आग्रह पूर्वक वहां रोके रखा। उसके दो लड़कों की जन्मपत्रियां देख लीं। उसने रात को बिस्तरा भेजा और दूध पिलाया। रात को मन्दिर में ही रहे। डेरादून को कार्ड लिख भेजा २-२-३२ को खत्री की घरवाली तीन सेर आटा, दो सेर चावल, एक सेर माष की दाल, आधसेर मूंगी

की दाल, डेढ़ पाव घी और एक रुपया नकद दे गई। सारा सामान मन्दिर के साधु को दे दिया। ४-३-३२ तक वहीं रहे। निवास, भोजन मन्दिर में होता रहा। ज्वर बीच बीच में आता रहा। ४-२ को विधिवत् प्रदोषव्रत हुआ। ५-२ को खत्राणी के पति की जन्मपत्री देखी। ६-२ को मौनी अमावस्या का स्नान एक कुएं पर किया। ८-२ को फिर बुखार आया। १०-२ को श्रीकण्ठ नेहरू का पत्र श्रीनगर से आया। ११-२ को उसी के द्वारा भेजा हुआ ग्यारह रुपए का मनी-आर्डर मिला। एक रुपय्या मन्दिर को समर्पण कर दिया। ११-२ को खूब घूमे, वहां का बाजार देखा। १९-२ को नियमानुसार प्रदोष व्रत तथा उसका पारण किया। २०-२ को लगभग नए हील क्रेपसोल जूते कोई चुरा ले गया। २७-२ **को भांग पी ली**। २९-२ को एक खत्री दूध और दवा दे गया। बुखार बहुत जोर का आया। दिन को **नारायण गिरि** के पास गए थे। ३-३ को फिर नारायण गिरि के पास गए। भोजन उनकी कुटी में किया। सायं मन्दिर को लौट आए। ४-३ को प्रदोष व्रत तथा पारायण हुआ। ५-३ को शिवरात्रि आई। पूज्यपाद जी एक मील चलकर स्टेशन पर पहुंच गए। एक आने का टिकट लेकर **'कठोला'** पहुंचे। वहां से चलकर चन्द्र भागा (चिनाब) नदी में स्नान करके फिर ३ मील चलकर **'शादीवाल'** पहुंचे। वहां नए बने हुए शिव मन्दिर में ठहरे। वहाँ एक लाहौर का पण्डित वेदपाठी मिला। सनातन धर्म स्कूल लाहौर में उर्दू का अध्यापक था। उसका नाम **सोहनलाल** था और लाहौर में उसे शिवहर कहा जाता था। वह अच्छे स्वभाव का था और आचारवान् भी था। उसने आध सेर दूध पिला दिया। फिर एक सत्स्वभाव वाले सन्न्यासी से भी वहां परिचय हो गया। इसी मन्दिर में रात्रि जागरण किया। रात को बादाम ठण्डाई का पान किया। ६-३ को उधर के लोगों के आग्रह से वहीं रुके। सोहन लाल ने खाना पकाया। दिन को भोजन खाया, रात को ज्वर आया, अतः खाया नहीं। ७-३-३२ की दोपहर का भोजन लाला मुकुन्दीलाल के घर किया। जेहलम की नहर पर प्रातः स्नान करके आए थे। सोमवती अमावस्या थी। रात को अपने हाथ दालभात पकाकर खाया। स्वामी और नाथ ने भी खाया। निवास स्वामी के कमरे में किया। रात को मुकुन्दी लाल दूध ले आया। ८-३ को भी स्वयं पकाकर खाया। मुकुन्दी लाल ने एक धोती दे दी। ९-३ को प्रातः **किलाधार** गए, साथ यहां के महन्त सन्यासी थे। वह कश्मीरी पण्डितों का एक पवित्र स्थान है। कश्मीर के एक सिद्ध पं० मनसाराम ने उस जगह रणजीत सिंह के राज्यकाल में योग साधना और तपस्या की थी। तब से वहाँ मनसाराम (मनस राजदान) की धूनी सदा जलती रही। १९४७ तक जलती ही रही। अब भी वहां के निवासी पाकिस्तानी मुसलमान दिन रात तैलदीप जलाए रखते हैं, मन्नतें

मानते हैं, चढ़ावे चढ़ाते हैं और वाञ्छित फल पाते हैं। पूज्यपाद जी धूनी का **दर्शन करके गुरुद्वारे चले गए।** वहां के एक सिक्ख बाबा ने ज्वर की एक दवा दे दी, परन्तु बुखार आ ही गया। पूज्यपाद जी वहां से 'शादीवाल' लौट आए। उस समय 'किलाधार' की धूनी के नाम नौ गांव की जागीर थी। जागीर रणजीत सिंह ने दे दी थी और अंग्रेजों ने भी उसे बन्द नहीं किया था। वहां पं० शङ्करदास ने भी दवा दी थी, परन्तु बुखार आ ही गया। १०-३ को भी दवा खाई और भात स्वयं पका कर दूध के साथ खाया। रात को दूध पिया और ११ व १२ को भी वैसे ही किया। मुकुन्दी लाल ने नया जूता खरीद दिया। १३-३ को पुनः किला धार गए। महन्त ने प्रेम का जरा भर प्रदर्शन नहीं किया। फिर खाये बिना ही ६ मील चल कर गुजरात स्टेशन पर आ गए। वहां मन्दिर में थोड़ा हलुआ खाया और पानी पिया। मुकुन्दी लाल ने जो धोती दी थी वह वहाँ के महन्त द्वारकादास को देकर नौ बजे की रेल से **रावलपिण्डी** को चले। मार्ग में **'लाला-मूसा' स्टेशन** पर एक पैसे की गंडेरी चूस ली और पांच पैसे के केले खाए। १४-३ को प्रातः पांच बजे रावलपिण्डी पहुंच गए। दो पैसे का खोया लिया। छः बजे तक मुसाफिर खाने में ठहरे। फिर शहर जाकर महात्मा **लट्ठ निरञ्जन के** स्थान की खोज की। सराफों के बाजार में उनका स्थान मिला। वहां स्नान आदि करके दोनों समय भोजन और निवास करते रहे। १६-३ तक वहीं ठहरे। लट्ठ निरञ्जन ने डा० सेन से दवा की शीशी लेकर दी। १६-३ को वहां के पुस्तकालय को देखा।

१७-३-३२ को प्रातः कृत्य करके कश्मीर को चल पड़े। लारी का किराया आठ रुपए ताराचन्द ने दिए। लट्ठ निरञ्जन ने भी दो रुपए दिए। दो आने के केले खाए। लारी दस बजे चल पड़ी। साढ़े तीन बजे **कोहाला** पहुंच गई। वहां जेहलम के पुल को पैदल पार किया, क्योंकि उसकी मरम्मत हो रही थी। पार दूसरी लारी पर सवार होकर सवा छः बजे चले और साढ़े सात बजे दुमेल पहुंच गए। वहां दूध जलेबी लेकर खाई और पुल के पार बाजार में **एक गुरुद्वारे में रात को ठहरे।** पुल पर एक पैसा कर दिया। लारी में माल इतना भरा था कि बैठना कठिन हो गया। १८-३ को एकादशी थी। दोमेल से प्रातः चलकर सायं पांच बजे **श्रीनगर पहुंच गए।** मार्ग में **ऊडी** में दो पैसे की किशमिश लेकर खाई। लारी से उतर कर 'आली कदल' कशकाक बागाती के घर गए। बुखार की बारी थी, पर आया नहीं। कशकाक के पुत्रों जिया लाल और टिकालाल ने खूब स्वागत किया। जियालाल मन्त्रोपदेश के लिए बहुत पीछे पड़ा रहा। कशकाक भी काफी प्रेम करते रहे। उसका दामाद प्रेमनाथ मुंशी मिला। उसका व्यवहार रूखा मालूम पड़ा। ४-४-३२ तक उधर ही रहे। भोजन प्रायः या तो कशकाक

बागाती के घर करते रहे और या मास्टर शङ्कर पण्डित के यहां। प्रायः ईदगाह सैर को जाया करते रहे थे। कभी कभी हारी पर्वत, सत्थू आदि भी जाते रहे और पूर्व परिचित लोगों से मिलते रहे। २२-३ को चन्द्र ग्रहण था। दिन भर खाया नहीं। ग्रहण छूटने के बाद भोजन किया। २४-३ को सायं शङ्कर पण्डित मिले और अपने घर ले गए। बहुत ही प्रेम का व्यवहार किया। उनके घर में डाक्टर देवकौल भी मिला। २६-३ को बादामों के पुष्पों की बहार देखने गए। उनकी अतीव सुन्दर शोभा को देखते हुए पूज्यपाद जी का चित्त आह्लादित हो गया। २७-३ को कशकाक के घर **पं० वासुदेव शास्त्री** से परिचय हुआ जो संस्कृत के एक विशिष्ट विद्वान् थे। पं० कण्ठजू वकील भी वहां आया था और मन्त्रोपदेश लेना चाहता था जो पूज्यपाद जी ने दिया नहीं। २८-३ को मास्टर जी के साथ अमर चन्द कौल के घर गये। ३०-३ को सत्थू गये परन्तु नाथ जी गाडू बारामुला में था। अत: मिला नहीं। ३१-३ को कशकाक के घर एक प्रसिद्ध वेदान्ती पण्डित **आनन्दकौल** (पञ्चदशी) आये थे। उनसे बातचीत हुई। इनको तर्क वितर्क बहुत आते थे, परन्तु भीतरीय अनुभूति के विषय में एकदम कोरे के कोरे प्रतीत हुये। १-४ को **'हारीपर्वत'** और 'पुखरीबल' घूम आये। फिर कशकाक के घर महाराष्ट्र देश से आये हुये एक अच्छे महात्मा से भेंट हुई। वे **रामजी ब्रह्मचारी** कहलाते थे। ब्रह्मचारी वहां केवल दस मिनट बैठे। अत: विशेष बातचीत कोई हुई नहीं। उनका शरीर पतला, श्यामल और सुन्दर था ! मुख तेजस्वी था और नेत्र खूब विशाल थे। लोग कहते थे कि वे योग के अच्छे अभ्यासी हैं। २-४ को पुन: अमर कौल के यहां कशकाक जी ले गये। फिर दोनों मास्टर जी के यहां होकर हारीपर्वत गये। कशकाक अपने आप को वेदान्ती कहते रहे और पूज्यपाद जी के विषय में कहते रहे कि "ये शैंवी हैं", वे पढ़े लिखे तो थे, परन्तु आध्यात्मिक अनुभूति के क्षेत्र में पूज्यपाद जी को अभी बच्चे ही मालूम हुये। रात को मास्टर जी के यहां रहे। ३-४ को प्रदोष व्रत का पारायण कशकाक के घर में किया।

५-४ को छताबल जाकर वहां से लारी का एक रुपय्या देकर बारामुला पहुंच गये। वहां देवी बल में (शैलपुत्री देवी के स्थान में) निवास करने लगे। उधर पिछला महन्त 'आनन्दजू' मर चुका था और अब वहां का अधिकार श्रीधर जू ब्रह्मचारी को मिला था। उसने सीदा और बर्तन दे दिये और पूज्यपाद जी ने स्वय पकाकर भोजन किया। ब्रह्मचारी ने साथ ही यह भी कहा कि "इस समय मैं दे रहा हूं। कल से स्वयं अपना प्रबन्ध करना चाहिये।" ६-४ को नहा धोकर पूज्यपाद जी शहर को गये और वहां नाथजी गाडू की तलाश की। भोजन वहीं किया और ठहरने को पुन: देवीबल ही आ गये। सायं पुन: नाथ जी के डेरे पर

आये। भोजन वहीं हुआ। वहां एक **आर्यसमाजी सर्वानन्द** के साथ रात के ढाई बजे तक बातें होती रहीं। ७-४ को प्रातः पुनः देवीबल आ गये। अमरनाथ जू वहां उनके लिये एक नमदा, एक लोई और दो चादरें ले आया। नवरात्रों का प्रारम्भ हो गया और पूज्यपाद जी ने फलाहार मात्र करने का निश्चय किया। सायं ४ बजे नाथ जी के डेरे फलाहार करते रहे और रात को देवीबल में निवास करते रहे। पहले नवरात्र को ही श्रीधर जू ब्रह्मचारी बिना किसी चुनौती के ऐसे ही बहुत बिगड़ गया। वस्तुतः उसका स्वभाव ही तामसी था। ९-४ को देवीबल में एक वृन्दवन का वैरागी साधू भी आया जो निरा मूर्ख था। १२-४ को नाथ जू का रसोइया अपने घर चला गया। अतः वे फलाहार का सारा सीदा लाकर दे गये, श्रीधर जू से बर्तन और लकड़ी दिलाई और पूज्यपाद जी ने फलाहार स्वयं पका कर खाया। उस दिन कोटि तीर्थ भी गये। १३-४ को श्रीकण्ठ नेहरू की मौसी देवीबल आई थी। उसने कल के लिये अपने घर बुलाया। तब तदनुसार १४-४ को फलाहार श्रीधर नेहरू की साली के घर में किया। फलाहार का व्रत उसी दिन समाप्त हो गया। १५-४ को नवमी के दिन स्वयं आलू और भात बनाकर व्रत का पारायण किया। सीदा पं० नाथ जी गाडू ले आये थे। तीन आने ब्राह्मण को और कुमारी को दे दिये। पं० बद्रीदत्त की दी हुई नई धोती आज पहन ली। फिर श्रीनगर जाने का प्रोग्राम बन गया। लारी का एक रुपय्या किराया नाथ जी ने दे दिया। साथ मट्टन के एक पण्डित के नाम एक चिट्ठी भी लिख कर दे दी।

१६-४ को स्नान आदि करके एक आना ब्राह्मण को दे दिया। फिर श्रीकण्ठ के ममेरे भाई के बुलाने पर उसके घर जाकर भोजन किया। फिर बारह आने किराया देकर लारी से श्रीनगर आ गये। वहां श्रीधर जू नेहरू के घर गये, पर वे बारामुला चले गये थे। रात को भोजन और निवास वहीं किया। परन्तु विश्वम्भरनाथ नेहरू ने ऊपरी ढङ्ग से ही आवभगत की। वहां वेदलाल भी थे। उनके व्यवहार में दम्भ ही देखा। अतः यह निश्चय किया कि वहां रहना अब उचित नहीं है। विश्वम्भर नाथ के अहकार की मात्रा अब काफी ऊंचाई पर चढ़ी हुई प्रतीत हुई। भगवद्भक्ति से उसे जरा भर भी परिचय नहीं रहा था, ऐसा प्रतीत हुआ। १७-४ को वहीं भोजन करके बारह आने देकर लारी से अनन्तनाग आ गये। वहां से पैदल मट्टन आ गये। उधर मास्टर नन्दलाल खार के यहां ठहरे। उसने पहले की ही तरह अत्यन्त प्रेम से स्वागत सत्कार किया। पूज्यपाद जी को मास्टर जी के हृदय में निःस्वार्थ प्रेम दीख पड़ा। वह प्रेम किसी भी ऐहिक प्रयोजन के लिये न होता हुआ केवल ईश्वर भक्ति की मात्रा को बढ़ाने के लिये था। ऐसे भक्तजन विरले ही कहीं मिलते हैं। १८-४ को प्रेमनाथ फोतेदार

आया। उसके हाथ नाथ जी गाडू की दी हुई चिट्ठी सब-ओवरसीयर को भेज दी। परन्तु उसने कुछ भी न तो कहा और न पूछा। १९-४ को प्रेमनाथ फोतेदार फिर आया। उसने कमरे को साफ करके उसमें लेपन लगाया। भोजन प्रेमनाथ मुंशी के आग्रह से उसके डेरे पर किया। रात को मास्टर नन्दलाल के घर आकर वहीं रहे। लगभग ३-५-३२ तक प्रायः प्रतिदिन भोजन मास्टर नन्दलाल खार ही के घर करते रहे। कभी कभी हर गोपाल खार, माधवराम खार आदि भी भोजन पर बुलाते रहे। ४-५ से आगे भोजन प्रायः नन्दराम फोतेदार के यहां करते रहे। इस तरह से १२ मई तक मट्टन में ही रहे। २०-४ से मास्टर नन्दलाल के नये मकान के एक कमरे में रहने लगे। उस दिन उनका जन्मपत्र देखा। २१-४ को नारायण जू फोतेदार का लड़का श्यामलाल अपने घर भोजन कराने ले गया। साली से सर्वानन्द साधु मिलने आया। दो वर्ष में उसने साधना के क्षेत्र में काफी प्रगति की थी। २२-४ को रघुनन्दन प्रसाद सिंह की पुस्तक '**साधन संग्रह**' को पढ़ा। पुस्तक अच्छी लगी। बंगाल के चैतन्य सम्प्रदाय से सम्बद्ध थी भक्ति की प्रधानता इसमें विद्यमान थी। २३-४ को नन्दलाल खार और प्रेमनाथ फोतेदार के साथ साली गये और सर्वानन्द साधु से मिल आये। २४-४ को लखनऊ से प्रकाशित "**स्वामी रामतीर्थ**" का प्रथम भाग पढ़ लिया। पुस्तक बहुत अच्छी लगी। २५-४ से प्रेमनाथ फोतेदार को भगवद्गीता पढ़ाना आरम्भ किया। पं० नन्दलाल खार को द्वादश नामों वाला सूर्य नमस्कार सिखा दिया। साथ उसके द्वादश मन्त्र भी बता दिये। हमने किसी अन्य स्रोत से यह भी जाना है कि उसी उपासना से उसकी पत्नी ने भगवान् सूर्य की कृपा से दो सुयोग्य पुत्रों को जन्म दे दिया। २६-४ को जियालाल फोतेदार मिलने आया। भोजन मास्टर जी के साले ताराचन्द के घर किया। २७-४ को इण्डियन प्रेस वाले **हिन्दी महाभारत** का ३२ वां भाग पढ़ा। सायं "**राजतरङ्गिणी**" को भी पढ़ने के लिए किसी से ले लिया। २८-४ को उसे पढ़ना आरम्भ कर दिया। उन दिनों पूज्यपाद जी को यह बातें देखने में आ गईं कि कश्मीर में हिन्दुओं की बहुत बुरी हालत होने लगी है। महाराजा को अंग्रेजी शासन के सङ्केतों पर चलना पड़ रहा है। पूज्यपाद जी के वैसे निर्देश से यह प्रतीत होता है कि कश्मीर मण्डल के निवासी हिन्दुओं की जो दुर्गति स्वतन्त्रता के युग के आरम्भ से लगातार होती आई है, उस दुर्गति के बीज उन्हें सन् १९३२ में ही दीखने लगे थे। २९-४ को मास्टर नन्दलाल को "**अध्यात्मरामायण**" पढ़ाना आरम्भ कर दिया। साथ उनका पुरोहित ओकुर निवासी दीनानाथ भी पढ़ने लगा। उसने "**शिवमहिम्नस्तोत्र**" पढ़ना भी आरम्भ कर दिया। राजतरङ्गिणी को पढ़ते ही रहे। ३०-४ को भी राजतरङ्गिणी को पढ़ा। दीनानाथ पुरोहित को "**शब्दरूपावली**" भी पढ़ाने

लगे। ६-५ को जियालाल के साथ ऊपर वाली नहर के तट की सैर कर आये। ७-५ को मास्टर नन्दलाल को **"सूतगीता"** (१७ श्लोक) पढ़ाई तथा **'आत्म-विलास'** के भी ७ श्लोक समझा दिये। ८-५ **"अक्षयतृतीया"** का उत्सव मार्तण्ड तीर्थ के कुण्ड पर मनवाया। उस निमित्त से एक तो भागवत नवम स्कंध से **"परशु-रामावतार"** की कथा सुना दी और साथ उस उत्सव के उपलक्ष्य में स्वयं बनाये हुये **'परशुरामस्तोत्र'** का भी पाठ करवा दिया तथा उसकी व्याख्या भी सुना दी। ९-५ को उस 'कथावाचन' की रिपोर्ट अनन्तनाग के मुसलमानों ने वहां की पोलीस को दे दी। तदनुसार १०-५ को एक सिक्ख सार्जेन्ट के साथ अनन्तनाग का महेश्वर बायू आया और एक घण्टा सिर खपाई की। परन्तु पूज्यपाद जी ने अपना वास्तविक परिचय दिया नहीं। ११-५ को मास्टर नन्दलाल को **'श्रीराम गीता'** का कुछ भाग पढ़ा दिया। पोलीस उनके विषय में पूरी जानकारी पाने के लिए काफी खोज करती रही। १२-५ को साली से सर्वानन्द साधु आया। एक रुपय्या दे गया। रामगीता का पढ़ाना पूरा कर दिया। पोलीस और इन्क्वायरी करती रही। रात को ज्वर फिर आया। प्रेमनाथ मुन्शी आया। १३-५ को साली जाकर मट्टन लौट आये। साथ जियालाल फोतेदार था। वहां मट्टन में विदित हुआ कि "अनन्तनाग से पोलीस के सुपरइन्टेंडेण्ट आये थे। और पूज्यपाद जी की तलाश कर रहे थे। फिर परामर्श करके यह निश्चय ठहरा कि पूज्यपाद जी साली चले जाएं और साधु सर्वानन्द से सलाह लेवें। मट्टन में एक दो को छोड़कर और किसी को न बताया जाये कि पूज्यपाद जी कहां हैं तथा जियालाल जी वहां सन्देश भेज देवें कि पोलींस और क्या-क्या करने वाली है।

तो १४-५ को प्रातः 'सीर' तक जियालाल फोतेदार साथ चले। पूज्यपाद जी वहां से साली गये। सामान सारा मट्टन में ही रखा। उसमें से केवल कुछ कागज़ जैसे डायरियां आदि निकाल लीं। उन्हें प्रेमनाथ फोतेदार के पास रख दिया। साली में पं० गोविन्द जू राज़दान के घर ठहरे। साधु सर्वानन्द उसी के घर में उन दिनों ठहरे थे। पापहरण नाग साली से दो फर्लांग पर है और कार्कोटनाग ३ मील पर है। इस गांव के पण्डित बड़े जमीन्दार थे। अच्छा गुज़ारा था। साधु, सन्त, अधिकारी अफसर आदि का सत्कार करते थे। गोविन्द जू राज़दान तब वहां का नम्बरदार था। उसी दिन श्री नगर से टिकालाल खज़ांची भी उधर आ गये। वे जम्मू-कश्मीर के धर्मार्थ विभाग के सुपरइन्टेंडेण्ट थे। उन से प्रथम परिचय साली में ही हुआ। ये जम्मू से सीधे मट्टन आये और वहां पूज्यपाद जी को खोजा। फिर वहां से साली आ गये और उनसे मिले। बातचीत भी काफी हुई। १५-५ को पं० टिकालाल जी के साथ और बहुत बातें हुईं। बड़े सरल स्वभाव के प्रतीत हुये। श्री नगर के रहने वाले थे। **"श्रीयन्त्र"** की पूजा किया करते थे। उनका

पूजन पूज्यपाद जी ने देख लिया। उनकी और पूज्यपाद जी की इष्ट देवता एक ही थी। उन्हें पूज्यपाद जी से मिलने की तीव्र इच्छा थी। इसीलिए सर्वानन्द साधु को लिख कर पूज्यपाद जी को वहीं रुकवाया था। उस रोज़ ज़ोर का बुखार आया। १६-५ को टीका लाल जी श्रीनगर गये। पूज्यपाद जी साली में ही रहे। प्रेमनाथ फोतेदार आया था। उससे विदित हुआ कि अब पोलीस उनकी विशेष चर्चा नहीं कर रही है। १७-५ को विधिवत मौन प्रदोष व्रत पारायण आदि हुआ १८-५ को जियालाल और नन्दलाल खार सामान लेकर उधर आ गये। बुखार भी आया विदित हुआ कि पुलिस अब चुप है। २१-५ तक उधर ही पूर्ववत् निवास किया। २२-५ को साली से टांगे पर मट्टन आ गये। 'सीर' तक काशी नाथ राजदान साथ था। श्री कण्ठ नेहरू का पत्र आया। ठहरे नन्दलाल मास्टर के घर में। २३-५ को मट्टन से श्रीनगर आये। वहां नेहरू वालों के घर गये। परन्तु उन्होंने व्यवहार अच्छा नहीं किया। धनाढयता के मद ने उनमें अविवेक भर दिया था, ऐसा उन्होंने देखा। २४-५ को बहुत बुखार आया। श्री नाथ (मट्टन) और टिकालाल मिलने आये। बहुत सहानुभूति का व्यवहार किया। परन्तु विश्वम्भर नेहरू ने कोई परवाह नहीं की। २६-५ को टिकालाल खजांची आये। प्रेममय व्यवहार किया। इलाज भी करवाने का यत्न करते रहे। पर विश्वम्भर नेहरू ने परवाह नहीं की। २७-५ को नेहरू वालों ने बहुत अधिक दुर्व्यवहार किया। २८-५ को श्री नाथ के डेरे पर आकर साबूदाना बनाकर खाया। फिर टिकालाल के घर गये। उनके भाई शिवजी खजांची के घर भी गये। टिकालाल जी ने रामबाग मन्दिरों की धर्मशाला में ठहरने का अच्छा प्रबन्ध कर दिया। वहां के पुजारी बालक राम को पूज्यपाद जी की सेवा के लिए कुछ रुपय्ये भी दिये और वह बड़ी भक्ति से सेवा करता रहा। पं० टिकालाल एक हकीम को भी ले आये। उसने ज्वर का इलाज शुरू किया। श्री नाथ जी बहुत दिनों रात को साथ रहते रहे, दिन को पाठशाला जाते रहे। पूज्यपाद जी इस तरह से रामबाग में आराम से रहते रहे। मिलने वाले भी बहुत सारे उधर ही मिलने आया करते रहे। सतलालधर जो पीछे साली में मिला था, वह भी आता रहा। टिकालाल जी और शिवजी खजांची प्रायः आते ही रहे। सतलाल धर २-६ को एक डाक्टर को भी लाया था। उसने दवा दे दी। ३-६ को विदित हुआ कि **जियालाल फोतेदार घर से भाग गया है** और उसके घर वालों ने यह अफवाह उड़ा दी है कि पूज्यपाद जी ने ही उसे बरग़ला कर भगा दिया। ५-६ को बुखार की बारी तो थी, पर आया नहीं। ७-६ को जियालाल रामबाग से होकर अपने घर मट्टन चला गया। सतलाल घर प्राय: आते ही रहे और दवा भी लाते रहे। १२-६ को तूलमुला में **महाराज्ञी देवी** के स्थान पर बहुत बड़ा मेला था।

पूज्यपाद जी अस्वस्थ होने के कारण जा नहीं पाये।

१३-६ को रामबाग में ही एक बंगाली महात्मा **गङ्गानन्द जी** से परिचय हुआ। अगले दिन भी उनके साथ बहुत बातें हुईं। बड़े ही विशिष्ट महापुरुष थे। १५-६ को पं० टिकालाल जी के घर गए। वहां से सतलाल धर किश्ती में अपने घर ले गए। श्रीनाथ आए थे। उनके साथ ईदगाह घूमने गए। वहां बहुत से विचारवान् पण्डित आए हुए थे। उनसे आध्यात्मिक विषयों पर काफी बातें हुईं। वहां **जानकी नाथ** धर भी आए थे। उन्हें दर्शन विद्या का काफी बोध हो चुका था। थोड़ा सा हठयोग का अभ्यास भी उसने किया था। उसके साथ कुछ वर्ष पश्चात् लाहौर में पुनः सम्पर्क हुआ। उस विषय की चर्चा आगे विस्तार से होगी।

१६-६ को श्री नाथ को साथ लेकर टांगे पर सवार हुए और पुलवामा पहुंच गए। वहां से पैदल चलकर 'ह्वाल' ग्राम पहुंचे। वहां कण्ठभट्ट और दामोदर खान् मिले नहीं। फिर राधामाली के घर ठहरे। आगे कई दिन ह्वाल में ही रहे। भोजन दामोदर खान के घर और निवास राधामाली के घर करते रहे। दामोदर खान ने बहुत प्रेम से व्यवहार किया। १८-६ को रोमूह में हवन था। पूज्यपादजी भी वहां गए। वहां की गुफा भी देखी। फिर ह्वाल लौट आए। १९-६ को श्रीनाथ श्रीनगर लौट गए। सर्वानन्द कौल ने आत्मज्ञान के विषय में प्रश्न किए तो थोड़ा बहुत उसे समझा दिया। २०-६ को भोजन नारायण कौल के घर किया। २१ को मुरन गए। देवी के दर्शन किए। रात को ह्वाल लौट आए। २२-६ को ह्वाल में पुरोहित लस बायू के घर में **"शारदा माहात्म्य"** की पाण्डुलिपि देखी। जब उसे पढ़कर सुनाया गया तो पूज्यपाद जी को अपूर्व हर्ष हुआ। उन्होंने पीछे शारदा मन्दिर में वृक्ष पर बैठे तीन विचित्र आकार के शारी नामक पक्षियों के दर्शन किए थे। उनके विषय में स्वामी प्रणवानन्द आदि सभी उपस्थित महापुरुषों ने काफी सोच विचार किया था, परन्तु किसी निश्चित निर्णय पर नहीं पहुच पाए थे। आज इस माहात्म्य ग्रन्थ से उस बात का स्पष्टीकरण हो गया। उसमें स्पष्टतया लिखा था कि **जिस भक्त पर शारदा माता खूब प्रसन्न हो जाती हैं, उसे तीन शारिका पक्षियों के रूप में दर्शन देती हैं।** २३-६ को ताराचन्द्र कौल के साथ उनके घर ओड़ूरा गए। वहाँ एक साधु पं० ठाकुर जू के साथ काफी शास्त्रार्थ, वाद-विवाद हुआ। साधु अच्छा आदमी था, परन्तु संस्कृत नहीं जानता था। २४-६ को ह्वाल लौट आए। २६-६ को ६ मील, चल कर दिगाम (द्विग्रामी) गए और वहां 'कपालेश्वर शिव' के दर्शन किए। पं० कण्ठभट्ट वहां मिला। उसमें पहली जैसी श्रद्धा और वही प्रेम देखा। उसने एक रुपय्या दिया। वहां शङ्कर सराफ, आनन्दराम, शिवराम आदि मिले। अगले दिन ओड़ूरा लौट आए। २८

को पुनः ह्वाल आ गए ।

ह्वाल से ११ मील दूर **भेडगिरि नाम** के पर्वत की अधित्यका में एक दिव्य स्थान है। वहां पर्वत शिखरों के बीच एक काफी बड़ा चश्मा है। उस चश्मे में देवी हँस वागीश्वरी का स्थान है। कल्हण ने राजतरङ्गिणी में लिखा है कि 'भेडगिरि के शिखर पर भगवती हंस वागीश्वरी एक सरोवर के बीच में राजहंसी के रूप में अपने भक्तों को दर्शन दिया करती है।" **श्री नाथ जी** श्रीनगर से २८-६ को आए थे। उनके साथ और दामोदर खान के साथ यह निश्चय हो गया कि हंस वागीश्वरी देवी के दर्शन को जाएं। २९-६ को खाने पीने का सामान बर्तन बिस्तरे आदि ह्वाल से ही साथ ले चलने का प्रबन्ध करना था। दामोदर खान ने वह सारा प्रबन्ध किया। और भी कुछ सज्जन साथ हो लिए। ग्यारह मील चल कर सभी यात्री हंस वागीश्वरी के सरोवर पर पहुंच गए। कैम्प लग गया। दृश्यों को देखने पर बड़ा आह्लाद हुआ। परन्तु एक भयानक स्थिति भी आ गई। वहां आस पास कोई ग्राम नहीं था। कोई धर्मशाला मन्दिर आदि भी नहीं था। सायङ्काल को घने बादल आकाश पर मण्डराने लगे। कैम्प में आए हुए सभी सज्जन भयभीत हो गए कि घनी वर्षा होवे तो अपना बचाव कैसे करें। **उस समय पूज्यपाद जी ने आकाश की ओर दृष्टि डालते हुए किसी विशेष राग में कोई गीत गाया। उस राग की ध्वनि ज्यों ही आकाश में वीचीतरङ्गन्याय से गूंजने लगी त्यों ही बादल एकदम छिन्न भिन्न होकर अन्य अन्य पर्वत शिखरों की ओर संक्रमण कर गए और आकाश निर्मल हो गया।** पूज्यपाद जी ने और श्री नाथजी ने पुरातत्त्व विज्ञान की दृष्टि से उस देव स्थान का काफी निरीक्षण किया। भोजन आदि वहां आराम से पकाया गया। भजन पूजन आदि किया गया। रात को वहीं सो भी गए और दूसरे दिन प्रातःकाल एक और अन्य मार्ग से १५ मील चल कर कुशलपूर्वक वापिस ह्वाल ग्राम को लौट आए। उस ग्राम के लोग कहते हैं कि प्राचीन काल में वहां का रहने वाला कोई भक्त नियमपूर्वक देवी हंस वागीश्वरी की उपासना करता हुआ उस तीर्थ पर जाया करता था। जब वह बूढ़ा हो गया तो देवी ने स्वप्न में प्रकट होकर उसे अपने ग्राम में ही एक स्थान दिखा कर कहा कि "आज से इसी स्थान पर मेरी पूजा का नियम पूरा करते रहो। अब इतनी दूर यात्रा मत किया करो। तेरे लिए मैं यहीं पर उपस्थित रहा करूंगी।" तब से वहां देवी की पूजा का काम चलता आ रहा है। वहां के लोग हंस वागीश्वरी देवी को "बीडा भगवती" कहते हैं। "बीडा" वस्तुतः 'भेड' शब्द का अपभ्रंश है और शब्द का अर्थ है भेडगिरि पर रहने वाली भगवती हंस वागीश्वरी। १-७ को प्रदोष व्रत हुआ। २-७ को फिर 'ओडूरा' गए। ताराचन्द कौल से मिले और ह्वाल लौट गए।

३-७ को श्री नगर लौट आए, श्री नाथ के डेरे गौरी शङ्कर मन्दिर में ठहरे। वहां **माधवानन्द सन्न्यासी** मिले। उसने अच्छा व्यवहार नहीं किया। पूज्यपाद जी सायं टिकालाल खजांची के घर गए। शिव जी खजांची, सतलाल धर आदि वहां आकर मिले। ५-७ को सतलाल जी के घर भोजन करके दोपहर दोदरहामा गए। वहां से जाकर नुनर ग्राम देखा। दृश्य बहुत अच्छा लगा। वहां श्यामलाल गुसांईं के घर रहे। ६-७ को 'वुरंपश' देखा। **एक मुसलमान फकीर को ढाई आने दिए।** फिर 'मन्निगाम' देखा। भोजन महेश्वर नाथ के घर किया। ग्राम में एक सिंध नदी की नहर बहती है। एक बड़े भारी चिनार के वृक्ष के नीचे एक कश्मीरी पण्डितानी सिद्ध योगिनी '**रूपा भवानी**' का स्थान है। वह काफी रमणीय लगा। भोजन रात को महेश्वर नाथ के घर किया और निवास रूपा भवानी के समाधि-मन्दिर के भीतर किया। ७-७ को पं० सतलाल धर ने क्षीर बनाली और रूप-भवानी की पूजा की। पूज्यपाद जी ने २१ पैसे वटुक-कुमारी को बांट दिए। सायं श्रीनगर लौट आए। ठहरे रात को श्री नाथ जी के पास गौरी शङ्कर मन्दिर की धर्मशाला में। ८-७ को टिकालाल जी के घर गए। वहां भोजन करके उनसे **"ईश्वर प्रत्यभिज्ञा विमर्शिनी"** और **"विज्ञानभैरवोद्द्योत"** लेकर पढ़ने लगे। फिर सतलाल के जाकर रात को श्री नाथ के पास आ गए।

उन वर्षों में ग्रीष्म की ऋतु में लखनऊ से **"प्रो० कान्तिचन्द्र पाण्डेय"** पी. एच. डी. पदवी प्राप्त करने के लिए आ० अभिनवगुप्त के तथा उनके विज्ञान के विषय में शोधकार्य करने के सम्बन्ध से श्रीनगर आया करते थे। सन् १९३२ में उन्हें शारदा लिपि में लिखी हुई शैवी परम्परा के स्तोत्रों की अनेकों पाण्डुलिपियां प्राप्त हुईं। वे श्रीनगर में गौरीशंकर मन्दिर के उसी धर्मशाला के एक कमरे में रहा करते थे जिसके एक अन्य कमरे में श्रीनाथजी तिक्कू निवास करते थे। शारदा लिपि में लिखित पाण्डुलिपयों को वे श्रीनाथ जी से नागरी लिपि में लिखवा लेते थे। श्रीनाथ जी उनमें से किसी किसी स्तोत्र की एक और प्रतिलिपि लिखकर अपने पास भी रखा करते थे। पूज्यपादजी जब उन्हें पढ़ा करते थे तो बहुत बार कहा करते थे—"**ऐसा लगता है कि ये विचार तो मेरे ही हैं।**" तात्पर्य यह है कि पूज्यपादजी को शाम्भवी योग साधना के अभ्यास से उन उन दर्शन तत्वों का साक्षात्कार स्वयं हो चुका था, जिन जिन तत्त्वों का काव्यात्मक निरूपण आ० अभिनवगुप्त आदि सिद्धों के स्तोत्रों में किया जा चुका था। ९-७-३२ को पूज्यपाद जी श्रीनगर से मट्टन आये, वहां से साली पहुंचे। उधर विदित हुआ कि जिया-लाल फोतेदार को वस्तुत: सर्वानन्द साधु ने बरगला कर भगाया था और वह उसी के कहने से साधुगङ्गा को चला गया था। मट्टन में यह भी विदित हुआ कि जब शिवजी फोतेदार को ऐसी झूठी बात बता दी गई थी तो वे प्रसन्न होकर कहने

लगे थे कि यदि उस प्रकार के महापुरुष की प्रेरणा से उसका पुत्र साधु बनकर चला गया है तो वह एक हर्ष की बात है। खेद की कोई बात नहीं है।

पूज्यपादजी १०-७ को प्रात: मट्टन आये। वहां पितृदेवता निमित्त से ब्राह्मणों को सवा रुपय्या दे दिया। बहुत से परिचित व्यक्ति मिले। कश्मीरी पण्डितों के नेता जियालाल किलम से काफी बातें हुईं। उन्होंने यह वचन पूज्यपादजी से ले लिया कि श्रीनगर आने पर उनके घर अवश्य आकर मिलेंगे। परन्तु वह वचन वर्षों पूरा नहीं हुआ। अन्ततोगत्वा सन् १९६० मे ही पूरा हुआ। ११-७ को अनन्तनाग गये। भोजन ताराचन्द मट्टू के पास किया। १२-७ को पं० शिवजी फोतेदार के साथ सोफ गए। पूज्यपाद जी को पं० शिवजी के प्रथम दर्शन कब और कहां हुए थे, इस बात पर कहीं कुछ लिखा नहीं मिला। सोफ में पूर्व परिचित **पं० ठाकुर कौल** के घर ठहर। उस समय वे ८९ वर्ष के थे। पूज्यपादजी को ऐसा प्रतीत हुआ कि उनके हृदय में अब भी उनके प्रति वैसे ही स्नेह और सम्मान के भाव हैं जैसे १९२९-३० में थे। यद्यपि वैभव अब उतना नहीं रहा है। शिवजी के हृदय में भी पूज्यपादजी के प्रति अतीव स्नेह है, ऐसा भी उन्हें अनुभव हुआ। १५-७ को गज नाग देख आये। १६-७ को अच्छाबल तक घोड़े पर गए और वहां से टांगे पर अनन्तनाग आए। वहां से पैदल चलकर मट्टन पहुंचे। श्रीनाथ भी वहीं थे। उनके हृदय में भी पूज्यपादजी के प्रति घना प्रेम था।

पीछे कशकाक बागाती के घर महाराष्ट्री ब्राह्मण रामजी को देखा था। २०-७ को उसे मट्टन में पुनः देखा था। वहां इस बात का भी अनुभव हो गया कि "महात्मा बड़े विद्वान् भी हैं और सरल स्वभाव के हैं। इन्होंने हठयोग भी किया है। अनूपशहर के पास गङ्गाजी के तट पर के गुजराती साधु योगानन्द के शिष्य हैं।" पूज्यपादजी उस दिन **पहली बार 'भर्गशिखा' देवी के दर्शन पर्वत शिखर पर कर आए**। शरीर कुछ अस्वस्थ हो गया। शौच में खून आया। २१ को दिन को रामजी साधु के साथ साली गये। खाना राघव राजदान के घर और निवास पापहरण नाग में किया। रामजी राजदान के ही घर ठहरे। २२-७ को दोनों मट्टन आ गये। रामजी श्रीनगर गए। पूज्यपादजी अनन्तनाग में पं० तारा चन्द मट्टू के पास ठहरे। २३-७ को मट्टन आ गये। उस दिन पं० शिवजी फोते-दार भी वहां आ गये। काफी बातचीत उनके साथ हुई। जियालाल को भगाने की बात उनके मन से दूर हो गई। पूज्यपादजी को अगले दिन शिवजी के साथ वार्ता-लाप से विदित हुआ कि एक ऊंचे विचारों वाले बहुत ही भले मानस तथा विशेष बुद्धिमान् महानुभाव हैं। २६-७ को उन्होंने अपने पुत्र जियालाल को पूज्यपादजी के हवाले कर दिया। उस दिन गौतम नाग भी गए। २७ को पुनः साली गए। ३०-७ को प्रदोषव्रत हुआ। ३१-७ को मट्टन गये। वहां से अनन्तनाग होते हुए

हांगलगुण्ड पहुंचकर ताबराम के घर ठहरे। दूसरे दिन 'सोफ' गये और वापिस हांगलगुण्ड आ गए। २-८ को अच्छाबल गए शिवजी भी वहीं मिले। वहां से दोनों अनन्तनाग होते हुए मट्टन आये। पूज्यपादजी वहां से 'नागिल' गए और वहां मास्टर शिवजी के घर ठहरे। फिर ९-८ तक मट्टन, साली आदि ग्रामों को जाते रहे। ५-८ को सतलाल धर साली में आकर मिला।

१०-८-३२ को पापहरण नाग पर टिकालाल खज़ांची आकर मिले और उनके साथ अमरनाथ दर्शन जाने को निश्चय हुआ। ऐश मुकाम पहुंचने पर **श्रीनगर के एक बड़े विद्वान् 'हरभट्ट शास्त्री' से परिचय हुआ** और काफी बातचीत भी हुई यू. पी. के एक ब्रह्मचारी के साथ संस्कृत में काफी वितण्डापूर्ण वाद विवाद भी हुआ। काशी के अन्नपूर्णा मन्दिर में इसे पीछे कभी पूज्यपाद जी ने देखा था। ११-८ को पहलगाम पहुंचे। इन सभी जगहों पर पूज्यपाद जी को मनमोहक प्राकृतिक सौन्दर्य देखने को मिला। १२-८ को पहलगाम में ही "**बख्शी रूपचन्द के साथ परिचय हुआ**। १३-८ को प्रदोषव्रत हुआ। दूध और किशमिश पर निर्वाह किया। पारण एक दाने चावल पर किया। उस दिन रात को यात्रा **चन्दनवाड़ी** में रुकी। १४ को **वावजन** पहुंचे। घोड़े पर यात्रा की। वहां भी पं० हरभट्ट से काफी बातें हुईं। रात को बख्शी सुखराज के पास ठहरे। नीचे सुश्रमनाग (सुश्रवानाग) नाम की झील को देखा। अब तो लोग उस झील को शेषनाग कहते हैं। यह नाम उस झील को जम्मू और पंजाब के यात्रियों ने डोगरा शासकों के युग में दे दिया है। उसे देखने पर कादम्बरी में वर्णित '**अच्छोद सरोवर**' की स्मृति जाग उठी। १५-८ को हरभट्ट शास्त्री के आग्रह से चाय पी ली। १६-८ को मक्की की रोटी आधी खाकर घोड़े पर सवार होकर आगे चले। अमर गङ्गा में स्नान किया। दूसरी बार अमरेश्वर महादेव के दर्शन किए। (परन्तु इस बार सामान्य हिमलिंग के ही दर्शन हुए।) हरभट्ट शास्त्री से खूब परिचय हुआ। १७-८ को घोड़े पर सवार होकर जोजीबल आते हुए चन्दनवाड़ी पहुंचे। आज भी पं० हरभट्ट से बहुत बातें हुईं। १८-८ को वापिस पहलगाम आ गये। पीछे एक दिन सायङ्काल की गोष्ठी में पं० हरभट्ट ने किसी गलत बताई बात पर बड़ा ही हठ किया था, उपपत्ति देने पर भी वे कुछ भी नहीं माने थे। परन्तु १९-८ को जब प्रातः नदी पर वे मिले तो अपने उस अपराध के विषय में क्षमा मांगी। पूज्यपाद जी ने जब पूछा कि क्यों गलत बात पर इतना हठ किया तो बोले, "मेरी यहां बड़ी प्रतिष्ठा है। मुझे यहां लोग बड़ा भारी विद्वान् समझते हैं। यदि मैं अपनी गलती को सबके सामने स्वीकार कर लेता तो मेरी प्रतिष्ठा को बहुत हानि पहुंच जाती। आप कहीं से आएं हैं, और कहीं को चले जाएंगे। आपको प्रतिष्ठा रहने या न रहने से क्या फर्क पड़ेगा। तो मुझे अवश्य क्षमा कर दीजिए।" उसी दिन

वापसी यात्रा पर पूज्यपाद जी सिलीगाम के पास साथियों को छोड़कर बाईं ओर की पगडण्डी से तीन मील चलकर साली पहुंच गये और पापहरण नाग में ठहरे। दूसरे दिन अनन्तनाग होते हुए खन्नाबल से लारी पर श्रीनगर आ गये और पं० टिकालाल के घर ठहरे। ७ सितम्बर तक श्रीनगर में ही रहे। २३-८ को जन्माष्टमी हुई। पं० सतलालधर और श्रीनाथ प्रायः मिलते रहे। २६-८ को **श्रीनाथ को "सिद्धान्त कौमुदी" पढ़ाना आरम्भ किया**। सतलाल, सुखराज आदि मिलते रहे। २-९ को माधवानन्द सरस्वती मिला।

८-९-३२ को जियालाल के आग्रह से बारामुला गए। उनके पिता जी श्रीशिवजी फोतेदार वहां वन विभाग के दफ्तर में सुपरिंटेंडेण्ट थे। श्रीनगर से काफी देर से टांगे पर सवार होकर चले। रात को 'पलहालन' नामक गांव में किसी पण्डित के घर रहना पड़ा। दूसरे दिन प्रातः उठकर बारामुला पहुंच गये। मार्ग में कुछ फल खरीद कर खाए। 'संग्रामा' से टांगे पर चढ़े और बारामुला शिवजी के पास पहुंच गए। वहां एक ओर पण्डित के पास पं० श्रीधर काक नाम के कोई महात्मा ठहरे थे। उनके दर्शन १०-९ को पूज्यपादजी ने किए। ११-९ को भी उनसे मिले। १२-९ को बलकाकधर के डेरे पं० टिका लाल खजांची आए थे। पूज्यपाद जी वहां उनसे मिलने गये। १३ को भी वहीं रहे। १४-९ को पुनः श्रीनगर आए और टिकालाल के घर रहे। १५-९ को सतलाल धर के घर गए। वे मिले नहीं। १६-९ को श्रीनाथ और भास्कर के साथ टिकालाल के घर भी गए। सायं श्रीनाथ और भास्कर के साथ कहीं घूमने गए। **"कल्याण वृष्टि स्तोत्र"** उसी दिन श्री टिकालाल जी को लिखकर दे दिया पाठ करने के लिए। १७-९ को काश्मीरी सन्न्यासी माधवानन्द के साथ बड़ा वाद विवाद हुआ। वह विधवा विवाह के पक्ष में हो गया था। १८-९ को 'सफा कदल' के एक पंडित के घर गये। उस पण्डित के पिता श्रीधर गाडरू ने पं० हरिभट्ट शास्त्री को तन्त्रालोक आदि ग्रन्थ पढ़ाये थे। कहते हैं कि श्री गाडरू के पास दुर्लभ पाण्डुलिपियों का बड़ा भारी संग्रह था जो घर में आग लगने से नष्ट हो गया था। कुछ एक पाण्डुलिपियां श्रीधरजू के पुत्र ने दिखाईं।

१९-९-३२ को पूज्यपादजी का मन अकस्मात् ही उदास और व्याकुल हो गया और कश्मीर से चले जाने की अकस्मात् इच्छा होने लगी। २० को भी चित्त उदास ही रहा। २१ को बहुत ही अधिक उदास हो गया। **२२-९ को हब्बा कदल में कश्मीरी पण्डितों और मुसलमानों में परस्पर लड़ाई शुरू हो गई और बिजली की तरह सारे शहर में फैल गई।** केवल अमीरा कदल शान्त रहा, क्योंकि वहां कश्मीरी पण्डित तब रहते नहीं थे। पंजाबी, डोगरे आदि हिन्दु रहते थे। अगले दिन २३-९ को झगड़ा अनन्तनाग आदि कस्बों में भी फैल गया। पूज्यपाद जी

पं० टिकालाल के घर में थे। पण्डितजी ने सावधान कर दिया कि आज घर से बाहिर नहीं निकलना चाहिए। इतने में श्रीनाथ जी आ गये तो दोनों पं० टिका लाल जी की नजर बचाकर निकल पड़े। आगे भास्कर जाड़ू मिला तो तीनों पब्लिक लाइब्रेरी को जाने के लिए अमीरा कदल की ओर चल पड़े। गांव कदल में केवल मुसलमान ही रहते थे। **वहां तीनों की मारपीट हुई, कपड़े भी फट गए, जूते छूट गए।** बड़े कष्ट से अमीरा कदल जाकर बख्शी रूपचन्द के घर में शरण ली। बख्शीजी ने पूज्यपाद जी को नई धोती पहना दी। फिर बड़े भयानक समाचार सुनने में आते रहे। सभी बहुत व्याकुल हो गए। पूज्यपाद जी २२-६ से ही तन्मयता से भगवान् से प्रार्थना करते रहे कि यह साम्प्रदायिक दंगा शान्त हो जाए। २३-६ को भी अहो रात्रि यही प्रार्थना करते रहे। उस दिन उन्हें ईश्वर कृपा से स्वयमेव ऐसा विश्वास हो गया कि दंगा शान्त हो ही जायेगा। फिर २५-६ को कश्मीरी हिन्दुओं और मुसलमानों के नेता लोग इकट्ठे मिलकर एक एक मुहल्ले में जाकर शान्ति स्थापना के प्रयोजन से एक साथ भाषण देने को निकले। तब उनके ऐसे सत्प्रयत्न से झगड़ा शान्त हो गया। उस दिन बख्शी सुखराज ने पूज्यपाद जी को नया जूता खरीदकर दे दिया। २६ को पूज्यपाद जी टिकालाल जी के घर को लौट आये। **इन पंक्तियों को लिखते हुए मुझे याद आ रहा है कि मैं भी तब श्रीनगर में था** और श्रीनाथ जी के विषय में बहुत चिन्ता से व्याकुल था। २६-६ को उनके डेरे पर जब गया तो वे पूज्यपाद जी के साथ झगड़े ही के विषय में संस्कृत भाषा में वार्तालाप कर रहे थे। श्रीनाथ जी भी सन्त्रस्त थे। अत: उन्हें इस बात की ओर ध्यान ही नहीं गया कि मेरा और पूज्यपादजी का परस्पर परिचय करा देते। अस्तु मैंने पूज्यपाद जी के दर्शन मात्र किए और उनकी संस्कृत बाणी को सुन लिया।

२६-६-३२ को पूज्यपादजी मट्टन गये। ३० को वहां से साली भी हो आए। और १-१० को श्रीनगर लौट आए। उस दिन नवरात्र आरम्भ हो गये। पूज्यपाद जी प्रतिदिन दुर्गा सप्तशती का पाठ करते रहे। निवास टिकालाल जी के यहां करते रहे। कुमारी पूजन भी किया। २-१० को शिवजी खर से मिले। ३-१० को शिवजी चिकन से परिचय हो गया। बड़े शान्त और सज्जन प्रतीत हुए। लोग उन्हें योगी समझते रहे। उपासक अवश्य थे। १०-१० को सतलाल धर के घर गये। वहां हारी देवी ने दो रुपये दिए। शिवजी खर के पास भी गये। वहां शिव जी चिकन और आनन्द कौल भी थे। ११-१० को प्रदोषव्रत रखा, परन्तु मौन रहने के नियम को छोड़ दिया। अड्डे पर जाकर जम्मू के लिए लारी का प्रबन्ध किया। अब की बार टिकालाल ने व्यवहार अच्छा नहीं किया, न जाने क्यों।

अध्याय १०

महारोग का दौर

११-१०-३२ को श्रीनगर से लारी काफी देर से चली और रात को काज़ी गुण्ड में ही रुकी। उस दिन प्रदोष केवल दूध पर ही निभाना पड़ा। १२-१० को ऊधमपुर से कुछ आगे जाकर लारी दुमेल नामक छोटे से पड़ाव पर ठहरी। रात वहीं कट गई। मार्ग में हरिराम नाम वाले सज्जन सेवा करते रहे। सोने के लिए खाट का प्रबन्ध वे ही करते रहे। आगे कुछ समय जम्मू और पंजाब के कई शहरों में ठहरते-ठहरते २०-११-३२ को कुराली पहुंच गए। तदनन्तर काफी समय तक कुराली में, नालागढ़ में और आस पास के ग्रामों में रहते रहे। नालागढ़ में १९३४ के जुलाई मास में पूर्वजन्म के किसी पाप कर्म के फलस्वरूप उन्हें एक महारोग ने घर लिया और सन् १९३५ के अप्रैल मास तक उस रोग ने उन्हें बहुत अधिक कष्ट दिया। उस रोग के शान्त होते होते ही वे गङ्गाजी की यात्रा को गए। वहां से पंजाब के कई एक नगरों से होते-होते जम्मू आ गए और वहां से पुनः कश्मीर आकर २४-८-३५ तक कश्मीर में बारामुला में रहे। तदनन्तर २६-६-३९ तक के पूज्यपाद जी के जीवनवृत्त का ब्योरा कहीं मिल नहीं रहा है। इस तरह से उस महारोग का दौर जुलाई १९३४ से अप्रैल १९३५ तक बहुत जोरों पर रहा। उस दौर के आगे-पीछे वाले समय की उनकी जीवन-गाथा इसी प्रकरण में विस्तार से दी जा रही है।

लारी प्रातःकाल चल पड़ी और १३-१०-३२ को पूज्यपाद जी नौ बजे जम्मू पहुंच गए। रात को श्री रघुनाथ मन्दिर के दाहिनी ओर के हनुमान मन्दिर में ठहरे। पुजारी ने फुलके खिला दिए। सायं राजपूत स्कूल के कश्मीरी पण्डित गणक जानकीनाथ धर के पास जाकर ठहरे। १८-१० तक वहीं रहे। भोजन निरञ्जन नाथ कौल के पास और निवास राजपूत स्कूल के एक कमरे में करते रहे। १९-१० को रेल द्वारा अमृतसर को चले। टिकट जानकीनाथ धर ने खरीद दिया। निरन्जन नाथ ने भी दो रुपए दिए थे। डेढ़ बजे अमृतसर पहुंचकर कश्मीरियों के शिवालय में ठहरे। वहां एक कश्मीरी पण्डित हरिराम

सेवा करते रहे । कभी-कभी कश्मीरी पण्डितानी ज्वाला देवी भी भोजन को बुलाया करती थी । ११ नवम्बर तक अमृतसर में रहे । **दरबार साहिब, दुर्गियाणा जलियाँ वाला बाग, रामतलाई आदि स्थानों** के दर्शन करते रहे । २७ कोप्रदोष व्रत हुआ । साबूदाना पर पारायण किया । ४-११ को तारामणि और हरियशानन्द साधु के साथ भ्रमण किया । ६-११ को एक पोलिस सिपाही से कुछ बहस हुई । ७-११ को जम्मू के एक ब्रह्मचारी से परिचय हुआ **८-११ को अमृतसर के प्रसिद्ध तार्किक पं० हरदत्त शास्त्री से भेंट हुई।** बातचीत से विदित हुआ कि वे तर्क और व्याकरण का आसरा लेकर स्मृतियों के उल्टे अर्थ किया करते थे। ज्योतिषी हरलाल को भी देखा। १०-११ को बिल्लामल के बाग जाकर वहां एक महात्मा के दर्शन किए । उन्हें तीन वर्ष पहले कश्मीर में भी देखा था । प्रदोष व्रत का पारायण साबूदाने पर किया ।

१२-११-३२ को ज्वाला देवी ने एक कमीज़ सिला दी। उस दिन रेल द्वारा 'निआष' आए । वहां से पैदल 'कोठ' नामक गांव में पहुंचे । वहां के एक सन्यासी ने अपनी कुटी में रहने नहीं दिया। फिर एक धर्मशाला में ठहरे । लोगों की बातें सुन-सुनकर इस निर्णय पर पहुंच गए कि उस स्थान पर रहना ठीक नहीं है। रात को कुछ भी नहीं खाया । **१३-११** को व्यास में नहाकर एक गांव में दो रोटियां खाकर और कुल **१७** मील चलकर रात को कपूरथला पहुंच गए । वहां सनातन धर्म सभा के भवन में ठहरे । खाया कुछ नहीं । **१४-११** को प्रातः स्नान आदि करके ब्रह्मकुण्ड के पास एक साधु के कहने पर उसके पास रोटी खाई । **१५-११** को वहां से टांगे द्वारा जालन्धर आए । वहां छः पैसे के केले खाए । वहां एक समाजी और एक खत्री से परिचय हो गया । वे लाहौरियों के मन्दिर में ले गए । वहां एक कोठरी में कई दिन ठहरे—**१९-११** तक वहां एक ब्राह्मण बालक कृष्णचन्द्र से परिचय हो गया रात को दूध लेकर पिया। १६ को दूध और फेनी लेकर निर्वाह किया । **१७** को देवी तालाब गए । वहां संस्कृत के एक ब्राह्मण छात्र नन्दलाल से परिचय हो गया । उसने रोटी लाकर खिला दी । रात को मन्दिर में निवास किया । खाया कुछ भी नहीं । १८-११ को श्यामसुन्दर नाम का संस्कृत विद्यार्थी किसी मारवाड़ी के घर में ले गया और वहाँ भोजन खिलाया । **१९** को स्नान के अनन्तर श्याम सुन्दर के व्यवहार में उपेक्षाभाव को देखकर दही, मीठा, केला और रबड़ी लेकर निर्वाह किया।

२०-११-३२ को रेल द्वारा कुराली को चले । रेलगाड़ी के बीच में ही बन्द हो जाने पर सरहिन्द से पैदल चले **'बसी'** में दूध पीकर चले । आगे टांगे के द्वारा सायं **कुराली** पहुंच गए । वहाँ **मुकुन्द बल्लभ मिश्र** के घर ठहरे । रात को भोजन हरदेव के घर में किया । कई महीने कुराली में ही रहे । भोजन प्रायः

हरदेव त्रिवेदी के घर करते रहे और निवास राजपूतों की चौखण्डी के एक कमरे में करते रहे। ज्योतिषी मकुन्द वल्लभ जी मैत्रीपूर्ण व्यवहार करते रहे। २-१२ को हरदेव को श्री मद्भागवत प्रथमाध्याय पढ़ाया २२-१२-३२ को भैरवमहोल्लास का लिखना प्रारम्भ किया। फिर २४-१२ तक कुराली में ही रहते रहे। हरदेव को श्री मद्भावत पढ़ाते रहे। २५-१२ को **मुलांपुर** गरीवदास के ब्राह्मण **चण्डी प्रसाद** के साथ पहले तांगे से खरड़ गये फिर वहां से पैदल साढ़े पाँच कोस चलकर मुल्लापुर पहुंचे। प्रदोषव्रत का पारायण चण्डी प्रसाद के घर पर ही किया। चण्डी प्रसाद के पिता गङ्गा विष्णु यहां के बड़े पंडित माने जाते थे पूज्यपाद जी की परीक्षा लेने लगे थे परन्तु उनके शास्त्र सम्मत उत्तर सुन कर परास्त हो गये। मां बड़ी कर्कशा थी। पिता जी वैसे थे वड़े सरल सज्जन। २६-१२ को नित्य-कर्म से निवृत्त होकर वहां से साढ़े तीन मील की दूरी पर **जयन्ती देवी** के दर्शन को गये। वहां स्नान करके जगदम्बा के दर्शन किये और **'ददाति प्रति गृह्णाति'** चण्डी पाठ तथा **'रहस्य सहस्त्र' नाम** पाठ किया। वहां महामूर्ख धूर्त और पाखण्डी प० **सोमदत्त** से भेंट हुई। इसे पहले छोटा त्रिलोक पुर में देख चुके थे। पौन घण्टा इसके आग्रह से वहां रुक कर उसकी बड़ बड़ सुनी। जयन्ती देवी का मन्दिर पक्का बना था। इसे राजा गरीब दास ने बनवाया था। फिर वापिस मुल्लांपुर आकर चण्डी प्रसाद के सगोत्र पं० आर्यानन्द, आत्मा राम के घर भोजन किया। ये गौड़ ब्राह्मण थे। रात्रि निवास भी इन्ही की बैठक में किया। चण्डी प्रसाद के पिता से शास्त्र चर्चा हुई जिसमें उनका पाण्डित्याभिमान शान्त कर दिया। मुल्लांपुर एक पुराना कस्वा है। इसे राजा गरीबदास न बसाया था। सिख गुरु गोविन्द सिंह से बहुत पहले की बात है। २७-१२ को वहां से पैदल खरड़ आये और वहां से लारी द्वारा कुराली वापिस पहुचे।

६-१-३३ को वहां योगी गुरु उपन्यास का संस्कृत अनुवाद करना आरम्भ कर दिया। योगी गुरु के अनुवाद को लिखने का काम कई दिनों तक चलता रहा। निवास भी चौखण्डी में ही करते रहे। भोजन कभी मकुन्दवल्लभ के घर से भी आता रहा ६-१-३३ को प्रदोष ब्रत का पारायण हरदेव के घर हुआ। ११-१-३३ को जियालाल फोतेदार के द्वारा बारामुला से भेजा हुआ आठ रुपये का मनीआर्डर मिला। १२-१-३३ को एक राजपूत के घर में मकुन्द वल्लभ के बदले पूज्यपाद जी ने ही गरुड़ पुराण की कथा वांच दी।

१२ जनवरी को वहां एक ब्रह्मचारी **"ज्येष्ठानंद"** आ गया। १३-१ को मकर संक्रान्ति हुई। उस दिन ज्येष्ठानन्द से काफी वार्तालाप हुआ। वह जम्मू रियासत में कठूआ के आसपास का था। काफी दूर-दूर तक घूमा हुआ था। संस्कृत उसने कुछ-कुछ पढ़ी थी। विशारद परीक्षा में उत्तीर्ण था। आयुर्वेद,

ज्योतिष, हठयोग आदि सीखने में उसे काफी रुचि थी। किसी सिद्धयोगी गुरु की तलाश में था। उसका शरीर हृष्ट-पुष्ट और बलवान् था। पूज्यपाद जी ने उसे **"कपूरंस्तवराज"** की प्रयोगविधि बता दी। दो-तीन दिन से हाथ की अंगुलियों में दर्द होने से कुछ लिखा नहीं जा सका। १८-१-३३ को ज्येष्ठानन्द को **"संकेतनिधि"** का एक गुरुगम्य संकेत बता दिया। अंगुलियों का दर्द धीरे-धीरे शान्त होने लगा। २५-१-३३ तक कुराली में ही रहे। २६-१-३३ को **'बरोली' सरदार काबुल सिंह** के घर गए। ज्यो॰ मकुन्द वल्लभ ने उसे पुत्र प्राप्ति के लिए **"सन्तान गोपाल मन्त्र"** की साधना बता दी थी। उसी के द्वारा कराए गए उसके अनुष्ठान के फलस्वरूप उसकी तीसरी पत्नी ने एक पुत्र को जन्म दिया। उस समय काबुल सिंह की आयु साठ वर्ष की थी। उसके छोटे भाई सम्पूर्ण सिंह द्वारा भी चार ब्राह्मणों के द्वारा मृत्युञ्जय का अनुष्ठान कराया गया। भोजन काबुल सिंह के यहां हुआ। पूज्यपाद जी हरदेव त्रिवेदी के साथ रात को 'बरौली' में ही रहे। उनकी अंगुलियों का दर्द जाता रहा। २७-१-३३ को कुराली लौट आए। उस दिन हरदेव त्रिवेदी को **"लघु पाराशरी** के कुछ श्लोक पढ़ा दिए। २८-१-३३ को खिचड़ी स्वयं पकाकर खा ली। २९-१-३३ को 'घड़ूआ' हो आए। साथ हरदेव था। वहां माधव खत्री ने एक सेर पक्का शहद आग्रह पूर्वक पकड़ा दिया। इसी तरह से ३१-१-३३ तक 'बरौली में ही रहे। **उसके पश्चात्** २०-७-३४ तक का **पूज्यपाद जी का जीवन वृत्तांत कहीं मिल नहीं रहा है।** उनके ग्रन्थों का अवलोकन करने से विदित होता है कि उन्होंने **"राष्ट्रालोक"** नामक ग्रंथ का **निर्माण सन्** १९३३ के फरवरी मास में किया था। तदनन्तर वे उसी वर्ष के मई मास में नालागढ़ में स्वनिर्मित आत्मविलास की एक एक कारिका पर हिन्दी भाषा में लम्बे-चौड़े व्याख्यान सुनाते रहे जिन्हें पं लब्भुराक साथ-साथ लिखते गए। वे ही व्याख्यान पश्चात् आत्मविलास की सुन्दरी नाम की हिन्दी व्याख्या के रूप में प्रकाशित हुए। अनुमानतः तो यही कहा जा सकता है कि १-२-३३ से २०-७-३४ तक के लगभग डेढ़ वर्ष के समय में पूज्यपाद जी नालागढ़ और कुराली में तथा उन दो नगरों के आसपास के ग्रामों में रहते रहे। परन्तु उनके भक्तजनों ने जो उनके संस्मरण लिखे हैं उनसे ऐसा भी प्रतीत होता है कि सन् १९३३ में वे लाहौर आदि नगरों में भी कुछ समय रहते रहे। फिर स्वभावतः उनका किसी एक ही स्थान पर अधिक समय तक चित्त लगता नहीं था। अतः इधर-उधर घूमा ही करते रहे होंगे। अतः यह कहा जा सकता है कि लाहौर आदि नगरों में कुछ समय घूमघाम कर १-८-३४ के ग्रीष्मकाल में पुनः कुराली नालागढ़ क्षेत्र में ही रहते रहे।

मट्टन के श्री जियालाल फोतेदार लिखते हैं कि पूज्यपाद जी ई॰ सन

१९३३ में लाहौर में उनके साथ उनके होस्टल में महीना भर ठहरे परन्तु अपना परिचय किसी को नहीं दिया न ही अपना वैदुष्य किसी के सामने प्रकट किया। जियालाल जी को भी इस विषय में मना किया। यदि फोतेदार महोदय की स्मृति ठीक हो तो वह एक महीने का समय १-२-३३ और २०-७-३४ के ही बीच में कहीं आ सकता है। वहां पूज्यपाद जी गुप्त रूप से क्यों रहे, इस विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता। वे आगे कई वर्ष अज्ञातवास में रहे। उस विषय पर आगे प्रकाश डाला जाएगा। परन्तु १९३३ में अज्ञात रहने के प्रयोजन का कुछ पता नहीं लग रहा है। एक बात सम्भव है। वह यह है कि **वे बाल्य अवस्था से ही बड़े देश भक्त थे और भारत वर्ष को स्वतन्त्र देखने के लिए बड़े उत्सुक थे**। तदनुसार जहां-तहां समुचित वार्तालाप करते रहते थे। भरतपुर के श्री सम्पूर्णदत्त मिश्र के कहे अनुसार सरदार भगतसिंह के साथी **श्री राजगुरु उनके बालसखा थे**। इन कारणों से गुप्तचर विभाग के जासूस जहां-तहां उनके पीछे पड़े रहते थे। सम्भवतः उसी कारण से लाहौर में गुप्तरीति से रहे हों।

श्रीराष्ट्रालोक के उपसंहार श्लोक में पूज्यपाद जी ने बताया है कि उस ग्रन्थ का निर्माण वि० सं० १९९० में फाल्गुन मास में किया गया। तदनुसार वह कार्य सन् १९३३ के फरवरी मास में किया गया होगा। वह निर्माण किस स्थान पर रहते हुए किया, इस बात की ओर उन्होंने कोई संकेत नहीं दिया है। बहुत सम्भव है कि पंजाब में ही कहीं उसका निर्माण हुआ होगा; क्योंकि सन् १९३३ के शीतकाल में वे पंजाब में ही विचरण करते रहे।

पूज्यपाद जी की दैनन्दिनी के अनुसार उन्होंने अपना १९३४ का जन्मोत्सव जुलाई में नालागढ़ में मनाया। साथ ही उसमें लिखा है कि उन दिनों वे वहां महाभारत की कथा करते रहे और सायंकाल को हरिकीर्तन भी कराया करते थे। परन्तु वहां यह नहीं लिखा गया है कि किस तारीख से ये दो कार्य वहां आरम्भ कर दिए थे। उस बात से ऐसा प्रतीत होता है कि ये दोनों कार्य उनके जन्मोत्सव से काफी समय पहले ही से चलते आ रहे थे। उससे ऐसी बात सिद्ध होती है कि १९३४ सन के जन्मोत्सव से काफी समय पहले से ही वे वापिस नालागढ़ आ चुके थे और काफी समय से वहीं रहते आए थे फिर सिद्ध महारहस्य में जो "प्रभोशम्भो" महामन्त्र के दर्शन के निर्माणकाल और निर्माण स्थान का निर्देश उन्होंने किया है उससे भी यही सिद्ध होता है कि वे जन्मोत्सव से काफी समय पहले से ही नालागढ़ में ही रहते आए थे। महामन्त्र के निर्माण (या दर्शन) के विषय में आगे इसी प्रकरण में विस्तार से लिखा जा रहा है। फिर उन्होंने आत्मविलास की हिन्दी व्याख्या (सुन्दरी) का निर्माण १९३३ के मई मास में नालागढ़ में ही किया था। इस बात का वर्णन भी आगे किया जा रहा है। तदनुसार भी वे

लगभग अप्रैल १९३४ में ही पुनः नालागढ़ आकर कई महीनों से वहीं रहते आए होंगे। जैसा कि पीछे कहा गया है मट्टन के जियालाल फोतेदार लिखते हैं कि सन् १९३३ में पूज्यपाद जी उनके साथ लाहौर में मास भर रहे। तदनुसार इस अवधि में वे कभी-कभी लाहौर अमृतसर भी पधारे होंगे। बहुत सम्भव यही है कि १९३३ के प्रारम्भ से जुलाई १९३४ तक का वह डेढ़ वर्ष का समय उन्होंने पंजाब में ही इधर-उधर घूमते बिताया होगा। आगे उनके कुछ ग्रंथों का प्रकाशन रोपड़ के पास स्थित **बहरामपुर** नामक गांव में हुआ। हो सकता हैं कि उस गांव के उनके सेवक **सावणराम कर्ताराम** आदि से भी उन्हें इसी बीच में परिचय हो गया हो। आगे चण्डीगढ़ के आस-पास वाले ग्रामों में भी पूज्यपाद जी बहुत घूमा करते थे। मर्त्यजीवन में बहुधा वे चण्डीगढ़ के निकट **सोहाणा** नामक गांव में जाकर रहा करते थे। उन ग्रामों के लोगों के साथ उनकां प्रथम परिचय कब हुआ था इस बात को वे लोग ही जानते हैं। पूज्यपाद जी के लेखों में उस बात का स्पष्टीकरण करने वाले कोई भी उल्लेख या संकेत नहीं मिल रहे हैं। अस्तु।

नालागढ़ में पूज्यपाद जी धर्मसभा के भवन के एक कमरे में रहा करते थे। उस नगर के अनेकों ही सज्जन उनकी सेवा किया करते थे तथा उनके वैदुष्य से तथा आध्यात्मिक ज्ञान-विज्ञान से लाभ भी उठाते रहे। वहां विविध विषयों पर गोष्ठियां होती रहीं। भोजन या तो पं० लब्भुराम के घर या मंदिर में या किन्हीं अन्य सज्जनों के घर करते रहे। उन दिनों पूज्यपाद जी भगवान् दुर्वासा के द्वारा सिखाई गई शाम्भवी योगसाधना का अभ्यास नियमपूर्वक किया करते थे। घर छोड़ने से पहले भी और घर छोड़ने के पश्चात् भी अभ्यास नियम पूर्वक चलता ही रहा। परन्तु कष्टमयी यात्राओं में कभी-कभी नियम सर्वथा तन्मयता से नहीं चलाया जा सका था। विशेष करके कुलू की कष्टमयी यात्रा में और आगे बार-बार ज्वर आने के कारण से भी नियम में प्राय: भंग आया करता था। इस उत्तरपूर्वी पंजाब की यात्रा के समय ज्वर का प्रकोप काफी शान्त हो गया था। उधर की सज्जन-जनता सम्मान भी करती थी। अनेकों भक्तजनों और जिज्ञासुओं से सम्पर्क होता रहा। विशेष करके नालागढ़ में कईएकजिज्ञासुओं कोक ई एक शास्त्र पढ़ाते भी रहे। किसी-किसी पात्रभूत सज्जन को मंत्रोपदेश भी दिया करते रहे। नालागढ़ में धर्मसभा के भवन में बहुत आनन्दपूर्वक रहते हुए बड़ी तन्मयता से नियमपूर्वक शाम्भवी योगसाधना के अभ्यास का आस्वाद लेते रहे। एक दिन वहां एक अति विचित्र घटना घटी—

उस दिन पूज्यपाद जी ज्योंही प्रातःकाल के अभ्यास से और दैनिक मन्त्र जप और स्तोत्र पाठ से निवृत्त हो गए त्योंही उनकी वाणी में एक **शिखरिणी**

छन्द का श्लोक अकस्मात् स्फुरित हो गया। उन्होंने उसे झट एक कागज पर लिख डाला। तदनन्तर दोपहर का भोजन करने के पश्चात् उन्होंने जब उस कागज को उठाकर फिर पढ़ा तो एक योग्य वैयाकरण होने के नाते उन्हें ऐसा विचार हुआ कि उस श्लोक में एक समस्त पद व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध है श्लोक लिखा ऐसा था—

प्रभो, शम्भो, दीनं विहित शरणं त्वच्चरणयोर्
भवारण्यादस्माद् विषम-विषयाशीविष-वृतात्।
समुद्धृत्य श्रद्धाविधुरमपि बद्धादरकरं
दयादृष्ट्या पश्यन् निजतनयमात्मीकुरु शिव॥

इसमें पूज्यपाद जी को "बद्धादरकरम्" इस समस्तपद के विषय में अशुद्धि की शंका हो गई। इस पद को 'निजतनयं पद का विशेषण समझते रहे। उस रूप में समास होना चाहिए था "आदरबद्धकरम्" (अर्थात् आदरपूर्वक हाथों को जोड़े हुए अपने इस पुत्र को) आत्मीकुरु (अपना लो)। यदि श्लोक में 'आदरबद्ध करं', इस प्रकार के समस्त पद को रखा जाता तो शिखरिणी छन्द टूट जाता, क्योंकि गुरुलघु अक्षरों का वह क्रम नहीं रहता जो वहां होना चाहिए था। तब उन्होंने ऐसा संकल्प किया कि श्लोक की तीसरी पंक्ति, सारी की सारी बदल देनी पड़ेगी। ऐसा संकल्प करके श्लोक को वैसे ही रख छोड़ा। उसी समय पंक्ति को नहीं बदल दिया।

सायंकाल को ज्योंही पूज्यपाद जी दैनिक अभ्यास से निवृत्त हो गए, त्योंही एक अति विचित्र घटना घटी। अन्धेरे कमरे में अकस्मात् उजाला हो गया और एक तेजस्वी महापुरुष सामने प्रकट हो गया। उसकी दाढ़ी खूब लंबी थी, शरीर पर घने रोएं थे, सिर के बाल भी खूब घने थे। आंखें बिजली की तरह चमक रही थीं। दृष्टि से और चेष्टाओं से उनके हृदय का वात्सल्य भाव टपक रहा था। दाएं हाथ की तर्जनी को ऊपर उठाए हुए वे गरजते हुए बोले **"यह श्लोक सर्वथा शुद्ध है, इसमें कोई भी परिवर्तन नहीं किया जाना चाहिए"** इस पर जब पूज्यपाद जी ने समस्त पद की अशुद्धता की शंका सामने रख दी तो वे बोले "इस समस्त पद को '**निजतनय**' पद का विशेषण मत बनाओ। 'विहितशरणं' पद से प्रकट होने वाली शरणागति की क्रिया के विशेषण के रूप में इसका अन्वय लगा दो और व्याख्या करो 'बद्धादरौ करौ यस्मिन् कर्मणि यथास्यातां तथा विहित शरणम्' अर्थात् आदरपूर्वक हाथों को जोड़े हुए शरण में आए हुए (निजतनयं) अपने पुत्र को (आत्मीकुरु) पुनः पूरी तरह से अपना लो।" इस प्रकार की व्याख्या से ज्योंही पूज्यपाद जी की बुद्धि सन्तुष्ट हो गई, त्योंही वे महापुरुष अदृश्य हो गए। इस घटना से पूज्यपाद जी इस निश्चय पर पहुंच गए कि यह श्लोक वस्तुतः और मूलतः उनकी अपनी रचना नहीं है।

रचना किसी दिव्य महानुभाव की है और भगवान् शिव की कृपा से ही उनकी वाणी में अकस्मात् ही स्फुरित हो गई है। ऐसा निश्चय कर चुकने पर उन्होंने इस श्लोक को एक सिद्ध महामन्त्र के रूप में घोषित कर दिया। तब से आज तक अनेकों सज्जनों की अनेकों समस्याएं इस मन्त्र के अभ्यास से सुलझ गईं और उनकी अनेकों सत्कामनाएं पूरी हो गईं।

जैसा कि पूज्यपाद जी ने स्वयं सुनाया है, और सिद्धमहारहस्यम् में लिखा भी है उसी वर्ष मई के महीने में उन्होंने नालागढ़ में अपने आत्मविलास की व्याख्या करते हुए कई दिन वहां कथा की। अनेकों ही सज्जन व्याख्या सुनते रहे। उनमें से श्री लभुराम जी उसे साथ-साथ लिखते भी गए। सम्भवतः वे हिन्दी "शार्ट हैण्ड" लिखने में काफी निपुण रहे होंगे, तभी तो सुनते-सुनते ही उसे पूरी तरह लिखते गए (आगे १६३७ में उसका प्रथम प्रकाशन अमृतसर में हुआ)। यह घटना भी बड़े ही महत्व की है। आत्मविलास का निर्माण कश्मीर देश में कण्ठ भट्ट नामक ब्राह्मण के उद्धार के लिए हुआ और उसकी सुन्दरी नामक विस्तृत हिन्दी व्याख्या की रचना नालागढ़ के भक्तजनों के उद्धार के लिए हुई। इस बात पर उन सज्जनों को गर्व होना चाहिए। उन्ही के निमित्त से वह व्याख्या हम जैसे लोगों के पास भी पहुंच गई।

पूज्यपाद जी ने एक बार ऐसा भी सुनाया था कि उन्होंने नालागढ़ में कभी नव दुर्गा के दिनों जब सप्तशाती की कथा की थी तो वहां का एक सिक्ख तरखान रामसिंह उनसे बहुत प्रभावित हो गया और अध्यात्म विषय पर काफी पूछताछ करने लगा। उसके हृदय में आत्मब्रह्म तत्व की सच्ची जिज्ञासा समुदित हो गई। तदनुसार वह साधना करने पर भी तैयार हो गया। तब पूज्यपाद जी ने भाई रामसिंह को शाम्भवी योग साधना सिखा दी और कुछ समय पश्चात् वह घर छोड़कर परिव्राजक बन गया। पूज्यपाद जी के आदेश के अनुसार वह सदा अपने पास एक बड़ा सा प्याला भी रखा करता था। उस प्याले में जितना अन्न समाता था उतना ही वह भिक्षा करके खाया करता था। लगभग एक वर्ष में कम से कम एक बार पूज्यपाद जी के दर्शन को वहीं आता था जहां वे उस समय ठहरे होते थे। पूज्यपाद जी के कथनानुसार उसे आत्म साक्षात्कार हो गया था। परन्तु प्राक्तन अब्राह्मण संस्कारों के प्रभाव से शुद्धि-अशुद्धि के विषय में ध्यान देना व्यर्थ समझने लगा था। इस बात पर पूज्यपाद जी ने उसे एक बार डांट भी दिया था, क्योंकि आत्मदर्शी महानुभाव को भी लोकसंग्रह के लिए शास्त्र-सम्मत आचार पालन अवश्य ही करना चाहिए।

जीवन के अन्तिम दिनों में भाई रामसिंह श्रीनगर में घूमता रहा। सदैव प्याले में अन्न खाने के कारण उसे वहां लोग "प्याला बाबा" कहा करते थे।

एक दिन घूमते हुंए निशात बाग के पास स्वामी लक्ष्मण जू के आश्रम में पहुंचा। वहां कोई विशिष्ट उत्सव था। उसे भी प्रसाद लेने का निमन्त्रण दिया गया। तदनुसार उसे एक थाली में खीर परोस दी गई। हरी-हरी घास पर थाली रखी गई थी। भाई रामसिंह खीर खाने लगे। इतने में कहीं से एक कुत्ता पास आ गया। खीर की सुगन्ध से उसकी जिह्वा लपलपाने लगी और वह पास आकर थाली में से खीर चाटने की चेष्टा करने लगा। ऐसा देखते हुए भाई रामसिंह ने अपने हाथ से आधी खीर को कुत्ते की ओर धकेल दिया और आधी को अपनी ओर। दोनों एक ही थाली के एक-एक ओर से एक साथ खीर खाते गए। आगे शीतकाल आ गया। भाई रामसिंह को ठण्ड लगती थी तो स्वामी लक्ष्मण जू ने अपनी बहुमूल्य लोई उसे ओढ़ने को दे दी। शीतकाल के बीत जाने पर उसने किसी दुकान पर पतली-पतली चमकी टाट का थान देखा। उससे ढाई गज़ × डेढ़ गज टाट मांग कर ले लिया। उसे ही शरीर पर लेपेटते हुए बहूमूल्य कश्मीरी लोई को फेंक दिया। फिर शीत-काल आया तो पुनः ठिठुरने लगा। फिर रणवीरगंज के एक धनाढ्य खत्री से दुस्सा मांग लिया। उसने भी जरा हल्के मूल्यवाला दुस्सा खरीद कर दे दिया। उसे लेकर फिर स्वामी जी के पास जाकर उन्हें दिखा दिया। स्वामी जी ने अपने दुस्से के साथ तुलना करवाते हुए कहा कि यह तो एक निकम्मा दुस्सा है। फिर क्या था। तभी जाकर खत्री की दुकान पर पहुंच गए और दुस्सा जोर से उसके सिर पर दे मारा और बिना कोई बात सुने वहां से लौट गया। सप्ताह भर के अनन्तर जब स्वामीजी ने देखाउसे कहीं से एक अच्छी मूल्य का दुस्सा उसे मिल गया था। उसे भी स्वामी जी ने जब भली भांति देखा तो उसकी खूब प्रशंसा की। उसी वर्ष श्रीनगर में वजीर बाग में स्वामी लक्ष्मणजू की प्रधान शिष्या श्रीशारिका देवी के बड़े भाई श्री जवाहर लाल सोपुरी के घर में कुछ समय बीमार पड़ा रहा और वहीं अपने मानव शरीर को छोड़ गया। वह नया ही दुस्सा शव यात्रा के समय उसके शरीर के ऊपर डाला गया! पूज्यपाद जी ने नालागढ़ में दुर्गा सप्तशती की वह कथा कब की थी इस बात का उल्लेख उनके लेखों में कहीं नहीं मिला। बहुत सम्भव यही है कि वह कथा सन् १९३३ के शरत् काल के नवरात्रों में की होगी। उस समय तो वे नालागढ़ में ही विराजमान थे। आगे १९३४ में वहां वे महाभारत की कथा करते रहे, और वह भी जून जुलाई में। यह भी हो सकता है कि मार्च १९३४ में उधर आकर वासन्तिक नवरात्रों में वह कथा की हो जिसके कारण से भाई रामसिंह का उद्धार हो गया।

सन् १९४७ के शीत काल में एक अनन्य भक्त पूज्यपाद जी के दर्शनों के लिए स्यालकोट में आकर वहां उनसे जब मिला था, तब मैं भी वहीं था। उस

महानुभाव ने अपना परिचय हम लोगों को नहीं बताया। पूज्यपाद जी ने उसका परिचय हमें नहीं दिया, यद्यपि श्री कस्तूरी लाल आनन्द ने उसे जानने के लिए यत्न भी किया था। सम्भवतः वह भी भाई रामसिंह जैसा कोई साधक था। भाई रामसिंह का उल्लेख पूज्यपाद जी की डायरियों में कई स्थानों पर मिलता है। परन्तु स्यालकोट में आकर मिलने वाले शिष्य का परिचय उन्होंने कहीं नहीं लिखा है। हमने उन्हें एकान्त में बातें करते देखा और यह भी देखा कि विदा होते समय उसने पूज्यपाद जी को पूरा दण्डवत प्रणाम किया, प्रणाम मुद्रा में कई एक क्षण लेटा ही रहा फिर उठकर चला गया। शरीर की आकृति से पंजाबी प्रतीत होता था। बाद में भी उनका कोई पता नहीं लगा।

२१-७-१९३४ को पूज्यपाद जी ने अपना जन्मदिन धूमधाम से नालागढ़ में मनाया। उस दिन उनके मानव जीवन के ३१ वर्ष पूरे हो गए और बत्तीसवें में प्रवेश हो गया। चालीस सज्जनों ने भोजन खाया। खर्च श्री नत्थूराम आदि ने किया। हरदेव त्रिवेदी के द्वारा मृत्युञ्जय स्तोत्र के १०८ पाठ करवाए। ऐसा प्रतीत होता है कि पूज्यपाद जी ज्योतिष विद्या के द्वारा पहले जान गए थे कि उस वर्ष उनका स्वास्थ्य बहुत बिगड़ जाएगा अन्यथा मृत्युञ्जय स्तोत्र का पाठ क्यों करवाते? २१-७ से एक महीने के लिए तिल-तण्डुल के द्वारा शिवपूजन भी आरम्भ कर दिया। १३-१०-३४ तक वे नालागढ़ में ही रहे। वह भोजन कभी लब्भुराम के घर करते रहे और कभी मन्दिर में। वहां बहुत से सज्जन उनके भक्त बन गए। धर्मसभा के भवन में एक कमरे में रहते रहे। प्रतिदिन महाभारत की कथा करते रहे। सायं प्रतिदिन हरि-कीर्त्तन भी होता रहा। इस तरह से बड़े सत्सङ्ग का कार्यक्रम चलता रहा। उन्होंने उधर के अनेकों सज्जनों को शिवमन्त्र की दीक्षा भी दे दी। उनके द्वारा वहां उनकी विधिवत् गुरु पूजा भी की गई। आस पास के ग्रामों से भी कई एक सज्जन उधर आकर सत्सङ्ग का लाभ उठाते रहे। २४-७-३४ को वहां विधिवत् प्रदोष व्रत हुआ। वहां भोजन आरम्भ में अधिकांशतः श्री लब्भुराम के घर करते रहे, पश्चात् पं० सन्तराम के घर भी कभी-कभी कोई-कोई अन्य सज्जन भी बुलाया करते थे। इस तरह से लगभग अप्रैल से जुलाई तक का समय वहां विशेष उत्साह के वातावरण में बीत गया। आगे बड़ा ही कष्ट भी भोगना पड़ा। उन्हें भयङ्कर भगन्दर रोग हो गया जो महीनों ही प्राणान्तकारी कष्ट देता रहा है।

सन् १९३४ के जुलाई मास में नालागढ़ में राजस्थान से आया हुआ **गोविन्दानन्द नाम का एक ब्रह्मचारी** पूज्यपाद जी के सम्पर्क में आया और काफी दिन नालागढ़ में ही रहा। वहां पूज्यपाद जी को जो हार्दिक आदर सत्कार मिलता रहा और उसके विपरीत जो उस ब्रह्मचारी की कुछ-कुछ अव-

हेलना जैसी हुआ करती थी उससे उसके हृदय में तीव्र ईर्ष्या और वैर का भाव उदित हुआ और लगातार बढ़ता ही गया। उसे लोग वहां जयपुरी ब्रह्मचारी कहा करते थे। बाहर से तो वह पूज्यपाद जी के प्रति बड़ी श्रद्धा का भाव प्रकट करता रहा। तभी तो २६-७ को पूज्यपाद जी ने उस पर विश्वास करते हुए उसे उनके लिए सर्वतोभद्र होम करने के लिए एक रुपय्या दे दिया। वस्तुत: वह उनका एक पूर्वजन्म का वैरी था। उस बात को पूज्यपाद जी तब नहीं जानते थे। आगे सन् १९३५ में जब वे तीसरी बार कश्मीर भ्रमण करते रहे तब बारामुला में उनका सम्पर्क **एक हिमाचली गृहस्थ सिद्ध चखमा बाबा के** साथ हुआ। उस बाबा से पूज्यपाद जी ने एक ऐसी साधना सीख ली जिसके अभ्यास से उन्हें अपने चार पूर्वजन्मों के जीवन की स्मृति उद्बुद्ध हो गई। तब उन्हें एक बात याद आ गई कि चौथे पूर्व जन्म में जब वे एक प्रतापी और वैभवशाली राजा थे तो उन्होंने अपनी राजधानी में एक ब्राह्मण युवा के साथ बड़ा ही अन्याय किया था यद्यपि वे उस जन्म में भी एक धर्मात्मा तथा उपासना करने वाले आर्य प्रकृति के शासक थे फिर भी प्रभुत्व के अधिकार के मद से मानव के हाथों कई प्रकार के अनुचित कर्म हो ही जाते हैं, राज्यलक्ष्मी ही ऐसी होती हैं कि कई बार राजा के सदाचार को लुप्त कर देती है। पूज्यपाद जी को यह बात भी विदित हो गई कि वही अन्याय का मारा ब्राह्मण जयपुरी ब्रह्मचारी के रूप में जन्म लेकर १९३४ में नालागढ़ के आस-पास परिव्रजन कर रहा था। परन्तु १९३४ में उनकी वह स्मृति सर्वथा सोई पड़ी थी। अत: उस पर आरम्भ में विश्वास करते रहे और वह उनके पास आता जाता रहा। २६-७-३४ को प्रात: हिरण्यगर्भ, ब्रह्मानन्द, शिवशरण इन तीन महानुभावों ने पूज्यपाद जी को गुरु मानकर उनकी पूजा की। एक एक रुपया दक्षिणा दे दी। ऐसी बातों से जयपुरी ब्रह्मचारी की ईर्ष्या और भी भड़क उठी। उस दिन महाभारत की कथा में ४६ अध्याय पूरे हो गए। लाला रघुनन्दन के यहां सत्यनारायण की कथा हुई। पूज्यपाद जी भी गए। ढाई आने चढ़ाए। २८-७ को पं० ब्रह्मानन्द को मिताक्षरा पढ़ाना आरम्भ किया। भारत कथा और हरिकीर्तन रोज चलते रहे। यह सब कुछ जयपुरी भी देखता रहा। ३०-७ को भोजन जयपुरी ब्रह्मचारी ही ले आया। उससे स्वास्थ्य में एकदम ढीलापन आ गया। तभी पूज्यपाद जी को इस बात का अनुभव हो गया कि "जयपुरी का अन्न अत्यन्त दुष्ट है।" ३१-७ को पूज्यपाद जी की गुदा में दर्द होने लगा और सूजन भी हो गई। बहुत दर्द होने लगा। वस्तुत: जयपुरी ने भोजन के साथ कोई विषैली वस्तु खिला दी थी। कथा अध्यापन, हरिकीर्तन का प्रोग्राम फिर भी चलता ही रहा। ४-८ को ब्रह्मानन्द को, **अधिकरण** कौमुदी को पढ़ाना आरम्भ किया। ७-८ को विधिवत् प्रदोषव्रत हुआ गुदा के भीतर फोड़ा बनता

गया । वह बहुत कष्ट देता रहा । परन्तु अध्यापन, कथा, हरिकीर्तन आदि प्रोग्राम लगातार चलते ही रहे ।

रोग दिन प्रति दिन बढ़ता ही गया । फिर १९-८-३४ को गुदा के फोड़े का आपरेशन डाक्टर रामशरण से करवाया । बहुत तकलीफ हुई । २०-८ को तिलतण्डुल द्वारा शिवपूजन (एक मास का) पूरा हो गया । भोजन पं॰ शान्ति स्वरूप रसाल के घर किया । उसने एक रुपय्या दिया । २८-८ को महाभारत के आदि पर्व की कथा पूरी हो गई । पुस्तक पर साढ़े सोलह रुपए चढ़े और एक अंगोछा भी । कीर्तिपुर का **वैरागी चरणदास** देखने आया । २५-८ तक भी फोड़ा अच्छा नहीं हुआ । २७-८ को मास्टर ज्ञानचन्द के साथ बड़े वाद विवाद हुए । अन्ततोगत्वा उसे बहुत सारी बातें माननी पड़ीं । ३१-८ को दो ढाई सौ लोग आए थे । जन्माष्टमी का पर्व था । पूज्यपाद जी ने जो भाषण दिया उस पर आर्यसमाजी काफी गर्म हो गए, परन्तु उनकी कुछ चली नहीं । ५-९ को एक गुप्तचर पीछे पड़ा । वह देशद्रोही मन्दिर में ही ठहरा, परन्तु दूसरे दिन चला गया पीछे भी उसे कांगड़ा मण्डल में 'गर्ली' ग्राम में मेलाराम की पाठशाला में देखा था । साधु के वेष में घूमा करता था । ६-९ को वहां से चला ही गया । ८.६.३४ तक पूज्यपाद जी नालागढ़ में ही रहते रहे ।

९-९-१९३४ को साढ़े नौ मील पैदल चलकर **रामशहर** पहुचे । आगे भोजन एक समय पं॰ भक्तराम, अर्जी नवीस के घर करते रहे और दूसरे समय पं॰ तुलसीराम वैद्य के किला देखा । १०-९-३४ को पूज्यपाद जी पं॰ लभ्भुराम के यहां भोजन करके चले और स्वर्गद्वारी रिवालसर पर पहुंचे । वहां दो दिन पं॰ भक्तराम के यहां ठहरे । ११-९ को नालागढ़ लौट आए । १५-९ को घाव भयानक प्रतीत हुआ । लाला द्वारकादास को 'भरतगढ़' भेजा, डाक्टर को बुलाने के लिए । १६-९ को डाक्टर ने फिर आपरेशन किया और बत्ती लगा दी । १८-९ को डाक्टर फिर आया और पट्टी कर गया । उस दिन एक और नया छिद्र प्रकट हो गया । जो गुदा के साथ ही एक इंच गहरा था । १९-९ से १४-१० तक नालागढ़ में खाट पर ही पड़े रहे । १५-९ से ही कथा वाचन, अध्यापन आदि रुका पड़ा रहा । १९-९ को डा॰ रामशरण ने फिर उस फोड़े का ओपरेशन किया । नवरात्रों में कन्यापूजन शुरू किया । १४-१०-३४ को डा॰ रामशरण कहने लगा कि रोग बड़ा भयानक है, अतः रोपड़ के हस्पताल में इसका इलाज होना चाहिए । तब उसी समय लारी से रोपड़ गए । वहां **लाला हरिरामपुरी वकील** के घर ठहरे । वहां डाक्टर प्रताप सिंह ने रोग की परीक्षा की और कहा कि घाव बड़ा भयानक है । इसका ओपरेशन लाहौर में हो सकता है । फिर वकील हरिराम ने एक जर्राह को दिखाने की सलाह दी । १५-१०-३४ को भोला नाम के एक मुसलमान नाई को बुलाकर दिखाया,

उसने कहा कि इस रोग का इलाज यद्यपि साधारणतया सम्भव नहीं फिर भी खुदा के नाम पर मैं इलाज कर दूंगा तदनुसार १६-१० को उस भोला नाई ने आकर दवा की, एक बत्ती लगा दी। उस बत्ती से जब प्राणान्त कष्ट हुआ तो सायं उसे निकाल दिया। १६-१० को घाव में से पीप निकलने लगी। भोला नाई ने आकर कहा कि अब घाव ठीक हो जाएगा। १-११-३४ को ऐसा प्रतीत हुआ कि घाव भर रहा है। भोला नाई को तीन रूपए दे दिए। तब तक हरदेव और मकुन्द वल्लभ कभी कभी देखने आते रहे। २-११ को घाव से पानी आने लगा। **साथ अर्श रोग भी प्रकट** हो गया। अब रोपड़ में जी उकताने लगा। **१५-१२-३४ बवासीर और भगन्दर दोनों रोग एक साथ बहुत कष्ट देने लगे**। दिसम्बर १६ और १७ को सोचते रहे कि अब इस असाध्य रोगों से ग्रस्त शरीर को छोड़ना ही चाहिए। अतः इच्छा यह होने लगी कि गङ्गा के तीर पर गङ्गा जी के ही भरोसे पर शरीर को रख छोड़ें। आगे जो होगा सो होवे तदनन्तर अगले दिन १७ को बवासीर का मस्सा भी फट गया। उससे भी पीप निकलने लगी। प्राणान्त कष्ट होने लगा।

मार्ग शुक्ल त्रयोदशी १८-१२-३४ को अतिविचित्र दिव्यातिदिव्य घटना घटी। उस दिन प्रदोष व्रत था। दिन को यह निश्चय किया था कि अगले दिन हरिद्वार चले जाएं वहां गङ्गा के तट पर अनशन करते रहें, जब तक महारोग से ग्रस्त यह शरीर छूट जाए। जाने का मुहुर्त्त भी १९-१२ का निकाला था और प्रायोपवेशन का पक्का निश्चय भी किया था। रात को कमरे में अकेले सोए थे। आधी रात बीत जाने पर कमरे में अकस्मात् एक दिव्य प्रकाश छा गया। **उस प्रकाश के भीतर एक दिव्य महापुरुष के दर्शन हुए।** प्रकाश उन्ही के शरीर से चारों ओर फैल रहा था जिसने रात को भी दिन जैसा बना दिया था। वह महापुरूष वृद्ध था, श्वेत वस्त्र उसने पहने थे। उसके बाल, रोऐ तथा भौहें सभी श्वेत थीं। अत्यन्त शान्त स्वभाव का था। उसके माथे से स्नेह मयी करुणा टपक रही थी। मीठी रसीली वाणी से वे पूज्यपाद जी से कहने लगे। "**हे पुत्र! शरीर त्याग की आपकी प्रतिज्ञा उचित नहीं है। सुख दुःख तो कर्म फलों का भोग होता है। आप के इस शरीर के अनेकों भोग अभी शेष हैं। अतः इस शरीर को अभी मत छोड़िए। भोगों को भोगते हुए जब प्रारब्ध कर्म क्षीण हो जाएंगे तो यह शरीर अपने समय पर स्वयं समाप्त हो जाएगा**" इस पर पूज्यपाद जी ने कहा, महारोगों से ग्रस्त शरीर के कारण अब मुझे प्राणान्त कष्ट हो रहा है। मेरी अत्यन्त मान हानि हो रही है। जिनके मुख को भी शायद मैं देखना नहीं चाहता उन्ही को अपनी गुदा के दर्शन कराने पड़ते हैं। अतः मैं इस शरीर को अब छोड़ ही देना चाहता हूं।" इस प्रकार का काफी संवाद उस दिव्य

महापुरुष से जब होता रहा तो वे बड़े स्नेह से और बड़ी शान्ति से लगातार समझाते रहे कि कर्म फल के भोग से पलायन उचित नहीं। भोग को शेष रखने में हित नहीं। इसे पूरा करने में ही हित है। बहुत लम्बे संवादों के द्वारा अन्ततोगत्वा उस महापुरुष ने जब पूज्यपाद जी से यह वचन ले ही लिया कि वे शरीर त्याग के संकल्प को छोड़कर प्रारब्ध कर्म के अनुसार कर्मफल के भोग को स्वीकार करते रहेंगे तो वे अदृश्य हो गए। आगे पूज्यपाद जी उसी तरह से नाई वाला इलाज कराते रहे। इस तरह आगे भी कई एक दिन रोपड़ में ही रहे। वकील हरिराम जी वहां सब प्रकार की सेवा करते रहे।

२१-१२ को वहां **'बूडमाजरा' का दिलाराम** आया। पूज्यपाद जी को बड़ा पाखण्डी और धूर्त्त प्रतीत हुआ उस रोज वहां सनातन धर्म कालेज लाहौर के प्रो० नन्दराम भी आए। कई दिन वहां रहे। वकील साहिब के घर में ठहरे थे। २२-१२ को पूज्यपाद जी के साथ उनकी काफी बातचीत हो गई। उसी दिन साधु चरणदास जीवणा नामक एक हिन्दु नाई जर्राह को 'रुडिआला' से लेकर आए। जर्राह ने घाव को देखकर उसकी चिकित्सा करने की जिम्मेवारी ले ली। फिर निश्चय यही हुआ कि कुराली जाएं और वहीं आकर वह जर्राह इलाज करे।

२३-१२-३४ को भोजन करके रेल के द्वारा कुराली आ गए। चलते समय हरिराम ने एक रुपया दे दिया। कुराली में हरदेव के यहां ठहरे। ३०-१२-३४ तक वहां रहे। दवाई जर्राह की लगाते रहे। कुछ आराम होने लगा। मणिभद्र मोदक नाम की औषध का सेवन करने लगे। उससे विशेष आराम आने लगा। जैसा कि पूज्यपाद जी ने मुझसे कहा है, आराम आने का एक विशेष साधन बन गया कुलू में त्रिशूलधारी दिव्य पुरुष के द्वारा दिया गया महामृत्युञ्य मन्त्र, जिसके अभ्यास से जर्राह की चिकित्सा सफल होने लगी। उसके अतिरिक्त कुराली के शिवमन्दिर में सात दिन सतत्तर (७७) पाठ मृत्युञ्जय-स्तोत्र के भी किए। एक दिन लाला हरिराम खबर लेने आए। दो कमीजें भी दे गए। कुराली में एक दिन पं० हरिभानु शास्त्री आकर मिले। फिर ३०-१२ को 'रुडिआला' से साधु चरणदास और तेन्दूसिंह आकर पूज्यपाद जी को उधर ही ले गए। चलते समय ढाई गज वाली दो धोतियां खरीद लीं, कीमत (एक रुपया एक आना) ज्यो० मुकुन्दवल्लभ ने दे दी। रुडिआला में साधु चरण दास के पास ठहरे। उन्होंने वहां पूज्यपाद की बड़ी सेवा की। कुराली से हरदेव तथा मुकुन्दवल्लभ और रोपड़ से हरिराम खबर लेने आते रहे। नालागढ़ से भी दस-बारह व्यक्ति खबर लेने कुराली आए थे। २७-१-३५ तक 'रुडिआला' में ही रहे। घाव में कभी सुधार होता रहा और कभी वह पुनः बिगड़ता रहा। पूरा आराम हुआ नहीं।

२७-१-३५ को प्रातः रुडिआला से दो मील पैदल 'सहोड़ा' गए। वहां से बैलगाड़ी पर 'बरौली' गए। साधु चरणदास, पं० नत्थूराम और ईश्वरदास वहां तक साथ आए। 'बरौली' में काबुल सिंह मर चुका था। उसकी स्त्रियों ने श्रद्धा पूर्वक ठहरने के लिए जब आग्रह किया तो वहां ३-२-३५ तक ठहर गए। ४-२-३५ को वहां से कुराली आ गए। चलते समय उन महिलाओं ने एक खद्दर का चोला और एक खेस दे दिया। भगन्दर का घाव और बवासीर का रोग अभी पूरी तरह ठीक नहीं हुए। ४-२-३५ से कुराली में मन्शी सिंह राजपूत की दुकान पर दुर्गा सप्तशती की कथा आरम्भ कर दी। भोजन हरदेव के घर करते रहे। १३-२-३५ से निवास चौखण्डी पर किया और भोजन हरदेव के पास ही। तबीयत पुनः खराब हो गई। १६-२-३५ को कथा पूरी हो गई। पोथी पर चालीस रुपए आठ आने चढ़े। उन्हें मुकुन्दवल्लभ के पास जमा कर दिया। १६-२-३५ को भोजन हरदेव के यहां करके रेल से रोपड़ गए। वहां लाला हरिराम के घर ठहरे। २०-२ को रेल से ही कुराली लौट आए। २४-२-३५ तक वहां निवास चौखण्डी पर और भोजन हरदेव के पास करते रहे। २४-२-३५ को नालागढ़ से आए हुए पं० सन्तराम के आग्रह से लारी द्वारा रोपड़ जाकर वहां लारी पर ही नालागढ़ चले गए। वहां निवास कालेगिर के शिवालय में करने लगे और भोजन पं० सन्तराम के यहां। ६-३-३५ को वहां बाजार में **मूर्तिपूजा पर व्याख्यान दिया।** स्वास्थ्य प्रायः बिगड़ा ही रहता गया। पेट में अष्ठीला होता रहा, अर्श और भगन्दर का रोग भी चलता ही रहा। प्रारब्ध ! लब्भुराम आदि सेवा करते रहे। ६-३-३५ को लारी से पुनः रोपड़ आ गए। चलते समय पं० लब्भुराम ने और पं० हरिराम पाधा ने एक-एक रुपैया दे दिया। कई आदमी रोपड़ पहुंचाने भी आए। रोपड़ से प० लब्भु राम के श्वशुर पं० जीवाराम के साथ लारी से 'कमालपुर' आ गए। वहां पं० जीवाराम के पास ठहरे। वहां से पं० विश्वम्भर वैद्य के पुत्र चन्द्रमणि के साथ डेढ़ मील चलकर '**बाल सण्डा**' आ गए। चलते समय जीवाराम ने पांच गज कपड़ा और एक रुपय्या दे दिया। रोग चलते ही रहे। बालसण्डा में वैद्य विश्वम्भर के घर ठहरे। कई दिनों से वे उधर आने के लिए आग्रह करते थे। ९-३-३५ से १३-३-३५ तक उधर ही रहे। पेट में और अन्तड़ियों में कई रोग बढ़ते गए। अतीव कष्टकारी प्रारब्ध का भोग चलता रहा। ११-४-३५ तक बालसण्डा में विश्वम्भर वैद्य के ही पास ठहरे। वैद्य जी और उनका पुत्र अतीव श्रद्धापूर्वक सेवा करते रहे। इलाज भी करते रहे। १५-३ को चित्रक का सेवन करने लगे। १६-३ से पुनः नमक खाने लगे। उस दिन श्री गोपाल शास्त्री आए। एक रुपैया दे गए। लाला हरिराम भी एक दिन आए थे। इन दिनों चित्रक और ऐरेण्ड का सेवन करते रहे। अष्ठीला रोग बहुत कष्ट देता रहा।

१०-४-३५ को नालागढ़ से आठ महानुभाव आ गए। ठहरे वैद्य जीके पास। वैद्य जी एक नया जूता भी ले आए। ११-४-३५ को सभी उठकर 'कमालपुर' से साढ़े तीन मील दूर सतलुज के तट पर गए। स्नान आदि तथा पूजन हवन आदि करके **दस महानुभावों को "षडक्षर शिवमन्त्र" का उपदेश दिया**। गुरु दक्षिणा में सबने मिलकर दस रुपए, तीन धोतियां, दो कमीजें और चार गज खद्दर दे दिया। उपदेश लेने वाले थे—(१) पं० चन्द्रमणि वैद्य (बालसण्डा) (२) पं० जीवराम (बरसालपुर) (३) पं० हरिराम "हकीर", (४) पं० हरिराम हकीम, (५) पं० लब्भुराम "लकीर", (६) उसका पुत्र भगवतीदास (७) पं० सन्तराम "सकीर", (८) उसका भाई पं० सूर्यमणि (९) पं० शिवशरण पाधा (नालागढ़) और (१०) लाला गणपतमल नालागढ़)। कमालपुर नहर का ओवरसीयर रोशनलाल और उसके दफ्तर के तीन कर्मचारी भी दीक्षा-उत्सव को देखने आए थे। हरिराम (रोपड़) भी आया था, पूज्यपाद जी के लिए जुराबें लाया था। उत्सव के पश्चात सभी लौटकर बालसण्डा आ गए।

१२-४-३५ को सभी अपने अपने घरों को चले गए। पूज्यपाद जी पैदल कुराली आ गए। वस्त्र वहां अपने प्रेमियों को बांट दिए। फिर रेल से राजपुरा आ गए। कुछ सामान वहां रखकर रात की गाड़ी से हरिद्वार गए। साथ पं० सन्तराम जी थे। स्नान किया। गंगा जी की पूजा की। भोजन आदि करके रात को जानकी दास की दुकान में सोए। नालागढ़ से उसके साथ परिचय हुआ था। तब उसने उधर आने के लिए आग्रह किया था। हरिद्वार में साधु निरंजनदेव को देखा तथा ब्रह्मचारी कृष्णदत्त को। १४-४ को रेल द्वारा ऋषिकेश गए। वहां कश्मीरी सन्यासी माधवानन्द मिला। उसने बताया कि मट्टन का श्रीनाथ तिक्कू भी उधर आया है। तब जाकर उससे मिले। गौतम नाग (कश्मीर) के मठाधीश महात्मा गाश काक भी मिले। मन्दिरों के दर्शन करके पैदल लक्ष्मण झूला गए। सात आने में भोजन करके रातभर वहीं रहे। १५-४ को प्रातः उठकर 'गरुड़चट्टी' गए। फिर स्वर्गाश्रम देखते हुए ऋषिकेश आए। सन्तराम ने वहां मिठाई का भोजन खिलाया। रात को रेल से हरिद्वार लौट आए। १६-४-३५ को प्रातः नीलधारा में नहाकर चण्डी की पहाड़ी पर चढ़े और देवी के दर्शन किए। वहां से कनखल आए और अवधूत चेतन देव की कुटिया देखने जो गए तो उसकी जगह एक बड़े भवन को देखा। रात को हरिद्वार आकर चुंगीखाने के बरामदे में सोए। हरड, दूध और कला कन्द खाया, और प्रदोषव्रत का पारायण उसी पर किया। १७-४-३५ को रेल द्वारा राजपुरा लौट आए। वहां रात दूध पीकर **चौधरी शिवलाल के चौबारे** में निवास किया। १८-४ को पं० सन्तराम नालागढ़ को चले और पूज्यपाद

जी राजपुरा में ही रुके। भोजन पं० गौरीनन्द के यहां किया और निवास शिवलाल के चौबारे में। २०-४ को रेल के द्वारा कुराली आ गए और रात को चौखण्डी में ठहरे। ऐसा प्रतीत होता है कि बालखण्डे में पूज्यपाद जी के महारोगों की जो चिकित्सा हुई उसके फलस्वरूप सभी रोग मन्द पड़ने लगे और भगन्दर वाला महारोग नष्ट ही हो गया; क्योंकि १०-४-३५ के पश्चात् दैनन्दिनी में कहीं भी उन रोगों का या उनसे होने वाली पीड़ाओं का उल्लेख नहीं मिल रहा है। यह भगवान् मृत्युञ्जय की उपासना का ही फल समझिए। अस्तु। ११-४-३५ से आगे पंजाब में कुराली, बरौली, राजपुरा, सरहिन्द, लुधियाना, अमृतसर जैसे स्थानों से होते हुए २-५-३५ को लाहौर पहुंचे। राजपुरा में ७-५ को विश्वम्भर दत्त वैद्य मिलने आए। उधर गौरीनंद के यहां ठहरे थे। उन्होंने एक ट्रंक खरीद कर दिया। उसमें अपनी सारी पुस्तकें आदि रख दीं। गौरीनंद बहुत प्रेम से सेवा करते रहे। सरहिन्द में २७-४-३५ को संन्यासी प्रकाशानन्द (चंचलानन्द) मिले। वे पाठशाला के छात्रावास में ठहरे थे। वहां छात्रों ने बड़ी सेवा की। ३०-४ को अमृतसर में प्रदोष व्रत हुआ। भोजन पं० हरिभानु के भाई पं० दुर्गादत्त के घर करते रहे और निवास हरिभानु के साथ मन्दिर में। लाहौर में पं० हरदेव के परिचित व्यक्ति के पास ग्वालमण्डी में रहे। उस दिन वहां बहुत से राजनयिकों को बन्दी कर दिया गया। वहां अनारकली की तोप देखी। ३-५-३५ को वहां मट्टन (कश्मीर) का जियालाल फोतेदार मिला। वह प्रेम गिरि कालेज में आयुर्वेद की शिक्षा प्राप्त कर रहा था। वहां से वापिस अमृतसर आए और हरिभानु के पास ठहरे। ६-५-३५ को रेल द्वारा जम्मू को चल पड़े।

६-५ को ही सायं जम्मू पहुंचे। वहां से ऊधमपुर गए। उधर अमरनाथ गाड़ू मिला। वहां उसके डेरे पर रुके। कुछ दिन तक देविका नदी, रघुनाथ मन्दिर और कमलेश्वर महादेव के दर्शन किए। फर्रुखाबाद के एक कान्यकुब्ज वृद्ध ब्राह्मण संन्यासी मिले। १५-४ को वहीं प्रदोषव्रत का पारायण हुआ। १६-५ को चनैनी आए और वहां अमरनाथ नागर की दुकान में ठहरे और भोजन का प्रबन्ध उसी ने पं० चुन्नीलाल के घर किया। चलते समय दो रुपए दिए। २०-५-३५ तक वहीं रुके। २१-५ को रामबन आ गए। धर्मशाला में ठहरे। २२-५ को लारी द्वारा बानहाल पहुंचे। वहां से लारी पर सवार होकर कश्मीर को चले। छः मील चलने पर ड्राइवर ने ट्रैफिक अधिकारी के भय से गाड़ी से उतार दिया। वहां से बहुत श्रमपूर्वक चलना पड़ा। पहाड़ को पार करके रात को मुण्डा नामक स्थान पर पहुंचे। वहां चोकीदार महेशनाथ के पास रात काटी सूखे फल रात को खाए। प्रातः चलकर काजीगढ़ पहुंचे और विष्णु कौल के घर भोजन तथा विश्राम किया। उसकी गृहिणी ने व्यवहार अच्छा नहीं किया।

वहां से लारी द्वारा अनन्तनाग आए। वहां से मास्टर नन्दलाल के कहने पर बन्दहामा का एक लड़का मट्टन ले गया। वहां श्रीनाथ तिक्कू के घर ठहरे। २४-५-३५- से २-६-३५ तक मट्टन में ही रहे। २७-५ को वहां श्रीनाथ को ललिता सहस्रनाम पढ़ाना आरम्भ कर दिया। वहां नाजिल का मास्टर शिव जी सराफ मिलने आया। उसने बहुत प्रेम का व्यवहार किया। आठ आने दे भी गया। काशीनाथ राजदान साली से मिलने आया। एक रुपय्या दे गया। ३-६ को वहां से अनन्तनाग आ गए।

३-६-३५ को अनन्तनाग से श्रीनगर आए। ६-६ तक वहां पं० टिकालाल के घर ठहरे। वहां साधु सर्वानन्द मिला। कंठभट्ट (ह्वाल) और बख्शी सुखराज मिलने आए। ४-६ को डी. एन. रैना के घर देवशंकर ब्रह्मचारी से मिले। वह साधु स्वभाव का था। नारायण मठ भी गए। ७-६ को सर्वानन्द के साथ 'ईशबर' गए। गुप्त गंगा में धर्मशाला में रहे। ८-६ को निशात बाग देखा। सचमुच नन्दनवन सा लगा। ९-६-३५ को विचारनाग किश्ती से गए। वहां दीनानाथ के घर खाना खाकर टांगे से क्षीरभवानी गए। वहां बड़ा भारी मेला लगा था। रात को विचारनाग लौट आए। ९-६ को ईशबर लौट आए। वह जगह बहुत अच्छी लगी। वहां गुप्तगंगा नामक तीर्थ भी हैं। वहां से १२-६ को श्रीनगर लौट आए टिकालाल जी के घर। मट्टन से श्रीनाथ आया। जियालाल फोतेदार, कंठभट्ट, सतलाल धर, कश काक बागाती, बख्शि रूपचन्द, श्री नाथ भास्कर जाडू, सभी मिलने आए। १४-६ हरभट्ट शास्त्री कृत पंचस्तवी की टीका देख ली। बहुत अच्छी लगी। अभी छपी नहीं थी।

२७-६-३५ को महात्मा लक्ष्मण जू के पास गए। पूज्यपाद जी के कथन के अनुसार "वे शैवी सम्प्रदाय के ब्रह्मचारी साधु हैं, सज्जन हैं, संस्कृतज्ञ भी हैं। नारायणदास नामक लखपति के पुत्र हैं।" २८-६-३५ को "तन्त्रालोक" और "शिवदृष्टि" नाम के ग्रन्थ उनसे लेकर पढ़ने लगे। तन्त्रालोक का एक-एक खंड उनसे ले-ले कर पढ़ते रहे। ३-७ को फिर उनके पास गए ३-७-३५ को सोपुर का आफताबराम खर आया था। संस्कृत पढ़ा था, वेदान्त ग्रन्थ भी पढ़े थे। परन्तु वस्तुतः अबोध है, ऐसा उन्हें प्रतीत हुआ। १७-७ तक इसी तरह के शास्त्र विनोद करते हुए ईशबर में ही रहे। रहते रहे गुप्तगङ्गा की धर्मशाला में और भोजन सर्वानन्दकौल साधु बनाता रहा।

१०-७-३५ को उनके मर्त्य जीवन के ३२ वर्ष पूरे हो गए और ३३वां वर्ष चल पड़ा। जन्मदिन ईशबर में मनाया। खाना खूब पका। २५ महानुभावों ने खाया व्यवस्था साधु सर्वानन्द ने की। महात्मा रामजी और महात्मा लक्ष्मणजू भी भोजन पर आए। परमात्मा की कृपा से वर्ष अच्छा ही बीता ११-७ को महात्मा लक्ष्मणजू के पास गए। तन्त्रालोक के चौथे और पांचवें

आह्निक का अध्ययन पूरा कर दिया। १३-७ को प्रदोषव्रत का पारायण हुआ। उस दिन महात्मा लक्ष्मण जू के पास फिर गए। तन्त्रालोक के छठे और सातवें आह्निक को पढ़ने लगे। १४-७ को हरी तकी (हरड) खाना शुरू किया। उस रोज स्वामी विश्वेश्वरानन्द वहां आए। उन्होंने भी भोजन वहीं खाया। पकाया साधु सर्वानन्द ने। १५-७ को रात को नहर के तट पर साधु राम जी के तम्बू में निवास किया। १६-७ को साधुराम जी लक्ष्मण जू भोजन पर बुलाए गए। अभी तक साधु सर्वानन्द बहुत श्रद्धाभक्ति और प्रेम से सेवा करता रहा। परन्तु १७-७-३५ को ऐसा प्रतीत हुआ कि उसके हृदय में कुछ ऐसे भाव उद्धृत होने लगे हैं जिनके कारण पूज्यपाद जी की उनके साथ पटेगी नहीं।

१८-७-३५ को पूज्यपाद जी टांगे से श्रीनगर लौट आए। टिकालाल जी के घर में आकर ठहरे। २७-७ तक वहीं रहे। भोजन कभी कभार अन्यत्र भी करते रहे। २२-७ को सर्वानन्द भी आया। अबकी बार उसका व्यवहार और भी अधिक बिगड़ा हुआ था। उसमें अभिमान अधिक दीखा। २४-७ को उसका व्यवहार और अधिक बिगड़ा हुआ देखने में आया। उस दिन पूज्यपाद जी धर्मार्थ के दफ्तर गए और **डाइरेक्टर सोमनाथ** पुरोहित से परिचय हो गया। २६-७-३५ को मट्टन से श्रीनाथ आए थे। सर्वानन्द भी मिला परन्तु आपस में कोई बात हुई नहीं।

२८-७ को श्रीनाथ के साथ बारामुला गए और वहां शिव जी फोतेदार के पास ठहरे। टिकालाल जी के गुरु साधु आफताब राम (कारिहामा) वहां मिले। उन्होंने पूज्यपाद जी के साथ सद्व्यवहार नहीं किया। पूज्यपाद जी को उनके व्यवहार और स्वभाव में बहुत पाखण्ड दिखाई पड़ा। २९-७ को विश्वम्भरनाथ के घर भी उनसे मिलना हुआ। तब भी पूज्यपाद जी को वैसी ही प्रतीति हुई। उसी दिन पूज्यपाद जी श्रीनगर लौट आए, साथ श्रीनाथ भी आए। ठहरे पं० टिकालाल के घर। ४-८-३५ तक वहीं रहे। श्रीनाथ जी १-८-३५ को वाराणसी जाते हुए जम्मू को चले। मुझे ऐसा स्मरण आता है कि सन् १९३५ के जुलाई मास में जब मैं प्राज्ञ परीक्षा में पास होने पर अपने महाविद्यालय के प्रधानाचार्य श्री बालकृष्ण शास्त्री से मिलने के लिए अपने गांव कुलग्राम से श्रीनगर आया था तो श्रीनाथ जी मुझे टिकालाल जी के घर ले गए थे और मेरा पूज्यपाद जी से परिचय कराया था। मैं एक दो घंटे वहां बैठा रहा। वहां विविध शास्त्रों और सामयिक विषयों पर काफी बातें होती रहीं, प्रायः श्रीनाथ जी के साथ और टिकालाल जी के पुत्रों और भतीजों के साथ मैं सुनता ही रहा। पूज्यपाद जी की वाणी से मैं बहुत अधिक प्रभावित होता रहा। एक दो घण्टे क्षणों की तरह बीत गए। ४-८-३५ को पूज्यपाद

जी टिकालाल जी के साथ पं० बलकाक धर रईस से मिले। ५-८-३५ को पूज्यपाद जी० पं० हरभट्ट शास्त्री के साथ उनके दफ्तर पर गए और वहां "**श्री विद्यार्णवतन्त्र**" को देखकर पूज्यपाद जी को बड़ा हर्ष हुआ उन्हें वह ग्रन्थ बहुत अच्छा लगा, यद्यपि तब तक पूरा छपा नहीं था। ५-८-३५ को ही पूज्यपाद जी अमीरा कदल बख्शी सुखराज के पास गये, फिर बख्शी रूपचन्द के घर ठहरने लगे। १६-८-३५ तक वहीं ठहरे। भास्कर आडू के साथ '**मियां मछन्दर**" खेल देखा। ६-८ को पं० रूपचन्द बख्शी के पास निवास किया। दिन को टिकालाल के पास भी गए। वहां साधु सर्वानन्द आया था। उसने पूज्यपाद जी के साथ अत्यन्त अनुचित दुर्व्यवहार किया। यद्यपि उन्होंने उसके साथ बात नहीं की थी। १६-८-३५ तक बख्शी रूपचन्द के ही घर भोजन करते रहे। १२-८-३५ को रामबाग में **स्वामी गंगानन्द (बंगाली)** के पास गए। उसी दिन **अमृत मंथन** फिल्म (टाकी) देखी। हिन्दु धर्म पर कुठारा घात करती हुई प्रतीत हुई। १६-८ को '**नामविलास**' की प्रतिलिपि को पूरा कर लिया। बारामुला से शिव जी फोतेदार का लड़का अमरनाथ आया और उसके साथ बारामुला चले गए। वहां शिव जी के पास ठहरे। आगे २४-८-३५ तक बारामुला में ही रहे। **आगे २४-८-३५ से २६-६-३६ तक की दैनिकचर्या वाली कापी के कुछ एक वर्क खो गए हैं। अतः इन वर्षों का जीवनवृत्त कहीं मिल नहीं रहा है।**

पूज्यपाद जी का बारामुला में एक उत्कृष्ट सिद्ध पुरुष से परिचय हुआ था। उसे वहां "**चखमा बाबा**" कहा जाता था। अनुमानतः वह हिमाचल प्रदेश का रहने वाला था। मट्टन के एक पण्डित ने आज से लगभग बीस वर्ष पूर्व उसकी जानकारी ऐसी दी थी कि वह कांगड़ा मण्डल में ज्वाड़ी नामक ग्राम निवासी ब्राह्मण था और नाम उसका मोतीराम था। वह गृहस्थ साधु था। उसके घर में उसकी स्त्री, एक पुत्र और एक पुत्रवधू थे। वह एक सिद्ध पुरुषथा। पूज्यपाद जी ने पहली बार उसे बारामुला में देवी शैलपुत्री के स्थान में देखा। फिर पण्डित शिव जी फोतेदार को भी उसके दर्शन करवाए। उन्होंने उसे एक दिन अपने घर भोजन पर बुलाया। भोजन करके काफी देर उनसे बातचीत होती रही। चखमा बाबा ने कहा, कि "किसी पूर्व जन्म में पं० शिव जी एक राजा थे और पूज्यपाद जी उनके प्रिय पुत्र थे। उस जन्म में उस प्रिय पुत्र को जवानी में राजयक्ष्म रोग हो गया और उससे वे जवानी में ही चल बसे। उसी जन्म के परस्पर स्नेह के संस्कार से बर्तमान जन्म में उन दोनों को परस्पर इतना स्नेह है।" इस बात को सुनकर पूज्यपाद जी को इसकी सत्यता पर विश्वास नहीं हुआ और अंतः तर्क युक्तियों के द्वारा प्रश्न करने लगे। उस बात पर चखमा जी बोले "ऐसी बातें तर्क से नहीं जानी जा सकती हैं। यदि आप इस बात की सत्यता का निश्चय करना चाहते हों, तो आपको मैं एक योग

साधना सिखा दूंगा। उसके अभ्यास से छः महीने में आप को स्वयमेव अपने पूर्वजन्मों की स्मृति उद्‌बुद्ध हो जाएगी।" पूज्यपाद जी ने इस चुनौती को स्वीकार किया। उचित मुहूर्त पर चखमा के पास गए और उनसे उस साधना के अभ्यास को सीख लिया। तदनन्तर उसका अभ्यास विधिपूर्वक कर लिया। **उसके फल-स्वरूप उन्हें दो महीनों के अभ्यास से अपने पिछले चार जन्मों की स्मृति उद्‌बुद्ध हो गई।** उन जन्मों की जीवन गाथा का वर्णन पीछे किया जा चुका है। उन चार जन्मों की स्मृति से ही वर्तमान जन्म की स्थिति की व्याख्या जब हो गई तो उससे भी पूर्व वाले जन्मों की स्मृति को जगाने के लिए उन्होंने आगे और अभ्यास नहीं किया। फिर यह भी उन्हें विचार आया कि अनेकों जन्मों की स्मृति से सांसारिक बासनाओं में वृद्धि ही हो जाएगी। अतः अभ्यास वहीं पर छोड़ दिया। जिस जन्म में वे राजपुत्र थे और पण्डित शिव जी उनके पिता थे उस जन्म तक उन्होंने अनुसन्धान नहीं किया। अपने पिछले तृतीय जन्म की स्मृति से ही इस बात को वे जान गए कि उस जन्म में वे एक सुविशाल रियासत के शासक थे और राजाधिकार के मद के प्रभाव से उन्होंने सुख की वासना की वृद्धि के लिए जिस ब्राह्मण पर बहुत बड़ा अन्याय किया था, वही ब्राह्मण अब जयपुरी ब्रह्मचारी के रूप में विचरण करता हुआ उनको भोजन के साथ कोई विषैली वस्तु खिला गया, जिसके प्रभाव से उन्हे अति भयंकर भगन्दर रोग हो गया, जो महीनों प्राणान्त कारिणी पीड़ा देता रहा। उस समय भी नालागढ़ के कई सज्जनों को जयपुरी ब्रह्मचारी के विषय में वैसी आशंका हुई थी, और कोई सज्जन उसे पोलिस के हवाले भी करवाना चाहते थे, परन्तु पक्का निश्चय न होने के कारण और अपने प्रारब्ध को ही उस कष्ट का मुख्य कारण समझने के कारण पूज्यपाद जी ने पोलिस को रिपोर्ट करने की अनुज्ञा नहीं दी थी।

पूर्वजन्मों की स्मृति से पूज्यपाद जी को यह विदित हुआ कि जब वे नरेश शरीर में इस संसार में रहते रहे तब वे शक्ति के उपासक थे और प्रति दिन ललिता सहस्रनाम के कई कई पाठ किया करते थे। उस जन्म में उन्होंने यह संकल्प कर रखा था कि उस सहस्रनाम के **एक लाख पाठ** पूरे करें। परन्तु एक लाख की संख्या को पूरा करने से पूर्व ही वहां उनका बह शरीर छूट गया था। तो फिर उस दिन से पूज्यपाद जी सहस्र नाम का एक एक पाठ तो दैनिक कृत्य रूप में करते रहे और प्रति दिन तीन-तीन पाठ उस एक लाख संख्या को पूरा करने के लिए करते रहे। अपनी दिनचर्या की कापियों में १६३५ के उत्तरार्द्ध से ही उन्होंने प्रतिमास किए गए पाठों की संख्या का लेखा भी लिख कर रखा है। वह लेखा कई एक पृष्ठों पर दिया गया है। २६-६-३६ से लेकर २६-४-१६४२ तक सहस्रनाम के पाठों का लेखा दिया गया है। तदनुसार

२५-७-३९ से पूर्व २०१८ पाठ पूरे हो गए थे। यदि प्रतिदिन तीन तीन पाठ किए गए हों तो लगभग एक वर्ष और दस महीने पहले पाठ आरम्भ किए गए होंगे। तदनुसार पाठ २५-९-३७ ई० के लगभग आरम्भ किए गए होंगे । यदि प्रतिदिन तीन तीन पाठ सदैव नहीं किए जा सकें हों, या अस्वस्थता के कारण बीच में कभी कभी नागा हुआ हो तो पाठों को आरम्भ करने की तारीख पीछे भी जा सकती है। तो १९३५ के पश्चात् ही कभी पाठ क्रम का प्रारम्भ किया गया होगा। उससे यह बात सिद्ध होती है कि पूज्यपाद जी का १९३७ के आस पास चखमा बाबा से भेंट हुई होगी।

हम लोगों में से जिस महानुभाव को पूज्यपाद जी से सम्पर्क सबसे अधिक पहले से चलता रहा, अर्थात् सन् ई० १९२९ से ही, वे हैं डा. श्रीनाथ जी तिकू। उनकी स्मृति के अनुसार पूज्यपाद जी का चखमा बाबा के साथ सन् १९३५ में ही सम्पर्क हुआ था। जब पण्डित शिवजी फोतादार की नौकरी बारामुला में ही थी। सन् १९३९ में शिवजी की नौकरी श्रीनगर में थी। उनका श्रीनगर स्थानान्तरण कब हो गया था इस बात का कुछ भी पता नहीं लगा। उनके पुत्र जियालाल फोतादार कहते हैं कि उनकी स्मृतिशक्ति वृद्धावस्था के कारण बहुत ढीली पड़ गई है, अतः निश्चित रूप में कुछ कह नहीं सकते। अतः डा० तिक्कू जी की ही साक्षी के अनुसार यही कहा जा सकता है कि पूज्यपाद को चखमा बाबा से सम्पर्क १९३५ में ही हुआ था।

पूज्यपाद जी चखमा बाबा के विषय में कई एक आश्चर्यजनक बातें बताया करते थे। यदि बाबा पं० शिवजी फोतेदार के यहां या किसी और जगह जाते थे तो अपने सामान की गठड़ी को शैलपुत्री के स्थान पर खुले बरामदे में छोड़ आते थे। एक दिन किसी कश्मीरी मुसलमान गंवार ने अकेले में वहां जब गठरी को देखा तो उसे उठाकर पुल से नदी पार करके और शहर के बाजार को भी पार करके जब अपने गांव की ओर बढ़ने लगा तो शहर के बाहर निकलते ही उसके नेत्रों में अन्धेरा छा गया और सामने कुछ दीखा ही नहीं। पीछे मुड़ने पर उसे पुनः सब कुछ दीखने लगा। फिर कई पग ग्राम की ओर जब चल पड़ा तो पुनः वैसा ही हो गया। जब उसे तीसरी बार आंखों में अंधेरा छा गया तो बहुत घबरा गया और वापिस शैलपुत्री के मन्दिर की धर्मशाला के बरामदे में गठड़ी को रख कर ईश्वर से क्षमा मांग कर अपने गांव को लौट गया। चखमा बाबा ने शिवजी के डेरे पर कश्मीर नरेश हरिसिंह के पूर्व जन्म का वृत्तान्त सुनाकर कहा था कि वे उसे जगाकर सचेत करना चाहते थे। परन्तु बहुत सम्भव यही है कि उन्हें महाराजा से मिलने का अवसर ही नहीं मिला होगा। यदि मिला होता तो महाराजा की वह दुर्गति नहीं हुई होती जो सन् १९४७ वाले पाकिस्तानी आक्रमण के बाद हो गई। अस्तु।

चखमा बाबा से भेंट इस अध्याय की सबसे बड़े महत्त्व वाली घटना है। अध्याय का आरम्भ महारोग के वृत्तान्त से हुआ और अन्त उस रोग के वास्तविक कारण के अभिज्ञान से हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि रोग की शान्ति के अनन्तर ही पूज्यपाद जी उत्तरपूर्वी पंजाब से चल कर गंगा जी की यात्रा को चल पड़े और वहां से पंजाब के कई एक शहरों से होते हुए जम्मू आ गए और वहां से तीसरी बार कश्मीर यात्रा पर गए। सम्भवतः १६३५ के अक्तूबर तक कश्मीर में ही रहे और तदनन्तर वहां से पुनः जम्मू और पंजाब होते हुए कांगड़ा मण्डल में घूमते रहे। जीवन चरित के अगले वृत्तान्त का आरम्भ चामुण्डा में होता है। वह वृत्तान्त २६-६-३६ से आरम्भ होता है। बीच वाला वृत्तान्त जिन पत्रों पर लिखा गया था वे पत्र खो गए हैं।

अध्याय ११

श्रीस्वाध्याय संस्थापन

पूज्यपाद जी आत्मविलास आदि अनेकों ग्रन्थों की रचना लोकोपकार के लिए करते रहे। परन्तु उन ग्रन्थों से उनके जीवन सिद्धान्तों का प्रचार उतना नहीं हुआ जितना कि उनके द्वारा संस्थापित और प्रचारित **'श्री स्वाध्याय'** नामक त्रैमासिक पत्रिका से हुआ। ग्रन्थों को उनके किसी किसी-शिष्य या भक्त ने पढ़ा, परन्तु श्री स्वाध्याय का जनता में काफी प्रचार हुआ। फिर श्री स्वाध्याय ही के द्वारा वे **सर्वतन्त्र स्वतन्त्र आचार्य अमृतवाग्भव**" के नाम से भी प्रसिद्ध हो गये और उनके द्वारा निर्मित ग्रन्थों का भी विशेष प्रचार हो गया। श्री स्वाध्याय पत्रिका का सन्चालन उन्होंने सोलन से किया। वहां उसे चलाने के लिए **"श्री स्वाध्याय सदन"** नामक संस्थान की स्थापना की और साथ ही **'दुर्गाभवन'** नामक पुस्तकालय और प्रचार केन्द्र की भी स्थापना की। उस श्रीस्वाध्याय सदन से सोलह वर्ष तक लगातार ही **श्री स्वाध्याय** पत्रिका निकलती रही। इतने वर्षों तक यह पत्रिका भारत की आर्यजुष्ट संस्कृति का प्रचार करती रही। उस पत्रिका को जिन महानुभावों से सहयोग मिला उनमें से बहुतों के पूज्यपाद जी का घना परिचय १९३५ की कश्मीर यात्रा के पश्चात् पंजाब, हिमाचल और राजस्थान में घूमते-घूमते होता गया। अतः इसी अध्याय में श्रीस्वाध्याय सदन की स्थापना से कुछ समय पहले से लेकर कुछ समय पश्चात् तक के उनके जीवन चरित की कई वर्षों की गाथा लिखी जा रही है।

२४-८-३५ से लेकर २६-६-३९ तक पूज्यपाद जी की यात्राओं का व्योरा कहीं मिल नहीं रहा है। आगे जो वृत्तान्त उनके द्वारा लिखे हुए मिल रहे है, तथा जो कुछ एक वृत्तान्त वे कभी-कभी लोगों को बताते रहे उनसे निम्न-लिखित बातें सिद्ध हो जाती है :

(१) वे बहुत बार जम्मू प्रदेश में रामनगर तहसील में अपने पर्यटन की तथा **हठयोगी हरिभक्त** के नवयौवन के वृत्तान्तों की और ऊधमपुर के कण्डी प्रदेश में अपने परिव्रजन की बातें सुनाया करते थे। उनसे यह सिद्ध होता है कि

"श्री स्वाध्याय" संस्थापन के लगभग का चित्र (सन् १९४१-४२)

इस अवधि में वे काफी देर जम्मू के ग्रामीण प्रदेशों में घूमते रहे। उन्होंने मुझे एक बार यह भी सुनाया था कि जम्मू के श्री रघुनाथ मन्दिर की ड्योढी के आगे वे भी कुछ दिन भिखमंगों की श्रेणी में बैठते रहे, उन भिखमंगों के परीक्षण के लिए। उससे उन्हें विदित हुआ था कि उनमें दो तीन तो अच्छे साधक भी थे। फिर उन्होंने नगरोटा में मिले हुए एक राजपूत '**ब्रह्मचारी बालक**' का वृत्तान्त भी सुनाया था। वह ऐसा है—वे नगरोटा के मन्दिर में बैठे थे। उस समय अकस्मात मूसलाधार वर्षा पड़ने लगी तो एक नवयुवक ब्रह्मचारी वर्षा से बचने के लिए मन्दिर में आ गया। उसके पास तीन तारों वाला एक वाद्ययन्त्र था। पूज्यपाद जी के द्वारा पूछने पर उसने बताया कि इस यन्त्र को बजाते हुए वह कोई भजन गाकर जब सुनाता है तो सुनने वाले प्रसन्न हो जाते हैं और खिलाने पिलाने की सेवा करते हैं। यह भी उसने बताया कि इस तरह से भजन गाकर सुनाने के अतिरिक्त वह और किसी भी प्रकार की उपासना नहीं करता है। तब पूज्यपाद जी ने करुणावस वहां उस ब्रह्मचारी को शाम्भवी योग विद्या सिखा दी। उसे सीखकर वह कहीं चला गया। कुछ महीनों के समय के पश्चात् जम्मू में एक बार जब श्री रघुनाथ जी के मन्दिर में महाराजा गुलाब सिंह की समाधि के सामने बाले बड़े चबूतरे पर पूज्यपाद जी बैठे थे तो वह ब्रह्मचारी भी उधर आया और प्रणाम करके कृतज्ञता को वाणी से प्रकट करने लगा। उस योग विद्या से उसे काफी लाभ हुआ था। फिर एक आदमी पर उसकी दृष्टि पड़ी और पूज्यपाद जी से कहने लगा कि क्या उस आदमी को बुला लें। उन्होंने पूछा कि किस लिए बुलाना है। वह बोला कि कुछ खिलाए पिलाए। पूज्यपाद जी ने मना किया। तब उस ब्रह्मचारी ने उस व्यक्ति की ओर ज्यों ही एक टक दृष्टि से देखा तो वह आकर्षित होकर पास आया और प्रणाम करके हाथ जोड़ कर पूछने लगा "महाराज जी, मैं आप की क्या सेवा करूं"। ब्रह्मचारी ने कहा "ये हमारे गुरुदेव हैं, इनसे पूछ लो।" उनसे पूछने पर उन्होंने परवश से होकर कहा—"थोड़ा सा दूध पिला दीजिए।" वह व्यक्ति एकदम बाहिर गया और दो गिलास दूध लेकर आया और उन्हें पिला दिया। एक और आदमी वहां मिला जो अपने को रावलपिण्डी का खत्री बताता था। उस पर एक दृष्टि डालते ही ब्रह्मचारी बोला:' झूठ, तू कैम्बलपुर का अरोडा बनिया है, सद्व्यापार न करके लोगों की कन्याओं को भगाकर उन्हें बेच डालने का काम करता है।" इन बातों को सुनते ही वह आदमी शीघ्र वहां से भाग निकला। दो चार दिनों के पश्चात् रघुनाथ बाजार के एक बड़े व्यापारी ने दोनो को भोजन पर बुलाया। पूज्यपाद जी और वह बाल ब्रह्मचारी उसके घर गए। वहां एक संन्यासी भी बैठा था। उसने आसपास बड़ी बड़ी पोथियां रखी थीं। भोजन का समय आया तो भोजन खिलाने के चौके में

जब तीनों को बिठाया गया तो यजमान ने पूछा कि पंखा चला दें या नहीं। पूज्यपाद जी बोले कि खाना खाते समय पंखा अच्छा नहीं लगता है। परन्तु संन्यासी महादेव ने कहा क्या हर्ज है, पंखा चला दीजिए। गृह स्वामी को स्विच के पास जाते ही लगा था कि ब्रह्मचारी ने अपनी दृष्टि कुछ क्षणों के लिए पंखे पर जमा दी। स्विच को कई बार ऊपर नीचे हिलाया गया, परन्तु पंखा चला नहीं। लाइन-मैन को बुलाया गया, उसने ऊपर नीचे तारों की परीक्षा की। स्विचों को देखा, पंखे की जांच की। कोई दोष उसे कहीं भी मिला नहीं। परन्तु फिर भी पंखा नहीं चला। फिर भोजन परोसा गया और तीनों ने खाया तब ब्रह्मचारी ने कहा "अब स्विच लगा दीजिए।" स्विच के लगते ही पंखा समुचित गति से चलने लगा। इस बात को देखकर संन्यासी बोले" आपने चाहा था कि पंखा न चले, तो चला ही नहीं। अब आपने चाहा कि चले और चल ही पड़ा।" इस पर ब्रह्मचारी ने कहा, हां हमारी विद्या बड़ी बड़ी पोथियों की विद्या न होकर क्रियामयी और यथार्थ विद्या है, जो सर्वत्र सफलतया चल जाती है।" तदनन्तर पूज्यपाद जी और ब्रह्मचारी कुछ देर वहां विश्राम करके पुनः मन्दिर में जाकर जब एकान्त में बैठे तो पूज्यपाद जी ने गुरु होने के नाते उस ब्रह्मचारी को आदेश दिया कि उस क्षण से लेकर ही वह सतत मौन व्रत का पालन करता हुआ केवल तभी कुछ बोले जब जीवन-निर्वाह के लिए बोलना आवश्यक हो और उतना ही बोले जितने से जीवन निर्वाह हो सके। ब्रह्मचारी ने विवश होते हुए वैसे कठोर व्रत को स्वीकार किया। फिर कुछ दिनों के पश्चात् वह कहीं चला गया और पूज्यपाद जी कहीं और चले गए। तदनन्तर एक दूसरे से कभी मिले ही नही। जम्मू सम्बन्धी ऐसी बातों से यह सिद्ध होता है कि पूज्यपाद जी जम्मू शहर में और जम्मू प्रदेश में काफी देर पर्यटन करते रहे। बहुत सम्भव यही है कि वे सन् १९३५ से सन् १९३९ के बीच में ही उस प्रदेश में काफी देर घूमते रहे हों, क्योंकि आगे कई एक वर्ष उन्होंने सोलन नगर को अपना मुख्य कार्य क्षेत्र बनाए रखा।

सन् १९३९ के जनवरी फरवरी के आस पास पूज्यपाद जी के साथ इन पंक्तियों के लेखक को भी कुछ दिनों के के सम्पर्क का सौभाग्य प्राप्त हुआ। बात ऐसे हुई—

मैं श्री रघुनाथ महाविद्यालय में बढ़ता था। हिमाचल के एक विद्यार्थी 'बलराज' ने आकर मुझसे पूछा "क्या आप **स्वामी आनन्द स्वरूप** को जानते हैं।" उस युग में हिमाचल, पंजाब और कश्मीर में लोग पूज्यपाद जी को महात्मा आनन्द स्वरूप ही कहा करते थे। उन्होंने अपने आप को छिपाए रखने के लिए अपने "वैद्यनाथ" नाम को गुप्त ही रखा था और अपने को "आनन्द स्वरूप" ही कहलवाते थे। मैं भी तब तक उनको उसी नाम से जानता था।

ग्रन्थकार के रूप में उन्होंने अपना नाम अमृतवाग्भव रखा तो था, परन्तु उस नाम से तब तक वे जरा भर भी प्रसिद्ध नहीं हुए थे। अस्तु, मैंने कहा हां मैं उनको अवश्य जानता हूं।" वह बोला "वे आए हुए है।" मैंने पूछा "कहां हैं। उसने कहा मन्दिर की उत्रोढ़ी के ऊपर वाले कमरे में है। मैंएक दम उधर गया और उनको प्रणाम करके उनसे वार्तालाप में काफी व्यस्त हो गया। दो तीन दिन मैं उनके पास ही सारा दिन बैठे रहता रहा और विविध विषयों पर उनसे मेरा वार्तालाप होता रहा। पं० टीकालाल खजांची भी उधर आते रहे। आचार्य सोमानन्द का नाम मैंने वहीं उनकी ही वाणी से पहली बार सुना था तब मुझे आगे अप्रैल मई में शास्त्री-परीक्षा देनी थी। बहुत सम्भव है कि उन दिनों वे पुनः जम्मू प्रदेश में ही पर्यटन करते रहे हों।

सन् १६३९ के उनके जीवन वृत्तान्त से यह भी सिद्ध होता है कि उससे कई वर्ष पहले से उनका सम्पर्क सोलन से वहां के शासक राजा साहब श्री दुर्गा सिंह, स और उनसे भी अधिक सिरमौर वाली 'राजमाता' आदि से हो चुका था। क्योंकि सन् १९३९ की उनकी जीवन गाथा यह जतलाती है कि न केवल राजमाता से और राजा साहब से ही, अपितु राजा साहब की चाची लाडा जी से और सुमना खवास आदि से भी उनका घना सम्बन्ध बन चुका था।

सन् १९३६ में उन्होंने सोलन में ही रहते हुए अपने राष्ट्रलोक पर एक सुविस्तृत संस्कृत भाष्य का भी निर्माण किया। ऐसा उन्होंने स्वयं लिखकर रखा है। उस भाष्य का नाम "राष्ट्र सञ्जीवन भाष्य" है। उसमें राष्ट्रालोक ग्रन्थ की दार्शनिक ढंग से व्याख्या की गई है। अभी तक उस सुविशाल ग्रन्थ का न तो प्रकाशन ही किया जा सका और न अनुवाद ही। उसकी दूसरी प्रति लिपि पूज्यपाद जी दिल्ली में लिखवाते रहे। परन्तु वह भी अधूरी ही लिखी गई। उनके ऐसे कार्य से यह सिद्ध होता है कि सन् १८३६ से पहले ही उन्हें सोलन के भक्तजनों से घना परिचय हो चुका था। अतः उस बीच की अवधि में उनका अधिकतर समय सोलन में बीता होगा।

आगे सन् १९४० में उनके द्वारा एक दो पुस्तकों का प्रकाशन बहरामपुर (जिला रोपड़) से हुआ फिर उनके द्वारा सम्पादित पुस्तकों का मिलने का पता सावणराम-कर्त्ताराम, बहरामपुर, लिखा रहता था। उससे यही सिद्ध होता है कि सन् १९४० से कई वर्ष पूर्व से ही उनका घना सम्बन्ध बहरामपुर के भक्तजनों से बना हुआ होगा ! अतः इन दो ढाई वर्षों में वे उधर भी आते जाते रहे होंगे। उधर के ही एक अन्य भक्त बाबू कुलवन्तराय एवं उनके परिवार से पूज्यपाद जी का घनिष्ठ सम्बन्ध था। बाबू कुलवन्त राय एवं भक्त सावण राम जी काफी समय तक भाखड़ा नांगल में सरकारी नौकरी में कार्यरत रहे और पूज्यपाद जी बहुत बार उनके यहां ठहरते रहे। अब यह दोनों महानु-

भाव दिवंगत हो चुके है।

फिर १६-१६४० में उन्होंने 'सुहाणा' ग्राम का भी उल्लेख किया है। जो कि चण्डीगढ़ से मात्र तीन मील की दूरी पर स्थित है। अत: उन वर्षों में वे सुहाणा भी जाते रहे होंगे। जब मुझे श्री रघुनाथ मन्दिर में उनके दर्शन हुए थे तब वे सप्तपदी हृदयम को और "परशुराम स्तोत्रम्" को प्रकाशित कर चुके थे। और उनकी प्रकाशित पुस्तकों की प्राप्ति का स्थान बहरामपुर ही लिखा रहता था, क्योंकि तब तक सोलन में उनकी कोई भी संस्था स्थापित नही हुई थी। सन् १६४० के जीवन बृत्तान्त में उन्होंने सोलन का भी उल्लेख जो किया है उससे स्पष्ट होता है १६४० से पूर्व ही इन्ही वर्षो में सोलन के वृद्ध जनों से भी सम्पर्क हो गया होगा। १६४० के जीवन वृत्त में भरतपुर में भी उनके ठहरने का और वहां के 'राव साहब' से उनके घने सम्बन्ध का जो उल्लेख मिलता है उससे यह भी सिद्ध होता है कि उसी बीच के दो ढाई वर्षों में भरतपुर के राजवंश के साथ भी उनका घना सम्पर्क स्थापित हुआ होगा। मिश्र गोविन्द शर्मा के विषय में किए गए उल्लेख से यह प्रतीत होता है कि उन्हीं वर्षों में उनसे भी काफी परिचय तो हो गया था। सन् १६३६ के शीत-काल में जव पूज्यपाद जी जम्मू आए थे तो उन्होंने मुझे अपना स्थाअी पता नारायण दास बी॰ ए॰ वृन्दावन यह लिखवाया था। उससे दो बातें सिद्ध होती हैं—एक यह कि शीतकाल में वे सोलन न रहते हुए प्राय: वृन्दावन में रहा करते थे। दूसरे यह कि १६३६ तक उनका बहुत घना संबंध भरततुर के मिश्र गोविन्द शर्मा से नहीं होने पाया था। नहीं तो स्थाई पता उनके ही ही घर का लिखवाया होता। इस तरह से इस प्रकरण में उनके जीवन वृत्तान्त के उस भाग पर प्रकाश डाला जाएगा जिसमें उन्हें सोलन के शासक से राजकीय सम्मान मिलता रहा और जिसमें उनका विशेष कार्य-क्षेत्र सोंलन नगर वनारहा, जहां उन्होंने श्री दुर्गाभवन की स्थापना करके उसमें श्रीस्वाध्याय सदन को प्रतिष्ठित करते हुए "श्री स्वाध्याय" नाम की त्रैमासिक पत्रिका का निकालना प्रारम्भ कर दिया। उस पत्रिका के माध्यम से ही उनके धार्मिक दार्शनिक तथा राजनैतिक विचार इधर पश्चिमी भारत में हिन्दी और संस्कृत के प्रेमियों के पास पहुंचने लगे और वे जहां तहां आचार्य अमृत वाग्भव' इस नाम से प्रसिद्ध हो गए। धीरे धीरे उनके 'आनन्द स्वरूप' नाम का प्रयोग लुप्त होता गया।

सोलन नरेश राजा दुर्गासिंह के साथ पूज्यपाद जी का प्रथम संपर्क कुछ वर्ष पहले तब हुआ था जब वे शिमला से दो-तीन दिन के लिए सोलन आए थे। परन्तु उस समय उनका आपस में विशेष परिचय नहीं होने पाया था। १६३५ के अगस्त और १६३६ के जून के बीच में उनका परस्पर सम्बन्ध काफी

घना बनता रहा। वह कैसे और कब बना तथा किस घटना से उसके बनने का आरम्भ हुआ इस बात के विषय में लिखित सामग्री में से कोई भी साक्ष्य नहीं मिला। संभव है कि खरड, नालागढ़ और कुराली के तथा सोलन के उनके प्रेमी भक्त इस विषय पर प्रकाश डाल सकें। परन्तु फिर भी इतनी बातें तो स्पष्ट हैं कि जून १९३९ से पहले ही राजा साहब उनके वैदुष्य से और उनके आध्यात्मिक उत्कर्ष से काफी प्रभावित हो चुके थे। उस राज्य में उन्हें काफी राजसम्मान मिलने लगा था। जहां कहीं भी जाना होता था, वहां के लिए राजकीय मोटरकार उनकी सेवा में तैयार रहा करती थी। राज्य के प्रशासन के लगभग सभी अधिकारी उन्हें राजोचित सम्मान देते थे। बाजार में चलते समय अनेकों दुकानदार उठकर प्रणाम करते थे। राजमहिषी भी बहुत सम्मान और सेवा किया करती थीं। राजा साहब की अपनी जननी सिरमौर वाली राजमाता तथा राजा साहब की चाची **'लाडी जी'** और उनकी दूसरी मां नाहन वाली राजमाता उनकी शिष्ठयाएं बन चुकी थीं। राजमाता को पूज्यपाद जी ने शाम्भवी योगविद्या सिखा दी थी। उसके अभ्यास का फल भी किसी मात्रा में उन्हें प्राप्त हुआ था। तभी तो प्राणों से उनकी सेवा और सत्कार आदि किया करती थीं। उनके लिए एक भवन उन्होंने दे रखा था, जहां वे रहा करते थे। राजमहल की **सुमना नाम की खवास'** को भी पूज्यपाद जी ने कोई दीक्षा दे रखी थी। वह भी बहुत सम्मानपूर्वक उनकी सेवा किया करती थी। बघाट राज्य के कई एक अन्य स्थानों में भी पूज्यपाद जी कभी-कभी रहा करते थे। वहां भी राजा साहब की ओर से उनकी सेवा का प्रबन्ध कराया जाता था राजा साहब से राज-परिवार से तथा वहां के अधिकारियों से पूज्यपाद जी को अब काफी धन भेंट में आने लगा तो उस धन का सदुपयोग वे धार्मिक और दार्शनिक ग्रन्थों के प्रकाशन में आगे करते रहे। राजा साहब के सम्बन्धी और सोलन शहर के अनेकों पण्डित, साहूकार सेठ आदि भी पूज्यपाद जी का बड़ा सत्कार करते थे। नाहन वाले राजवंश के लोग भी उनकी काफी सेवा करते थे, जब भी वे वहां जाते। यह भी सम्भव है कि राजा साहब के माध्यम से ही पूज्यपाद जी को तभी भरतपुर के शासक राव साहब गिरिधारीशरण सिंह से भी परिचय हो गया हो। परन्तु साथ अधिक संभावना इसी बात की है कि भरतपुर वाले राजपण्डित मिश्र गोविन्द शर्मा के ही द्वारा उन्हें वहां के राव साहब से संपर्क हो गया। सोलन में उनको रहने के लिए जो भवन राजमाता ने दे रखा था वहां उनकी सेवा के लिए एक नौकर को भी नियुक्त किया था जो उनके लिए अन्न पकाने आदि की सेवा करता था। सीधा राजमाता के भवन से आता था। राजा साहब स्वयं **'आनन्दमयी मां'** के **शिष्य थे**। अतः वे पूज्यपाद जी से कोई योगविद्या नहीं सीख पाए, यद्यपि

उन्होंने मुझसे स्वयं एक बार कहा था कि पूज्यपाद जी के द्वारा सिखाई गई योगविद्या से उनकी माता जी को पर्याप्त मात्रा में लाभ हुआ। इस तरह से सोलन में निवास का समय सांसारिक दृष्टि से पूज्यपाद जी के मर्त्यजीवन का बहुत अच्छा समय था। कष्ट उन्हें केवल इतना ही रहता था कि पीछे वाले रोगों के दुष्प्रभाव से कभी-कभी शरीर अस्वस्थ रहा करता था। अब राजा साहब तथा अन्य महानुभाव प्रायः पैसे भी काफी दिया करते थे। पूज्य-पाद जी को अपने पिताजी के असमय में शिवधाम को सिधार जाने के पश्चात् निराधार ही रहते हुए घर को चलाना पड़ा था। अतः उन्हें अल्पव्ययता का संस्कार पक्का बैठा था। इसलिए पैसा जमा होने पर भी वे कभी भी धन का अपव्यय नहीं करते थे। जो पैसा जमा हो जाता था उसे अपने पास भी प्रायः रखते नहीं थे। उन दिनों या तो ज्यो० मकुन्द वल्लभ के पास रखते थे, या सोलन नरेश के पास। कुछ धन पुस्तक प्रकाशन पर भी व्यय करते रहे। उसे उस समय या तो सावणराम बहरामपुरवाले के पास रखते थे या हरदेव त्रिवेदी के पास। फिर उन्होंने उस समय की तथा आगे की भी अपनी जीवनी में प्रतिमास आय और व्यय का ब्यौरा भी दिया है। आगे कुछ धन भरतपुर में गोविन्द जी के पास भी रखते थे। उस धन में से कई सहस्र रुपए जयपुर में **श्री अमृतवाग्भवाचार्य सांस्कृतिक शिक्षा एवं शोध-संस्थान**" की स्थापना के समय उस संस्था के स्थायी कोष को दिये थे। १९७२ ई० में सुहाणा में जन्म दिन के उत्सव पर जितना भी रुपय्या भक्तों ने भेंट किया वह उन्होंने **श्री पीठ शैवदर्शन शोध संस्थान**' को दे दिया। १९८० ई० में उनके पास कुछ और धन था तथा कई सहस्र रुपएवैद्य बृहस्पतिदेव त्रिगुणा के पास पहले के रखे हुए थे। वह सारा धन (अठ्ठाइस सहस्र) उन्होंने **विद्वद्वरकल श्री राधाकृष्ण धार्मिक संस्थान, दिल्ली**' नामक संस्था को स्थापित करते समय उसके स्थायी कोष में दे दिया। वर्तमान भौतिक शरीर को छोड़ने से कुछ समय पूर्व सात सहस्र रु०की धनराशि उन्होंने दिल्ली के भक्त श्री रत्नलाल अग्रवाल के पास धरोहर के रूप में रख दी थी। इस निर्देश के साथ की यदि आवश्यकता पड़े तो इसे उनके पार्थिव शरीर को हरिद्वार में श्री गंगा जी में विसर्जित करने सम्बन्धी व्यय में लगाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त चार सहस्र एक सौ रु० की धन राशि उन्होंने 'सहायता' के रूप में अलग से श्री रत लाल को दे रखी थी। इस प्रकार की आर्थिक सहायया पूज्यपाद जी ने औरभी कई व्यक्तियों की कर रखी थी। कुछ धन उन्होंने फरीदाबाद में श्री कस्तूरी लाल जी आनन्दके पास जमा किया था। १९७३ ई० में उनसे लेकर दिल्ली में हमारे दामाद **श्री द्वारिकानाथ पण्डित** के पास रख दिया था। नोटों की छोटी–छोटी पोटलियां एक कपड़े में बंधी थीं। पण्डित महोदय ने उनको खोला, गिनकर उस सारे धन को बैंक में

रख दिया । उसी धन में से उन्होंने **सन् १९८२ में दस सहस्र रुपए** 'श्री पीठ' को **'आत्मविलास सुन्दरी'** के प्रकाशनार्थ दे दिये । कई सहस्र रुपए लगाकर उन्होंने **पूना में 'अमृतसूक्ति-पंचाशिका'** को प्रकाशित करवाया । पूना के ही प्रसिद्ध उद्योगपति, भगवान् परशुराम के परमभक्त श्री म. स. पारखे के पास भी पूज्यपाद जी ने सात सहस्र छः सौ रु० जमा किये थे। भरतपुर में उनके जो जो भी ग्रन्थ गोविन्द जी ने प्रकाशित किए, उनका प्रकाशन व्यय पूज्यपाद जी के द्वारा जमा किए हुए धन से किया गया। कश्मीर ग्रंथावली के लगभग सारे ग्रन्थ उन्हीं के धन से खरीदकर मैंने रेल पार्सल के द्वारा भरतपुर भेज दिए थे । **उनका वह पुस्तक भण्डार अब जयपुर वाली संस्था में विद्यमान है ।** उनके पास श्री **स्वाध्याय'** पत्रिका के समस्त अंकों की प्रतियां भी उपलब्ध हैं । कुछ और लोगों के पास भी उन्होंने काफी धन जमा करके रखा था । उनके सिद्ध लोकों के प्रतिप्रस्थान के अनन्तर श्री वी. डी. बख्शी ने तीन सहस्र रुपये और भरतपुर वाले **श्री छोटेलाल** जी ने ११११ रु० की राशि दिल्ली वाली संस्था को और इतनी ही राशि श्री पीठ के निमित्त इस ग्रंथ के लेखक अर्थात् मुझे दे दी है । इसके अतिरिक्त श्री के. के. आनन्द एवं श्री ए. के, आनन्द ने भी लगभग ४००० (चार सहस्र) रु० और श्री कस्तूरी लाल जी आनन्द ने भी दो सहस्र रु० की राशि वि. व. श्री राधा. कृ. संस्था को दी है । परन्तु यह नहीं बताया कि यह राशि उन्होंने अपनी ओर से दान में दी है अथवा यह राशि भी उनके पास पूज्यपाद जी की धरोहर थी । सन् १९८२ में उनके देहत्याग के समय उनके थैले में से जितना भी धन निकला था, उसे उस समय उनकी और्ध्वदैहिक क्रियाओं में लगा दिया गया । अस्तु । ये बातें यहां असमय में ही प्रसंग वशात् आ गई ।

२४-४-३९ से कुछ समय पहले से ही **सदाशिव चैतन्य** नामक एक साधु प्रायः उनके साथ कुछ समय घूमता रहा । उसका नाम उन्होंने **रुद्रगण** रखा था । अप्रैल १९३९ से सितम्बर ३९ तक उत्तर पूर्वी पंजाब के आसपास वाले बहरामपुर, कुराली आदि ग्रामों और नगरों में घूमते रहे । रुद्रगण भी साथ घूमता रहा । शरीर में कई एक रोग हो गए थे । फिर २४-९-३९ को सोलन से राजोपाध्याय, पं० उमादत्त जी और जज साहब, श्री शिव सिंह जी कुराली आ गए और पूज्यपाद जी को मोटर कार में सोलन ले गए । वहां राजमाता की कोठी में कुछ दिन रहे । भोजन अतिथिगृह में खाते रहे। बघाट राजाओं की पुरानी राजधानी 'ब्होच' में भी सात दिन राजा साहब की कोठी में रहे । आगे सोलन में उनके लिए भोजन उनके ही आवास में पकाने का प्रबन्ध हो गया । पकाने के काम पर भगीरथ को लगाया गया । नवरात्र वहीं मनाए । १०० रुपय्या राजा साहब के पास जमा कर दिया । आगे एक दिन राजा साहब के

साथ 'सलोगड़ा' का मेला देखने मोटर कार में गए। लगभग महीना भर सोलन में ही रहे। २२-१०-३९ को अम्बाला आकर वहां से नाहन गए और तेरह दिन वहां रहे। चौदहवें दिन "**रेणुका तीर्थ**" में स्नान किया। वहां का दिव्य सौन्दर्य देखने को मिला। पर्वतों के बीच बड़ा भारी बाणभट्ट का अच्छोद सरोवर" जैसा जलाशय, घने जंगल, ऊंचे पहाड़, दूधधारा सामधुर निर्मल और अगाध जल तथा सर्वांगीण अतीत अद्भुत दृश्य; ऐसे प्राकृतिक सौन्दर्य का क्या कहना। भगवान् परशुराम जी की प्रतिभा के भी दर्शन किये। स्नान पूजन आदि करके रात को आकर नाहन में ठहरे। निवास "**सरदार रणदीप सिंह**" के यहां किया। उन्होंने १५ रुपए और एक पश्मीने की चादर भेंट की। वहां से अम्बाला आ गए। सोलन वाले राज सेवक को लौटा दिया। वहां रुद्रगण मिलने आया। फिर कुराली, बहरामपुर, बालसण्डा, होते हुए पुनः अम्बाला आ गए। वहां सोलन के जज साहब शिवसिंह जी मिलने आए।

अम्बाला से भरतपुर गए। गोविन्द जी स्टेशन पर मिलने आए थे। राव साहब ने मोटर कार भेजी थी। वहां भोजन निवास उनकी कोठी में किया। खाना-पीना चांदी के पात्रों में होता रहा। गोविन्द जी के व्यवहाह से काफी संतुष्ट हुए। राव जी ने भी सद्व्यवहार किया। तब से स्वास्थ्य अच्छा रहा २८-१२-३९ तक राव जी के ही अतिथि बनकर वहीं रहे। फिर आठ दिन पं० गोविन्द जी मिश्र के घर रहे। १९-१-४० को भरतपुर से रेल में राजपुरा आ गए। वहां से बहरामपुर, कुराली, बरसालपुर, खरड, आदि स्थानों से होते होते हुए फिर कुराली पहुंचे। साथ रुद्रगण भी था। वहां से खरड जाकर पौष शुक्ल नवमी को सुहाना पहुंचे। साथ कर्ताराम भी थे। वे बहरामपुर चले गए। पूज्यपाद जी ने सुहाना में हरनारायण के चौबारे में निवास किया। भोजन अपने हाथ से पकाया, सीधा लाला फकीरचन्द ने दिया। स्वास्थ्य उन दिनों अच्छा रहा।

वहां से मणिमाजरा गए। वहां से एक दिन सूरजपुर सीमेंट कारखाना देखने गए। फिर लारी द्वारा कुराली आ गए। वहां सात दिन रहकर रोपड़ गये। वहां माघ कृष्ण पक्ष एकादशी को वकील हरिराम की कन्या का विवाह था। उस अवसर पर स्वयं रचित "सप्तपदीहृदयम्" नामक पुस्तिका को पढ़कर सुना दिया। वहां से चलकर नौ दिन बहरामपुर में रहे। वहां से पैदल कुराली लौट आए। **माघ शुक्ल, सप्तमी को मास्टर माधवराम (सहोड़ा) मुनीमी स्कूल कुराली को गुसाइयाणे के शिव मन्दिर में श्रीकृष्ण मन्त्र की दीक्षा दे दी।** हरदेव की स्त्री बीमार थी। तीन दिन भोजन स्वयं बनाया। १८-२-४० को रेल द्वारा अम्बाला छावनी आ गये। वहां से राजपुरा होते हुए कुराली लौट आए। वहां से मणिमाजरा जाकर पं० रघुराम

जी के साथ चण्डी गए। वहां चार ही दिन रहे। पानी अच्छा नहीं लगा। कुराली लौट आये। अन्तड़ियों में विकार हो गया। वहां सात दिन रहे। फिर 'रूडियाला' आए। वहां से 'सप्तपदी हृदयम्' छापने का आदेश प्रेस को भेजा। वहां से चलकर सहोड़ा, कुराली, बहरामपुर में कई-दिन रुकते रहे। फिर इन्हीं ग्रामों में पुन: कई-कई दिन घूमते हुए लगभग २०-४-४० को सोलन आ गए। वहां बहुत दिन रहे। एक दिन पुनः चण्डी आए। वहां का पानी अच्छा नहीं लगा फिर अखबारों वाली कार में बैठकर पुनः सोलन आ गये। वहां राजा साहब की एक कोठी में ठहरे। भोजन की सामग्री का प्रबन्ध राजमाता करती रहीं। भोजन उसी कोठी में बनता रहा। दस दिन वहां रहे। १३-४-४० को वहां राजमाता ने एक असभ्यता का व्यवहार किया—

पूज्यपाद जी ने मेलाराम और अमरसिंह को भोजन पर अपने पास बुलाया। भोजन खिलाने के लिए राजमाता की कोठी से एक टेबल लाने के लिये आदमी को भेजा। उन्होंने टेबल नहीं भेजा। साथ उनसे यह प्रश्न पूछने को कहा—"**आप साधू हैं या राजा ? आपको टेबल की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए।**" इस बात पर पूज्यपाद जी को बड़ा ही खेद हुआ। रात को नींद नहीं आई। दूसरे दिन वहां खाया नहीं। राज परिवार की ओर से आई हुई सभी वस्तुएं, वस्त्र इत्यादि वहीं छोड़कर चण्डी आ गए। वहां पं० रघुराम के पास भोजन करके मणिमाजरा आ गए। 'मनसा देवी के दर्शन किए। वहां से सुहाना आ गए। वहां से खरड, कुराली, बहरामपुर होते हुए कुराली ही लौट आए। चै० शु० ११ शी को 'श्री सप्तपदीहृदयम्' छपकर आ गया। वहां से मणिमाजरा, चण्डी, कालका, धर्मपुर होते होते सपाटू आ गए। वहां २१ रातें लाला ऋषिराम के घर ठहरे। उसका एक ब्राह्मण नौकर सेवा करता रहा। चै० कृ० पञ्चमी को सोलन का राजोपाध्याय मिलने आया। राजमाता (सोलन) का पत्र आया। उन्होंने अपने अपराध की क्षमा मांगी। अस्तु। कुछ दिन घुटने के दर्द ने कष्ट दिया।

१७-५-४० को सोलन से कुंवर शिवसिंह (सेशन जज), उनकी माता, श्री सुमना जी (खवास) आदि पूज्यपाद जी से मिलने को सपाटू आ गए। तीन रातें वहीं रहे। पूज्यपाद जी के द्वारा सोलन में छोड़ दी गई वस्तुएं ले आए थे। उन्होंने उन्हें लिया नहीं। यही कहा कि जिसे चाहो उसे दे दो। उन्होंने कुछ रुपए भी भेंट किए, परन्तु पूज्यपाद जी ने लिये नहीं। फिर राजा साहब और उनकी माता के पत्र भी आए। पूज्यपाद जी लगभग महीना भर सपाटू में ही रहे। सेवा ऋषिराम करवाते रहे। राजोपाध्याय भी वहां तीन रातें रहे। फिर नाहन वाली राजमाता ने दर्शन के लिए प्रार्थना भेजी। परन्तु उन्होंने अभी मिलना स्वीकार नहीं किया। फिर राजमाता ने एक और पत्र

भेजा। क्षमा मांगी। तब पूज्यपाद जी ने उत्तर लिख भेजा।

ज्येष्ठ शुक्ल नवमी को श्रोम प्रकाश को रामरक्षास्तोत्र का उपदेश दिया सायं पांच मील दूर **'खडियाला'** गए। वहां हनुमान जी का मन्दिर है। स्थान काफी सुन्दर है। खाने-पीने औरसोने का सामान ऋषिराम जी ने सपाटू से भेजा २६ रातें वहाँ रहे। घुटने वाला दर्द चलता ही रहा। **इसी महीने 'श्री परशुराम स्तोत्र का दूसरा संस्करण भी पूज्यपाद जी ने बहरामपुर में प्रकाशित किया।** लगभग पांच सौ रुपए पुस्तक प्रकाशन के लिए हरदेव आदि के पास जमा रखे।

१४-७-४० को पूज्यपाद जी ने अपना जन्म दिवन का उत्सव वहीं बघाट राज्य के 'खडियाला' वाले हनुमन्निवास में मनाया। खर्च का प्रबन्ध सारा ऋषिराम (सपाटू) और सोलन के जज साहब ने ही किया। सोलन वाले राजा साहब, और **नाभा के सरदार जगजीत सिंह भी आए थे।** तीस चालीस महानुभावों ने भोजन खाया। फिर राजा साहब की प्रार्थना से 'भ्होच' चले गये। वहां लगभग तीन महीने रहे। भोजन आदि का प्रबन्ध राजा साहब और जज साहब करते रहे। वहां राजमाता (सिरमौरी), लाडी जी, सुमना जी, जज-साहब, भरतपुर के रावसाहब गिरिधारी शरण सिंह जी तथा नाभा के जगजीत सिंह जी आदि महानुभाव आकर मिले। आषाढ़ पूर्णिमा से **वहाँ 'लघुयोग वासिष्ठ' की कथा** करते रहे। लाडी जी ने नया बिस्तरा बनाकर भेजा। राजा साहब ने एक कम्बल और एक चोला बनबाकर भेजा। फल भी भेजे। प्रतिदिन चार-पांच आदमियों का भोजन बनता रहा। प्रबन्ध अच्छा चलता रहा। ऋषिराम ने चांगेरी घृत नामक औषध भेजा। उसका सेवन करते रहे, साथ ब्रह्म रसायन का भी। घुटने की पीड़ा शान्त हो गई। स्वास्थ्य अच्छा रहा। स्थान बहुत अच्छा लगा। जलवायु स्वच्छ था। चारों ओर हरा भरा बन था। उस स्थान पर राजा साहब की घुड़शाला भी थी। अगले महीने भी सोलन वाले महानुभाव प्रायः सभी आये। तीन दिन वहाँ रहे। **'स्वामी नारायण गिरि प्रतिदिन मिलने आते रहे।** अनन्त चतुर्दशी के दिन राजा साहब का जन्म दिन था। उस दिन पूज्यपाद जी भी सोलन गए। वहां राजा साहब ने उनके लिए **'नवाह्निक व्याकरण महाभाष्य प्रदीप-उद्योत सहित'** मंगवा कर रखा था। वापसी पर एक रात 'झांगरी' में नेकराम रसोइए के घर और एक रात सुपाटू में ला० ऋषिराम के घर पर रहे। उस महीने घुटने में दर्द होता रहा। १०-१०-४० को भोजन आदि करके सोलन आ गए। साथ लाडी जी, सुमना जी और जज शिवसिंह जी थे। एक रात वहां ठहरे। दूसरे दिन यहाँ से अम्बाला छावनी चले गये। राजा साहब भी वहां आयेवहां से पूज्यपाद जी राजपुरा गये। पाँच घंटे वहां ठहरकर **कुराली** आ गये। वहाँ कार्तिक कृ. चतुर्थी

को हरदेव को मुकुन्द वल्लभ की नौकरी से स्वतन्त्र कर दिया और वह अगले महीने से कुछ समय के लिये राजपुरा आकर रहने लगा। पूज्यपाद जी वहां से बहरामपुर और वहां से कुराली आ गए। वहाँ उज्जैन के पं० सूर्यनारायण जी के छोटे भाई पं० चन्द्रशेखर (चैतन्यानन्द) तीन दिन के लिए आए थे। उनसे परिचय हो गया वहां से पूज्यपाद जी सुहाना आ गए। वहां **अर्जुन सिंह** की कोठी में रहे। वे बीमार पड़े थे। उनके लिए मृत्युंजय जप करवाया। सुहाना में पूज्यपाद जी से मिलने के लिए सोलन की राजमाता (सिरमौरी), शिवसिंह, लाडी जी, और राजोपाध्याय आये। सुहाना में सात दिन ठहरकर पूज्यपाद जी मणिमाजरा होते हुए रोपड़ आ गए। वहाँ वकील हरिराम ने नया मकान बनाया था। नाम उसका "**आनन्द निवास**" रखा था, क्योंकि पूज्यपाद जी को तब हिमाचल, पंजाब, जम्मू-कश्मीर में "आनन्द स्वरूप" नाम से ही लोग जानते थे। उनका "अमृतवाग्भव" नाम आगे तभी विख्यात होने लगा जब सोलन से "श्री स्वाध्याय" पत्रिका निकलने लगी। रोपड़ से पूज्यपाद जी राजपुरा आ गये और श्री जनार्दन के घर ठहरे। वहां से हरदेव त्रिवेदी और भाई रामसिंह के साथ दिल्ली आ गए। **सस्ता साहित्य मण्डल में मार्तण्ड उपाध्याय और महादेव शर्मा के साथ ठहरे।** फिर श्री जर्नादन के पास आये। दो दिन के पश्चात् रेल द्वारा भरतपुर आ गये। वहां ७-१-४१ तक गोविन्द जी के घर में ठहरे। वहां अनेकों महानुभाव मिलने आते रहे।

८-१-४१ को गोवर्धन गए। वहां रावजी की कुंज में ठहरे। साथ गोविन्द जी की माता थीं। भोजन वही बनाती रहीं। वहाँ ६ दिन रहे। परन्तु एक रात भी आराम से सो नहीं सके। वहां रात को विविध **आकारों में अनेकों प्रेतों के दर्शन होते रहे।** वे प्रेतभाव से छुटकारा पाने के लिये उनके पास आते रहे। उन्होंने कहा कि जाओ जहाँ कहीं भागवती कथा हो, वहाँ उसे सुनते रहो। तब प्रेतभाव से छूट जाओगे। **वहां बाबा सुखानन्द को देखा। वे अपने को २५० वर्ष की आयु का बताते थे।** गप्पें बड़ी लगाते थे। पाखण्डी प्रतीत हुए। पूज्यपाद जी से द्वेष करने लगे। भाई रामसिंह भी वहाँ आकर चार दिन रहकर नासिक चला गया। पूज्यपाद जी आये थे वहाँ एक महीना भर रहने के लिए, परन्तु प्रेतों से तंग आकर ६ दिन के पश्चात् ही भरतपुर आये। वहाँ से माघ की अमावस्या को सोमवती के गंगा स्नान के लिए राव जी की कार में अनूप शहर गये। साथ गोविन्द जी भी थे। वहां से अलीगढ़ होते हुए वृन्दावन आकर वहां चार दिन ठहरे। वहाँ से भरतपुर आकर ४ दिन गोविन्द जी के पास ठहरे। एक दिन गोकुल भी गये।

गोवर्धन यात्रा के प्रकरण में पूज्यपाद जी स्वयं लिखते हैं कि गोविन्द जी के ही प्रभाव से राव जी उनका विशेष सत्कार करते रहे। उससे ऐसा

प्रतीत होता है कि सम्भवतः उनका राव जी के साथ सम्पर्क गोविन्द जी ही द्वारा हुआ होगा। गोविन्द जी राव जी के राजपण्डित थे और अपनी विद्या चरित्र, उपासना, निष्ठा आदि गुणों के कारण उनकी प्रभावशालिता भरतपुर में काफी जमी हुई थी। उनके भांजे श्री धरणीधर शास्त्री ने अपने संस्मरण में लिखा है कि एक बार सन् १९४० में पूज्यपाद जी रेल में कहीं जा रहे थे। डिब्बे में साथ बैठे हुए एक भरतपुर निवासी विद्वान शैव दर्शन की किसी पुस्तक को पढ़ रहे थे। उस प्रसंग से बात चली और उनसे पूज्यपाद जी का परिचय हो गया। पण्डित जी के आग्रह से पूज्यपाद जी भरतपुर में ही उतरे और वहां कुछ देर ठहरे। तब वहां गोविन्द जी का उनसे परिचय हो गया। यदि यह बात यथार्थ हो तो मेरे विचार में वे पण्डित महोदय श्री मदन लाल जी शास्त्री होंगे। उनको पूज्यपाद जी के साथ विशेष स्नेह था। आगमिक दर्शन विद्या में उनको भी बहुत रुचि थी। कश्मीर ग्रन्थावलि के कई एक प्रकाशन उनके पास थे और स्वतन्त्रानन्द सिद्ध के मातृ का चक्र विवेक' को भी मैंने उनके पास देखा था। तो इस तरह से भरतपुर वाले सज्जनों में से पूज्यपाद जी का परिचय पहले श्री मदनलाल जी शास्त्री से हुआ; फिर गोविन्द जी से और उनके ही द्वारा भरतपुर के राव साहब से। वह परिचय सन् १९४० में हुआ। आगे गोविन्द जी से उनका अतीव घना सम्बन्ध बनता गया।

९-२-४१ को पूज्यपाद जी भरतपुर से मथुरा और बृन्दावन गए। वहां से सोलन, सुपाटू, मणिमाजरा, सुहाना, बलाणा होकर फिर राजपुरा होते होते अम्बाला में आठ दिन रहे। वहां सोलन से जज साहब, उनकी मां, सुमना जी आदि मिलने आए। फिर ८-३-४१ को पूज्यपाद जी राजपुरा आ गए और छः दिन वहां रहे १४-३-४१ को हरिद्वार गए। वहां तीन दिन ठहर कर ७-४ को रेल द्वारा अमृतसर को चले। वहां भवानीशङ्कर त्रिबेदी के पास ठहर कर और खाना खाकर रात को ज्वालामुखी की ओर बढ़े। अमृतसर में दंगा हो गया था। कर्फ्यू में ही वहां से चलकर चै० कृ० ७मी को ज्वालामुखी मन्दिर पहुंच गए। वहां लाला रत्नचन्द के घर ठहरे। नवरात्रों में अम्बिकेश्वर में दुर्गापाठ करते रहे। १८ दिन ज्वालामुखी में ही रहे।

७-४-४१ को एक वर्ष के लिए ज्वालामुखी के दैनिक पूजन के लिए किसी पुजारी को ६ रुपए दे दिये १३ दिन वहीं ठहरे। खाने पीने का प्रबन्ध रत्न चन्द जी ने किया। २०-४-४१ को फिर राजपुरा आ गए। पांच दिन वहां रहकर रेल द्वारा अमृतसर आ गए। फिर राजपुरा आकर ५ दिन रहकर बहरामपुर, मनिमाजरा, कालका होते हुए सोलन गए। ठहरे पाठशाला के सामने के कमरे में, भोजन शिवसिंह जी के यहां करते रहे। ९ दिन वहां रहे। लाडी जी तीन कमीजे और दो धोतियां ले आईं। राजा साहब भी एक दिन

आए। राजमाता की कोठी में नही गए। अब हरदेव त्रिवेदी भी ५-५-४१ को वहां आए। उनके भोजन आदि का प्रबन्ध कराया गया उनके निवास का सोलन में ही प्रबन्ध करा दिया। पांच दिन भोजन कुंवर शिवसिंह के यहां किया। आगे ज्येठ कृष्ण पं० प्रतिपदा से सामग्री राजा साहब से आती रही और भोजन हरदेव जी के पास बनता रहा। पाठशाला के सामने दो कमरे पूज्यपाद जी के ही लिए रखे गए। सोलन में पं० इकबालनाथ गुर्टू प्रो० वाइस चांसेलर हिन्दु विश्वविद्यालय वाराणसी से परिचय हो गया। १५-६-४१ तक यहीं रहे। जून के मध्य में एक बार राजा साहब के साथ शिमला और सलोगड़ा हो आए। २२ जून को सोलन का मेला था। राजा साहब की कुर्सी के साथ ही पूज्यपाद जी की कुर्सी थी। एक दिन वहां राणा साहब 'कुठार' के साथ परिचय हो गया। १५ दिन सरहिन्द का श्याम लाल खत्री आकर पूज्यपाद जी के पास सोलन में ठहरा।

३-७ ४१ को पूज्यपाद का जन्म दिन था। नाहन वाली राजमाता ने अपनी कोठी में पूज्यपाद का जन्म दिवस मनाया उस दिन वहां अनेकों ब्राह्मणों को भोजन खिलाया गया। तीन रुपय्ये के लड्डू बांट दिए। दो रुपए पं० हरिदत्त ज्योतिषी को मृत्युञ्जय जप के लिए दिए। जज साहब, नाहन वाली राजमाता, सिरमौर वाली राजमाता, गढ़वाली राणी साहिबा, खवास, सुमना जी, चैनी खवास, राजा साहब आदि सभी ने फलों के उपहार भेजे। उसी दिन पूज्यपाद जी के हाथों दुर्गाभवन की स्थापना की गई। राजा साहब भी उत्सव में उपस्थित थे। सप्तशती के समस्त संस्करणों और तत्सम्बन्धी अन्य ग्रन्थों का संग्रह करने की योजना बनी। श्री पञ्चस्तवी भी छपवाकर प्रकाशित की गई। इस अवधि में स्वास्थ्य अच्छा ही रहा। सम्मान भी मिला और कुछ ठोस कार्य भी हुआ। आगे दुर्गा भवन में ही पूज्यपाद जी ने "श्रीस्वाध्याय सदन" की स्थापना की। सदन की योजना के अनुसार श्री स्वाध्याय नामक पत्रिका को चलाने और पूज्यपाद जी के तथा प्राचीन सिद्ध महापुरुषों के ग्रन्थों को प्रकाशित करने का निश्चय हो गया।

आगे महीना भर स्वास्थ्य जरा ढीला रहा। हरदेव की पत्नी बीमार हो गई। अतः भोजन १३ दिन जब साहब के घर करते रहे। शेष सेवा का प्रबन्ध राजा साहब करते रहे। "श्री स्वाध्याय" पत्रिका को चलाने के लिए यत्न करते रहे। रहे काफी देर सोलन में ही। आगे १४-८-४१ को जगाधरी चले गए। हरदेव जी भी साथ थे। भवानी शङ्कर त्रिवेदी ने अम्बाला के लिए दो टिकटें लेकर दीं। तब भाद्र कृ० ७ मी को दोनों अम्बाला गए और लौटकर जगाधरी आए। वहां सनातन धर्म सभा के एक कमरे में ठहरे। चार रातें वहां रहे। वहां बनियों ने भद्दा व्यवहार किया। वहीं जन्माष्टमी आई। उस

उत्सव पर पूज्यपाद जी ने बनियों के जलसे में भाषण देने के सुझाव को ठुकरा दिया। स्वतन्त्रतया एक दिन व्याख्यान दिया भी और कीर्त्तन भी करवाया। भोजन आदि किसी **'मित्तल'** के यहां करते रहे। एकादशी को भोजन करके दिल्ली चले गए। **वहां देहली क्लाथ मिल्ज वाले पं० देवकी नन्दन शास्त्री के पास ठहरे। हरदेव जी** मोहन लाल वैद्य **के पास ठहरे।** चार दिन दिल्ली में रहे। प्रबन्ध सारा शास्त्री जी ने किया। भाद्रपद की अमावस्या को रात की गाड़ी से भरतपुर गए। वहां **पं मनोहर के** पास चार रातें ठहरे। फिर दिल्ली को ही लौट आए। सौर मास के अन्त तक वहां **पं० नन्दलाल शास्त्री के पास ठहरे।** इस महीने जहां जहां गए वहां वहां श्री स्वाध्याय पत्रिका को चलाने के स्थिर आर्थिक आधार को बनाने का यत्न करते रहे।

जैसा कि पूज्यपाद जी ने मुझे सुनाया है वे वि० सं० १९९८ में तदनुसार ई० सन् १९४१ में जब कुछ दिन दिल्ली ठहरे थे तो उन्हें एक दिन दैनिक पाठ और अभ्यास के पूरा होते ही एक **"दिव्य महापुरुष के दर्शन हुए।"** दर्शन देने के क्षण में वह लगभग दो वर्ष का एक बच्चा था। त्यों ही क्षणों में वह २५ वर्ष का युवा बन गया। उसने बताया—**"वह भारतवर्ष के प्रशासन की व्यवस्था का ऐसा सुधार करेगा कि यहां न्याय, सुख, शान्ति आदि का युग पुनः प्रवृत्त हो जाए।"** उसी समय उन्हें वर्तमान राष्ट्रपति निवास और उस युग का **"वाइसरीगल लाज'** सामने दीखा। उस भवन का सारा रंग ढङ्ग भारतीय दिखाई दिया और उसके ऊपर "यूनियन जैक" के स्थान पर **एक नवीन एकरंगा झण्डा** लहराता हुआ देखने में आया। उस झण्डे का रंग जरा भर नसवारी-केसरी था। झंडा न तो तिरङ्गा ही था और न भगुआ ही था। उस दृश्य के दर्शन से पूज्यपाद जी को इस बात का विश्वास मन में आ गया कि भारत जल्दी ही स्वाधीन हो जाएगा। फिर उन्होंमे यह अनुमान लगाया कि वह महापुरुष ही भारत का अभिनव युग पुरुष होगा। उन्होंने यह भी अन्दाजा लगाया कि उसका जन्म सं० १९९६ में हुआ होगा और २५ साल का हो जाने पर २०२१ विक्रमी संवत् (१९६४ ई०) में वह प्रकट होकर भारतवर्ष का नेतृत्व अपने हाथ में लेकर इस देश का उद्धार करेगा। परन्तु वैसी बात हुई नहीं। सम्भव है कार्यक्रम में कुछ परिवर्तन आया हो और वह स्थिति कुछ वर्षों के पश्चात् आए। हमारा **एक वर्ष दैवी प्रशासन के केवल एक दिन का ही होता है।** यदि वहां के कार्यक्रम में केवल एक मास का कालिक परिवर्तन किया गया है तो वह समय यहां के तीस वर्षों के समान होता हुआ यहां उतने वर्षों के अनन्तर सुधार को लाएगा। तब वह सुधार यहां १९६४ ई० में तथा वि० सं० २०५१ में आएगा।

अगले सौर महीने के आरम्भ में **दिल्ली में ही पं० नन्दलाल शास्त्री ही के**

पास रहे। तीन रातें वहां ठहर कर पुनः भरतपुर गए। वहां मनोहर ने उनकी एक फोटो उतार ली। अनन्त चतुर्दशी को राव जी का जन्म दिन आया। दिल्ली के लिए टिकट और श्रीस्वाध्याय के लिए ३० रुपए राव जी ने दे दिए। तब आषाढ़ कृ० पञ्चमी को दिल्ली आ गए। फिर वहां से चण्डी मणिमाजरा, कालका होते हुए सोलन लौट आये। वहां आषाढ़ कृ० नवमी को राजा साहब का जन्म दिन था। दरबार लगा। पूज्यपाद जी को भी बुलाया गया और माननीय आसन उन्हें दिया गया। फिर राजा साहब के साथ सन्त ज्ञानेश्वर टाकी फिल्म देखने गए। चतुर्दशी को ऋषिराम आकर सपाटू ले गया। वहां सूर्यग्रहण हुआ। फिर रात को सोलन आ गए। नवरात्र सोलन में मनाये। राजमाता सिरमौरी दो बार मिलने आई। फिर २-९-४१ को राजा साहब की कार में मनसा देवी गए। साथ राजमाता सिरमौरी, शिवसिंह जज उनकी पत्नी और मुन्नू पुजारी भी थे। पूज्यपाद जी ने मनसा देवी को पच्चीस रुपए की चांदी की आरती चढ़ाई, एक रुपय्या दक्षिणा भी। राजमाता आदि सोलन लौट गए और पूज्यपाद जी मणिमाजरा में रुके। राजा साहब मिलने आए, ३० रुपए दे गए। स्वास्थ्य महीना भर अच्छा रहा।

३०-९-४१ को वे मनिमाजरा से चले और क्रम से खरड, रुडिआला, बहरामपुर और रोपड़ होते हुए नालागढ़ आ गए। उस अवसर पर वहां के लोगों के व्यवहार सन्तोषजनक नहीं लगे। किन्नू राम आसन्न मृत्यु था। उसे अन्तिम उपदेश दे दिया। ८-१०-४१ को रोपड़ आए। 'ज्वर हो रहा है' ऐसा प्रतीत हुआ। दूसरे दिन ज्वर चढ़ भी गया। साथ खांसी भी आने लगी। रात को फिर बहरामपुर गए। अगले दिन ज्वर और खांसी का प्रकोप बढ़ गया। बारह दिन बीमार रहे। बीस दिन बहरामपुर ही रहे। तेरह शनिवारों के निमित्त तीन रुपये दान किए। बालसंडा का चन्द्रमणि दवा देता रहा। एक बार वैद्य विश्वम्भर देखने आए। सेवा विशेषतया सावनराम करते रहे। निर्बलता बहुत हो गई। मास्टर भगवानदास मिलने आये। उसका लड़का बाबूराम आठ दिन वहीं रहा और पूज्यपाद जी के लिए रोटी पकाता रहा। हरदेव एक बार सोलन से आया था। आश्विन शुक्ल दशमी (विजय दशमी) वि० सं० १९९८ को श्री स्वाध्याय का प्रथम अंक छप गया।

'श्री स्वाध्याय' की स्थायी समिति की एक झलक देखिये:—

श्री आचार्य अमृत वाग्भव जी	...	संस्थापक एवं प्रधानाध्यक्ष।
पं० श्री गोविन्द मिश्र, भरतपुर।	...	अध्यक्ष।
पं० हरदेव त्रिवेदी, सोलन	...	प्रधान संपादक एवं व्यवस्थापक।
श्री जय जय रामजी, गीता प्रेस गोरखपुर	...	महामंत्री।
श्री शिव प्रसाद जी खरड़	...	कोषाध्यक्ष।

श्री सरदारी लाल जी ... उप मन्त्री
श्री लक्ष्मी चन्द जी भरतपुर ... सहायक कोषाध्यक्ष
श्री कस्तूरी लालजी आनन्द ... ...

अगले महीने भी रोग ने बहुत सताया। ज्वर १०४, १०५ तक चढ़ता रहा। इस महीने के प्रथभ पांच दिन भी बहरामपुर में ही सावणराम के घर रहे। रोटी बाबू राम पकाता रहा। बरसालपुर से पं० जीवाराम देखने आया था। ३-११-४१ को सोलन को चलने के लिए ज्योंही पक्की सड़क तक पहुंचे त्यों ही राजा साहब की कार भीं उधर से आ पहुंची और उसमें पूज्यपाद जी सात बजे रात सोलन पहुंच गए। पाठशाला के सामने वाले कमरे में ठहरे। भोजन हरदेव जी के यहां बना। प्रबन्ध राजासाहब की ओर से हुआ। पांचवें दिन जज शिवसिंह के घर गए तो वहीं ज्वर चढ़ गया। तब उधर ही रहने लगे। बीस दिन वहां रहे। तदनन्तर खरड़ चले गए। जैसा कि मुझे श्री रत्न लाल' जी बताया है—'खरड़ उस समय जिला अम्बाला की एक तहसील थी। यह एक प्राचीन छोटा सा कस्बा था। आबादी अधिकतर बनियों और ब्राह्मणों की थी। इस नगर से भी पूज्यपाद जी का विशेष घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। यहां के प्रेमियों में भक्त छज्जूराम, श्री रामजी दास (नाई) एवं उसके सुपुत्र श्याम आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। परन्तु इनसे भी अधिक महत्वपूर्ण नाम हैं यहां के अग्रवाल परिवार के दो सगे भाइयों के जिनके परिवार से पूज्य पाद जी का परिचय संभवत: सन् १९४१ अथवा ४२ में मास्टर भगवान् दास के माध्यम से हुआ। उस अग्रवाल परिवार के बड़े भाई का नाम शिव प्रसाद अग्रवाल तथा छोटे का नाम बांके लाल अग्रवाल था। दोनों ही व्यवसाय से व्यापारी थे और रहते थे पृथक पृथक। दोनों ही आस्तिक धर्मनिष्ठ एवं अत्यन्त श्रद्धावान थे। साधु महात्माओं को सेवा की अपना परम कर्तव्य समझते थे। उक्त दोनों परिवार एवं मास्टर भगवान् दास एक ही गांव (रसनहेड़ी) के रहने वाले थे। दोनों ही वैश्य परिवार उस समय भू-सम्पत्ति एवं धन-धान्य से खूब सम्पन्न थे। श्री शिवप्रसाद जी एवं बांके लाल जी दोनों को उस समय दो दो पुत्र प्राप्त थे, जो अभी अल्प आयु के बालक ही थे। श्री बांके लाल जी के बड़े पुत्र का नाम राजकुमार एवं छोटे पुत्र का नाम राम कुमार था। श्री शिव प्रसाद जी के बड़े पुत्र का नाम रत्नलाल और छोटे का नाम जगदीश था। अभी किसी भी बालक का ठीक तरह से अक्षराम्भ भी उस समय नहीं हुआ था। राजकुमार को 'क ख' इत्यादि वर्णों का शुद्ध उच्चारण भी पूज्यपाद जी ने ही सिखाया था। उधर खरड़ में पूज्यपाद जी सन् १९४१-४२ से लेकर वर्ष १९४३ के अन्त अथवा १९४४ के प्रारम्भिक शीतकाल तक लगातार आतेजाते ही रहे। ठहरना उनका प्रायः शिव प्रसाद जी के नवनिर्मित मकान

में ही हुआ करता था। **रत्नलाल जी** को ऐसा याद पड़ता है कि एक बार तो पूज्यपाद जी (जिन्हें उस क्षेत्र में उन दिनों **'स्वामीजी'** कहके पुकारा जाता था) उनके घर में लगभग ३-४ महीने तक रहे थे। बालकों का उर्दू पढ़ना उन्हें जरा भर भी अच्छा नहीं लगता था। इसी लिये वे बार-बार उन्हें हिन्दी-संस्कृत पढ़ाने के लिये शिवप्रसाद तथा बांके लाल जी से अनुरोध किया करते थे और साथ में यह भी कहा करते थे कि आगे आने वाला समय उर्दू का न हो कर 'हिन्दी' का ही होगा। उनकी भविष्य वाणी आगे सन् १९४७ के पश्चात् अक्षरशः सत्यसिद्ध हुई। शिव प्रसाद जी की दादी जो उस समय लगभग ८० वर्ष की बूढ़ी महिला थी को पूज्यपाद जी ने यह जानने की युक्ति भी बताई थी कि उनकी मृत्यु में कितना समय शेष था। तदनुसार ही वह प्रतिदिन अपने हाथ की हथेली को माथे से लगाकर किसी चिन्ह के प्रकट होने की प्रतीक्षा करती रहती थी और फिर एक दिन उसने यह घोषणा कर दी थी कि अब उसके मरण का समय आ पहुंचा है। कुछ दिन के उपरान्त सचमुचही उसने शरीर छोड़ दिया। खरड़ के आस पास के गावों, यथा पुरखाली, बजहेड़ी, रुडियाला आदि के प्रेमी भक्त पूज्यपाद जी से मिलने खरड़ आया करते थे और कई कई दिन उनके साथ ठहर कर सत्सङ्ग का लाभ उठाया करते थे। खूब गोष्ठियां चलती थीं और घूमना फिरना भी होता था। उस क्षेत्र के आम पूज्यपाद जी को विशेष पसन्द थे। नगर के चारों ओर आम के वृक्षों के बाग थे और फसल के दिनों में प्रायः पूज्यपाद जी बागों में जा कर ही आम के फलों का रस चूस कर तृप्त हो जाया करते थे। सोलन से हरदेव जी बहरामपुर से श्रावण राम और कर्ता रामजी, भरतपुर के रावसाहिब, घनौली के रामरत्न शर्मा, सोहाणा के पं० जटाशंकर जी, मनौली के शास्त्री जी, रुडियाला के मा० देवराज जी तथा उनके पुत्र श्री गिरिजानन्द एवं प्रीतम जी चोहल्टे के पं० ज्वाला प्रसाद, बाबू राम बजहेड़ी के पं० शादी राम इत्यादि कितने ही भक्त प्रायः प्रतिदिन आते ही रहते थे। खरड़ में एक नाथ साधुओं का स्थान बड़ा प्रसिद्ध था। वहां पर **'अम्बिका देवी'** का एक मन्दिर भी था। उस स्थान को **'देवी दवाला'** (देवालय) कहते थे। वहां के मठाधीश **'मंगल दास'** को कृपा पूर्वक पूज्यपाद जी ने कुछ साधना बताई थी, जिसके फलस्वरूप उसकी आश्चर्यजनक रूप से आध्यात्मिक उन्नति ही नहीं हुई बल्कि उसे सिद्धि भी प्राप्त हुई थी। तभी से सारे शहर में उसकी प्रतिष्ठा बहुत अधिक बढ़ गई थी। किसी भी आर्तव्यक्तिके सिर पर वे मंगलनाथ हाथ रख कर जो भी कह देते थे, वही पूरा होता था, उनके द्वारा राख की चुटकी दे देने मात्र से ही लोगों के कष्ट दूर हो जाते थे। खरड़ के प्रसंग का यहां विस्तृत उल्लेख इसलिये भी किया जा रहा है कि कुछ ही समय के पश्चात् पूज्यपादजी केश्वशुर आदि कई सम्बन्धी उन्हें खोजते हुये यहां तक

आ पहुंचे थे। ऐसा एक महानुभाव के विश्वासघात के कारण ही हुआ था। इसका विस्तृत वर्णन अगले अध्याय में किया जा रहा है।

यह महीना बीमारी में ही निकला। बहुत तीव्र ज्वर आता रहा। दवा गुफावाले स्वामी की लेते रहे। निर्बलता बहुत बढ़ गई। साथ ऐसा भी प्रतीत होने लगा कि राजा साहब के व्यवहार में कुछ उपेक्षा का भाव आने लगा था।

अगले महीने स्वास्थ्य सुधरने लगा। निवास, भोजन जज साहब के घर करते रहे। राजमाता (सिरमौरी) ने पूज्यपाद जी के लिए चार पांच सहस्र रुपये लगाकर एक स्वतन्त्र भवन का निर्माम करना चाहा, परन्तु पूज्यपाद जी ने यह देखा कि एक ओर से राजा साहब के मन में उपेक्षा का भाव आने लगा था। दूसरी ओर वे उनके प्रशासन के अधिकारियों का व्यवहार ठीक नहीं था तीसरी ओर से **राजोपाध्याय उमादत्त** जोशी और **राजवैद्य माधवशर्मा** का। व्यवहार सन्तोषजनक नहीं था और चौथी ओर सिरमौरी वृद्धा राजमाता के स्वभाव में अकारण क्रोध, वाणी में संयम का अभाव और अविवेक की मात्रा प्रबल थी। इन कारणों से पूज्यपाद जी ने भवन निर्माण के प्रस्ताव को ठुकरा ही दिया। इस महीने श्री स्वाध्याय का दूसरा अङ्क (हेमन्ताङ्क) छप गया।

आगे पूज्यपाद जी सोलन में विशेषतया न रहते हुए दुर्गाभवन और स्वाध्याय सदन के कार्यों में तथा श्री स्वाध्याय के प्रकाशन में काफी दिलचस्पी लेते रहे। हरदेव त्रिवेदी का उनके साथ कुछ समय आगे भी लगातार सम्पर्क बना ही रहा। पूज्यपाद जी श्री स्वाध्याय के लिए धन भी एकत्रित करके भेजते रहे तथा जहाँ तहाँ के परिचित बिद्वानों से उसके लिए लेख भी मंगवाते रहे। पूज्यपाद जी के साथ जो मेरा सम्पर्क बढ़ता गया, वह श्री स्वाध्याय ही के माध्यम से हुआ। हरदेव जी प्रायः मुझे पत्र लिखते रहे और मैं भी नियमपूर्वक लगभग प्रत्येक अंङ्कके लिए लेख लिख कर भेजता रहा। उत्तर पश्चिमी भारत के अनेकों अच्छे अच्छे विद्वानों का परिचय मुझे श्री स्वाध्याय से ही प्राप्त हुआ और मेरा परिचय भी दूर दूर तक के लोगों को और माननीय विद्वानों को उसी पत्रिका के माध्यम से होता गया। पूज्यपाद जी के हृदय में मेरे प्रति जो आत्मीयता का भाव बनता गया, उसका भी एक विशेष कारण श्री स्वाध्याय ही बना। लेखों के द्वारा प्रकट होने वाली मेरी दार्शनिक विचारधारा पूज्यपाद जी को अच्छी लगती रही और उस बात से उनके हृदय में मेरे प्रति दिलचस्पी बढ़ती गई।

पूज्यपाद जी को कोटी हाऊस में सम्मानपूर्वक रहते हुए इसबात का अनुभव पहलेभी हो चुका था कि राजाओं के पास रहना अच्छा नहीं होता है, वहां ईर्ष्या के कारण लोग निष्कारण बैरी बन जाते हैं। अब सोलन में पुनः राजसम्मान पूर्वक रहने पर उनकी वह धारणा और भी पक्की हो गई। अतः १६४१ के

पश्चात् प्रायः इधर-उधर घूमते ही रहे और अपने निवास का प्रधान केन्द्र सोलन के स्थान पर उन्होंने भरतपुर को बनाया। वहाँ भी राव साहब की कोठी की अपेक्षा गोविन्द जी की कुटिया को ही बनाया। ऐसा करते हुए भी वे सोलन वाले स्वाध्याय सदन के साथ घनी दिलचस्पी रखते हुए उसके विकास के लिए कई और वर्ष लगातार प्रयत्नशील बने रहे। अतः उन वर्षों के जीवन वृत्तान्त को भी इसी अध्याय में लिखा जा रहा है।

२८-१२-४१ से पाँच रातें सोलन में जज साहब के घर रहे। ३१-१२-४१ को राजा साहब वहां आये। अपनी निर्दोषता को जतलाते रहे। फिर भी पूज्यपाद जी ने भवन निर्माण के प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। क्योंकि उनके व्यवहार से उन्हें उपेक्षा का आभास होता ही रहा। यद्यपि राजा साहब और राज परिवार पहले की तरह अब भी आर्थिक सेवा करते रहे। २-१-४२ को पूज्यपाद जी राजा साहब की कार में अम्बाला छावनी आ गये और वहां से रेल पर सवार होकर भरतपुर को चले पड़े। मार्ग में दिल्ली के स्टेशन पर हरदेव जी मिले तो उन्हें श्रीस्वाध्याय के लिये ३००) रुपय्ये अपने पास से दे दिये। स्थान-स्थान पर अनेकों महानुभावों को उसके सामान्य ग्राहक अर्थात् स्वाध्याय सदन के सामान्य सदस्य बनाकर उनसे पत्रिका का वार्षिक मूल्य भिजवाते रहे।

उनकी प्रेरणा से अनेकों महानुभाव अधिक-अधिक दान देते हुए सदन के सामान्य सदस्य, सहायक सदस्य और संरक्षक भी बन गये और इस तरह से पत्रिका की आर्थिक स्थिति सन्तोष जनक बनती गई। पत्रिका को चालू करने के कुछ समय पश्चात् पूज्यपाद जी ने सोलन को वर्षों तक छोड़ रखा, परन्तु श्री स्वाध्याय के लिये लेख, श्लोक रचना आदि लगातार भेजते ही रहे। इन्हीं बातों के कारण इस अध्याय का शीर्षक श्री स्वाध्याय की स्थापना से ही जोड़ा गया। दिल्ली से रेल चल पड़ी और उसी दिन पूज्यपाद जी रात के दो बजे भरतपुर पहुंच गए। स्टेशन पर पं० गोविन्द जी और श्रीराम जी राव जी की कार लेकर आये थे। रात को राव जी की कोठी में रहे। लगभग बाईस दिन वहां रहकर माघ शु० सप्तमी को राव जी के साथ ही उनकी कार में दिल्ली आ गये। साथ श्री गोविन्द जी, राम जी और मनोहर जी भी थे। २७-१-४२ तक दिल्ली में रहे। इस महीने स्वास्थ्य ठीक होता रहा। गोविन्द जी के व्यवहार पर विशेष सन्तुष्ट रहे। राव जी ने एक उत्तम प्रकार का पेन उन्हें दे दिया। २८-१-४२ को वापिस भरतपुर आ गए। दिल्ली में स्वास्थ्य में कुछ विकार आ गया। उससे अग्नि मन्द पड़ गई। साधु रुद्रगण भरतपुर आया। पूज्यपाद जी के साथ नौ दिन रहा। फिर धौलपुर चला गया। भाई रामसिंह भी मिलने आया। मिलकर गंगा जी चला गया। पूज्यपाद जी को

ऐसा लगा कि इसने आध्यात्मिक क्षेत्र में अच्छी प्रगति की है। पूज्यपाद जो अपने स्वास्थ्य को ठीक करने के लिए कई एक औषधियों का सेवन करते रहे। अगले महीने स्वाध्याय के बसन्तांक की सारी सामग्री को ठीक करते रहे। स्वास्थ्य में ऐसा विकार आ गया कि कानों से सुनना कठिन होने लगा। फिर उन दिनों ऐसा प्रतीत हुआ कि पं० मदन लाल जी और रामजी वेदपाठी के व्यवहार का ढंग अतीव असन्तोषजनक था। अगले महीने अर्थात् २७ ३-४२ से २५-४-४२ तक भरतपुर में ही रहे। १०-५-४२ को लारी द्वारा 'दीघ' को गए। वहां पहुंचकर टांगे से **गोवर्धन** गए। राव जी की कुंज में ठहरे। **फिर मानसी गंगा के तट पर शिव मन्दिर में गोविन्द जी को श्री रहस्य सहस्रनाम की दीक्षा दे दी। फिर मनोहर को भुवनेश्वरी दीक्षा दे दी।** २३-४-४२ को मथुरा गए। रातभर स्टेशन पर ठहरे। २४-४ को प्रातः वाली गाड़ी से चले और साढ़े आठ बजे दिल्ली पहुंच गये। दो दिन वहां रहकर २६-४ को राजपुरा पहुंचे। फिर रेल से **'कौली'** पहुंचे और आगे पैदल **'सेरा'** पहुंच गये। साथ नन्दलाल शास्त्री थे। १६ रातें वहां रहे। २५-४-४२ तक प्रतिमास सहस्रनाम के पाठों का लेखा पूज्यपाद जी ने लिख रखा है। तदनुसार २५-४-४२ तक उन्होंने ५००१ सहस्रनाम पाठ पूरे कर दिये।' परन्तु पिछले तीसरे जन्म में जो संकल्प किया था वह सर्वथा पूरा नहीं हुआ। कारण यह बना कि गत दो मास से स्वास्थ्य बिगड़ गया, अग्नि मन्द पड़ गई। कानों में भारीपन आ गया। अतः अस्वस्थ होने के कारण प्रतिदिन सहस्रनाम के तीन तीन पाठ करना कठिन हो गया। इसी कारण अब स्वयं पाठ करना बन्द कर दिया और पाठों की शेष संख्या को पूरा करने के लिए गोविन्द जी को आदेश दिया कि वे ही उनके लिए बारह वर्ष तक प्रति-दिन एक एक पाठ किया करें। मास के अन्त पर दीध जाने के बाद शरीर भी जरा ठीक होने लगा। तीन दिन के बाद वहां से राजपुरा होते हुए अम्बाला पहुंच गए वहां से मणिमाजरा और कुराली होते हुए बहराम पुर आ गये। वहां से रोपड़ जाकर पुनः उधर ही लौट गए। फिर वहांसे एक दिन पैदल रोपड़ गये। कुछ ही दिनों पश्चात् फिर बहरामपुर आ गए। दो रातें वहां रहकर पैदल रोपड़ आ गये। ज्ये. कृष्ण नवमी को पैदल छः मील चलकर बहरामपुर पहुंच गये। वहां से पैदल 'घनौली' गये। वहां के **श्रीराम रत्न शर्मा गायनचार्य** एवं उनके अनुज श्री **दिला राम शा०** से उनका घनिष्ठ सम्बन्ध था। (आगे चलकर यही श्री रामरत्न जी दिल्ली आकर राजकीय सेवा में गायन कला अध्यापक नियुक्त हुए। तथा ज्योतिष शास्त्र के प्रकाण्ड अनुभवी विद्वान बनकर अपार यश को उन्होंने अर्जित किया। पूज्यपद जी से उनका घनिष्ठ सम्बन्ध जीवन पर्यन्त बना रहा।) घनौली से पैदल नालागढ़ पहुंच गये। वहां से रोपड़ होते हुए पुनः बहरामपुरआ गए। चार रातें वहां

रहकर 'दातारपुर गए ।

२५-५-४२ को दातारपुर से बसी, सरहिन्द, राजपुरा घूमते हुए आगे सोलन, कुराली आदि स्थानों से होते हुए 'सिंह' नाम ग्रामक पहुंचे । वहां से बहरामपुर आ गए । उधर तीव्र शिरोवेदना से पीड़ित हो गए । ज्वर ी आ गया । तीन दिन न तो कुछ खाया, न पिया । शरीर काफी निर्बल हो गया । फिर ८-६-४२ को कालका होते हुए सोलन पहुंच गए । उसी दिन वहां से कारमें 'सपड़ून' गये । प्रबन्ध जज साहब का था । साथ दिलाराम था । ५ रातें वहां रहे । फिर जगत खाना जाकर रत्न चन्द के घर रहें । अगले दिन पैदल ७ मील चलकर सपाटू गये । ऋषिराम के घर भोजन खाकर कालका आ गये । वहां से चण्डी होकर कुराली आ गए । इस महीने स्वास्थ्य ढीला ही रहा । आगे २४-६-४२ से १८ रातें चण्डी में बिताईं । १२-७-४२ वहां से मणिमाजरा, खरड, रुडियाला होते हुए आषाढ़ की अमावस्या को कुराली आ गये । स्वास्थ्य बहुत ही ढीला रहा । सात दिनों में केवल दो बार भोजन किया । शेष दिन आम खाकर दूध पीते रहे । आषाढ़ शु० नवमी को वहां से कुराली आ गये । शरीर कष्ट बहुत अधिक रहा । इसी कारण से सहस्रानाम के ५००१ पाठ करके पीछे और पाठ करने बन्द कर ही दिये थे ।

पूज्यपाद जी ने आगे २२-७-४२ के पश्चात् भी अपनी दिनचर्या नियमत: लिख रखी थी या नहीं, इस विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता । उनके सामान में इस विषय की कोई कापी या डायरी नहीं मिली । केवल दो छोटे से कागज मिले जिनमें अज्ञातवास के दिनों में की गई लायलपुर-यात्रा का अति संक्षिप्त वर्णन किया गया है । वैसे १९४२ तक की यह अवधि उन्होंने विशेषतया श्री स्वाध्याय पत्रिका को सफलतया चलाए रखने के यत्न में ही बिताई । इस अवधि में उन्हें विशेष राज सम्मान मिलता रहा । धन की भेंट भी काफी मिलती रही जिससे वे कई एक पुस्तकों का प्रकाशन कर सके और श्री स्वाध्याय पत्रिका के लिए भी अच्छे आर्थिक आधार को स्थापित कर सके । आधार ऐसा बन गया कि उनके सोलन चले जाने पर भी और अज्ञातवास में रहने पर भी श्री स्वाध्याय के सभी अङ्क वर्षों तक उचित समय छपते रहे । इस अवधि में कष्ट उन्हें एक ही रहा कि कभी-कभी स्वास्थ्य बहुत बिगड़ता रहा । वैसे इस अवधि में उत्तर पश्चिमी भारत में वे सर्वत्र हिन्दी संस्कृत समाज में विख्यात हो गए । इस अवधि से पहले उन्हें केवल अपने विशेष भक्तजन ही जानते थे या उत्तर पूर्वी पंजाब और हिमाचल प्रदेश के कई एक नगरों और ग्रामों के लोग जानते थे । जम्मू-कश्मीर में भी कोई-कोई विशेष व्यक्ति ही कहीं-कहीं उनके महत्त्व को समझ पाए थे ।

अध्याय १२

अज्ञातवास

सन् १९४२ से ही पूज्यपादजी को राजाओं के घरों में रहने से अरुचि हो गई थी। अतः वे हिमाचल, पंजाब, दिल्ली और राजस्थान में ही प्रायः घूमते रहे, परन्तु सोलन के साथ सम्पर्क को बनाए रखते रहे और श्री स्वाध्याय के प्रकाशन में दिलचस्पी लेते ही रहे। साथ साथ कुछ ग्रन्थों का भी प्रकाशन करते रहे। आगे कलियुग देवता के प्रभाव से एक ऐसी घटना घटी जिसके कारण उन्हें अपने धार्मिक और दार्शनिक कार्यक्षेत्र के रूप में विकसित होते हुए स्वाध्याय सदन से काफी दूर और गुप्त ढङ्ग से ही कई एक वर्षों तक इधर उधर घूमते हुए अज्ञातवास में रहना पड़ा।

सन् १९२८ के नवम्बर में अपने श्वशुर पं० राजाराम आकूत के असह्य दुर्व्यहार से उदास होकर उन्हें गृह त्याग करना पड़ा था। तदनन्तर कुछ समय तक उनके सम्बन्धी यही समझते रहे कि वे हरिद्वार, ऋषिकेश आदि तीर्थों के दर्शन करने गए होंगे। परन्तु जब महीनों और बरसों तक कहीं से उनका कोई भी समाचार नहीं आया तो उनके श्वशुर को बड़ी चिन्ता होने लगी। उन्होंने आसपास के सभी स्थानों से पता किया, परन्तु पूज्यपादजी का पता कहीं से लगा ही नहीं। तब उन्होंने दूर-दूर स्थानों पर रहने वाले अपने परिचित व्यक्तियों को पत्र लिखे। पूज्यपादजी के आकार-प्रकार का, उनके स्वभाव का तथा उनके वैदुष्य का पूरा परिचय देते हुए उनका पता लगाने का काफी यत्न किया। कुराली वाले ज्योतिषी मुकुन्द वल्लभ के पास भी उनका पत्र आ गया। उन्हें पत्र पढ़ते ही ज्ञात हो गया कि उन सभी लक्षणों वाले महानुभाव एकमात्र पूज्यपाद जी ही हो सकते हैं। उन्होंने तदनुसार आकूत जी को लिख दिया कि वैसे लक्षणों वाले पण्डित महोदय उनके पास ही ठहरे हुए हैं। उस पत्र के विषय में उन्होंने पूज्यपाद जी को कुछ भी कहा नहीं। उनके ऐसे विश्वासघातात्मक व्यवहार के दो कारण हो सकते हैं। हरदेव जी के कहने के अनुसार पूज्यपाद जी ने जब उसे ज्यो० मुकुन्द वल्लभ की नौकरी से मुक्त करके स्वाध्याय सदन सोलन में प्रतिष्ठित कर दिया तो ज्योतिषी जी को वह

बात भीतर से बहुत बुरी लगी; क्योंकि एक सस्ता कर्मचारी उनके हाथ से निकल गया। इस कारण आन्तरिक रोष के भाव में आकर उन्होंने ऐसा किया। तटस्थ महानुभावों के विचार में यह भी सम्भव हो सकता है कि ज्योतिषी जी ने एक अनाथ महिला के उद्धार के विचार से और उस महिला पर तथा उसके पिता पर करुणा के भाव से ऐसा किया होगा। वैसे वह बात भी सम्भव है। परन्तु ज्योतिषी जी के जितने घने सम्बन्ध पूज्यपाद जी के साथ कई वर्षों से बन चुके थे और जितना सत्कार वे उनका किया करते थे, उसे दृष्टि में रखते हुए उन्हें चाहिये था कि श्री आकूतजी के पत्रों के विषय में पूज्यपाद जी से विचार विमर्श करके तदनुसार ही समुचित पग उठाते, जैसा आगे भरतपुर में गोविन्द जी ने उठाया। अतः यही बात यथार्थ प्रतीत होती है कि ज्योतिषी जी के हृदय में पूज्यपादजी के प्रति रोष का भाव उदित हो ही गया था और उसी से अन्तः प्रेरित होकर आकूतजी को गुप्त रीति से पूज्यपाद जी का पक्का पता लिखा दिया। वाराणसी के एक महानुभाव श्री शिवानाथ जी झारखण्डी के पत्र दिनांक २५-६-४४ जो उन्होंने सोलन के महाराज दुर्गासिंह को सम्बोधित करके लिखा प्रतीत होता है, के अनुसार पूज्यपाद जी के सम्बन्धी उनकी खोज में **कुराली और खरड़** आदि स्थानों पर 'शीतकाल' में गये थे। अब यह शीतकाल या तो सन् १९४३ के अन्त में दिसम्बर का महीना अथवा सन् १९४४ का जनवरी का महीना हो सकता है। अस्तु।

तदनुसार आकूतजी, उनकी कन्या (कृष्णा/शीलवती) और उनके कुछ संबंधी एवं हितचिन्तक वाराणसी से कुराली आ गए। जिस समय वे वहां पहुंच गए उस समय पूज्यपादजी खरड़ चले गए थे। ज्योतिषी जी से उनका पता लेकर वे लोग उसी समय खरड चले आये। पूज्यपाद जी उन दिनों शिवप्रसाद जी के घर ठहरे हुए थे और उस समय बाहर घूमने गये हुए थे। उन्होंने खरड़ में दूर से ही उन लोगों को आते देखा और पहचान लिया। तब उन्होंने एक वस्त्र से मुख पर घूंघट जैसा डाल लिया और दूसरी दिशा में तीव्र गति से चलते हुए काफी दूर चले गये फिर बड़ी सड़क पर पहुंच गए। दैव ने साथ दिया। तुरन्त लारी एक मिल गई और उस पर सवार होकर समझिये खरड़ से भाग ही निकले। कुराली न जाकर सोलन की ओर बढ़े। सायं सोलन पहुंच गए। रात भर वहां रहे। प्रातः कृत्य से निवृत्त होकर अपना थैला उठाया और कहीं चल पड़े। राजा साहब के यह पूछने पर कि "आप बिना खाये ही किधर जाना चाहते हैं और क्यों इतनी जल्दी जाना चाहते हैं"; उन्होंने उत्तर दिया "जिधर मेरी इच्छा होगी उधर जाऊंगा और जैसे इच्छा है वैसे ही जा रहा हूं।" अतः उन्होंने न तो राजा साहब की कार का ही उपयोग किया, न ही जज साहब को कोई सूचना दी और न ही बस अड्डे तक किसी को अपने साथ चलने ही दिया। अकेले अकेले अपना थैला उठाए चल दिए और लारी

से कहां को चले इस बात का पता किसी को भी लगने नहीं दिया। उसी समय से कई वर्षों तक अज्ञातवास में रहे। प्रायः ऐसे ऐसे स्थानों पर विचरण करते रहे जहां उन्हें कोई पहचान ही नहीं सकता था अथवा जहां उनको जानने वाला एक ही परिवार होता था। उस परिवार को भी आदेश देते रहे कि उनका सच्चा परिचय किसी को भी न देवें। अतः कहीं भी कोई भी उन्हें जान ही नहीं सका।

उधर श्री राजारामजी खरड़ में घर घर उन्हें ढूंढते रहे, परन्तु कहीं भी कुछ भी पता नहीं लगा। ला० बांकेलालजी को इस घटना की कुछ स्मृति है। उसी के अनुसार वे बताते हैं कि पूज्यपादजी के वे सम्बन्धी खरड़ के बाजार में उनकी दूकान पर आये थे और वहां जलपान से उनकी सेवा भी की गई थी जिसके लिये चांदी के पात्रों का प्रयोग किया गया था। जब वे निराश होकर वापिस चले गये थे तो उसी समय या उपरान्त फिर कभी पूज्यपाद जी के पूछने पर श्री बांकेलाल जी ने उनके सम्बन्धियों का हुलिया उन्हें बताया था। वास्तविकता क्या है निश्चित रूप से कहना कठिन है। तत्पश्चात् वे लोग लौटकर कुराली आ गये। रात को कुराली में ही रहे और दूसरे दिन भोजन करके ज्योतिषी जी के परामर्श से पूज्यपाद जी का पता लगाने सोलन गए। सोलन में उनको यही विदित हुआ कि पूज्यपाद जी बस एक रात भर वहां रहकर किसी ऐसे अज्ञात स्थान की ओर चल पड़े जिसके विषय में वहां किसी को भी कुछ भी विदित नहीं है। तब उनके वे सम्बन्धी निराश होकर वापिस कुराली आ गए और वहां से पूज्यपाद जी के विश्वस्त शिष्य गोविन्द जी का भरतपुर का पता लेकर वापिस वाराणसी चले गए। हरदेव जी के अनुसार ज्योतिषी मुकुन्द वल्लभ जी का यह भी अभिप्राय था कि पूज्यपाद जी के इस घरेलू वृत्तान्त को और साध्वी पत्नी को निराधार छोड़कर परिव्राजक बनने के समाचार को जान लेने पर सोलन में उनकी मान प्रतिष्ठा को काफी धक्का लग जाएगा। परन्तु उनके ही कहने के अनुसार पूज्यपाद जी के झटपट वहां से अज्ञात रूप से चले जाने की घटना के कुछ ही घण्टे बाद उनके सम्बन्धियों के वहां आ जाने से पूज्यपाद जी के प्रति सोलन के राजवंश की तथा अन्य अन्य महानुभावों की श्रद्धा में वृद्धि ही हो गई। पूज्यपाद जी ने स्वयं ज्यो० मुकुन्द वल्लभ के इस कृत्य को कृतघ्नता मे ही गिना है। इस विषय पर उन्होंने संस्कृत भाषा में एक छोटी सी कविता भी लिखी है। उसका शीर्षक है **"कृतघ्न मित्रं प्रति पत्रम्"**। उस घटना से पहले पूज्यपाद जी पं० मुकुन्द वल्लभ को एक हितैषी तथा स्नेही मित्र समझा करते थे, परन्तु तदनन्तर उसे एक कृतघ्न व्यक्ति समझते हुए उन्होंने उसके प्रति सौ प्रतिशत तटस्थता के भाव को अपनाया। न ही उनके प्रति आहत के और न ही हित के भाव को कभी मन में स्थान दिया।

अज्ञातवास की इस अवधि में वे सन् १९४४ के जनवरी मास में माघ कृ०

षष्ठी को खन्ना में थे। वहां से नाभा, बरनाला, लाहौर, अमृतसर होते हुए फिर लाहौर आए, और वहां से सीधे लायलपुर रेल के द्वारा चले गए। इस यात्रा में उन्होंने कहीं थोड़े और कहीं कुछ अधिक दिन ठहरते हुए अट्ठारह दिन बिताए और उन्नीसवें दिन **लायलपुर** पहुंच गए। वहां शहर के बाहर खुले खेतों के बीच स्वच्छ वातावरण में श्री गोस्वामी गणेशदत्त जी के सत्प्रयत्नों से एक ऋषिकुल अच्छी तरह से चल रहा था। वहां प्राज्ञ, विशारद और शास्त्री कक्षाओं के संस्कृत छात्र पढ़ा करते थे। अनेकों स्थानों से आए हुए अच्छे अच्छे विद्वान् वहां काम किया करते थे। अध्यापकों के आवास भी वहां थे और एक सुविशाल छात्रावास भी था। छात्रावास के चिकित्सक के रूप में उस समय वहां **श्रीनाथ जी तिक्कू** भी काम करते थे। वे ऋषि कुल के वैद्य भी थे और पढ़ाने में विशेष रुचि के कारण किसी श्रेणि को काव्य आदि पढ़ाया भी करते थे। लायलपुर पहुंच कर पूज्यपाद जी रात मुसाफिर खाने में काटकर प्रातः ऋषिकुल को गए और वहां श्रीनाथी के पास रहे। तिक्कूजी लिखते हैं कि वहां पूज्यपादजी सात महीने रहे। उनके अपने हाथ से लिखे दो छोटे कागज़ उनकी पुस्तकों में से मिले हैं। तदनुसार संवत् २००० में माघ शुक्ल सप्तमी को लायलपुर पहुंच गए। वहां से २००१ संवत् वैशाख कृष्ण सप्तमी को फुलरवां गए और ज्येष्ठ शुक्ल अष्टमी को पुनः लायलपुर आ गए। तदनुसार कई महीने उधर ही रहे होंगे। तभी तो सात महीने पूरे हो सकते हैं।

लायलपुर आते ही उन्होंने तिक्कूजी को यह आदेश दिया कि वहां किसी से भी उनके विषय में कुछ भी नहीं कहना चाहिए। यह भी किसी को नहीं बताना चाहिए कि वे एक विद्वान् हैं। इस तरह से कुछ देर वहां से एक अज्ञात अतिथि के रूप में रहते रहे। कुछ समय तक किसी भी पण्डित ने उनसे कभी भी कोई शास्त्र चर्चा नहीं की। एक दिन तिक्कूजी का किसी अन्य पण्डित के साथ व्याकरण शास्त्र की दृष्टि से किसी पद-वाक्य रचना के विषय में विवाद हुआ। विद्यालय से आकर रात को उन्होंने विवाद की समस्या पूज्यपाद जी के सामने रख दी। उन्होंने शास्त्र के प्रमाणों के आधार पर तिक्कूजी के मत को ही यथार्थ ठहरा दिया। इस चर्चा में जब पूज्यपाद जी ऊंचे स्वर में शास्त्रोचित उपपत्ति बता रहे थे तो ऋषिकुल के दो तीन पण्डित उनके आवास के बाहर बैठे थे। शास्त्र-चर्चा के शब्दों को सुनते ही वे कान लगाकर वहीं आवास के बाहर ध्यानपूर्वक चुपचाप बैठे रहे और पूज्यपाद जी की शास्त्र सम्मत वाणी को बड़ी दिलचस्पी से सुनते रहे। तब उन्हें विदित हो गया कि वे अज्ञात अतिथि एक बड़े भारी विद्वान् भी हैं। तदनन्तर आए दिन ऋषिकुल के विद्वानों के साथ उनकी शास्त्र चर्चाएं चलने लगीं। परन्तु अपना व्यक्तिगत परिचय उन्होंने किसी को बताया नहीं। वहां

देहरादून के श्री रघुनाथ चन्द्र शास्त्री को पूज्यपादजी के साथ काफी घना सम्बन्ध जुड़ गया। आगे कई एक वर्षों के बाद देहरादून में शास्त्री जी ने पूज्यपाद जी के मुख से उनके द्वारा रचित '**विंशतिका शास्त्र**' पर विस्तृत व्याख्यान को सुन कर तदनुसार उस ग्रन्थ पर '**प्रकाशिनी नाम की संस्कृत टीका**' का निर्माण किया जिसे आगे मिश्र गोविन्दजी ने भरतपुर में प्रकाशित किया।

पूज्यपाद जी के लायलपुर आने से पहले तिक्कू जी को अपने अध्यापक आवास में एक कष्ट का सामना करना पड़ा था। उस आवास में कोई मुसलमान प्रेत रहता था। वह तिक्कू जी की गृहिणी को अभिभूत करके कभी-कभी बेहोश कर देता था। तिक्कू जी वहां पार्थिव शिवलिंग की प्रतिदिन पूजा करते थे। उससे वह प्रेत चिढ़ जाया करता था। एक दिन जब वे पूजा कर रहे थे तो प्रेत ने उनकी पत्नी के शरीर में आवेश कर लिया। उस आवेश में वह कहने लगी, "कि यहां यह पूजा मत किया करो। इससे मुझे तकलीफ होती है।" ऐसा कहते हुए वह आगे बढ़ी और हाथ से पार्थिव लिंग को धक्का देने लगी। परन्तु जैसे हाथ जलती हुई अग्नि के समीप जाए तो स्वयमेव पीछे हट जाता है, वैसे ही दो तीन बार उसका हाथ लिंग के समीप पहुंचकर उसे बिना छुए ही पीछे हटता रहा और उसकी मुख मुद्रा बड़ी कराल होती गई। अन्ततोगत्वा उसने एक बार दृढ़ संकल्प करते हुए लिङ्ग को छूकर उसे जरा भर हिला ही दिया। ऐसा कर चुकने पर पीछे की ओर मूर्छित होकर गिर पड़ी और उपचार किये जाने पर कुछ समय पश्चात् होश में आ गई। तदनन्तर तिक्कूजी ऋषिकुल के भीतरीय भाग में यज्ञशाला के भीतर ही पार्थिव लिंग पूजा करते रहे। बाद में पूज्यपादजी लायलपुर आकर उस आवास में कुछ दिन रहे तो एक बार तिक्कू जी ने उस प्रेत की बात को उन्हें सुना दिया। उस पर पूज्यपाद जी ने कहा कि एक दो दिन उन्हें भी ऐसा आभास हुआ कि यहां कोई दुष्ट जीव रहता है। परन्तु तीसरे दिन वह उस स्थान से चला ही गया और अब यहां पुनः नहीं आ सकेगा।' उस दिन के पश्चात् तिक्कू जी की पत्नी को उस प्रेत ने कभी कोई कष्ट नहीं दिया।

डा० तिक्कू जी लिखते हैं कि पूज्यपाद जी लायलपुर से **श्री जगदीश चन्द्र शास्त्री** के साथ एक बार फुलरवां गए और लगभग डेढ़ मास के पश्चात् लायलपुर लौट आए। पूज्यपाद जी ने एक छोटे से कागज पर इस फुलरवां की यात्रा का संक्षिप्त विवरण लिख रखा है, परन्तु उस वर्णन में जगदीश चन्द्र का नामोल्लेख नहीं किया गया है। तदनुसार फुलरवां में वे एक रात विलायती राम अरोरा के घर, पांच रातें सनातन धर्मसभा के मन्दिर के चौबारे में और आठ रातें मण्डी में रामासरामल के चौबारे में रहे। फिर उन्होंने यह भी लिखकर रखा है कि फुलरवां से **ब्रह्मचारी शिवानन्द उन्हें कटासराज की यात्रा को ले गया** और

यात्रा का तथा खान पान का सारा खर्च उसी ने किया। वे वैशाख कृष्ण सप्तमी को लायलपुर से ग्यारह बजे की ट्रेन से चले और दूसरे दिन प्रातः नौ बजे फुलरवां पहुंच गए। वहां चौदह रातें रहकर ब्रह्मचारी शिवानन्द के साथ ज्येष्ठ कृ० त्रयोदशी को रेल द्वारा क्रम से **मलकवाल और खवेड़ा** होते हुए वहां से पैदल पलखी के मार्ग से चौबा **सैदन शाह** गए। वहां रात को एक मन्दिर में रहकर ज्येष्ठ कृ० अमावस्या को सोमवार के दिन दो मील चलकर कटासराज पहुंचे। अमर कुण्ड में सोम-अमावसी का स्नान किया। पाठशाला देखी और **टाह्ली साहब के दर्शन किए।** फिर पैदल चौबा सैदन शाह आकर वहां रात को रहे। अगले दिन प्रातः १० मील चलकर खवेड़ा आए। वहां से टांगे से **पिण्डदादनखान** आए। वहां से रेल द्वारा मलकवाल होते हुए वापिस फुलरवां पहुंच गए। वहां छह रातें रामासरा मल के चौबारे में रहकर सर्गोधा आ गए। वहां से ज्येष्ठ शुक्ल अष्टमी को लारी से लायलपुर आ गए वहां १९४४ के ग्रीष्म काल तक रहे या वर्षा काल तक। इस तरह से सन् १९४४ के जुलाई अगस्त तक पूज्यपाद जी लायलपुर में ही रहे। लायलपुर में रहते हुए जून के महीने में उन्होंने संस्कृत श्लोकों में एक पत्र अपनी पत्नी को हिन्दी में भी अनुवाद करके भेजा। इस पत्रात्मक लघुकाव्य का नाम उन्होंने **"चारु संदेश"** ऐसा रखा। उसमें पत्नी को यह उपदेश लिखकर भेजा कि वह उन्हें सांसारिक जालों में उलझाने का यत्न न करती हुई उनकी कल्याण कामना से अपने चरित्र की रक्षा करती हुई शिव शक्ति की उपासना करती रहे। उसी में दोनों ही का कल्याण निहित है।

श्री कस्तूरी लालजी आनन्द लिखते हैं कि उन्हें स्यालकोट में १९४४ में दशहरे के पश्चात् पूज्यपाद जी के प्रथम दर्शन हुए। वहां के कुछ सज्जनों ने मिल कर 'गीता भवन' का निर्माण किया था। वे लोग वहां इकट्ठे बैठकर सत्संग किया करते थे। सर्दारी लाल जी प्रातः रात को भी गीता भवन में ही रहा करते थे। एक बार वहां पूज्यपादजी आ गये और कुछ दिन ठहरे। भवन के सभी सदस्यों को उनके प्रति काफी श्रद्धा बढ़ती गई। अतः उनके आग्रह से कई महीने वहां रहे। पूज्यपाद जी की प्रेरणा से उन सज्जनों ने तीन ग्रन्थ मंगवाकर उनसे पढ़े। वे ग्रन्थ थे—(१) पंचस्तवी (धर्माचार्य कृत), (२) आत्म विलास और (३) विज्ञान भैरव। वहां इतने महीने रहने पर भी उन्होंने उन्हें अपना परिचय नहीं बताया। आत्म विलास के निर्माता के विषय में वे लोग पूछते रहे, "ये आचार्य अमृतवाग्भव जी कौन हैं, कहां रहते हैं, क्या करते हैं" इत्यादि। उत्तर में उन्होंने कहा, "होंगे कोई, रहते होंगे कहीं, काम भी कुछ करते होंगे।" श्री कस्तूरी लाल जी ने मुझसे एक बार यह कहा कि एक दिन रात को उन्हें मन में यही बात आ गई कि ये ही महानुभाव स्वयं आचार्य अमृत वाग्भव हैं और आत्मविलास इन्हीं की अपनी कृति

है। फिर उन्होंने यह संकल्प किया कि प्रातः जाकर पूज्यपादजी से कह देंगे कि वस्तुतः आप ही आत्मविलास के निर्माता हैं। सुबह नहा धोकर जब गीता भवन पर पूज्यपाद जी से मिलने और यह बात कहने को गए तो देखा कि वे अपना थैला बांधकर चलने को तैयार हैं। बस फिर चल ही दिए। पूछने पर यह भी नहीं बताया कि वे कहां जा रहे हैं। फिर चलते समय श्री कस्तूरीलाल जी ने जब आत्मविलास के निर्मातृभाव की बात बता दी तो उसे हंसकर टाल दिया और चल ही पड़े।

सन् १९४५ में किसी सज्जन ने श्रीनगर में उन्हें देखा था। 'आप कब आए हैं, कहां ठहरे हैं, इस समय किधर जा रहे हैं।" उसके इन प्रश्नों का स्पष्ट उत्तर न देते हुए और टाल देते हुए कहीं चले ही गए। यह बात उस व्यक्ति ने श्री नाथ जी को कह दी थी। बाद में जब पूज्यपाद जी सन् १९६० के ग्रीष्म में कश्मीर आए और अनन्तनाग में हमारे यहां ठहरे थे तो उन्होंने उस कश्मीर यात्रा का प्रयोजन अति संक्षेप से बताया। पश्चात पं० शिवजी फोतेदार ने उस प्रसङ्ग को मुझे विस्तारपूर्वक इस तरह से सुना दिया।

पूज्यपाद जी उस समय **मुजफ्फराबाद** में पं० शिवजी फोतेदार के पास गुप्त रीति से ही रहा करते थे। वहां नदी के तट पर एक बड़ा मन्दिर था। उस मन्दिर में एक साधु रहते थे जिनके चेले चांटे आदि बहुत थे। उनका नाम था "**लाल जी**।" वे श्रीनगर में भी काफी समय रह चुके थे। मुजफ्फराबाद में उनका प्रपंच काफी फैला था। पूज्यपाद जी को नालागढ़ में जिस "प्रभोशम्भो" इत्यादि श्लोक का स्फुरण हुआ था, लाल जी उसके विषय में अपने अनेक चेलों को कहा करते थे कि उस श्लोक की रचना उन्होंने ही की है। यह बात शिवजी के कानों तक पहुंच गई और पूज्यपाद जी को भी इस बात का पता लग गया। तब इस विषय पर विचार करके एक दिन शिव जी ने लाल जी को अपने डेरे पर बुलाया। वहां विविध बातों पर सत्संग के बीच में शिवजी ने इस श्लोक की रचना के विषय में बात छेड़ दीं। लाल जी थोड़ा बहुत टालते टालते अन्त में मान ही गए कि एक बार आत्म आनन्द की मस्ती के आ जाने पर यह श्लोक उनकी अपनी वाणी में स्फुरित हो गया। लाल जी के प्रशंसक चेले चांटे भी उस सत्संग में बहुत सारे बैठे थे। पूज्यपाद जी भी एक किनारे पर बैठें चुपचाप सारी बातें सुन रहे थे। दूसरे दिन प्रातःकाल वे श्रीनगर को चल पड़े। रात को वहां ठहर कर अगले दिन "**काकपुरा**" नामक ग्राम को चले गए। वहां उन दिनों पं० शिव जी फोतादार के पुत्र श्री जियालाल जी फोतादार सरकारी हस्पताल के वैद्य थे। उनके पास कई वर्षों के "कल्याण" के अंक विद्यमान थे। उनमें से किसी अंक में यह श्लोक पूज्यपाद जी के नाम से छप चुका था। लालाजी ने उनके द्वारा श्लोक निर्माण का जो काल बताया था, उससे बहुत पहले वह श्लोक कल्याण के उस अंक में छपा था।

उसे लेकर पूज्यपाद जी श्रीनगर आ गए। वहां इस श्लोक की कई सौ प्रतियां छपवा दीं। उन पर श्लोक के नीचे यह संकेत दे रखा गया—"**आ० अमृतवाग्भव कृत**"। "**द्रष्टव्य — कल्याण वर्ष अमुक, अङ्क अमुक, पृष्ठ अमुक।**" उसे छपाकर मुजफ्फराबाद आ गए। रात को वहां दो चार जवानों ने धर्मशाला की दीवारों पर आसपास की दुकानों पर, घरों तथा खम्बों पर सर्वत्र उस छपे हुए श्लोक की प्रतियों को लेई से लगा दिया और फिर सो गए। प्रातःकाल जब स्वामी लालजी बाहर आए तो चारों ओर "प्रभो शम्भो" की उन प्रतियों को देखकर भीतर आ गए। अपनी झोली को उठाकर चल दिए। सीधे **दुमेल** आ गए। वहां से लारी पर सवार होकर कहीं चले गए। किसी को कुछ भी बताया नहीं। इतने विस्तार से ये बातें मुझे १९६० में मार्तण्डपुरी (मट्टन) में पण्डितजी ने सुना दीं। अस्तु। उस समय अज्ञातवास में ही रहने के कारण पूज्यपाद जी श्रीनगर में न तो अधिक समय तक रहे और न ही परिचित सज्जनों से मिलने गए। केवल श्लोक को छपवाकर जल्दी मुजफ्फराबाद लौट गए। वहां एकमात्र पं० शिवजी को ही उनका पूरा परिचय था। शेष लोग उन्हें "शिवजी के डेरे में रहने वाला साधु" बस इतना ही समझते थे।

पूज्यपाद जी के श्वशुर श्री राजाराम आकूत ने वाराणसी जाकर पं० गोविन्द जी से पत्र व्यवहार आरम्भ कर दिया। उन्होंने मुकुन्द वल्लभ जी का अनुकरण नहीं किया। अपितु राजाराम की पुत्री कृष्णा (शीलवती) की करुण समस्या को पूज्यपाद जी के सामने रख दिया और करुणा पूर्वक उस पर विचार करने की सम्मति दे दी। राजारामजी के पत्रों के अनुसार उनकी कन्या कम से कम एक बार अपने पतिदेव के दर्शन करने के लिए उत्सुक थी। तो फिर गोविन्द जी के साथ विचार विमर्श कर चुकने पर यह निश्चय ठहरा कि कृष्णाजी (शीलवती) निश्चित तारीख पर वृन्दावन आ जाए तो पूज्यपाद जी भी वहीं जाकर उससे मिलेंगे और बातचीत करेंगे। फिर वही बात निश्चित हुई और पूज्यपाद जी की पत्नी को उनके साथ वृन्दावन में सम्पर्क हो गया। पीछे जो "**चारु सन्देश**" नामक लघुकाव्य की बात लिखी गई। वह इस सम्पर्क से पहले की कृति है या बाद की, इस विषय पर निश्चय पूर्वक कुछ कहा नहीं जा सकता। उस लघु काव्य में कुछ ऐसे संकेत मिलते हैं जिनके अनुसार पूज्यपाद जी ने उस काव्यात्मक पत्र को लिखने से पहले ही अपनी पत्नी को शाम्भवी योग विद्या का अभ्यास करना सिखा दिया था। यदि ऐसी बात हुई होगी तो उनकी पत्नी का उनके साथ वृन्दावनों में जो सम्पर्क हुआ वह चारु सन्देश के लिखने से पहले ही, अर्थात् अज्ञातवास के प्रारम्भिक काल में ही हुआ होगा, क्योंकि चारु सन्देश की रचना उन्होंने सन् १९४४ में ही की थी। पूज्यपाद जी के कागजों में उनकी पत्नी के द्वारा उनको लिखे गए अनेकों पत्र मिले

हैं। तदनुसार वृन्दावन में हुए समागम के अनन्तर उनका परस्पर पत्र व्यवहार काफी चलता रहा। पूज्यपाद जी पत्नी की आर्थिक सहायता भी समय समय पर करते रहे। मनीआर्डर उसके भाई के नाम पर भेजा करते थे। सन् १९५९ के शीतकाल में जब मैं वाराणसी गया था तो वहां सुना था कि पूज्यपादजी ने अपना एक फोटोग्राफ भी भेजा था। **उसी वर्ष आगे मार्च के महीने में काशी में महा महोपाध्याय श्री गोपीनाथ कविराजजी के सत्प्रयत्नों से एक 'तन्त्र सम्मेलन' का आयोजन हुआ।** उस समय पूज्यपाद जी वर्षों के बाद वाराणसी आ गए। सम्मेलन में उनका भाषण हुआ। अपने घर भी गए और पत्नी से भी श्वशुर गृह में मिले। तदनन्तर अपने **छोटे भाई रामचन्द्र 'बरकले'** से भी उनका पत्र व्यवहार चलता रहा। उन्हें कभी कभी आर्थिक सहायता भी करते रहे। फिर कई बार वाराणसी आते जाते रहे। विमाता के अनुज रामचन्द्र जी के और पत्नी के देहान्त होने के अवसरों पर भी वाराणसी आए। पत्नी का क्रिया कर्म आदि भी अपने भतीजे से करवाया था। पूज्यपाद जी के साले श्री नारायण राजाराम आकूत ने १९८२ में पूज्यपाद द्वारा भौतिक देह त्याग के उपरान्त दिल्ली आकर कहा था कि उनकी बहिन कृष्णा पूज्यपाद जी के द्वारा सिखाई हुई साधना का अभ्यास करती रहीं और उससे उन्होंने आध्यात्मिक क्षेत्र में काफी उन्नति भी प्राप्त की है।

सन् १९४६ में पूज्यपाद जी कहां विचरण करते रहे इस विषय में कोई साक्ष्य मिल नहीं रहा है। सम्भवतः कुछ महीने मुजफ्फराबाद में ही रहे होंगे। वहां पं० शिवजी फोतेदार के द्वारा उनका **उस प्रदेश के वन विभाग के बड़े अधिकारी डी. ऐफ. ओ. को भी उनसे परिचय हो गया था।** उसके साथ वनों में घूमने की बातें भी पूज्यपाद जी बताया करते थे। उनका नाम शायद 'मोदी' था। (मुझे पूरी तरह से स्मरण नहीं है।) एक बार उनके साथ **रीठवाल स्थान से आठ मील ऊपर 'दूध कुच्छन'** नाम की पहाड़ी के वन में टेंटों का उनका कैंप लगा था। पूज्यपादजी का टेंट कुछ दूरी पर एकान्त स्थान में ताना गया था। **एक दिन दोपहर को माध्यान्दिन कृत्य के अनन्तर उन्हें सामने एक दिव्य दृश्य दिखाई देने लगा। सामने वाले पर्वत शिखर पर उन्होंने एक दिव्य छत्र को देखा। छत्र चमकीले स्वर्ण का बना था। पर्वत शिखर पर निराधार अन्तरिक्ष में खड़ा था। उसमें रत्न जुटे थे और मोतियों के झालर उससे लटक रहे थे।** आगे सम्भवतः कुछ और भी दिखाई देता, छत्र के नीचे कोई दिव्य सिंहासन प्रकट हो जाता और उस पर विराजमान कोई देवता भी सम्भवतः दर्शन देता। परन्तु इतने में भी डी. ऐफ. ओ. का नौकर आ गया और पूज्यपादजी को भोजन करने के लिए बुलाया। उसकी वाणी ज्यों ही कानों में प्रविष्ट हो गई, त्यों ही वह आधा ही देखा गया दिव्य दृश्य एक क्षण में अदृश्य हो गया। **यह घटना सन् १९४६ के अक्तूबर मास में**

घटी। उसी वर्ष अप्रैल के महीने में पूज्यपाद जी "**सङ्क्रान्ति पञ्चदशी**" नामक राजनैतिक स्तोत्र का निर्माण कर चुके थे। उसका निर्माण उन्होंने कहां किया, यह बात उसमें लिखी नहीं है। उन दिनों भारत वर्ष की स्वतन्त्रता का आन्दोलन खूब जोरों पर चल रहा था। युवक जन चाहते थे कि भारत में एक क्रान्ति आ जाए। पूज्यपाद जी ने इस स्तोत्र में उस क्रान्ति का स्तवन किया है जो संसार में न्याय, धार्मिकता, सच्चरित्र, सदाचार आदि की स्थापना करे। साम्यवादियों की भोगवाद प्रधान क्रान्ति से यह क्रान्ति विपरीत स्वभाव की होती है। इसीलिये इसे 'सङ्क्रान्ति' अर्थात् सम्यक् (भली भान्ति) होने वाली सत्क्रान्ति कहा गया। साम्यवादी जिसे क्रान्ति कहते हैं. वह दुष्ट क्रान्ति होती है। अतः इस स्तोत्र के द्वारा पूज्यपाद जी ने सत्क्रान्ति के गीतों को गाया है। पूज्यपाद जी अधिक देर तक एक ही स्थान पर नहीं रहा करते थे। अतः हो सकता है कि वे १९४६ में कुछ समय भरतपुर आदि को भी गए हों।

१९४७ के प्रारम्भ में वे पुनः मुजफ्फराबाद कुछ समय तक रहे। वहां उन्होंने एक दिन रात को एक भयानक स्वप्न देखा। उसी समय जाग पड़े। पं० शिवजी को भी जगा दिया। स्वप्न सारा उन्हें सुना दिया फिर उन्हें कह दिया कि उसे लिखकर रखें क्योंकि बातें बाद में भूल जाती हैं। पं० शिवजी ने स्वप्न में देखा वृत्तान्त उर्दू भाषा में उर्दू अक्षरों में लिखकर रख दिया। फिर पूज्यपाद जी ने वहां लोगों को सावधान करते हुए कह दिया कि उस प्रदेश पर घोर आक्रमण होने वाला है और मुसलमानी सेनाओं के द्वारा बड़ा ही विनाश होने वाला है। पूज्यपाद जी को स्वप्न में यह दीखा था कि मुजफ्फराबाद के सामने वाले पर्वत के ऊपर से लालरंग के वस्त्रों को पहनी हुई और बालों को लटकाए रखती हुई स्त्रियों की एक सेना आकाश में मण्डराती हुई नदी के दाएं तट वाले पर्वत से बाएं तट की ओर बड़े वेग से आगे बढ़ रही है। ऐसा देखते हुए पहाड़ के पीछे से "अल्लाहो अकबर" का नारा बहुत ऊंची आवाज से सुनाई दिया और उसी के घोष से वे जाग पड़े। पश्चात् उसी वर्ष की शरद ऋतु में उसी पर्वत के ऊपर से पाकिस्तान ने कबाइलियों की सेना के द्वारा आक्रमण करवा दिया, जिससे उधर की हिन्दु जनता का काफी विनाश हो गया, जम्मू कश्मीर राज्य का एक तिहायी भाग भारत के हाथ से चला गया, और राज्य के शासक की बड़ी दुर्गति हो गई और राज्य का अधिकार मुसलमानी जनता के हाथ में आ गया।

१९४६ के जून मास से १९४७ के मई मास तक मैं जम्मू में ही रहता रहा। वहां १९४६ के अक्तूबर मास में मुझे स्यालकोट से आया हुआ **दुर्गादत्त शास्त्री** (दूरगामी) मिला। वह मेरा पूर्व परिचित था। उसके कथन के अनुसार स्यालकोट के भक्त जन पूज्यपाद जी के पुनर्दर्शन के लिए बहुत तरसते थे। श्री स्वाध्याय के माध्यम से उन्हें यह विदित हुआ था कि मुझे भी पूज्यपाद जी के साथ

सम्पर्क होता होगा। अतः मेरी सहायता से उनका पता लगाने का यत्न वे कर रहे थे। तो मेरा पता लगाने के लिए दुर्गादत्त जी जम्मू आ गए, क्योंकि हमारे साथ जम्मू के अनेकों ही महानुभावों को काफी परिचय था। तो मुझे भी वर्षों के बाद दूरगामी से ही पूज्यपाद जी के विषय में यह विदित हुआ कि वे स्यालकोट आए थे। जब से वे अज्ञातवास करते रहे तब से मुझे उनका कोई भी पता कहीं से लगा नहीं था। हरदेव जी के पत्र आते रहते थे। वे भी पूज्यपाद जी के प्रवास से बड़े ही परेशान रहते थे। मैंने दूरगामी को यही कह दिया कि मुझे उनके विषय में कुछ भी विदित नहीं है कि वे कहां हैं। तदनन्तर स्यालकोट से श्री कस्तूरी लाल जी आनन्द जम्मू आकर मुझ से मिले। फिर जनवरी के प्रारम्भ में मैं लाहौर गया तो वहां **मोतीलाल बनारसी दास** की दुकान पर हरदेव जी से मेरी भेंट हुई। वहां से मैं स्यालेकोट आया और दो दिन गीता भवन में रहकर जम्मू लौट आया। तदनन्तर कुछ ही सप्ताहों के पश्चात् पूज्यपाद जी स्वयमेव स्यालकोट आ गए। वहां से कस्तूरी लाल जी के साथ जम्मू आकर मुझ से मिले। साथ भरतपुर के मिश्र गोविन्द शर्मा भी थे। जम्मू में तीनों महानुभाव '**मस्तगढ में श्याम-लाल जी वर्माणी के घर रहे**। मैं भी उधर उनके पास गया। **उस समय वे "श्री राष्ट्रलोक" का, सानुवाद संस्करण प्रकाशित करना चाहते थे**। उनके लिए उन्होंने मुझे उसका अनुवाद लिखने और प्रूफों का शोधन करने का आदेश दिया। साथ सङ्क्रान्ति पञ्चदशी की संस्कृत हिन्दी टीका लिखने को भी कहा। मैंने दोनों आदेशों को स्वीकार किया। **राष्ट्रालोक का हिन्दी अनुवाद जम्मू के दीवान प्रेस में छप भी गया**। मई मास में छपाई पूरी हो गई। रुपय्या कस्तूरी लाल जी ने लगाया। सङ्क्रान्ति पञ्चदशी की टीका भी खिखकर कस्तूरी लाल जी के पास भेज दी। तदनन्तर फरवरी मास में पूज्यपाद जी किसी मुसलमान ठीकेदार और कस्तूरी लाल जी के साथ पुनः जम्मू आ गए। मैं दो दिन वहां रहा। वहां उन्होंने मुझे "**महानुभाव शक्तिस्तव**" की संस्कृत टीका और हिन्दी अनुवाद को लिख कर भेजने को कहा। मैंने वह काम ग्रीष्म ऋतु में श्री नगर आने पर पूरा करके मिश्र गोविन्द जी के पास भेज दिया। और यथा समय उन्होंने उसका प्रकाशन किया। स्यालकोट से वे कहीं चले गए और मैं दूसरे दिन जम्मू आ गया। अब की बार पूज्यपाद जी ने मुझे श्री गोविन्द मिश्र का ही पता लिखवा कर कहा कि उनका स्थाई पता वही है।

१९४७ में भारत विभाजन के समय पूज्यपाद जी ऋषिकेश में गीता भवन में सुहाना के श्री जय जय राम जी के पास रहते रहे। श्री जय जय राम जी वहां गीता भवन के निर्माण कार्य में ठीकेदारी का काम करते थे। भारत विभाजन के अनन्तर जब कश्मीर पर कबाइली सेना का घोर आक्रमण हो गया तो बारा-मुला, सोपुर आदि नगरों में हिन्दुओं के घरों को खूब लूटा गया और उन्हें हर

तरह से असहाय बनाया। कबाइली सेना श्रीनगर के समीप तक के ग्रामों में पहुंच गई। परन्तु ऊर्ध्व लोक वासी सिद्धों के हस्तक्षेप से जगदम्बा ने श्रीनगर को, हवाई अड्डे को और दक्षिणी कश्मीर को उस घोर आपदा से बचा ही लिया और पश्चात् भारतीय सेना ने ऊडी तक के प्रदेशों को पुनः जीत कर वापिस ले लिया। यदि हमारे नेताओं ने त्वरित गति से युद्ध विराम नहीं किया होता तो भारतीय सेना ने अनायास ही मुजफ्फराबाद तक अपना अधिकार पुनः जमा लिया होता। अस्तु। उस समय ऋषिकेश से पूज्यपाद जी के दो पत्र मुझे श्रीनगर में मिले। एक में तो कश्मीर की तात्कालिक परिस्थितियों के विषय में और बारामुला के अपने भक्तों के समाचार के विषय में पूछा था। दूसरे पत्र में विशेषतया तीन बातों को ध्यान में रखने को कहा था—(१) **"कश्मीर में हिन्दु जनता को कम से कम पांच छः वर्ष तक किसी भी प्रकार का कोई भी सुख नहीं मिलेगा। (२) आगे भी कश्मीर में हिन्दु जनता को वह सुख नहीं मिलेगा जो अन्य राज्यों में मिल सकता है। (३) म्लेच्छ अपने स्वार्थ के लिए मैत्री का व्यवहार करता तो है, परन्तु वह सदा मैत्री को नहीं निभाता है। अतः म्लेच्छ की मैत्री पर विश्वास नहीं करना चाहिए।" सन् १९४८ तक पूज्यपाद जी ऋषिकेश आदि स्थानों में ही विचरण करते रहे।**

१९४७ के मई के महीने में कस्तूरीलाल जी पुनः जम्मू आए। राष्ट्रालोक के संस्करण की १००० प्रतियां स्यालकोट ले गए। मुझ से उन्होंने कहा, "पूज्यपाद जी के दो पत्र आए थे। एक पत्र में वे यही लिखते हैं कि स्यालकोट से निकल जाओ। कम से कम जम्मू चले जाओ। परन्तु जब हमने यह लिखा कि वहां के गण्यमान्य हिन्दु और मुसलमान आपस में बरादरी को बनाए रखने के पक्ष में हैं, तो उन्होंने दूसरे पत्र में यह लिखा है कि कम से कम सोना, चाँदी, रुपय्या साथ रखकर अपनी स्त्रियों को जम्मू पहुंचा दो और स्वयं भी स्थिति के बिगड़ जाते ही निकल जाने के लिए तैयार रहो।" तब कस्तूरी लाल जी की यह सलाह बनी कि माता और पत्नी को सोना चान्दी साथ लेकर शादी का बहाना बनाते हुए अखनूर भेज देवेंगे। मैंने भी इस विषय में आग्रहपूर्वक वैसी ही सलाह दे दी। वे भी बात को मान गए। परन्तु पश्चात उस दिशा में उन्होंने कोई भी पग नहीं उठाया। फिर १५ अगस्त को केवल जान बचाकर भागना पड़ा, सब कुछ छोड़कर। राष्ट्रालोक का नया संस्करण भी वहीं रह गया। अधिकार गुण्डों के हाथ में आ गया और गण्यमान्य व्यक्तियों को स्वयं गुण्डों से बचे रहने के लिए घरों में ही छिपना पड़ा। पश्चिमी भारत में सर्वत्र वही हुआ। हां सरदारी लाल ने अपनी पूंजी स्यालकोट से हटाकर देहरादून में लगा दी थी। अतः वे सर्वनाश से बचे रहे। कस्तूरी लाल को नए सिरे से सब कुछ बनाना पड़ा। अस्तु।

ऋषिकेश में घटी हुई एक विचित्र घटना को भी पूज्यपाद जी सुनाया करते थे। **वह घटना १९४७ के ऋषिकेश निवास में घटी या उससे पहले अथवा उसके पश्चात् इस विषय में निश्चय के तौर पर कुछ कहा नहीं जा सकता। परन्तु घटना का वर्णन जो उन्होंने सुनाया है वह यह है—**

'पूज्यपाद जी और कोई और महानुभाव दोनों ही एक बार स्वर्गाश्रम से काफी उपर तक गङ्गा जी की घाटी में घूमते घूमते चले गए। वापसी पर एक स्थान पर उन्हें बड़ी प्यास लगी। गङ्गा जी को ओर देखा तो बहुत नीचे घाटी में से बह रही थी। इतनी दूर उतराई चढ़ाई में अधिक कष्ट होगा या प्यास को सहन करने में, इस बात पर मन में विचार हो ही रहा था कि गङ्गा जी के तट पर एक चट्टान पर बैठे एक साधु ने हाथ से ठहरने का सङ्केत किया। दोनों सड़क पर ठहरे। पांच दस मिनटों के अनन्तर साधु सड़क पर पहुंच गया और अपने कमण्डलु में से उन्हें जल पिला दिया। तदनन्तर साधु ने उनको उसके आश्रम में भी आने को कहा। सड़क में उतराई पर बाईं ओर पर्वत की ऊंची ऊँची शिलाओं के भीतर एक गली जैसे मार्ग में से साधु उन्हें भीतर लेता गया। गली इतनी तंग थी और पर्वत के शिलोच्चय इतने ऊंचे थे कि भीतर जाने में डर सा लगता था। कुछ दूर भीतर जाने पर पहाड़ियों के बीच में खुला सा स्थान था। उसी के एक भाग में एक गुफा जैसी थी जिसके सामने एक कटघरा खड़ा कर दिया गया था। उसी गुफा में साधु रहता था। तीनों ही खुली जगह पर हरी हरी घास पर बैठ गए और कुछ समय परस्पर बहुत बातें हुईं। उस साधु ने उस समय पूज्यपाद जी को बहुत आग्रह पूर्वक उसी आश्रम में रहने के लिए बहुत कहा। यह भी कहा कि प्राचीन युगों से अनेक सिद्ध मानव महापुरुष वहीं रहते रहे; अतः उनके लिए भी वही स्थान रहने के लिए उचित है। पूज्यपाद जी को संशय हो गया कि साधु उन्हें अपना चेला बनाकर किसी जाल में फंसाना चाहता है। अतः वहां रुकने की बात को उन्होंने स्वीकार किया ही नहीं। हां एक बात पूज्यपाद जी ने पूछी कि उस एकान्त स्थान में उन्हें किसी प्रकार का भय तो नहीं लगता। उस प्रश्न के उत्तर में महात्मा ने कहा, **"भय काहे का, सब शिवमय ही तो है।" उनके ऐसा कहने पर पूज्यपाद जी को भी क्षण भर के लिए सर्वशिवभाव का अनुभव हो गया' और कानों में चारों ओर से 'शिव शिव' ऐसी ध्वनि सुनाई दी।** उस पर उन्होंने यह निश्चय कर लिया कि अभी गीता भवन को जाकर दो तीन बार यहां फिर आकर ही साधु महात्मा के प्रस्ताव पर विचार करें। अतः दोनों ही महानुभाव गली में से बाहर निकल कर सड़क से गीता भवन को आ गए। कुछ दिनों के पश्चात् पूज्यपाद जी किसी व्यक्ति को साथ लेकर पुनः उसी स्थान पर गए, परन्तु काफी ढूंढने पर भी वह तंग गली कहीं भी मिली ही नहीं। लगभग एक मील सड़क के

भाग को उन्होंने छान सा लिया। परन्तु गली कहीं भी दिखाई नहीं दी। निराश होकर गीता भवन को ही लौट आए। तदनन्तर एक बार चार पांच महानुभावों को साथ लेकर वहां कई एक मीलों तक ऊपर नीचे पहाड़ियों का निरीक्षण किया। परन्तु वह गली जैसा पहाड़ी प्रवेश मार्ग ऊपर नीचे कहीं भी दिखाई नहीं दिया। तब पूज्यपाद जी इस निश्चय पर पहुंच गए कि वैसे दिव्य स्थान सिद्धजनों की कृपा से ही मिलते हैं और उन्हीं महानुभावों को मिला करते हैं जिस पर वे सिद्ध-जन अनुग्रह करें। मानवीय प्रयत्नों से वैसे स्थानों के दर्शन हो ही नहीं सकते हैं।'

ऋषिकेश से ऊपर पूज्यपाद जी एक बार एक दिव्य स्थान में कुछ देर बैठे। उस स्थान को वसिष्ठ गुफा कहते हैं। गङ्गा नदी के तट के साथ वहां एक बड़ी सुविशाल गुफा है जो ग्रीष्म काल और वर्षाकाल में जब नदी में पानी बढ़ जाता है तो पानी के भीतर ही छिपी रहती है, परन्तु शरत् काल में जब पानी घट जाता है तो पुनः प्रकट हो जाती है। पूज्यपाद जी वहां गए। गुफा के भीतर बैठ कर काफी देर गंगा नदी के सुन्दर दृश्य को देखते रहे। उन्हें वहां बड़े हर्ष की अनुभूति हुई। **वे वहां बैठे ही थे कि आकाशमार्ग से विचरण करता हुआ कोई 'आकाश-चारी सिद्ध' उस गुफा की ओर आगे बढ़ने लगा। क्षणों में ही गुफा में उतर आया।** उतर कर पूज्यसाद जी से कहने लगा, "यह गुफा एक तपोभूमि है। यहां रहते हुए साधना त्वरित गति से सफल हो जाया करती है। पास ही एक ग्राम है। वहां के निवासी बड़े सज्जन हैं। साधु सन्त की सेवा करते हैं। परन्तु एक बात की ओर अवश्य ध्यान रखा जाना चाहिए। वह बात यह है कि इस स्थान पर किसी भी प्रकार का कोई भी बुरा काम नहीं किया जाना चाहिए।" इतना कह कर वह सिद्ध पुनः आकाशमार्ग से ही दक्षिण दिशा की ओर बढ़ता गया। पूज्य-पाद जी उसे तब तक आगे आगे बढ़ते जाते हुए को देखते ही रहे जब तक वह दृष्टि से ओझल नहीं हो गया। तदनन्तर वे वहां से चले आए। यह घटना कब हुई थी, इस विषय में मैंने उनसे जानकारी कभी प्राप्त नहीं की। यह भी सम्भव है कि उसी अज्ञातवास की अवधि में हुई हो, परन्तु यह भी सम्भव है कि कभी तदनन्तर हुई हो, क्योंकि पूज्यपाद जी आगे भी बहुत बार हरिद्वार, ऋषिकेश, स्वर्गाश्रम आदि जाते रहे और गीता भवन में बहुत बार रहते रहे।

ऋषिकेश में एक बार उन्होंने एक छोटे से भवन के सामने एक साइनबोर्ड को देखा उस पर लिखा था "**स्वामी मूर्खानन्द**"। इस विचित्र ढंग के नाम से आकृष्ट होकर वे भीतर गए। वहां एक संन्यासी बैठे थे। उनसे पूछा, कि "जिन महात्मा का नाम बाहिर लिखा है वे कौन हैं।" संन्यासी अपनी ओर संकेत करते हुए बोले, "इसी शरीर को इस नाम से जाना जाता है।" फिर पूज्यपाद जी का उनके साथ काफी संवाद हुआ। उस महात्मा की अन्तरात्मा की परीक्षा करने के लिए

पूज्यपाद जी ने कुछ ऐसे प्रश्न उठाए जैसे उस युग में आर्यसमाजी प्रचारक उठाया करते थे। उन बातों को सुन कर मूर्खानन्द स्वामी ने पूज्यपाद जी को अपनी जीवन गाथा इस प्रकार से सुना दी—

"आप आर्यसमाज की दृष्टि को लेकर के ऐसे प्रश्न कर रहे हैं। मैं स्वयं बाल्यकाल से ही आर्यसमाजी वातावरण में पला हूं। परन्तु उस मत की विचार-धाराओं से मैं कभी भी सहमत नहीं हुआ। मेरा जन्म लाहौर के एक सनातनी ब्राह्मण परिवार में हुआ। जब अभी मैं एक अबोध शिशु ही था तो दैवयोग से मेरे माता पिता का स्वर्गवास हो गया। पड़ोस में एक लाला रहता था, धनाढ्य सेठ था, परन्तु था अपुत्र। उसने मुझे गोद लिया। उसकी पत्नी ने माता की तरह मेरा लालन पालन किया और सेठ जी ने भी पिता की तरह मेरी शिक्षा दीक्षा का सुप्रबन्ध किया। वे बड़े कट्टर आर्यसमाजी थे। अतः मेरी शिक्षा समाजियों के स्कूल में समाजी ढंग से ही हुई। लाला की बड़ी इच्छा थी कि मैं एक बड़ा विद्वान् बनूं और आर्यसमाज की दृष्टि से वैदिक धर्म का खूब प्रचार करूं। अतः स्कूल के संस्कृत अध्यापक को प्रतिमास कुछ रुपय्ये देते रहे और वे मुझे संस्कृत भाषा को सिखाने के लिए अधिक समय देते रहे। दैव योग से वे संस्कृताध्यापक एक अच्छे विद्वान् थे और संकुचित समाजी-सनातनी विचारों से ऊपर उठ कर शास्त्रों के सच्चे तात्पर्य को समझाया करते थे। मैं मैट्रिक पास हो गया। कालेज में बी० ए० तक पढ़ाई की, जवान हो गया, विद्वान् बन गया। मेरे लिए विवाह की बातें भी चलने लगीं और कारोबार को उठाने की भी योजनाएं बनने लगीं।

ज्यों ही मैं भलीभाँति शिक्षा पा गया त्यों ही अनेकों बातों पर लाला जी से अनबन हुआ करने लगी। वे समाजी होने के नाते शास्त्रों के ऊटपटांग और मनमाने अर्थ करने पर आग्रह करते रहे और सनातनी परम्पराओं की आलोचना करते रहे। परन्तु मैं उन्हीं बातों पर अड़ा रहता रहा जो बातें शास्त्रों के विषय में यथार्थता पर आश्रित होती थीं, क्योंकि स्कूल के उन पूजनीय पण्डित जी ने मेरी बुद्धि को इतना निर्मल बना दिया था कि मैं गलत बात को कभी मानने को तैयार ही नहीं होता था। अन्ततोगत्वा परस्पर मतभेद इतना बढ़ गया कि सेठ जी ने मेरे से बरसों से बनाया हुआ नाता तोड़ दिया और मुझे अपने घर से निकाल दिया। उन्होंने जो लालन पालन, प्रशिक्षण आदि मेरा किया था उसके लिए जीवन भर आभारी रहने का वचन देकर और कृतज्ञता के भाव को प्रकट करते हुए मैंने सेठ जी को और सेठानी जी को प्रणाम करके उनके घर को छोड़कर प्रभु के दर्बार का आसरा लिया। आप मुझसे ये आर्यसमाजी तर्क कर रहे हैं। **मैं आर्य समाजी वातावरण में पलकर भी इसी निश्चय पर पहुंचा था और अब भी इसी निश्चय पर ठहरा हूं कि सनातन धर्म ही वास्तविक हिन्दु धर्म है। देखो सनातन सिद्धान्तों**

का सार भगवद्गीता है। जो ज्ञान इसमें निहित है वह बीसों ग्रन्थों से भी नहीं मिल सकता। इससे भी सूक्ष्मतर विचारों से भरा एक और ग्रन्थ अभी अभी मुझे प्राप्त हुआ है। इसे देखो। अध्यात्मि विद्या के विषय में कितने बारीक विषय इसमें भरे पड़े हैं।" ऐसा कहते हुए मूर्खानन्द स्वामी ने पूज्यपाद जी को "त्रिपुरा-रहस्य" का "ज्ञानखण्ड" दिखा दिया। वह संस्कृत कालेज वाराणसी के सरस्वती भवन से प्रकाशित हो गया था और उसका सम्पादन पूज्यपाद जी ने घर छोड़ने से पहले वहां स्वयं किया था। यह घटना पूज्यपाद जी ने स्वयं सुना दी है। परन्तु मैं इस बात पर कोई निश्चय नहीं कर सकता कि मूर्खानन्द स्वामी से उनकी यह भेंट कब हुई थी। जहा तक मेरा अन्दाज है, यह घटना अज्ञातवास की अवधि से पहले ही हुई होगी। ऐसा प्रतीत होता है कि पूज्यपाद जी ने सन् १९५० और १९५५ ई० के बीच से ही कभी अज्ञातभाव में रहना छोड़ दिया। विशेष करके जब उनकी पत्नी को वृन्दावन में उनसे भेंट, वार्तालाप आदि हुए और परस्पर पत्र व्यवहार भी चल पड़ा तो फिर अज्ञात रहने की आवश्यकता शेष नहीं रह गई। अतः बिना संकोच के जम्मू, कश्मीर, पंजाब, हिमाचल, राजस्थान, उत्तर प्रदेश आदि प्रान्तों में विचरण करते रहे।

चखमा बाबा ने बारामुला (कश्मीर) में पूज्यपाद जी को बताया था कि उन्होंने पुनः इस मर्त्यलोक में जन्म लेना है। पूज्यपाद जी ने मुझे ऐसा कहा था कि एक बार जब वे ऋषिकेष में थे तो रात को एक ऐसी घटना घटी जिससे वे अतीव व्याकुल हो गए। जब वे पिछले चतुर्थ जन्म में एक राजा थे तो तब का वहां का उनका जैन वंश का वित्तमन्त्री उस मानव शरीर को छोड़ कर हरदोई के किसी ब्राह्मण के घर जन्म लेने आकाश मार्ग से जा रहा था। ऋषिकेश में वह नीचे उतरा और पूज्यपाद जी से प्रार्थना करने लगा कि कुछ समय के पश्चात् वे भी वहीं आकर उनके घर में उनके पुत्र बनकर जन्म लेवें। ऐसी प्रार्थना कर चुकने पर सूक्ष्म शरीर में विचरण करता हुआ वह जैन आकाश मार्ग से ही चला गया। पूज्यपाद जी को चखमा बाबा के द्वारा कही गई भविष्यवाणी भी याद आ गई। उन बातों से वे बड़े ही व्याकुल हो गए और अत्यन्त तन्मयतापूर्वक जगन्माता से प्रार्थना करते रहे कि उन्हें इस मर्त्यलोक में पुनः जन्म न लेना पड़े। जैसाकि उन्होंने स्वयं कहा है। उनकी वह प्रार्थना स्वीकृत हो गई और अब उन्हें फिर से इस मर्त्यलोक में आना नहीं है। मेरा अनुमान ऐसा है कि उस पांचवें मर्त्यजन्म में अवश्य भोक्तव्य कर्मों को भोगने के लिए उनके वर्तमान चतुर्थ जन्म की अवधि में कुछ वर्षों का समय बढ़ाया गया और अवश्य भोक्तव्य कर्मों ने अपने फल का भोग उनसे करवा ही दिया। राजा की स्थिति ही ऐसी होती है कि उसके हाथों कुछ न कुछ दुष्कर्म होते ही हैं। उन्हीं के फल का भोग पूज्यपाद जी को वर्तमान चतुर्थ जन्म के अन्तिम वर्षों में भोगना पड़ा। उससे यह बात सम्भव हो गई कि उन्हें

पञ्चम जन्म के विषय में क्षमा मिल गई। तो वर्तमान मर्त्य शरीर को छोड़ कर सिद्धों के किसी भुवन के प्रति उन्होंने संक्रमण किया। वहां की स्थिति ऐसी है कि उधर रहने वाले महानुभाव जब चाहें इधर भी उतर सकते हैं और यहां अनुग्रह निग्रह आदि कृत्य कर सकते हैं। मेरे विचार में पूज्यपाद जी इस समय वैसी ही स्थिति में है।

एक बार जगाधरी में पूज्यपाद जी एक धर्मशाला में रात को ठहरे। वहां आधी रात को एक व्यक्ति कमरे में प्रकट हो गया। सिर पर राजस्थानी ढंग की राजपूती पगड़ी बन्धी थीं, ऐवकन और तंग पाजामा पहना था। वह हाथ जोड़ कर कहने लगा। "मेरा नाम रामसिंह है। मैं एक लम्बी बीमारी के बाद मरा था। बच्चे छोटे छोटे थे। विधिपूर्वक मेरी अन्त्येष्टि क्रिया नहीं हुई, न कोई और्ध्वदैहिक क्रिया या श्राद्ध आदि ही हुआ। अतः इस रूप में रहता हुआ कष्ट पा रहा हूं। आप सन्त हैं। कृपा करके मेरा उद्धार कीजिए।" पूज्यपाद जी ने कहा "जो कुछ मेरे से हो सकेगा, वह मैं करूंगा। आप जाइए"। ऐसा कहने पर वह प्रेत प्रणाम करता हुआ अदृश्य हो गया। अगले दिन पूज्यपाद जी ने जब उसके विषय में पता किया तो उन्हें ऐसा बताया गया कि 'कोई अंग्रेज वहां जगल का ठीकेदार था, उसी का एक कर्मचारी राम सिंह था जो राजयक्ष्मा रोग से मरा था। अंग्रेज़ ने पेट्रोल लगाकर उसके मृत शरीर को फूंक दिया था और पश्चात् उसके बच्चों को छात्रवृत्तियां दे देकर पढ़वाया था। अब वे अच्छी नौकरियों पर हैं। उन्हें कौन कहे कि उनका बाप प्रेतयोनि में हैं। कहीं ऐसा कहने वाले पर वे उल्टे चिढ़ न जाएं।' परन्तु पूज्यपाद जी ने रामसिंह के प्रेत को आश्वासन दिया था कि वे उसके लिए यथा सम्भव यत्न करेंगे। अतः कुछ समय के पश्चात् जब वे हरिद्वार गए तो ब्रह्म कुण्ड में स्नान करते समय उन्हें एकदम रामसिंह की याद आ गई तो उसका ध्यान करके उसके निमित्त एक गोता उन्होंने ब्रह्मकुण्ड मे लगा लिया। लगभग एक वर्ष तक ऐसा होता रहा कि पूज्यपाद जी जिस किसी भी तीर्थ पर पहुंच जाते थे, वहां वहां स्नान करते समय उन्हें रामसिंह की याद आती थी और उसके उद्धार के लिए एक गोता तीर्थजल में लगाया करते थे। उनका यह अन्दाज़ था कि वर्षभर में रामसिंह प्रेत-भाव से मुक्त हो गया होगा। इस घटना के विषय में भी हम बता नहीं सकते कि यह घटना कब घटी थीं। उन्होंने इस घटना को स्वयं सुनाया था।

हरिद्वार में कभी पूज्यपाद जी एक धर्मशाला में ठहरे थे। आधी रात को सोते सोते उनका शरीर अकड़-सा गया। वे एकदम जाग पड़े और दीवार के भीतर एक भयानक आकृति की काले रंग की किसी स्त्री को देखा। वे ऐसा समझ गए कि कोई प्रेतयोनि में रहने वाली स्त्री है। तो फिर वे लेटे लेटे ही भगवान् शिव के भैरवरूप का ध्यान करते हुए "भैरव, भैरव, भैरव" इस नाम का लगातार जप

करने लगे। कुछ ही मिनटों में उनका शरीर उस अकड़न से छूट गया और प्रेतस्त्री भी अदृश्य हो गई । प्रातः उन्होंने वहां के लोगों से जब पूछा तो यह विदित हुआ कि उस कमरे में कभी कोई स्त्री प्रसववेदना से मर गई थी जिसका नारायण बलि आदि कोई भी कर्म किसी ने भी नहीं किया । वही सम्भवतः प्रेत बनकर उस कमरे में रह रही होगी । यह घटना भी पूज्यपाद जी ने स्वयं सुना दी थी । घटना कब हुई, इस विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता ।

अध्याय १३

स्वच्छन्द परिव्रजन

पूज्यपाद जी को जब गुप्त रहने की कोई आवश्यकता शेष नहीं रह गई, तब वे स्वेच्छन्द गति से घूमते रहे। प्राय: एक ही स्थान पर चिरकाल तक नहीं ठहरते हुए स्थान स्थान में भ्रमण करते रहे। अधिकतर निम्न निर्दिष्ट स्थानों में रहते रहे—

(१) **नालागढ़**—स्वातन्त्र्य प्राप्ति से पूर्व यह एक स्वदेशी रियासत थी। यहां तक पहुंचने का एक मार्ग रोपड़ होकर एवं दूसरा पञ्जौर (कालका) होकर जाता है। तत्पश्चात् पहले यह जिला अम्वाला के एवं वर्तमान में जिला सोलन (हि० प्रदेश) के अन्तर्गत एक नगर है। परिव्राजक जीवन के प्रारम्भिक काल से ही पूज्यपाद जी का वहां पर आना जाना था। वहां अनेकों सज्जन उनके शिष्य बन चुके थे। इनमें से कुछेक के नाम है : – श्री नत्थू राम जज, पं० हरि राम शर्मा, पं० चन्द्रमणि जी, पं० सूर्य मणि जी, श्री सुभाष शर्मा, पं० शिवशरणदास जी, (राजोपध्याय), श्री संतराम जी, श्री भगवती दास जी, श्री लब्भू राम जी, श्री प्रताप सिंह जी, श्री हंसराज वोहरा इत्यादि। पूज्यपाद जी के एक प्रेमी भक्त **श्री भगवती प्रसाद जी उर्फ भजनानन्द 'सरस्वती'** भलेश्वर (नालागढ़) से प्राप्त सूचना के अनुसार पूज्यपाद जी ने वि० सं० १९९० की चैत्र पूर्णिमा के दिन वहां श्री चैतन्य महाप्रभु की रीति से एक '**संकीर्तन**' का प्रारम्भ कराया ? वहां एक **भागवत मण्डल** की स्थापना भी सन् १९६० में हुई थी। सन् १९६४ से ६८ तक, त्रिधातु निर्मित "**श्रीयन्त्र**" के अनुष्ठान भी वहां होते रहे। तत्पश्चात् १.५.७७ को उस 'यन्त्र' की विधिवत स्थापना नव निर्मित **रंग महल** में पूज्यपाद जी के कर कमलों द्वारा ही की गई थी। आषाढ़ शुक्ल दशमी को वे लोग पूज्यपाद जी का जन्म दिवस एवं पूर्णिमा को गुरु पूजा पर्व मनाते हैं। कई बार अपने जन्मदिन का उत्सव पूज्यपाद जी ने नालागढ़ में ही मनाया। उस उत्सव पर आस पास के स्थानों से भी शिष्यगण आया करते थे। वहां वे प्राय: धर्मसभा के भवन में रहा करते थे। नालागढ़ में नदी वाले एक शिव मन्दिर को पूज्यपाद जी विशिष्ट

अनन्त श्री विभूषित श्रीमद् अमृतवाग्भवाचार्य
(३-७-१९०३ से २४-११-१९८२)

स्वच्छन्द परिव्रजन काल का चित्र (सन् १९६६)

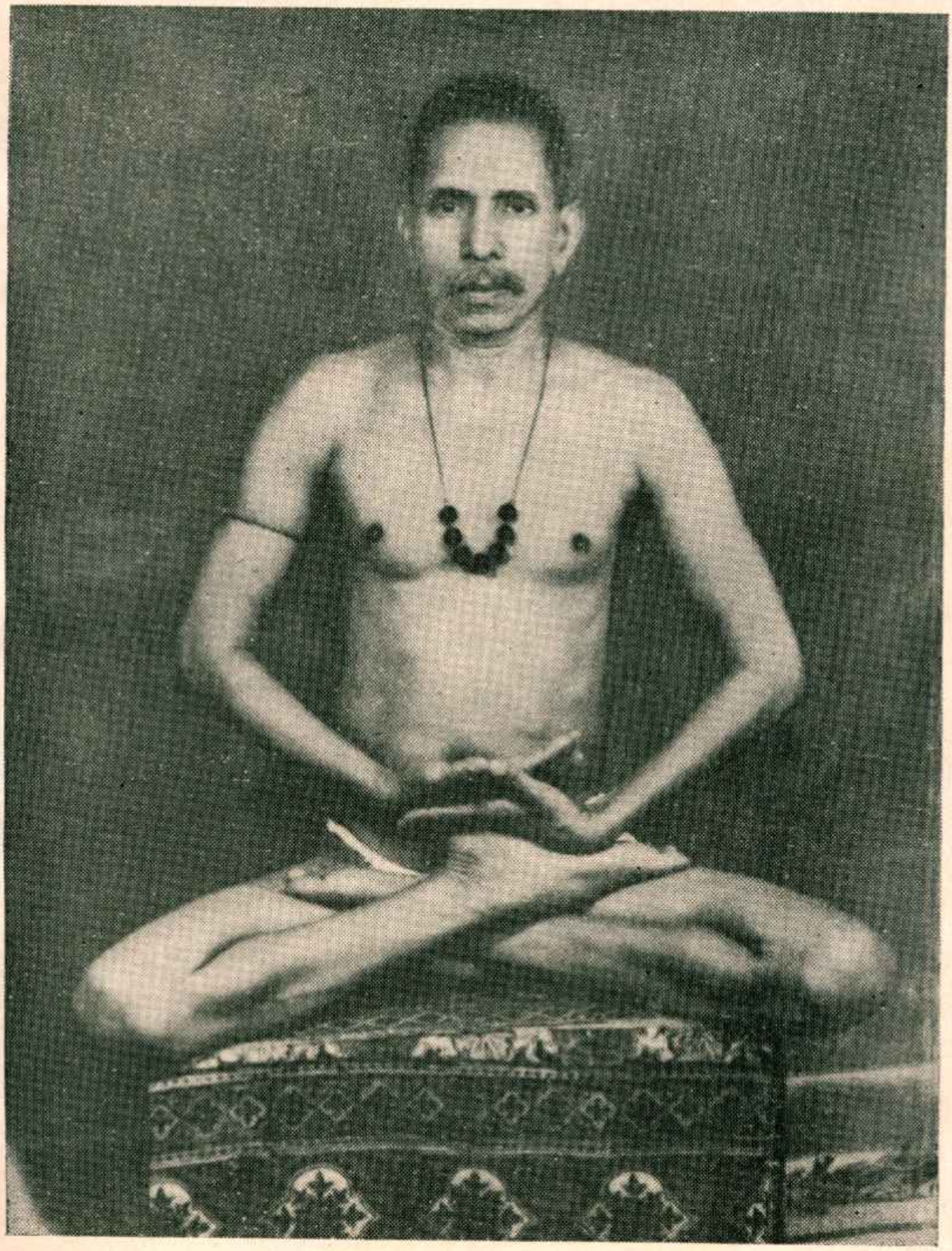

शाम्भवी योग मुद्रा में अर्द्ध प्रौढ़ावस्था का चित्र

'सिद्धस्थल' बताया करते थे। सायङ्काल को शिष्य गणों की मण्डली के साथ विविध विषयों पर वार्तालाप हुआ करते थे, विशेष कर तात्कालिक राजनैतिक परिस्थितियों पर और धर्म तथा दर्शन के विषयों पर। पूज्यपाद जी को इस बात पर पक्का निश्चय जम गया था कि धार्मिक और आध्यात्मिक प्रगति की ओर देश तभी आगे बढ़ सकता है जब देश में जगह जगह सत् शासन चलता हो। वे कहते थे कि वर्तमान युग के दुःशासन में धर्म को तथा आध्यात्मिकता को आगे बढ़ने के लिए कोई अवसर ही नहीं हो सकता। स्वातन्त्र्य प्राप्ति के पश्चात् भारत में चलती हुई रिश्वत खोरी, बेईमानी, अन्यायनीति, कुटुम्ब पोषण की चाल और तरह तरह की अनीतियों से उन्हें काफी चिढ़ होती जा रही थी। अतः इन बातों के विरुद्ध बहुत कुछ कहा करते थे और श्री स्वाध्याय के अङ्कों में इस दुर्नीति पर आलोचनात्मक श्लोकों को भी प्रायः देते रहते थे।

(२) **सुहाणा**—वर्तमान जिला रोपड़ की तहसील खरड़ के अन्तर्गत **चण्डीगढ़** के समीप एक गांव सुहाणा कहलाता है। किसी समय में वह एक क्षुद्र राज्य की राजधानी बना रहा। वहां पूज्यपाद जी के बहुत सारे शिष्य रहते थे। मर्त्यजीवन के अन्तिम दो तीन वर्षों को छोड़कर उस जीवन के चरम भाग में प्रायः प्रतिवर्ष अपने जन्मोत्सव को सुहाणा में ही मनाया करते थे। आस पास के सभी स्थानों से भक्तजन और शिष्यगण उस अवसर पर वहीं आया करते थे। **सुहाणा के भक्तों में पं० जटाशंकर एवं उनके सुपुत्र श्री चन्द्रशेखर, राम स्वरूप, दीनानाथ; चौ० दसौंधा राम, श्री फकीर चन्द्र जी, श्री ओमप्रकाश शर्मा, श्री रामकृष्ण जी 'धीमान', श्री ईश्वर दास जी, श्री श्यामलाल जी एवं सरदार सरवण सिंह के नाम उल्लेखनीय हैं**। नालागढ़ से आने वालों की संख्या तो बहुत अधिक होती थी। सुहाणा में एक प्राचीन कुएं का जल उन्हें अच्छा लगता था। कुएं के समीप ही उनके एक परमभक्त और वयोवृद्ध शिष्य पं० जटाशङ्कर जी का घर था। पूज्यपाद जी सुहाणा में तब तक उन्हीं के घर में निवास करते थे जब तक पण्डित जी इस संसार में जीवित रहे। पंडित जी देवता स्वभाव के एक अतीव सरल प्रकृति के कर्मकाण्डी ब्राह्मण थे। तदनन्तर या तो चौधरी मिल्खराज जी के घर में या पं० ओमप्रकाश जी के घर में रहा करते थे। जन्मदिवस पर बड़ा भारी उत्सव मनाया जाता था। भण्डारा होता था। सैकड़ों लोग प्रसाद पाते थे पहले पहले पं० जटाशंकर जी के एक पुत्र के खुले आंगन वाले भवन मे और पश्चात् पं० ओमप्रकाश जी के घर में भण्डारा बनता था। काफी दूर दूर से शिष्यजन आया करते थे।

(३) **भरतपुर**—में भी पूज्यपाद जी महीनों तक लगातार रहा करते थे। वहां पहले पहले **श्री गिरिधारी शरण राव जी** की कोठी में रहते थे और पश्चात्

'मिश्र गोविन्द शर्मा' जी के घर में निवास करते थे। मिश्र जी आर्य प्रकृति के एक उच्च कोटि के विद्वान् एवं कर्मकाण्डी ब्राह्मण थे। वे राज पुरोहित भी थे। पूज्यपाद जी उन्हें अपने **'प्राण'** समझ कर स्नेह करते थे। अपना पुस्तक भण्डार भी पूज्यपाद जी ने मिश्र जी के ही घर में रखा था। पूज्यपाद जी की अनेकों ही पुस्तकों का प्रकाशन भी वहीं से होता रहा और प्रकाशित पुस्तकों का भण्डार भी वहीं रखा गया था। सोलन में जब श्री स्वाध्याय का प्रकाशन बन्द हो गया तो श्री स्वाध्याय सदन के द्वारा प्रकाशित पुस्तकों को भी भरतपुर ले आया गया और श्री गोविन्द जी के पास रखा गया। बहुत सारी छपी हुई सामग्री, विशेष करके श्री स्वाध्याय के सभी अंक वहां गंगा मन्दिर की धर्मशाला के एक कमरे में रखे गए। भरतपुर में पूज्यपाद जी ने **"आपूपिकेश्वर शिव"** की स्थापना की और उस प्रतिष्ठा के उपलक्ष्य में **"आपूपिकेश्वर स्तोत्र"** का निर्माण किया। मन्दिर को वहां के हलवाइयों ने बनवाया।

भरतपुर के कुछ अन्य शिष्यों एवं प्रेमी भक्तों के नाम इस प्रकार हैं— **श्री सम्पूर्ण दत्त 'मिश्र'** (एम० ए० संस्कृत, एम०ए० इंगलिश) इन्हें **"कवि पुण्डरीक"** की उपाधि पूज्यपाद जी ने स्वयं दी थी। उन्होंने ही पूज्यपाद जी के सप्तपदी हृदयम् ग्रन्थ पर अंग्रेजी में व्याख्यात्मक निबन्ध लिखा है। पं० गोविन्द मिश्र के भागिनेय—श्री 'धरणी धर' जी श्री लक्षमण जी एवं श्री धर्मेश्वर जी, श्री छोटे लाल जी सैणी (कृषि-अधिकारी) इन्हें कुछ साधना पूज्यपाद जी ने सिखाई थी। जिसके सतत अभ्यास से इन्हें **कुण्डलिनी** जाग्रत हो गई थी ऐसा गुप्त रहस्य इन्होंने श्री रत्न लाल जी को स्वयं एक बार बताया था। इन्होंने स्वयं एक बार एक अंधकारमय भवन में पूज्यपाद जी के भौतिक शरीर से अलौकिक प्रकाश की किरणें निकलती देखी थीं यह भी उन्होंने श्री रत्नलाल जी को बताया था। इनके अतिरिक्त, श्री लक्ष्मी चन्द्र (लक्खो जी) श्री मनोहर जी, श्री महेश जी (वकील) एवं अन्य बहुत से भक्तजन भी थे।

(४) **दिल्ली**—पूज्यपाद जी के ठहरने का चौथा स्थान जो था वह था दिल्ली। वहां पर पहले तो नालागढ़ वाले जज साहब श्री **नाथूराम** के घर रहते रहे। फिर हाउसिंह फैक्ट्री कालोनी जंगपुरा में बख्शी वैष्णवी दास जी के आवास में ठहरा करते थे। उनके साथ पूज्यपाद जी का बहुत पुराना परिचय था। वे मूलतः मुजफ्फराबाद (कश्मीर) के निवासी थे और पाकिस्तानी आक्रमण के पश्चात् पहले अम्बाला में सरकारी नौकरी में रहकर फिर दिल्ली आए थे। पूज्यपाद जी इनके व्यवहार से सर्वदा अत्यन्त सन्तुष्ट रहे और प्रायः इन की सराहना करते रहे। सम्पूर्ण बख्शी परिवार ही पूज्यपाद जी के प्रति समर्पित था। बख्शी जी के सरल एवं निष्कपट स्वभाव की चर्चा कई बार हमने श्री मुख से सुनी है। मुझे स्मरण

है कि उनकी पत्नी तथा कन्या दिन भर ही पूज्यपाद जी से मिलने को आने वालों की सेवा में कितनी तत्पर रहा करती थीं। उनके दिल्ली छोड़कर उदयपुर चले जाने पर पूज्यपाद जी कुछ समय निजामुद्दीन स्टेशन के पास सराय काले खां गांव में वैद्य **बृहस्पति देव त्रिगुणा** के घर रहते रहे। वैद्य जी ने वहां एक शिवमन्दिर का निर्माण भी किया। पूज्यपाद जी ने उसका नाम रखा "**त्रिगुणेश्वर महादेव**"। उन्होंने स्वयं शिवलिंग (नर्मदेश्वर) की स्थापना मन्दिर में की। वैद्य जी को 'मन्त्र दीक्षा' भी पूज्यपाद जी ने जगदम्बा के मन्दिर में दी थी जिसके पश्चात ही उनकी हर प्रकार की विशेष उन्नति हुई। कभी कभी अपनी चिकित्सा भी वे वैद्य जी से करवाते रहे। परन्तु दुर्दैव वश एक बार (सन् १९७६-७७) में जब पूज्यपाद जी वैद्य जी से मिलने उनके निवास स्थान पर गये हुये थे तो कहा जाता है कि वैभव के मद में चूर्ण वैद्य जी ने उनके साथ अत्यन्त अपमान जनक दुर्व्यवहार किया जिससे खिन्न होकर पूज्यपाद जी उनके प्रति **'उदासीन'** भाव को प्राप्त हुये। उस के पश्चात भी अनेक बाद जब कभी पूज्यपाद जी ने गुरु पूर्णिमा इत्यादि के अवसर पर वैद्य जी को बुलाकर भेजा, वे कभी आये ही नहीं और इस प्रकार भूल सुधार के प्रत्येक अवसर को उन्होंने खो ही दिया। कदाचित् वे यही समझते रहे हों कि उन्होंने कुछ भी अनुचित किया ही नहीं। पूज्यपाद जी फिर कभी उनके यहां गये ही नहीं। अस्तु।

सराय काले खाँ में रह रहे कुछ अन्य व्यक्ति भी पूज्यपाद जी के सम्पर्क में आये। उनमें पं० द्वारकादत्त, श्री प्रीतम गुप्ता एवं पं० बालकृष्ण शर्मा के नाम उल्लेखनीय हैं। इनमें पं० द्वारका दत्त जी तो मास्टर भगवान दास के सम्बन्धी भी थे और पूज्यपाद जी के पुराने परिचित थे, शेष दोनों सज्जनों का परिचय नया था। वह अधिक टिकाऊ सिद्ध नहीं हुआ। पूज्यपाद जी को श्री रत्नलाल जी अग्रवाल के जंगपुरा स्थित घर में विशेष सुविधा न होते हुये भी अधिक भक्तिमयी और श्रद्धामयी सेवा प्राप्त होती थी। अग्रवाल जी की माता तो प्राणों से उनकी सेवा करती थीं। उनकी पत्नी और कन्या और दोनों सुपुत्र भी स्नेह और श्रद्धा से शुश्रूषा करती थीं। साथ श्री रत्नलाल जी के साथ आध्यात्मिक विषयों पर चर्चा करने में भी पूज्यपाद जी को रस आया करता था। अत: दिल्ली में कई बार उन्हीं के घर में निवास करते रहे। १९८२ में मर्त्य शरीर को भी उन्हीं के दिल्ली हाई कोर्ट के प्राङ्गण में स्थित आवास में छोड़कर शिवधाम को सिधार गए। जिन वर्षों में मार्तण्ड (कश्मीर) निवासी डा० श्रीनाथ जी तिक्कू दिल्ली में तिबिया कोलेज के प्रिंसिपल थे, उन वर्षों में पूज्यपाद जी वहां उनके आवास में भी रहते रहे।

स्यालकोट के मूल निवासी श्री कृष्ण कुमार आनन्द ने दिल्ली आकर मान-

सरोवर गार्डन में अपना निवास बनाया था। पूज्यपाद जी वहां भी प्राय: निवास करते रहे। उनका सारे का सारा परिवार बड़ी अपार श्रद्धा और भक्ति से पूज्यपाद जी की सेवा करता रहा और साथ ही उनसे मिलने के लिये आने वालों का आतिथ्य भी। श्री रत्नलाल जी अग्रवाल के चाचा एवं श्री राज कुमार जी अग्रवाल के पिता श्री बांके लाल जी और उनका सारा परिवार भी पूज्यपाद जी की सेवा बड़ी श्रद्धा से करते रहे। अत: उनके घर में भी वे रहते रहे। एक अत्यन्त जटिल और कष्टप्रद अदालती मुकद्दमे से श्री बांके लाल जी को मुक्ति श्री पूज्यपाद जी की कृपा का ही परिणाम थी। 'महाप्रसाद' देकर श्री बांकेलाल जी की आयु में वृद्धि भी पूज्यवाद जी ने की थी, ऐसी धारणा प्रसिद्ध है। मुझे दस ग्यारह वर्षों के अनन्तर जो पूज्यपाद जी से पुर्नमिलन हुआ था वह श्री बांके लाल जी के ही आवास में हुआ था, सन् १९५८ में। तब श्री बांके लाल जी बिरला मन्दिर के सामने **रणजीत प्लेस** नामक भवन के एक आवास में रहा करते थे। जिन दिन मैं वहां उनसे मिलने गया था, उसी दिन उन्हें दैनिक नित्यकृत्य को पूरा कर चुकते ही **भगवती मातृका के बिन्दुचतुष्टयात्मक दिव्याति दिव्य स्वरूप का दर्शन हुआ।** तदनुसार उनके सामने आकाश में निराधार खड़ी एक ज्योतिर्मयी रेखा दिखाई दी। जिसका आकार एक सूक्ष्मतर तथा चमकीले तन्तु का जैसा था। उस तन्तु के निचले सिरे पर एक हीरे के वर्ण वाला तथा हिमशुभ्रकान्ति को छिटकाता हुआ गोलाकार बिन्दु शब्दायमान होता हुआ घूम रहा था। उस बिन्दु से एक और तार दाईं ओर ९० दर्जे के कोण में नीचे को निकली थी। उस तार के निचले सिरे पर एक और गोलाकार बिन्दु घूम रहा था। उसके घूमने में एक और ही प्रकार की ध्वनि पूज्यपाद जी को सुनाई दी। इस बिन्दु का वर्ण स्फटिक जैसा शुभ्र था। उसके बीचोबीच ९० दर्जे के कोण में बाईं ओर निकली हुई एक और तार थी जिसके निचले सिरे पर विचित्र ध्वनि को लेकर के गूंजता हुआ एक और मण्डलाकार, विशालकाय, और लाल रंग की कान्ति को छिटकाता हुआ माणिक्य वर्ण का बिन्दु घूम रहा था। उसी तीसरे मण्डल के बीच में से निकली हुई एक तार बाईं ओर ९० दर्जे के कोण में ऊपर की ओर गई हुई थी। उसके ऊपरी सिरे पर एक श्याम वर्ण, मण्डलाकार महा बिन्दु अन्य ही प्रकार की ध्वनि के साथ तीव्र गति से घूम रहा था। इस प्रकार की बिन्दु चतुष्टयमयी मातृका देवी के दर्शन पूज्यपाद जी ने प्रात: आठ बजे के समय किए। इस दर्शन को पाते ही उन्हें **सिद्ध स्वतन्त्रानन्दनाथ कृत** मातृका चक्रविवेक के निम्नलिखित प्रारम्भिक श्लोक का स्मरण आया—

जाग्रत्-सुषुप्ति-कृतदक्षिणवामभागां
स्वप्नस्वभावपरिक्लृप्तजघन्यभागाम।

तुर्यातितुर्य-घटिताननहृत् प्रदेशां
प्राणेश्वरीं परशिवस्य परामृशामः ।। (मा. च. वि. १-१)

यह घटना आठ बजे घटी और मैं नौ बजे उनके दर्शन के लिए वहां पहुंच गया। पश्चात् श्री निवास पुरी स्थित श्री राजकुमार जी के क्वार्टर जी-५३९ में भी पूज्यपाद जी पर्याप्त समय तक रहते रहे और वहीं उनका परिचय श्री नित्यानन्द 'दत्त' (मुह्याल) से हुआ था जो 'परशुराम' उपनाम भी रखते हैं। और भगवान् परशुराम के परम भक्त हैं। उनका आवास भी काफी समय तक पूज्यपाद जी के ठहरने और उनके प्रेमी भक्तों के आने जाने का विशेष केन्द्र बना रहा। श्री रुद्रदेव पाण्डेय एवं विख्यात पुरातत्त्वविद् श्री चन्द्र भानु पाण्डेय से भी यहीं परिचय हुआ।

मान सरोवर गार्डन के पास ही एक बस्ती **राजौरी गार्डन नाम वाली** है। वहां स्टेट बैंक के अनेकों आवास बने हैं। उनमें से एक आवास में जब हमारे बड़े दामाद **श्री द्वारकानाथ पण्डित** रहा करते थे तो उस अवधि में पूज्यपाद जी बहुत बार उनके पास भी ठहरा करते थे। उनका सामान जो पहले मानसरोवर गार्डन में श्री के. के. आनन्द के घर रखा था, उसे पश्चात् श्री द्वारकानाथ जी के ही आवास में एक पृथक् कमरे में रखा गया। वह सामान तब तक वहीं रहा जब तक श्री द्वारिकानाथ जी जोधपुर स्थानान्तरित नहीं हो गए। तदनन्तर वह सामान पूज्यपाद जी ने बी-६६ साउथ **मोती बाग में श्री सीता राम** जी तंवर के आवास में रखवाया। वे स्वयं भी प्रायः उधर ही रहते रहे। पूज्यपाद जी के मत में श्री सीता राम जी एक योगी पुरुष थे। उन्होंने स्वयं और उनकी पुत्रि श्रीमती बिमला देवी एवं उसके पति श्री प्रेम सिंह जी ठाकुर ने अत्यन्त विनम्रता और श्रद्धा पूर्वक पूज्यपाद जी की सेवा का लाभ उठाया। उनसे मिलने को आने वालों का आतिथ्य भी वे बहुत स्नेह और सम्मान पूर्वक किया करते रहे। सन् १९८१ में जब श्री सीता राम जी सेवा निवृत्त होकर कुणिहार (हिमाचल प्रदेश) चले गए तब पूज्यपाद जी सी-२२ में पं० देशराज जी के घर में रहने लगे। बीच बीच में कुछ समय के लिए पूज्यपाद जी सी-२२ में और कुछ समय श्री रत्नलाल जी अग्रवाल के आवास में रहते रहे। उन्हें दिल्ली हाई कोर्ट में जब सरकारी आवास मिला तो पूज्यपाद जी का सामान भी वहीं लाया गया। मर्त्यशरीर को भी वहीं छोड़ा और अब भी उनका सामान वहीं पर रखा गया है। यही स्थान इस समय तक विद्वद्वरकल श्री राधा कृष्ण धार्मिक संस्थान का मुख्य कार्यालय है।

पण्डित देश राज जी से पूज्यपाद जी का परिचय भी कोई कम विलक्षण घटना नहीं है। एक दिन डा० भवानी शंकर जी के सुपुत्र श्री रवि शर्मा त्रिवेदी को, जो स्वयं भी साउथ मोती बाग के एक सरकारी क्वार्टर में ही इन दिनों रहते थे, रात्रि में स्वप्न हुआ जिसमें उन्हें पूज्यपाद जी की ओर से आदेश दिया गया

कि प्रातः उनका अमुक ग्रन्थ ले जाकर सी-२२ के निवासी एक श्रेष्ठ, तपोनिष्ठ, द्विजोत्तम को दे दो। तदनुसार श्री रवि जी वह ग्रन्थ लेकर श्री देशराज जी की सेवा में उपस्थित हो गए। उनसे उनका कोई पूर्व परिचय नहीं था। स्वयं पूज्यपाद जी उन दिनों वी-६६ में श्री सीता राम जी के यहां विराजमान थे। ग्रन्थ के सरसरी अध्ययन से ही अतीव प्रभावित होकर पं० देशराज जी ने श्री सीताराम जी के घर पर जाकर पूज्यपाद जी के दर्शन किये। पहले साधारण परिचय हुआ जो आगे प्रगाढ़ सम्बन्ध में परिवर्तित हो गया।

अपने मर्त्यजीवन की अन्तिम लगभग एक वर्ष की अवधि को पूज्यपाद जी ने श्री देशराज के उक्त गृह में रहते हुये उनके परिवार के मध्य ही व्यतीत किया। कभी कभी कुछ समय के लिये ही वे वहां से चण्डीगढ़, सुहाणा या दिल्ली के ही अपने शिष्यों के घर अथवा फरीदाबाद में श्री कस्तूरी लाल जी आनन्द के यहां भी थोड़े समय के लिये चले जाया करते थे। पण्डित देश राज की दोनों कन्याओं **'ऋचा' और 'श्रद्धा'**, एवं उनके सुपुत्र श्री शशि कुमार शर्मा ने उन दिनों पूज्यपाद जी की खूब सेवा शुश्रुषा की। वहीं रहते हुये ही पूज्यपाद जी का स्वास्थ्य शिथिल से शिथिल होता गया और अशक्तता बढ़ती गई। जठराग्नि मन्द से मन्दतर होती गई। अर्श के रोग ने भी जोर पकड़ लिया और अतिसार से भी पीड़ित रहे। निरन्तर औषध के सेवन से भी स्वास्थ्य में सुधार नहीं हुआ। अन्ततोगत्वा जब रोग असाध्य होता प्रतीत हुआ तो उन्हें मूल चन्द हस्पताल में ले जाकर भर्ती भी करवाना पड़ा। इस अन्तिम रुग्नता का विस्तृत वर्णन आगे अन्तिम अध्याय में समुचित स्थान पर किया जायेगा। श्री देशराज जी के मोती बाग के आवास में रहते हुये भी पूज्यपाद जी ने अपने नित्य-कर्म और दोनों समय के भ्रमण की आदत को तब तक नहीं छोड़ा जब तक उनके शरीर में ऐसा करने की जरा बराबर भी सामर्थ्य बाकी रही। प्रातः मोती बाग द्वितीय (साउथ) में पहाड़ी पर स्थित बाबा बालक नाथ के मन्दिर में और सायं मोती बाग प्रथम में पहाड़ी पर स्थित शिव मन्दिर में प्रणाम करने अवश्य जाते रहे। उधर ही रास्ते में श्री नित्यानन्द की पुत्रि 'गुड्डी' के क्वार्टर पर कुछ देर रुक कर एक विशेष नल का पानी मंगवाकर पीते थे। साथ में श्री रत्नलाल अग्रवाल या अन्य कोई भक्त भी होता था।

यहीं पर स्नेही सज्जन श्री ओम प्रकाश गुप्ता से भी पूज्यपाद जी का परिचय हुआ, जो आगे चलकर विशेष घनिष्ट सम्बन्ध में विकसित हुआ। गुप्ता जी व्यवसाय से एक उद्योगपति थे और फरीदाबाद में उनका लाखों रुपये का कारोबार था। पूज्यपाद जी के सम्पर्क और उपदेशों से प्रभावित होकर उन्हें वैराग्य हो गया और जब पूज्यपाद जी इस भौतिक शरीर को छोड़ चुके थे तो शीतकाल

के एक अति तीव्र सर्दी वाले दिन श्री ओम प्रकाश जी अकस्मात्, बिना पूर्व सूचना के लाखों की सम्पत्ति मोटर गाड़ी और ठाट बाट को त्याग कर विरक्त हो कर चले गये। पश्चात् यह पता लगा कि कठोर तपस्या के द्वारा उन्होंने प्रचुर आध्यात्मिक उन्नति कर ली। और एक बार स्वप्न दर्शन द्वारा पूज्यपाद जी ने उनकी ऊर्ध्व गति पर अतीव संतोष व्यक्ति करते हुये उनको शुभाशीर्वाद भी प्रदान किया। श्री बी० डी० जैन नामक एक सच्चे राष्ट्रवादी महानुभाव के घर, सरोजिनी नगर, में भी कभी-२ पूज्यपाद जी का ठहरना होता था। उनके सनातनी ढंग की पूजा अर्चना में जैन सा० के निजी धार्मिक विचार अथवा उनका व्यवहार कभी बाधक नहीं बना। सरोजिनी नगर में ही किसी समय कुंवर गजे सिंह नाम के एक महानुभाव और एक श्रीमती शकुन्तला जी रहा करते थे। कुंवर साहिब को तबला वादन और पक्के राग रागनियों के गायण में विशेष निपुणता प्राप्त थी। उनके यहां भी पूज्यपाद जी जाते और उनकी कला का रसास्वाद न लेते रहे।

अपने प्रातःकालीन अथवा सायंकालीन भ्रमण के दौरान अथवा अवकाश वाले दिन पूज्यपाद जी कभी-२ रामाकृष्ण-पुरम् में श्री राम सिंह जी ठाकुर के घर अथवा सरोजिनी नगर में श्री ओ० एन० महेन्द्र जी के घर भी चले जाया करते थे। उनके भक्तिभाव और श्रद्धा-पूर्ण व्यवहार से अतीव प्रभावित भी हुआ करते थे। उन लोगों के आग्रह पर उनके यहां भोजन भी कभी-२ किया करते थे। श्री राम सिंह जी को मन्त्र दीक्षा भी उन्होंने दे दी थी। जम्मू के श्री पिशोरीलाल गुप्ता, डिप्टी सेक्रेटरी गवर्नमेंट आफ इन्डिया के साथ उनके निवास पर रवीन्द्र नगर, पश्चात् निर्माण विहार भी जाया करते थे। श्री गुप्ता जी को एक अत्यन्त कष्टकारी अदालती झगड़े से मुक्ति भी पूज्यपाद जी की कृपा से मिली थी।

ऐसे ही एक बार मन्दिर के रास्ते में श्री बांके बिहारी जी शास्त्री के आत्मज **श्री माधव शर्मा** (वर्तमान प्रचार मन्त्री, श्री रा० कृ० संस्था) से पूज्यपाद जी की अत्यन्त संक्षिप्त सी भेंट हुई थी जो 'सामान्य परिचय' तक ही सीमित रही। परन्तु जिसकी स्मृति को वे अभी तक हृदय में संजोये बैठे हैं। उन्हें रह रह कर यह पश्चात्ताप हो रहा है कि वह 'परिचय मात्र' बढ़कर एक घनिष्ट सम्बन्ध में परिवर्तित क्यों न हो सका। परन्तु कभी-२ पूर्व जन्म के विशिष्ट संस्कार एक अवधि तक सुषुप्त ही रहते हैं और उपयुक्त समत आने पर उनका विकास स्वतः ही हो जाता है। यही श्री माधव जी के साथ भी घटित हुआ। पश्चात्, जब वे श्रीरत्न-लाल जी के माध्यम से विद्वद्वरकल संस्था के सम्पर्क में आये और पूज्यपाद जी के विशद् जीवन चरित् एवं अति श्रेष्ठ वाङ्मय से जब उनका परिचय हुआ तब उनको विदित हुआ कि पूज्यपाद जी के साथ विस्तृत सम्बन्ध के अभाव में कितने अमूल्य लाभ से वे वञ्चित रह गये। परन्तु भाग्यशाली मनुष्य कई बार गाड़ी छूटने

पर भी भाग कर उसे पकड़ ही लेते हैं और उस समय अपनी सफलता पर उन्हें जो सन्तोष होता है उसका मूल्य वे स्वयं ही जानते हैं। ऐसे ही सुख का अनुभव श्री माधव जी को तब हुआ जब दो वर्ष पूर्व हरिद्वार में निर्जला एकादशी के दिन, नील धारा पर श्री रत्नलाल जी के सान्निध्य में 'गुरुवर स्तव' के पाठ की समाप्ति पर पूज्यपाद जी ने एक प्रकार से साक्षात् दर्शन देकर उन्हें कृतार्थ किया। एक अन्य अवसर पर 'पवनदूत' बनकर जब स्वयं पूज्यपाद जी ने श्री शर्मा जी की गृहिणी को उनके दिल्ली स्थित निवास पर अत्यन्त व्याकुलता की घड़ी में यह सन्देश दिया कि शर्मा जी 'मासिक आराधना' के उपलक्ष में श्री रत्नलाल जी के घर पर रुक गये हैं और उन्हें घर पहुंचने में विलम्ब हो सकता है, तो पीछे जीवनकाल में पूज्यपाद जी से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित न कर सकने का खेद करने का कोई आधार ही शर्मा जी के पास नहीं रहा। उस अभाव की पूर्ति भली प्रकार से हो चुकी है ऐसा अब वे मानते हैं।

एक जन्य अतीव सज्जन ब्राह्मण परिवार जिससे पूज्यपाद जी का दिल्ली निवास के दौरान प्रगाढ़ आत्मीयता का सम्बन्ध हुआ वह था गोविन्दपुरी के **श्री सेवा राम जी शर्मा का परिवार**। श्री शर्मा जी अत्यन्त भावुक और पूज्यपाद जी के अनन्य श्रद्धालु भक्त हैं। इन्होंने कभी बहुत पहले श्री निवासपुरी में पूज्यपाद जी के दर्शन किये थे और तभी से उनके प्रति आकृष्ट थे। परन्तु तब तक पूर्वजन्म के संस्कार संभवतः पूरी तरह से विकसित नहीं हुए थे। आगे जब वे गोविन्दपुरी में जाकर **पं० राम रत्न शर्मा, गायणाचार्य एवं ज्योतिषाचार्य** के पड़ौस में रहने लगे और उनके सम्पर्क में आये तो उनका परिचय पूज्यपाद जी से अत्यन्त निकट का बनता चला गया। दिल्ली में पूज्यपाद जी जहां जहां ठहरते थे और श्री शर्मा जी को जब पता चलता था तो वे नियमपूर्वक पूज्यपाद जी से मिलने जाते थे। घण्टों सत्सङ्ग होता था और शर्मा जी बड़ी तन्मयता से उसमें रूचि पूर्वक भाग लेते थे। धीरे-धीरे यह सम्पर्क बढ़कर 'गुरु शिष्य' सम्बन्ध में परिवर्तित हो गया। और श्री शर्मा जी उन चुने हुए कुछेक भाग्यशाली भक्तों में सम्मिलित हो गये जिन्हें पूज्यपाद जी ने 'मन्त्र दीक्षा' देकर कृतार्थ किया है। शर्मा जी का समस्त परिवार ही पूज्यपाद जी का भक्त बन गया और तन मन धन से उनकी सेवा करता रहा। पं० देशराज जी के आवास पर जब शर्मा जी निरन्तर आते ही रहे तो संयोग ऐसा बना कि पूज्यपाद जी की सहमति और परामर्श से श्री देशराज जी की कन्या '**ऋचा**' का 'सम्बन्ध' श्री सेवाराम जी शर्मा के सुपुत्र श्री **सतीश शर्मा** जी से जुड़ गया। विवाह की प्रक्रिया पूज्यपाद जी के शरीर छोड़ने के लगभग एक वर्ष पश्चात् सम्पन्न हुई। उस 'लक्ष्मी' के उस घर में आते ही वहां की मानो काया ही पलट गई। हर प्रकार की सुख-समृद्धि से घर का ढांचा ही

बदल गया। पूज्यपाद जी श्री देशराज जी की कन्याओं द्वारा उनकी अन्तिम रुग्नता के दिनों में की गई सेवा और भक्ति से इतने प्रसन्न हुए थे कि इस भौतिक शरीर को जब उन्होंने श्री रत्नलाल जी के घर पर २४-११-८२ को छोड़ दिया और जब उन्हीं के आदेशानुसार उनके शरीर को मां गङ्गा की नील धारा में हरिद्वार में विसर्जित कर दिया गया और जब यहां दिल्ली में मोती बाग के आवास पर पं० देशराज जी की कन्याओं ऋचा और श्रद्धा ने मिलकर श्री भागवत् पुराण की आवृत्ति निरन्तर एक सप्ताह तक की, तब 'पूर्ति' के उपरान्त तुरन्त ही मंच पर सजाये पूज्यपाद जी के चित्र से उच्च स्वर में 'जयशंकर' 'जयशंकर' का घोष सुनाई देने लगा जिसे सुनकर सभी उपस्थित भक्तजन हर्षातिरेक से रोमांचित हो उठे और उनके विस्मय का तो कहना ही क्या। घर के सभी सदस्य स्वयं को कृतार्थ समझने लगे। श्री देशराज जी के परिवार पर पूज्यपाद जी की असीम कृपा का एक और उदाहरण यहां देना भी असंगत नहीं होगा। पूज्यपाद ने सन् १९८२ में जब दिल्ली में विद्वद्वरकल श्री राधाकृष्ण धा० संस्थान की स्थापना की थी तो श्री पं० देशराज जी को उस संस्था का प्रथम अध्यक्ष एवं विशेष अधिकार सम्पन्न समिति का स्थायी सदस्य मनोनीत किया था। पूज्यपाद जी ने इस भौतिक शरीर को जब त्याग दिया तो उसके ठीक एक वर्ष के उपरान्त नवम्बर सन् १९८३ में उनकी कन्या ऋचा का विवाह श्री सेवाराम जी शर्मा के सुपुत्र श्री सतीश शर्मा से होना निश्चित हुआ। पं० देशराज जी उस समय दिल्ली के सरकारी आवास को छोड़कर फरीदाबाद में एक समुचित आवास में रहने लगे थे। संस्था के कई सदस्य और पदाधिकारी विवाह में सम्मिलित होने फरीदाबाद गये हुए थे। बारात के आने में पर्याप्त विलम्ब होने से पंडित जी विशेष रूप से चिन्ताग्रस्त जब अपने उस गृह में टहल रहे थे तो उन्हीं के शब्दों में पूज्यपाद जी ने वहां साक्षात् प्रकट होकर उन्हें सांत्वना देते हुए कहा कि अब वे आ गये हैं उन्हें चिन्ता करने की तनिक भी आवश्यकता नहीं। और फिर उसके पश्चात् ही पंडित जी निश्चिन्त होकर विवाह से सम्बन्धित विविध कार्यों को करते रहे और पूज्यपाद जी तब तक वहीं एक कुर्सी पर विराजमान रहे। अन्य किसी भी व्यक्ति को न तो उनके दर्शन ही हुए और न ही उस समय पंडित जी ने इस रहस्य को किसी के समक्ष प्रकट किया। जब सप्तपदी इत्यादि समस्त कार्य निपट गया और बिदाई का समय आ गया तो पूज्यपाद जी ने पंडित जी से यह कहते हुये विदा ली कि अब मुझे ऋचा के साथ जाना है। पंडित जी तो इस अप्रत्याशित अनुग्रह-जन्य हर्ष से इस कदर गद्गद और रोमांचित थे कि वे कुछ बोल ही नहीं सके। अभी अभी यह भी विदित हुआ कि पंडित जी की दूसरी कन्या श्रद्धा को भी बहुत सुन्दर और सुशील वर प्राप्त हुआ है और इस विवाह के अवसर पर भी पूज्यपाद जी ने अत्यन्त रहस्यमय

रूप से वहां अपनी उपस्थिति को सिद्ध कर दिया। कहा जाता है कि बारात के आगमन से कुछ ही देर पूर्व जब अतिथि गण पधारने लगे थे और 'शकुण' के लिफाफे दे दे कर जा रहे थे तो एक अपरिचित आगन्तुक एक लिफाफा पंडित जी को प्रस्तुत करके जब चलने को हुआ और उससे उसका नाम जब पूछा गया तो वह यह कहकर कि शकुण देने का आदेश उसे "**श्री महाराज**" से प्राप्त हुआ था, तेजी से चलता हुआ अदृश्य हो गया। पश्चात् खोज करने पर भी वहां उसका कोई पता नहीं चला। सभी उपस्थित लोग विस्मयातिरेक से स्तब्ध रह गये। अस्तु।

वर्तमान में गोविन्द पुरी (दिल्ली) के रहने वाले एक अत्यन्त सरल प्रकृति के द्विज श्रेष्ठ **श्री राम रत्न शर्मा जी** से भी पूज्यपाद जी का अन्यन्त आत्मीयता का सम्बन्ध रहा है। ये मूलतः **घनौली (रोपड़)** के रहने वाले हैं तथा पूज्यपाद जी के बड़े ही भावुक और श्रद्धालु भक्त रहे हैं। इनके अनुसार पूज्यपाद जी से इनकी प्रथम भेंट **सन् १९४०** के लगभग **रोपड़** के एक **स्थानीय सनातन धर्म** स्कूल के वार्षिकोत्सव में हुई थी। फिर यह परिचय दिनों दिन बढ़ता ही गया। इनके गांव घनौली में भी पूज्यपाद जी जा कर ठहरते रहे। श्री रामरत्न जी के अनुसार एक बार विशेष मुहूर्त्त निकालकर पूज्यपाद जी ने कुछेक अपने शिष्यों को संभवतः बहरामपुर (रोपड़) में एक स्थान पर एकत्रित करके मन्त्रोपदेश दिया और उसकी निरन्तर आवृत्ति उनको रात्रि भर करने को कहा। ऐसा जब उन शिष्यों ने किया तो अपूर्व आनन्द की अनुभूति हुई और समाधि लग गई। यहां का इस लोक का किञ्चित् मात्र भी ज्ञान उन्हें नहीं रहा। उन भक्तों में स्वयं **श्री रामरत्न जी और भाई रामसिंह जी** सम्मिलित थे। रामसिंह तो तत्पश्चात् विरक्त होकर घर बार छोड़कर साधु बनकर चला गया और बड़ा सिद्ध पुरुष बन गया। कालान्तर में पण्डित जी दिल्ली आकर किसी स्कूल में संगीत कला अध्यापक के रूप में सेवारत हुए तो पूज्यपाद जी जब भी दिल्ली आते रहे पण्डित जी उनकी सेवा में उपस्थित होकर सत्संग का लाभ उठाते रहे। पूज्यपाद जी की ही कृपा से उन्होंने गोविन्दपुरी में अपना निजी मकान बनाया और वहां भी पूज्यपाद जी कभी-कभी ठहरते रहे। पूज्यपाद जी के प्राक्तन जीवन के अन्तिम क्षणों में उनके समीप उपस्थित व्यक्तियों में श्री रामरतन जी भी थे। श्री रामरत्नजी के अनुज **पं० दिला राम शास्त्री** भी पूज्यपाद जी के सम्पर्क में आये। पश्चात् वे अध्यापक होकर नालागढ़ में रहने लगे तो जब कभी पूज्यपाद जी नालागढ़ आते रहे तो श्री दिला राम से उनकी भेंट होती रही। एक विशिष्ट साधना भी पूज्यपाद जी ने उनसे करवाई थी और पण्डित जी को उससे काफी लाभ भी हुआ था। परन्तु तदनन्तर कुछ मतभेद भी उत्पन्न हुए। अस्तु।

दिल्ली महानगर में पूज्यपाद जी के आने जाने का एक और केन्द्र था राष्ट्र-

पति एस्टेट में **श्री शिवराज जी** का आवास। ये सज्जन मूलतः हिमाचल प्रदेश के रहने वाले थे और चिरकाल से दिल्ली में ही रह रहे थे। राष्ट्रपति भवन में खाद्य सामग्री इत्यादि की पूर्ति करने का इनका व्यवसाय था। पूज्यपाद जी के संपर्क में ये कब और कैसे आये, इसकी जानकारी तो उपलब्ध नहीं है, परन्तु पूज्यपाद जी मोती बाग से कई बार श्री सीताराम जी तन्वर के साथ साइकल पर बैठ कर इनके यहां आया करते थे। वहां के एक हेण्डपम्प का जल उन्हें विशेष स्वादु और पाचक लगता था। श्री शिवराज जी को हस्तरेखा (सामुद्रिक शास्त्र) का भी समुचित ज्ञान था और पूज्यपाद जी से मिलने वालों के हाथ देखकर उनके भविष्यत् का हाल भी वह बता दिया करते थे। पूना से श्री म० स० पारखे जो धनराशि पूज्यपाद जी को भेजते रहे वह श्री शिवराज जी द्वारा उन्हें मिलती रही। प्राक्तन शरीर को त्यागने के अवसर पर भी ये श्रीमान श्री पूज्यपाद जी के निकट उपस्थित थे और हरिद्वार को उनके शरीर को ले जाने वाले वाहन के साथ भी गये थे।

एक अन्य महानुभाव जिन से पूज्यपाद जी का विशेष सम्बन्ध इस जीवन में रहा, वे हैं **श्री कृष्ण दास**। ये भोज नगर (सोलन, हि. प्र.) के रहने वाले वैश्य परिवार से हैं। पूज्यपाद जी का प्रथम परिचय इनसे सोलन के एक शिव मन्दिर में हुआ था, सन् १९३७ में। श्री दास इम्पिरियल बैंक में नौकर थे जो कालान्तर में 'स्टेट बैंक आफ इन्डिया' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। अपने सेवा काल में श्री दास, अम्बाला, गोजरा, लायलपुर, लाहौर, शिमला, जालन्धर, कानपुर, दिल्ली और लखनऊ इत्यादि अनेक स्थानों पर स्थानान्तरित होते हुये अन्ततः सन् १९६९ में सेवानिवृत्त हुये। समय-समय पर पूज्यपाद जी इनके यहां आकर ठहरते रहे। श्री दास को शिव मन्त्रोपदेश और उनकी गृहिणी को राम मन्त्र का उपदेश पूज्यपाद जी ने दिया। जिससे इन की विशेष उन्नति हुई। ये स्वयं भी अध्यात्म जगत के एक लब्ध-प्रतिष्ठ ग्रन्थकार हैं। इन के कुछेक ग्रन्थों के नाम हैं—

(1) Glimpses of Divine Light

(2) Wheel of Life

श्री दास ने अपने ग्रन्थों में पूज्यपाद जी का न केवल अत्यन्त श्रद्धा एवं सम्मान से उल्लेख ही किया है, बल्कि उनका पर्याप्त अंश उन्हीं को समर्पित कर दिया है। गीता प्रेस गोरखपुर से प्रकाशित **'कल्याण कल्प तरु'** नाम पत्रिका के मई १९८९ के विशेषाङ्क में भी उन्होंने एक लेख मुख्यतया पूज्यपाद जी के ही सम्बन्ध में लिखा है। वह है—Best way to God Realization

स्व० मास्टर भगवान् दास शर्मा जी और उनका परिवार भी पूज्यपाद जी

के अनन्य भक्तों में से हैं। मा० जी का परिचय पूज्यपाद जी से १६३०-४० के दशक में उस समय हुआ जब वे बहराम पुर (रोपड़) के एक स्कूल में सेवारत थे। वैसे ये रहने वाले खरड़ के निकट स्थित **रसनहेड़ी** नामक एक छोटे से गांव के थे। सेवा निवृत्त होकर वे परिवार सहित दिल्ली में पहले **सराय काले खाँ** और तदनन्तर **भगवान नगर** में रहते रहे। कुछ वर्ष हुये ये शरीर छोड़ चुके हैं। इनके दो पुत्र श्री **बाबू राम** और श्री **हरवंस** अपने-२ परिवार के साथ यहीं रह रहे हैं। इनके एक पौत्र श्री **गोपाल शर्मा** अत्तन्त भावुक और पूज्यपाद जी के प्रति समर्पित भक्त हैं। अभी कुछ दिन पहले ही ये हिमाचल प्रदेश में **मणिकर्ण तीर्थ** की यात्रा को गये थे। वहां लगभग ४० दिन तक रहे और कहते हैं कि वहां इन्हें भगवान् परशुराम के दर्शन भी हुये हैं। पूज्यपाद जी वाङ्मय के पठन और मनन में इन्हें विशेष रुचि है।

दिलशाद गार्डन, दिल्ली के निवासी **डा० भवानी शंकर जी त्रिवेदी** एवं उनके परिवार से पूज्यपाद जी का अभिन्न और प्रगाढ़ आत्मीयता का सम्बन्ध रहा है। त्रिवेदी जी से उनका परिचय सर्वप्रथम संभवतः मन् १६२६-३० में अमृतसर में उस समय हुआ जब वे अभी 'प्राज्ञ' कक्षा के विद्यार्थी थे। पूज्यपाद जी कश्मीर यात्रा को जाते हुये जब अमृतसर पहुंचे तभी यह समागम हुआ। त्रिवेदी जी मूलतः राजस्थान के सुप्रतिष्ठित गुज्जर गौड़ ब्राह्मण परिवार से सम्बन्धित हैं।

परिव्रजन के प्रारम्भिक काल में पूज्यपाद जी के **श्री आत्मविलास** इत्यादि ग्रन्थों का प्रकाशन श्री भवानी शंकर जी के माध्यम से ही हुआ। सोलन से प्रकाशित होने वाले **'श्री स्वाध्याय'** के प्रधान संपादक **श्री हरदेव त्रिवेदी** श्री भवानी शंकर जी के सगे चाचा हैं।

तत्पश्चात् जब श्री भवानीशंकर जी लाहौर में रहने लगे तब भी पूज्यपाद जी की भेंट उन से निरन्तर होती रही। देश के विभाजन के उपरान्त कुछ वर्ष इधर उधर भटक कर त्रिवेदी जी, अन्ततः दिल्ली आकर **'आकाशवाणी'**, में "बच्चों का शिक्षा कार्यक्रम" के अन्तर्गत **'सम्पादक'** के पद पर नियुक्त हो गये और परिवार सहित स्थायी रूप से यहीं रहने लगे। श्री त्रिवेदी जी को ही यह सौभाग्य प्राप्त है कि पूज्यपाद जी न केवल इनके विवाह संस्कार में उपस्थित थे, वरन् उन की बारात में भी सम्मिलित होकर वधु-पक्ष के घर पर गये थे। इन की पत्नी (स्व० शकुन्तला) जी इस बात का उल्लेख बड़े गौरव से किया करती थीं। बहुत बार पूज्यपाद जी उनके घर पर भी रह कर सेवा स्वीकार करते रहे। त्रिवेदी जी को चार पुत्र रत्न प्राप्त हैं, जिन के नाम हैं—श्री रवि शर्मा, श्री सुभाष शर्मा, श्री आनन्द शर्मा और श्री भारतेन्दु शर्मा। श्री रवि जी ने तीन विषयों (संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी) से एम.ए. किया है। ये बड़े सरल प्रकृति के अत्यन्त बुद्धिमान और विद्या-व्यसनी

और साधक पुरुष हैं। इनके भावुकतापूर्ण भक्तिभाव से अति सन्तुष्ट और प्रसन्न होकर पूज्यपाद जी ने इन पर विशेष अनुग्रह करके इन्हें विलक्षण स्वप्न दर्शन देकर कृतार्थ किया है। भारतेन्दु जी ने अनन्य श्रद्धा-भक्ति से पूज्यपाद जी की सेवा की है। जिन दिनों पूज्यपाद जी दिल्ली में होते थे वह उन्हें अपनी साईकल पर बिठा कर जहां वे कहते थे ले जाता था।

श्री त्रिवेदी जी पर भगवती सरस्वती की अपार कृपा है। उसी के फलस्वरूप वे हिन्दी, संस्कृत में अनेक महान ग्रन्थों के निर्माण को कर पाने और पी.एच. डी. उपाधि प्राप्त करने में सफल हुये और विद्वत्‌जगत में संस्कृत के एक प्रकाण्ड विद्वान के रूप में सुविख्यात हो पाये। उनकी साहित्य साधना वस्तुतः अत्यन्त उच्च कोटि की है।

पूज्यपाद जी ने जब अपने भौतिक शरीर को श्री रत्नलाल जी के घर में छोड़ दिया तो भावुक होकर ये भवानी शंकर जी बच्चों की भान्ति फूट-२ कर रो पड़े।

दिल्ली निवासी, पूज्यपाद जी के परिचितों से सम्बन्धित इस प्रसङ्ग को समाप्त करने से पूर्व, दिल्ली यूनिवर्सिटी में संस्कृत भाषा के प्राध्यापक पद को विभूषित करने वाले डा० **रघुनाथ शर्मा** जी का विशेष उल्लेख करना परम आवश्यक है। पूज्यपाद जी के इस लौकिक जीवन के अन्तिम कुछ वर्षों में ही इनका सम्पर्क पूज्यपाद जी से हुआ परन्तु इतनी अल्पावधि में ही ये उनके इतने निकट कैसे पहुंच पाये, यह रहस्य अब कौन खोले। पूज्यपाद जी द्वारा निर्मित सिद्ध महामन्त्र ' प्रभो शम्भो···" का प्रभावशाली और यथार्थ ढंग से अंग्रेजी में अनुवाद करने का श्रेय इन्हीं को है। 'विद्वद्वरकल' संस्था के संविधान के निर्माण के इनका योगदान उल्लेखनीय है। सब से अधिक महत्त्वपूर्ण है इनके द्वारा पूज्यपाद जी के इस जीवन के पञ्चभौतिक शरीर को, हरिद्वार में नीलधारा में जलमग्न करने से पूर्व, और्ध्वदेहिक क्रियाओं का सञ्चालन। इस से भी और अधिक महत्त्व इस बात का है कि ऐसा करने का दायित्व उन्हें पूज्यपाद जी ने जीवनकाल में सौंप दिया था जिस के साक्षी हैं श्री रत्न लाल जी। वस्तुतः डा.सा. का जीवन धन्य है और वे इस कार्य को करके कृतकृत्य हो गये हैं।

वैसे भी नित्यप्रति के दैनिक जीवन में भी डा. साहिब प्राचीन भारतीय संस्कृति के मूर्तिमान प्रतीक ही हैं। घर से आहार करके निकलते हैं और बाहिर अन्नजल कुछ भी ग्रहण नहीं करते, घर लौट कर संध्यार्चन करने के उपरान्त ही अन्नजल ग्रहण करते हैं। वर्णाश्रम धर्म यथार्थ सनातनी परम्पराओं और मर्यादाओं

का परिपालन करना उनके जीवन के सिद्धांत हैं। विलक्षण पाण्डित्य और अद्वितीय वैदुष्य के धनी, इसी प्रकार के धर्मध्वजों के हाथों आज भी धर्म सुरक्षित है। मधुर स्वर से संस्कृत काव्यपाठ से वे श्रोताओं को मुग्ध कर देते हैं। जीवन के अन्तिम क्षणों में इन के रास पञ्चाध्यायी के मधुर पाठ का श्रवण करके पूज्यपाद जी आनन्द विभोर हो उठे थे। विद्वद्वरकल संस्था के ये उपाध्यक्ष हैं।

पूज्यपाद जी भरतपुर जयपुर भी जाते रहे और श्री सियाराम जी गर्ग, पं० दुर्गादत्तजी श्री गिरिराज शरण जी, श्री हीरा लाल जी इत्यादि अपने भक्तों के घर में ठहरते रहे। ये लोग अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति से पूज्यपाद जी की सेवा करते रहे।

वहां की जनता कलोनी के उनके भक्तों ने अपने घरों के पास बनाई जाती हुई सड़क का नाम "अमृत पथ" रखवाया। वहीं उन लोगों ने एक अमृतेश्वर नामक शिव मन्दिर को बनवाया। मन्दिर में शिवलिंग की प्रतिष्ठा पूज्यपाद जी के हाथों करवाई। मन्दिर के साथ एक धर्मशाला का तथा पुस्तकालय और वाचनालय का भी उन्होंने निर्माण किया। पूज्यपाद जी ने कई सहस्र रुपए देकर वहां एक संस्था की स्थापना भी करवा दी जिसे "श्रीमद् अमृतवाग्भवाचार्य शिक्षा एवं शोध संस्थान, जयपुर" यह नाम दिया गया। वह संस्था पूज्यपाद जी की जीवनी पर और उनके विचारों पर सराहनीय प्रकाशन कार्य कर रही है। सन् १९८२ में भरतपुर में पं० गोविन्द जी मिश्र के शिवधाम को सिधार जाने पर पूज्यपाद जी के संगृहीत पुस्तक भण्डार और प्रकाशित पुस्तक भण्डार को जयपुर ले आकर वहां की संस्था में रखा गया। हस्तलिखित सामग्री अभी भरतपुर में ही है। सन् १९८२ में जब पूज्यपाद जी इस भौतिक शरीर को दिल्ली में श्री रत्न लाल जी के घर पर छोड़ने ही वाले थे तो उनके चिन्ताजनक स्वास्थ्य का टेलीग्राम पाते ही जयपुर से श्री सिया राम जी और पंडित् दुर्गादत्त जी इत्यादि लोग दिल्ली पहुंच गये थे और उन में कुछ व्यक्ति हरिद्वार तक शरीर के साथ भी गये थे।

१९७२ ई० में जब मैं पूज्यपाद जी के जन्मोत्सव पर शिमला से सुहाणा आया था तो वहां पूज्यपाद जी की इच्छा के अनुसार एक और संस्था की स्थापना की गई। उस का सामान्य नाम है "श्रीपीठ" और विशेष नाम है "श्रीपीठ-सैद्ध-दर्शन शोधसंस्थान"। इस संस्थान को प्रायः मैं ही चलाता रहा। आरम्भ करते समय पूज्यपाद जी ने इसके कोष के निर्माण के लिए कई सहस्र रुपए दिए। पूज्यपाद जी के अनेकों शिष्य इस संस्थान के सदस्य बन गए और जब जन्मोत्सव पर सुहाणा में एकत्रित होते थे तो संस्थान के लिए वार्षिक चन्दा भी दिया करते रहे। कुछ एक वर्षों के अनन्तर नालागढ़ वाले भक्तजनों ने सौर गणित के अनुसार पूज्यपाद जी के जन्मोत्सव को वहीं मनाना आरम्भ कर दिया। तब से नालागढ़

के तथा आसपास के सदस्यों ने श्रीपीठ को चन्दा कभी नहीं भेजा। सन् १९८०-८१ में जब पूज्यपाद जी का स्वास्थ्य अधिक शिथिल होता गया तो उन्होंने दिल्ली से कहीं भी इधर उधर जाना छोड़ ही दिया। अतः जन्मोत्सव मनाने के लिए न तो सुहाणा ही गए और न नालागढ़ ही गए। अतः उस वर्ष से श्रीपीठ के सदस्यों से वार्षिक चन्दा भी कभी लिया ही नहीं गया। श्रीपीठ संस्थान ने अभी तक कई एक ग्रन्थों का सम्पादन और बहुतों का प्रकाशन भी किया है। आत्मविलास-सुन्दरी द्वि० सं० उनमें से पहला ग्रन्थ है। ई० १९७२ के आसपास ही हमारे दामाद श्री द्वारिकानाथ जी पण्डित जोधपुर से स्थानान्तरित होकर चण्डीगढ़ आए। तब पूज्यपाद जी बहुत बार उनके आवास में चण्डीगढ़ ही रहते रहे। वहां प्रातः और सायं सोहाणा के भक्तजन प्रायः आते रहते थे। वे सुहाणा वाले कुएं का जल भी बाईसिकल पर उठाकर लाया करते थे। दोनों समय खूब चर्चाएं हुआ करती थीं। लगभग तीन चार वर्ष ऐसा चलता रहा। जब श्री पण्डित जालन्धर स्थानान्तरित हो गए तो पूज्यपाद जी ने चण्डीगढ़ रुकना छोड़ ही दिया।

जब ई० सन् १९७१ में मेरी नियुक्ति शिमला में हिमाचल विश्वविद्यालय में हुई तो भी मैं कई वर्ष वहीं रहा। पूज्यपाद जी उस अवधि में दो तीन बार शिमला आते रहे। कुछ कुछ दिन हमारे आवास में ठहरते रहे। कभी-कभी किन्हीं अन्य भक्तजनों के यहां भी जाते रहे। ग्रीष्मकाल में अधिक समय तक तो प्रायः सोलन में ही ठहरते रहे। क्योंकि शिमला में चढ़ाई उतराई से ऊब जाते थे। सोलन में नालागढ़ वाले श्री सुभाष शर्मा पब्लिक वर्क्स में ओवरसीयर थे। उनके आवास में ही वहां रहते रहे। मैं भी कभी कभी दर्शन के लिए उधर जाता रहा। "मन्दाक्रान्ता स्तोत्र" का हिन्दी अनुवाद मैंने तभी लिखकर दिया था जब वे सोलन में ठहरे थे। प्रायः ग्रीष्म काल को बिताने के लिए या तो सोलन आते रहे या कुणिहार जात रहे। आते जाते समय कुछ एक दिन कालका में ज्यो० भगवती प्रसाद जी के घर भी ठहरा करते थे। प्रतिदिन सायङ्काल को वहां बहुत सारे भक्तजन आते रहते थे और विविध विषयों पर चर्चा होती रहती थी।

दिल्ली में रहते हुए पूज्यपाद जी का परिचय पूणा के श्री म०स० पारखे से हुआ। वे एक उद्योगपति हैं। भगवान् परशुराम जी के भक्त हैं। उनके विषय में उन्होंने एक दो पुस्तिकाएं प्रकाशित की हैं। पूज्यपाद जी के परशुरामस्तोत्र को पढ़कर वे आकृष्ट हो गए और दिल्ली आकर उनसे मिले। सन् १९७३ में वे पूज्यपाद जी को पूणें ले गये। वहां उन्हें अपने भवन में ठहराया। पूज्यपाद जी ने श्रीस्वाध्याय के लिए समय समय पर सामयिक विषयों को लेकर के अनेकों संस्कृत श्लोकों का निर्माण करके उन्हें पत्रिका में प्रकाशित करवा दिया था। उन श्लोकों में से उन्होंने पच्चास श्लोकों को चुन करके उन्हें **"अमृतसूक्तिपञ्चाशिका"** यह नाम दे दिया। मेरे हाथों उन श्लोकों की एक संस्कृत व्याख्या

लिखवा दी। उसी व्याख्या के समेत उस पञ्चाशिका का प्रकाशन पारखे जी ने सन् १९७३ ई० में कर दिया। प्रकाशन व्यय पूज्यपाद जी ने दे दिया। इसके अतिरिक्त भी ७६००/- रुपए की एक धनराशि पूज्यपाद जी ने **पारखे जी** के पास जमा करा दी थी। उस राशि का व्याज पारखे जी प्रतिमास मनीआर्डर द्वारा श्री शिव राज जी के पते पर पूज्यपाद जी को भेजते रहे, सन् १९८२ तक। उस राशि को अंततः लौटाने या न लौटाने के सम्बन्ध पूज्यपाद जी पारखे जी को क्या आदेश दे गये हैं, यह निश्चित् रूप से विदित नहीं है। हां इतना स्मरण है कि एक बार पूज्यपाद जी ने यह कहा था कि जो राशि जिसके पास रखी रह जाएगी वह उसका सदुपयोग धर्म के काम में करे, यदि उस सम्बन्ध में उन की ओर से अन्यथा कोई निर्देश न दिया गया हो।

पारखे जी जब भी दिल्ली आते रहे तो पूज्यपाद जी के ठहरने का पता लगा कर उन्हें मिलते रहे। एक बार उनके आग्रह पर श्री राम रत्न शर्मा को पूज्यपाद जी ने उनके कुछ सम्बन्धियों को हिमाचल प्रदेश स्थित **'रेणुका' तीर्थ** के दर्शन कराने भी भेजा था। उक्त राशि के सम्बन्ध में विद्वद्वरकल संस्था ने श्री पारखे जी से पत्र-व्यवहार किया बताते हैं परन्तु वहां से कोई उत्तर आया नहीं। अस्तु।

इस स्वच्छन्द परिव्रजन की अवधि में पूज्यपाद जी एक दो बार हैदराबाद और बम्बई भी गए। एक बार कलकत्ता भी गए। वाराणसी तो कई बार गए। पहले तो सन् १९५८ के वसन्त काल में **महामहोपाध्याय श्री कविराज गोपीनाथ** जी के द्वारा आयोजित **तन्त्र सम्मेलन** के अवसर पर गए। उस समय अपने मित्रों और सम्बन्धियों से भी वहां मिले। अपने घर भी गए। पत्नी से, विमाता से और भाई से भी मिले। सभी को हित का उपदेश दे आए। दूसरी बार सन् १९६५-६ में वाराणसी गए। उस समय महामहोपाध्याय कविराज जी की प्रेरणा से वहां "सिद्ध महारहस्यम्" के प्रथम संस्करण को प्रकाशित किया। उस संस्करण में केवल संस्कृत कारिकाएं छपी हैं और साथ श्री कविराज जी के द्वारा लिखा गया उसका प्राक्कथन ही है। तदनन्तर कविराज जी के इकासवें जन्म दिवस पर जो उत्सव वाराणसी में मनाया गया, उसमें भाग लेने के लिए पूज्यपाद जी वहां आए थे और उत्सव के लिए एक अतीव सुन्दर संस्कृत श्लोकमयी प्रशस्ति भी लिखकर दी थी। वह उसी समय वहां प्रकाशित हुई थी। अपनी विमाता, भ्राता रामचन्द्र वरकले के और अपनी पत्नी शीलवती के देहावासन के अवसरों पर भी वाराणसी आए। वस्तुतः सन् १९५८ से लेकर वाराणसी वाले स्नेही महानुभावों के साथ उनका पत्रव्यवहार चलता ही रहा। अपने ज्येष्ठ साले के साथ तथा पत्नी शीलवती के साथ भी लगातार पत्रव्यवहार चलता रहा। पत्नी को तथा भाई को और अन्य सम्बन्धियों को कभी कभी थोड़ा बहुत आर्थिक सहायता भी करते रहे।

दिल्ली के समीप ही मथुरा रोड पर एक गांव था फरीदाबाद। ज्यों ही वह

गांव एक औद्योगिक नगर के रूप को धारण करने लगा त्यों ही स्यालकोट वाले **श्री कस्तूरी लाल आनन्द** ने वहां अपना भवन बनवाया। वे वहां किसी बड़े फैक्टरी में एक अच्छे पद पर काम किया करते थे। उनके पुत्र **योगराज आनन्द** ने अपनी ही एक फैक्टरी को चलाया। श्री कस्तूरी लाल जी के सत्प्रयत्न से नए फरीदाबाद की उस बस्ती में एक विशाल लक्ष्मीनारायण मन्दिर का निर्माण हुआ। उसी मन्दिर के आङ्गण में एक शिवालय भी बन गया। उस शिवालय में शिव-लिङ्ग की प्रतिष्ठा कस्तूरी लाल जी ने पूज्यपाद जी के हाथों करवा दी। पूज्यपाद जी बहुत बार फरीदाबाद में भी श्री कस्तूरी लाल जी के घर काफी देर तक रहते रहे। उन दिनों हमारा पुत्र **श्री कृष्ण पण्डित** भी वहां रहता था। अतः मैं भी बहुत बार उधर जाकर पूज्यपाद जी से मिलता रहता था। कस्तूरीलाल जी को तो पूज्यपाद जी के साथ अज्ञातवास की अवधि से ही काफी घना सम्बन्ध जुड़ा हुआ था। पूज्यपाद जी के दार्शनिक विचारों को श्री कस्तूरीलाल जी काफी गहराई तक समझ चुके हैं। आध्यात्मिक क्षेत्र में भी उन्होंने पर्याप्त उन्नति की है 'आत्म-विलास' के कई श्लोक और लगभग सम्पूर्ण श्री भगवद्गीता उन्हें कण्ठ है। इस स्वच्छन्द परिव्रजन की अवधि में पूज्यपाद जी अधिकतर नगरों में ही विचरण करते रहे। कभी एकाध दिन किसी ग्राम में भी ठहरते रहे। परन्तु अस्वस्थ शरीर को नगरों में जो सुविधाएं मिलती रहीं, वह ग्रामों में असम्भव सी थीं। अतः ग्रामों में ज्यादा दिन ठहरते नहीं थे।

शिमला को जाते समय पर्वतीय क्षेत्र के प्रारम्भ होने से थोड़ा इधर ही **'कालका'** नाम का एक छोटा सा नगर है। वैसे तो यह जिला अम्बाला (हरियाणा) में पड़ता है, परन्तु वस्तुतः हिमाचल प्रदेश और हरियाणा की सीमा पर स्थित है। यहां पर भी पूज्यपाद जी का आगमन प्रायः होता ही रहता था। कारण यह था कि सोलन और शिमला और सपाठू इत्यादि हिमाचल प्रदेश के कई नगरों को रास्ता यहीं से होकर जाता है। कालका में रुकने पर वहां के पण्डित भगवती प्रसाद जी ज्योतिषी, श्री अमृत 'लाट' और उनके आत्मज **पुष्पेन्द्र गोयल-वैद्य जी, कृष्ण देव 'कपिल', भगवती स्वरूप शास्त्री, गिरधारी लाल मुगई, धीर साहिब** इत्यादि बहुत से भक्त उनको मिलने आया करते थे और खूब सत्संग होता था।

एक बार सन् १९४७ में जून के महीने में पूज्यपाद जी हरिद्वार आ गए। साथ कालका निवासी **ज्योतिषी भगवती प्रसाद जी भी थे**। दोनों कनखल गए और बिरला घाट पर गङ्गा स्नान करके तट पर बैठकर भजन करने लगे। उस समय पूज्यपाद जी ने बड़े मधुर स्वर से **पण्डितराज जगन्नाथ** के द्वारा रचित **'गङ्गालहरी'** को गाना आरम्भ कर दिया। उन्होंने कुछ ही श्लोक गाए थे कि भगवती प्रसाद जी बोल उठे, "देखिए महाराज जी सामने गङ्गा जी दर्शन दे रही

हैं।" यह सुनकर पूज्यपाद जी लहरें मारती हुई गङ्गा की ओर देखने लगे तो सामने लहरों के बीच में बड़े तीव्र वेग वाले गङ्गा जल के भीतर एक अभिनव यौवन में मस्त और अतीव सुन्दर महिला के दर्शन हुए। उसके शरीर की कान्ति चम्पक पुष्प के समान गौर वर्ण की थी, सिर के केश भौंरों की जैसी काले रंग की कान्ति को छिटका रहे थे, हंसों के पंखों के समान चमकीली और कोमल कान्ति वाला एक वस्त्र उसकी ग्रीवा को घेरकर बंधा हुआ था और उस पार वाले तट से तैरती हुई इस पार को आ रही थी। उसे देखते ही भगवती प्रसाद जी बोले "महाराज जी यह गङ्गा भगवती हैं जो गङ्गा लहरी के पाठ से सन्तुष्ट होकर दर्शन दे रही हैं।" पूज्यपाद जी इस बात को माने नहीं। कहने लगे, "यह तो गङ्गा नहीं है। हां पेशावर से आए हुए शरणार्थियों में से कोई महिला ऐसी हो सकती है।" परस्पर इतनी बातों के होते होते जब गंगलहरी का पाठ रुक गया तो वह सुन्दरी भी अदृश्य हो गई। तदनन्तर पूज्यपाद जी पुनः उसी तरह स्तोत्र को गाकर जब सुनाने लगे तो कुछ एक श्लोक के गाए जाते ही पुनः वही दृश्य सामने दीखा और पुनः वैसा ही वार्तालाप होने लगा। उससे यह देवी पुनः अदृश्य हो गई। फिर जब तीसरी बार भी वैसा ही हुआ तो पूज्यपाद जी ने पाठ बन्द कर दिया और दोनों ही मिलकर उस सुन्दरी को ऊपर नीचे गंगा के प्रवाह में काफी देर तक ढूंढते रहे, परन्तु वह कहीं भी दिखाई नहीं दी। तब पूज्यपाद जी को विश्वास हो गया कि ज्योतिषी जी की बात सच्ची थी और सचमुच वह गंगा ही थी। परस्पर वार्तालाप के समय एक बार ज्योतिषी जी ने यह भी कहा था, "आप तो स्वयं गंगा जी के दर्शन कर रहे हैं और मुझे ऐसे ही बहला रहे हैं कि यह गंगा नहीं है, कोई पेशावरी महिला है।" परन्तु पूज्यपाद जी को तब विश्वास नहीं हुआ। जब तीसरी बार दर्शन देकर गंगा जी पुनः अदृश्य हो गईं तब वे हृदय से मान गए कि सचमुच गंगादेवी ने प्रकट होकर दर्शन दिए थे। तदनन्तर वे फिर गंगालहरी के शेष श्लोकों को गाने लगे परन्तु अबकी बार बहुत सारे श्लोकों को गाने पर भी गंगा जी पुनः प्रकट नहीं हुईं। देवताओं की लीला भी विचित्र होती है। मैंने पूज्यपाद जी से पूछा था कि उन्हें विश्वास क्यों नहीं हुआ कि वह गंगा माता ही थीं। उस बात के उत्तर में उन्होंने यही कहा कि जैसा वर्णन महाभारत इत्यादि ग्रन्थों में गंगा के मकरवाहिनी रूप का किया गया है, वैसा उस दर्शन में दिखाई नहीं पड़ा था। इस कारण वे उसे साधारण महिला ही समझते रहे, परन्तु जब इस बात पर विश्वास हो गया कि वह महिला सचमुच गंगा भगवती ही हैं। तो उसके पश्चात् देवी ने पुनः उस रूप में दर्शन दिए ही नहीं। दैवी लीला विचित्र होती है।

सन् १९५८ ई० में पूज्यपाद जी बहुत वर्षों के अनन्तर पुनः कश्मीर यात्रा को गए। कारण यह बना कि मानसरोवर (दिल्ली) के निवासी उनके भक्त शिष्य

श्री **के० के० आनन्द** कश्मीर में 'इण्डियन आयल' कम्पनी में काम करते थे। श्री नगर में गोगजी बाग में किसी मकान को लेकर वहां रहते थे। उनके आग्रह-पूर्ण निमन्त्रण से वे पुनः कश्मीर आ गए। मैं उन दिनों अनन्तनाग नामक कस्बे में काम करता था। पत्र मिलने पर मैं श्री नगर गया। पूज्यपादजी वहां से मेरे साथ अनन्तनाग आ गए। कुछ दिनों हमारे आवास में रहे। एक दिन मेरे साथ वहां से मट्टन भी गए और दो तीन दिन वहां रुके। वहां से जियालाल फोतेदार को मिलने के लिए 'साली' के पास एक गांव 'खय्यार' भी गए। फिर मेरे साथ ही अनन्त-नाग लौट आए। जन्मदिन का उत्सव वहीं मनाया। गांव गांव के पुराने प्रेमी भक्तजन वहां आकर मिलते रहे। वहां दस दिन के लगभग ठहर कर श्री नगर लौट आए। वहां जगन्माता शैलपुत्री के दर्शन किए। वहां से लौटकर श्री नगर गए। मैं भी साथ गया। श्री नगर से मेरे साथ बारामुला गए। अपने पुराने प्रेमियों से मिले। बहुत प्रेमी जन उनके दर्शन को श्री आनन्द के घर आते रहे। कश्मीर से लौटते समय पुनः अनन्तनाग आ जाए। वहां कुछ दिन और ठहरे। तदनन्तर मेरे एक मित्र की ट्रक में फ्रन्ट सीट पर बिठाकर मैंने उन्हें जम्मू जाने का प्रबन्ध कर दिया। जम्मू में मेरे उसी मित्र के घर ठहरे। उसके पिताजी ने अत्यन्त सम्मानपूर्वक सेवा की। पं० श्री काकाराम शास्त्री जैसे विद्वान् जम्मू में उनसे मिलते रहे। वहां से वैष्णवी देवी के दर्शन को गए। मार्ग में कटड़ा में पूर्व परिचित **हरिभक्त चैतन्य** मिला। एक दो दिन उसके साथ कटड़ा में ही रहे। फिर जम्मू आए और वहां से वापसी पर पठानकोट से पञ्जाब के तथा हिमाचल के ग्रामों में एक एक दो दो दिन ठहरते हुए सुहाणा पहुंच गए।

सन् १९६० में मैं उनके दर्शन के लिए भरतपुर गया। उस वर्ष मैंने **'विंश-तिकाशास्त्रम्'** की संस्कृत टीका लिखकर उन्हें भेज दी थी। उस पर उनके साथ कई दिन वहां विचार होता रहा। एक दिन गोविन्द जी ने वृन्दावन यात्रा का प्रबन्ध किया और पूज्यपाद जी के साथ वृन्दावन के दर्शन कर आया। तदनन्तर वहां से हम दोनों मथुरा आ गए। वहां **डा० श्रीनाथ** तिक्कू के पास ठहरे। वे उन दिनों वैद्यनाथ आयुर्वेदिक भवन में काम करते थे। मैं वहां से आगरा होकर दिल्ली आ गया और पूज्यपाद जी उधर ही रुके।

सन् १९६२ के ग्रीष्म काल में पूज्यपाद जी पुनः कश्मीर यात्रा को आए। उन दिनों भी मैं काम अनन्तनाग में ही करता रहा। परन्तु रहता रहा कुलगाम में ही। वहीं से प्रतिदिन अनन्तनाग आया जाया करता था। पूज्यपाद जी पुनः के. के. आनन्द के यहां ठहरे थे। मैं वहां गया और वे वहां से मेरे साथ कुलगाम आ गए। अब की बार उनका जन्म उत्सव कुलगाम में ही मनाया गया। मट्टन, साली, नाजिल आदि ग्रामों से भक्तजन वहां आकर दर्शन करते रहे। लगभग दो सप्ताह वे कुलगाम में रहे। प्रतिदिन कुलवागीश्वरी देवी के दर्शन करते रहे। दो सप्ताह

बीत जाने पर उनका अर्श रोग जरा भर विकृत हो गया। उससे निर्बलता का आभास होने लगा। अतः तुरन्त श्री नगर लौट आए। वहां मैंने उनकी समुचित चिकित्सा का प्रबन्ध किया। स्वास्थ्य काफी सुधर गया। परन्तु चित्त व्याकुल ही बना रहा। चिन्ता यही लगी रही कि यदि शरीर कश्मीर में ही छूट जाए तो इसे गङ्गा तक कौन पहुंचा सके और कैसे पहुंचाए। यद्यपि वे विश्वस्त थे कि शरीर अभी इतनी जल्दी छूटने वाला नहीं है, फिर भी उन्होंने मेरे से यही कहा कि "शरीर पर विश्वास रखना सन्नीति और सद्विवेक तथा सद्बुद्धि नहीं। नश्वर वस्तु पर विश्वास काहे का।" फिर यही निश्चय हुआ कि शीघ्र कश्मीर से जम्मू चले आए। मुझे भी साथ चलने का आदेश दिया। दूसरे दिन हम दोनों जम्मू आ गए। वहां श्यामलाल शाह के घर ठहरे। दूसरे दिन पूज्यपाद जी की हार्दिक भीति काफी ढीली हो गई। तीसरे दिन मैं वापिस कश्मीर लौट आया। पूज्यपाद जी कुछ दिन जम्मू में ही रुके रहे। तदनन्तर पहले की तरह स्थान स्थान पर एक आध दिन ठहरते ठहरते सुहाणा पहुंच गए। यह पूज्यपाद जी की अन्तिम कश्मीर यात्रा थी। उस समय के पश्चात् उनका शरीर इतना निर्बल होता गया कि गंगा से बहुत दूर कहीं भी जाने को उत्साह नहीं होता था। उनकी तीव्र अभिलाषा यही थी कि प्राणोत्क्रमण के अनन्तर उनके शरीर को गंगा के अर्पण किया जाए। मैंने एक बार पूछा था कि उससे उनकी भविष्यत् गति पर क्या अन्तर पड़ेगा। उन्होंने यह उत्तर दिया कि यद्यपि अन्तर कुछ भी नहीं पड़ेगा फिर भी हमें शरीर के प्रति कृतघ्न नहीं बनना चाहिए। इस शरीर के द्वारा हमने सारी साधना की है। इसी के सहकार से हमने प्राप्तव्य प्रयोजनों को प्राप्त किया है। अतः हमारी कृतज्ञता इसी बात में है कि हम इसे गंगा में ही अर्पण करवा देवें। गंगा में अर्पण किए जाने से इस शरीर के भौतिक परमाणुओं की भी सद्गति होगी। उनके द्वारा लिखित उनके वंश के इतिहास को पढ़ने से मुझे यह बात विदित हो गई कि उनके पूज्य पिताजी जब मरणासन्न थे, तो उन्होंने आतुर सन्यास की दीक्षा ली थी। तदनन्तर कुछ ही दिनों में जब उनका शरीर छूटा था तो उस शरीर को भी संन्यासोचित पद्धति के अनुसार गंगा जल में अर्पित किया गया था। इस बात का वर्णन पीछे द्वितीय अध्याय में किया भी गया है। अतः अपने पिताजी के क्रम को निभाने के लिए भी पूज्यपाद जी अपने शरीर के विषय में गंगा निमज्जन के लिए ही उत्सुक रहे।

आगे जब श्री के. के. आनन्द जम्मू में काम करते रहे तो पूज्यपाद जी तब दो बार जम्मू तक आए और कई महीने वहां रहते रहे। परन्तु यहां जम्मू से कश्मीर आने का उत्साह उन्हें नहीं हुआ। क्योंकि कश्मीर से गंगा बहुत अधिक दूर पड़ती है। पंजाब में भी अधिकतर सुहाणा, नालागढ़, चण्डीगढ़, काल का आदि स्थानों में विचरण करते रहे। अधिकतर दिल्ली, सुहाणा, नालागढ़ और

भरतपुर रहते रहे। जन्मोत्सव को अनेकों वर्षों तक सुहाणा में ही मनाते रहे। फिर वहां से प्रतिवर्ष दिल्ली आया करते थे, क्योंकि वहां के भक्तजन आषाढ़ पूर्णिमा को उनकी **'गुरुपूजा'** किया करते थे। उस उत्सव पर जन्मोत्सव के पश्चात् ही आना होता था। बीच में पांच छः ही दिनों का अन्तर रहता था। इस तरह से ई० सन् **१६७५** तक प्रायः दिल्ली, पंजाब, हिमाचल आदि देशों में स्वच्छन्दतया विचरण करते रहे। स्वास्थ्य विशेष ढीला भी नहीं रहता था और विशेष अच्छा भी नहीं रहता था। बम्बई, कलकत्ता, श्रीनगर, हैदराबाद जैसे दूर दूर स्थानों तक जाने का सङ्कल्प उस अवधि में कभी नहीं किया। प्रायः ग्रीष्म काल ऋतु में सोलन या कुणिहार में रहते रहे और शीतकाल में सुहाणा, नालागढ़ और दिल्ली में रहा करते थे। शिमला में चढ़ाई उतराई से ऊब जाते थे। अतः इस अवधि में उधर आये नहीं। जब सोलन आते थे तो मैं उनके दर्शन के लिए उधर आया करता था। मेरी कन्या गिरिजा भी वहां जाया करती थी। सन् १६७६ (?) तक मैं प्रतिवर्ष उनके जन्मोत्सव पर सुहाणा जाया करता था। तदनन्तर उनका स्वास्थ्य इतना शिथिल हो गया कि जन्मोत्सव को भी दिल्ली में ही मनाने लगे।

अध्याय १४

जीवन का अन्तिम दौर

ई० सन १९७७ के लगभग पूज्यपाद जी जयपुर, भरतपुर आदि में रहते रहे। वहां उन्हें मूत्र निरोध के रोग ने बहुत निर्बल बना दिया। जयपुर निवासी श्री सियाराम जी गर्ग ने उनकी खूब सेवा की। डाक्टरी जांच भी कराई। चिकित्सकों ने 'शल्यक्रिया' का परामर्श दिया जो उन्होंने नहीं माना। इस बात की सूचना पाकर श्री रत्नलाल जी और कस्तूरी लालजी उनसे मिलने जब भरतपुर गये तो उन्हें अपने साथ कार में दिल्ली ले आये और वहां कुछ दिन रुक कर पूज्यपाद जी सीधे सोलन आ गए। सोलन में श्री सुभाष शर्मा के पास ठहरे। वहां की शीतल जलवायु से स्वास्थ्य धीरे-धीरे जरा-जरा सुधरता गया? और पुनः ऐक दो मील घूमने की शक्ति टांगों में आ गई। भूख भी जरा बढ़ने लगी। परन्तु जैसा मैंने स्वयं देखा, जितना भोजन वे दो वर्ष पूर्व लिया करते थे उसका केवल ५० प्रतिशत ही अब ले पाते थे। उस समय से शरीर दिन प्रति दिन शिथिल ही होता गया। न तो शरीर में दो वर्ष पहले वाला बल ही आ सका और न ही पहली जैसी भूख ही लगने लगी। उस लघु आहार की मात्रा भी वर्ष प्रतिवर्ष घटती ही गई। अन्तिम दो-तीन वर्ष तो दिल्ली में ही टिके रहे। जन्मदिवस पर भी सुहाणा नहीं आए। केवल ऐक बार वहां के भक्त जन उन्हें टैक्सी के द्वारा सुहाणा ले गए, शिव-मन्दिर में शिवलिंग की तथा हनुमानजी की मूर्त्ति की उनके हाथों प्रतिष्ठा करवा दी और वापिस टैक्सी ही के द्वारा वे लोग उन्हें दिल्ली मोतीबाग पहुंचा आए। तदनन्तर पुनः सुहाणा जा ही नहीं सके। १९८० में भी जन्मोत्सव पर वहां नहीं गए थे। उस वर्ष भी उत्सव दिल्ली में ही मनाया गया।

सन १९८१ के सितम्बर मास में मैं मोतीबाग में पूज्यपाद जी से मिला। तब वे श्री देशराज जी के आवास में रहते थे, क्योंकि श्री सीताराम जी दिल्ली छोड़कर हिमाचल प्रदेश को चले गए थे और उनकी कन्या बिमला ने भी कहीं अन्य स्थान पर मकान का प्रबन्ध करके सरकारी आवास को छोड़ दिया था। पं० देशराज जी की कन्याएं पूज्यपादजी को रामरक्षा स्तोत्र, भगवद्गीता आदि

का पाठ सुनाया करती थीं। उससे उनका चित्त प्रसन्न रहा करता था। उन दिनों पूज्यपाद जी की जठराग्नि इतनी मन्द पड़ गई थी कि बड़ी कठिनाई से ऐक कटोरी मात्र साबूदाने की खीर खा सकते थे। शरीर अतीव निर्बल हो गया था। मेरे वहां आ जाने पर शास्त्र-चर्चा चलने लगी। उससे उनके शरीर में विचित्र स्फूर्ति आ गई। तब तक खाट पर लेटे थे। परन्तु ऐक दम उठ बैठे और एक स्वस्थ व्यक्ति की तरह शास्त्र सम्बन्धी वार्तालाप मेरे साथ आरम्भ कर दिया। मैं लगभग दो घण्टे उनके पास बैठा रहा और वे सारा समय एक स्वस्थ व्यक्ति की ही तरह बातें करते रहे। उनका वह व्यवहार देख कर मुझे यह आशा हो गई कि कुछ ही समय में स्वस्थ हो जाएंगे। परन्तु उनकी जठराग्नि की अतीव मन्दता का विचार करते हुए मैं पुनः व्याकुल हो गया। शरीर में एक ही रोग नहीं था। कई एक रोग साथ-साथ चल रहे थे। फिर मन्दाग्नि रोग उन्हें दिन प्रतिदिन निर्बल बनाता रहा।

१९८२ सन् में भरतपुर के **'मिश्र गोविन्द'** जी शिवधाम को सिधार गऐ। उस समाचार से पूज्यपाद जी को काफी खेद हुआ, क्योंकि वे उनके अत्यन्त प्रिय शिष्य थे। उसी वर्ष मैंने जम्मू में आत्मविलास सुन्दरी का नया संस्करण श्रीपीठ की ओर से प्रकाशित किया। उस संस्करण में कहीं कहीं व्याख्यात्मक स्पष्टीकरण टिप्पणियों के रूप में दिया गया और पूज्यपाद जी के आदेश के अनुसार अन्त में परिभाषाओं का एक कोश भी बनाकर दे दिया। पूज्यपाद जी बहुत बार कहते थे कि पढ़ने वालों को न्याय वैशेषिक, सांख्ययोग और वेदान्त की परिभाषाओं का प्रायः ज्ञान होता है परन्तु आगमिक दर्शनों की परिभाषाओं से जरा भर भी परिचय नहीं है। इसी कारण उन्होंने मुझे ऐसा आदेश तब दे दिया था जब मैं शिमला में ही काम करता था और वे ग्रीष्मकाल में सोलन आकर रहते थे। वह परिभाषा कोष भी मैंने तभी लिखकर दे दिया था। परन्तु ग्रन्थ के प्रकाशन का प्रबन्ध होने नहीं पाया था। शिमला में प्रेस की सुविधा नहीं थी और प्रकाशन व्यय के भी प्रबन्ध का उपाय मुझे सूझ नहीं रहा था। १९८० ई० में मैं जम्मू आ गया। वहां मैंने रणवीर विद्यापीठ की ओर से **'परमार्थसार'** नामक ग्रन्थ का सटीक प्रकाशन करवाया। प्रेस इतना अच्छा नहीं मिला, जितना अच्छा अपेक्षित था। परन्तु फिर भी थोड़ा-थोड़ा सन्तोष जनक ही था। मैंने पूज्यपाद जी के सामने आत्मविलास-सुन्दरी के पुनः प्रकाशित करने का प्रस्ताव रखा तो वे अतीव प्रसन्न हो गऐ और इस काम को तुरन्त प्रारम्भ करने का आदेश मुझे दे दिया। प्रकाशन व्यय के लिऐ दस सहस्र रुपए अपने पास से दे दिए। तब मैंने उस ग्रन्थ को प्रकाशित किया। यद्यपि प्रकाशन कार्य में कुछ त्रुटियां रह गई थीं, फिर भी पूज्यपाद जी उसकी प्रकाशित प्रतियों को देखकर काफी सन्तुष्ट हो गए। उन दिनों जम्मू निवासी

ललित गुप्त ऐडवोकेंट का पूज्यपाद जी के साथ घना परिचय हो गया था। वे दिल्ली में उच्चतम न्यायालय में वकालत प्रारम्भ कर चुके थे प्रायः जम्मू आया जाया करते थे तो एक ओर से पूज्यपाद जी के आदेशों और संदेशों को मेरे पास पहुंचा दिया करते थे और दूसरी ओर से वापिस दिल्ली लौटते समय श्री आत्मविलास की प्रतियां अपेक्षित संख्या में दिल्ली ले जाया करते थे। ललित जी की पत्नी सुनीता का तब पूज्यपाद जी से परिचय हुआ था जब वे श्री आनन्द के पास जम्मू में ठहरे थे। सुनीता उस समय ऐम० फिल पदवी के लिए **श्रीसिद्धमहारहस्य** पर शोध कार्य कर रही थी और पूज्यपाद जी के जम्मू आने का पता उसे मैंने शिमला से लिख भेजा था।

पूज्यपाद जी के पास उस समय एक अच्छी खासी धनराशि विद्यमान थी। एक अन्य धनराशि जो उन्होंने सेन्ट्रल बैंक दिल्ली में श्री बृहस्पति देव वैद्य के माध्यम से रख छोड़ी थी को भी मई १९८२ में उन्होंने निकलवा लिया। समस्त धनराशि को एकत्रित करके सदुपयोग के लिए वे किसी विश्वस्त व्यक्ति को सौंपना चाहते थे। स्वास्थ्य उनका निरन्तर शिथिल से शिथिलतर होता जा रहा था। ठहरे हुये थे उन दिनों सी २२, साउथ मोती बाग में पं० देशराज जी के घर में। पं. जी उस समय सेवा निवृत्त हो चुके थे। उनके घर का वातावरण अत्यन्त शुद्ध और सात्विक प्रकृति का था। प्रतिदिन, प्रति क्षण रामायण, भगवद्गीता और भागवत् का पाठ होता था। भगवद् नाम कीर्तन निरन्तर चलता ही रहता था। स्वयं पं. जी गत १५ वर्ष से सिवा दुग्धाहार के और कुछ लेते नहीं थे। पूज्यपाद जी को गौ दुग्ध से भी अधिक प्रिय जीवन में कभी कुछ वस्तु रही ही नहीं थी और वह वहां उन्हें सुलभ ही था। हर प्रकार की सेवा भी उन्हें सहज ही सुलभ थी। परन्तु मानव शरीर की अपनी आवधिक मर्यादा और सीमा हुआ करती है। यही प्रकृति का नियम है। गहन औषध उपचार से भी पूज्यपाद जी के स्वास्थ्य में अपेक्षित सुधार के लक्षण प्रकट नहीं हुए। तब उधर के अपने भक्त जन को और ही प्रकार के संकेत उन्होंने देने प्रारम्भ कर दिये जिन्हें वे समझ नहीं पाये। स्पष्ट कुछ पूछने का साहस किसी में था नहीं।

उन्हीं दिनों दिल्ली में एक धार्मिक संस्था को स्थापित करने का संकल्प पूज्यपाद जी के मन में उत्पन्न होकर परिपुष्ट होता गया। संस्था का संविधान तैयार करने का दायित्व एक समिति को सौंपा गया। जिसमें डा० रघुनाथ शर्मा, श्री रत्नलाल अग्रवाल, श्री राजकुमार अग्रवाल, श्री रवि शर्मा त्रिवेदी, पं. देशराज जी इत्यादि व्यक्ति सम्मिलित थे। श्री रत्नलाल द्वारा तैयार किये गये संविधान के प्रारूप पर अनेक गोष्ठियां स्वयं पूज्यपाद जी की अध्यक्षता में

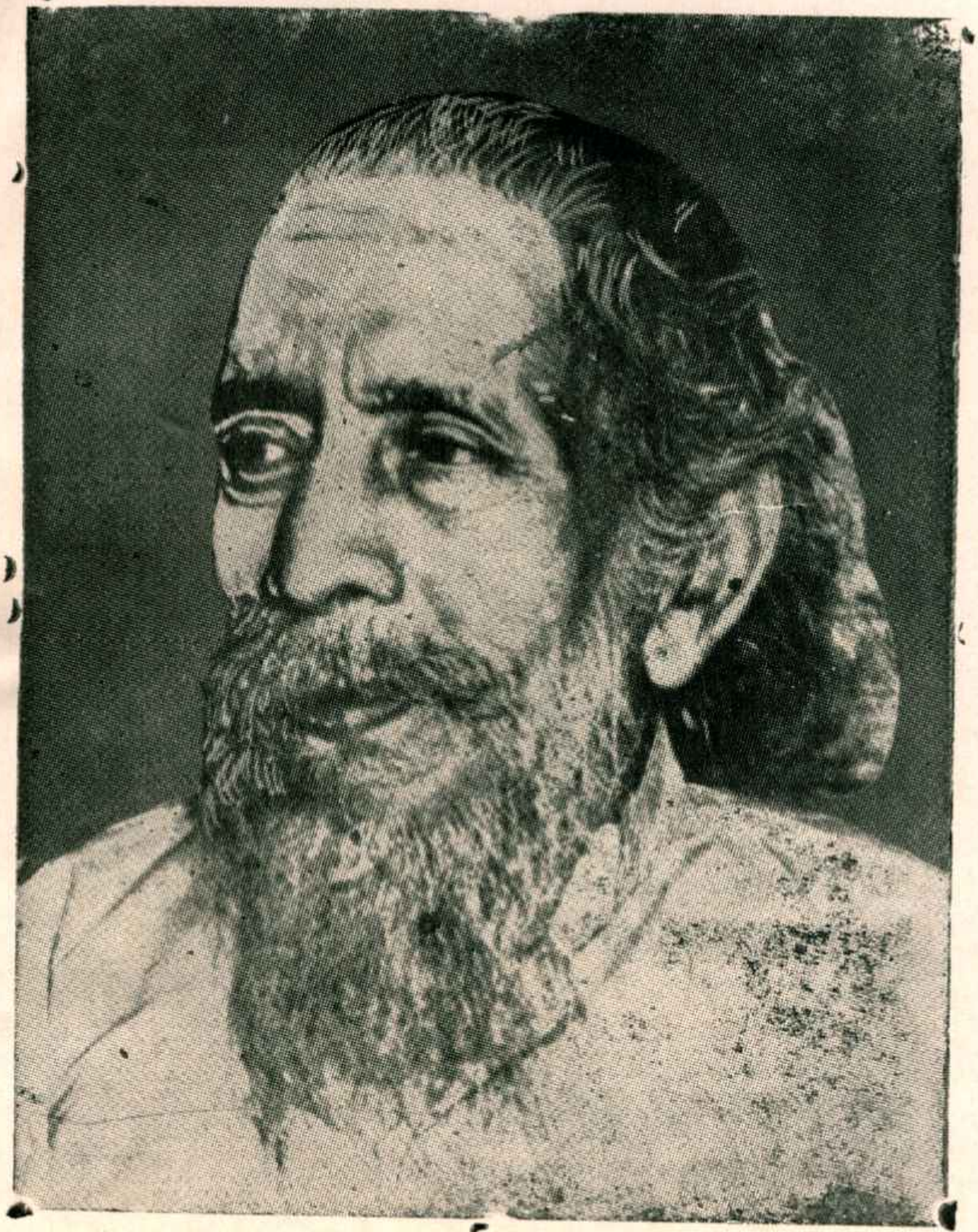

वर्तमान जीवन का अन्तिम चित्र (अगस्त १९८२)

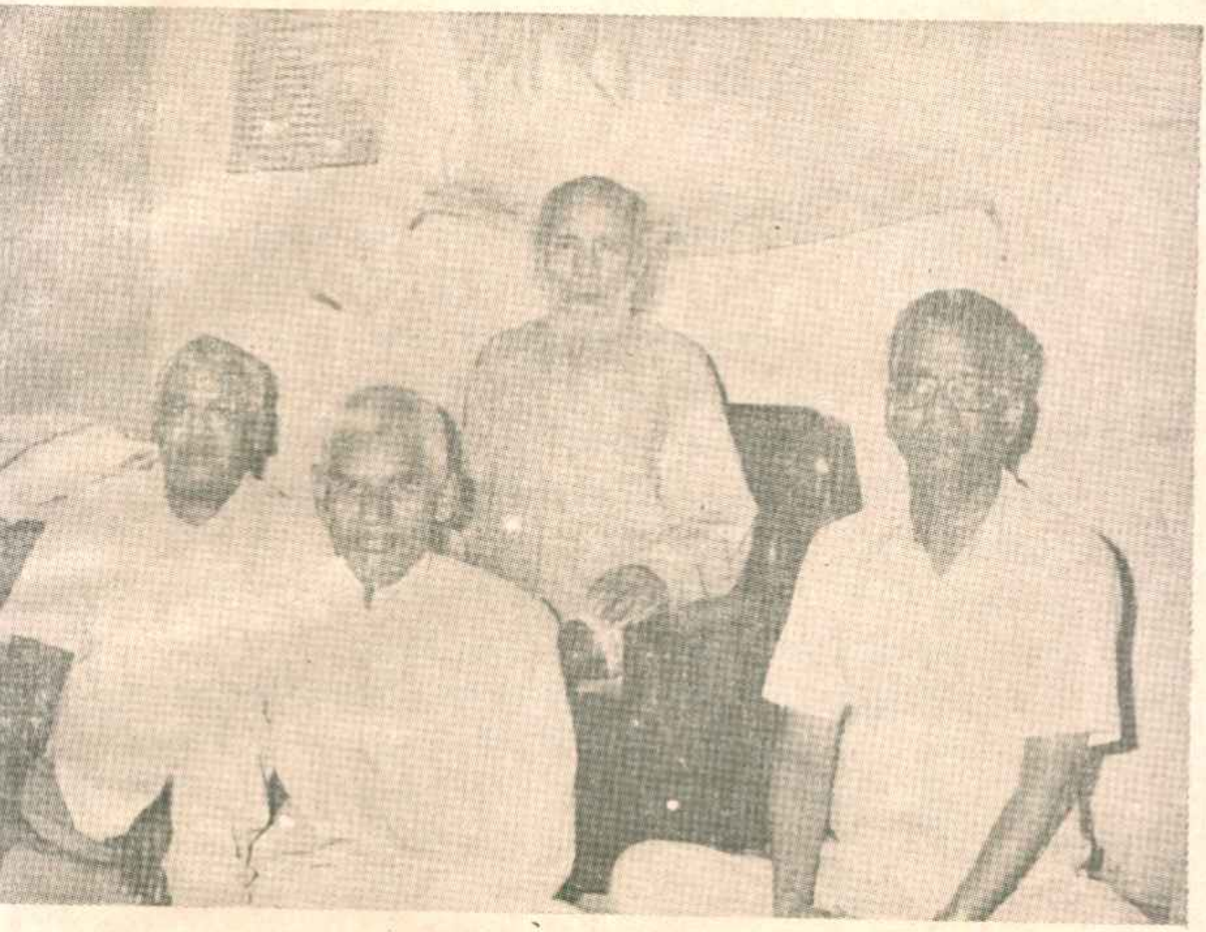

वर्तमान जीवन का अन्तिम (सामूहिक चित्र) पार्श्व में बैठे हैं (बायें से दायें)—श्री राजकुमार अग्रवाल, पं० देशराज शर्मा, श्री रत्नलाल अग्रवाल ।

हुई और अंततः गहन विचार विनिमय के पश्चात् डा. रघुनाथ जी के द्वारा प्रस्तावित संशोधनों को स्वीकार करते हुए संस्था का संविधान पारित हुआ। तदुपरान्त आषाढ़ शुक्ल दशमी वि सं. २०३९ तदनुसार ३० जून ई० सन् १९८२ को सी. २२ साउथ मोती बाग, नई दिल्ली में पूज्यपाद जी के जन्म दिन के शुभ अवसर पर विद्वद्वरकल श्री राधा कृष्ण धार्मिक संस्थान की विधिवत स्थापना की घोषणा पूज्यपाद जी द्वारा की गई। उस संस्था के द्वारा वे एक तो अपने ग्रन्थों का प्रकाशन करवाना चाहते थे और दूसरे अपने ज्ञान और विज्ञान का भी प्रचार करवाना चाहते थे। संस्था के नाम का सम्बन्ध पूज्यपाद जी के माता-पिता के नाम से है। पूज्यपाद जी की यह भी इच्छा थी कि संस्थान साधु-महात्माओं का तथा संस्कृत विद्वानों का सत्कार करे और संस्कृत छात्रों को प्रोत्साहन दे। संस्था का सर्वोपरि उद्देश्य यह भी था कि लुप्तप्राय सनातनी परम्पराओं और संस्कारोंका पुनरुद्धार ऐवं सच्छास्त्रानुमोदित वर्णाश्रम धर्म की रक्षा का कार्य यह संस्था करेगी। संस्था के वे स्वयं संस्थापक बने। और स्थाई सदस्यो की कार्यकारिणी का चयन भी उन्होंने स्वयमेव किया। वह संस्था पश्चात विधिपूर्वक पञ्जीकृत हो गई। पूज्यपाद जी द्वारा प्रदत्त २८००० रु. की धन राशि के व्याज और सदस्यों द्वारा अर्पित आर्थिक सहायता से उस संस्था को सफलतया चलाया जा रहा है। पूज्यपाद जी के निर्वाण दिवस को मनाने का सारा प्रबन्ध प्रति वर्ष धर्मसंघ महाविद्यालय यमुना बाजार दिल्ली में इसी संस्था के द्वारा किया जाता है। कई विशिष्ट महापुरुषों का विशेष सम्मान संस्था प्रतिवर्ष अपने वार्षिकोत्सव पर करचुकी है और मेधावी संस्कृत छात्रों को छात्रवृत्तियां भी प्रदान करती है। अब इस संस्था ने 'श्री भवन नाम से ऐक स्थायी भवन का निर्माण करने के लिए कुछ भूमि दक्षिणी दिल्ली में प्राप्त कर ली है। अभी तक संस्था का मुख्य कार्यालय श्री रत्नलाल जी के आवास ऐ-१, दिल्ली हाई कोर्ट में है।

अगस्त १९८२ में जव पूज्यपाद जी पं० देश राज के निवास पर ही थे और उनका स्वाथ्य दिन प्रतिदिन ह्रासोन्मुख ही था तो एक दिन वहुत आग्रह करने पर वे अपना चित्र खिंचवाने पर सहमत हो गये। तब श्री राजकुमार जी जनकपुरी से स्व० श्री नत्थू राम जज के पुत्र श्री राकेश जी को बुला कर लाये और इस प्रकार पूज्यपादजी के दो पोज़ उसने उतारे। एक उनका अकेला और दूसरा सामूहिक जिसमें उनके साथ श्री देश राज जी, श्री राज कुमार जी, श्री रत्न लाल जी है। उस समय कोई नही जानता था कि वे उनके जीवन के अन्तिम चित्र सिद्ध होंगे। उन में से उनका वही अकेला चित्र (रंगीन) अब संस्था के मुख्यालय में प्रतिष्ठापित किया जा कर उनके भक्तों द्वारा पूजा जता है।

सन् १९८२ में एक दिन पूज्यपाद जी को एक विचित्र प्रकार का दृश्य दीखा। उसे उन्होंने मुझे तब सुना दिया था जब मैं नवम्बर के आरम्भ में जयपुर से लौट आने पर उनसे मिला था। तब भी वे मोतीबाग में ही पं० देशराज जी के आवास में ठहरे थे। जिस वैद्य से वे चिकित्सा करवा रहे थे उसका निवासस्थान वहां से समीप पड़ता था। दूसरी बात यह भी थी कि पण्डित जी की कन्याएं जो स्तोत्र पाठ और गीता पाठ आदि उन्हें सुनाया करती थीं उससे उनका जी बहल जाया करता था। जो विचित्र अनुभूति उन्हें हुई उसको उन्होंने इस प्रकार से सुनाया—

वे कई दिन इस प्रकार की चिन्ता में मग्न रहे कि उनकी **इष्टदेवी "बाला त्रिपुरा"** ने जहां उन्हें अनेकों ही दिव्य दर्शन करा दिए वहां अपने व्यक्तिगत बाला रूप का दर्शन कभी भी नहीं दिया और क्यों नहीं दिया प्रतिदिन मन में लगातार यह चिन्ता खकटती रही। अन्ततोगत्वा एक दिन ऐसा हुआ कि ज्योंही वे अपना नित्यकृत्य पूरा कर चुके त्योंही एक कन्या उनकी ग्रीवा पर सवार हो गई। अपनी टांगों को उस कन्या ने पूज्यवाद जी की छाती पर सामने की ओर लटका दिया। उसी समय उस कन्या के एक पैर में से पायज़ेब छूट गया। उसे फर्श पर पड़ने से पहले ही पूज्यपाद जी ने एक हाथ से पकड़ लिया और दूसरे हाथ से उसे पुनः पैर पर चढ़ाने लगे। इतनी ही देर में क्या हुआ? पूज्यपाद जी उस पायज़ेब को अभी पूरा ऊपर चढ़ा ही नहीं पाए थे कि कन्या उछल कर छन-छन की ध्वनि से दौड़ती हुई आगे को जाती-जातो अदृश्य हो गई। पूज्यपाद जी ने उसकी पीठ को देखा, तथा पैरों को और टांगों को देखा। मुख को और शरीर के पूर्वभाग को वे देख नहीं पाए। इस घटना को उन्होंने लिख कर तो नहीं रखा, परन्तु उपरोक्त ढङ्ग से मुझे कहकर सुनाया। सेप्टेम्बर सन् १९८२ में मैं जयपुर से लौट कर पूज्यपाद जी के दर्शन के लिए दिल्ली में रुक गया। उस समय पूज्यपाद जी श्री रत्नलाल जी अग्रवाल के घर में ठहरे थे। उस मिलन के अवसर पर पूज्यपाद जी ने अपने थैले में से तीन कापियां मुझे दिखा दीं। उनमें उन्होंने अपने वंश का, पूर्वजों का, गुरुओं का तथा निकट सम्बन्धियों का परिचय संस्कृत श्लोकों में लिखकर रखा था। विशेष विस्तार से अपने वंश का इतिहास लिखा था जिसका शीर्षक रखा था "वरकलवंशचरितम्"। वे चाहते थे कि उस प्रबन्ध काव्य की एक प्रतिलिपि सुन्दर अक्षरों में लिखी जाए। परन्तु मुझे उस समय तुरन्त ही जम्मू लौट आना था और सप्ताह दस दिन में शिमला भी जाना था। अतः उस समय वह कार्य मुझसे नहीं किया जा सका। समय मिल जाने पर उसे कर देने का सङ्कल्प है।

मेरे वहां से जम्मू चले आने के पश्चात् मेरे दामाद श्री द्वारिकानाथ पण्डित पूज्यपाद जी के दर्शन करने के लिए दिल्ली गए और उनसे मिले। उन दिनों

पूज्यपाद जी इतने निर्बल हो गए थे कि दैनिक स्तोत्र पाठ भी स्वयं नहीं कर पाते थे। इस कारण श्री द्वारिकानाथ जी के सामने पण्डित त्रिपाठी जी से कहने लगे कि वे ही उनके निमित्त से प्रतिदिन एक-एक पाठ करते रहें। इस कार्य को करने के लिए उन्हें कुछ रुपये भी दे दिए। वे तो रुपये ले ही नहीं रहे थे, परन्तु पूज्यपाद जी ने बहुत अधिक आग्रह करते हुए कुछ रुपये उन्हें दे ही दिए। इस स्थिति की सूचना मुझे उन्होंने लिख दी थी। शिमला जाने पर मुझे वहां एक दुःस्वप्न भी दीखा था। मुझे शीघ्र ही दिल्ली जाना चाहिए था। परन्तु मैं ललित गुप्त पर विश्वास कर गया। उन्हें अवश्य ही जम्मू आना था। मैं आशा रखता था कि वे पहले की तरह पूज्यपाद जी का समाचार सुना देंगे तो तदनुसार ही मैं उधर जाने का प्रोग्राम बना दूं। परन्तु ललित जी उस अवसर पर मुझसे मिले ही नहीं। अतः मैं उचित समय पर दिल्ली जा नहीं पाया। अस्तु !

जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है कि सन् १९८२ के अगस्त मास के पश्चात् से पूज्यपाद जी का शरीर निरन्तर अधिक से अधिक अस्वस्थ ही होता चला गया और सुधार के कुछ भी चिन्ह दीख नहीं पड़े। सभी लोग अत्यन्त चिन्तित थे। जठराग्नि मन्द से मन्दतर होती गई। अशक्तता सभी सीमाएं पार करने लगी। एक दिन श्री रत्नलाल जी अग्रवाल लाजपत नगर के चिकित्सालय के एक डॉक्टर को लेकर मोतीबाग आये और पूज्यपाद जी के स्वास्थ्य की जांच करवाई। उन्होंने यकृत रोग का निदान किया। औषधि लिख दी। उसे ला कर देने पर भी पूज्यपाद जीने उसका समुचित सेवन नहीं किया। उधर पं० देशराज जी पर सरकारी आवास खाली करने का दबाव भी पड़ रहा था। उन्हीं दिनों पूज्यपाद जी की ही कृपा का प्रसाद समझिए कि श्री रत्नलाल को दिल्ली उच्च न्यायालय के प्राङ्गण में ही एक सरकारीं मकान अलाट हो गया। उसके आग्रह पर पूज्यपाद जी उसके साथ उस आवास को देखने भी गए और उसे बहुत पसंद किया। उनकी प्रेरणा से ही रत्नलाल जी ने तुरत उसका कब्जा भी ले लिया और ८ सितम्बर को उस आवास में आकर रहने का मुहूर्त्त भी निकाला गया और वे वहां चले भी गये। उसी दिन पूज्यपाद जी श्री रत्नलाल जी कीं प्रार्थना को स्वीकार करके उनके उस नवीन आवास में अपने सामान सहित पधारे। वहां २ अक्टूबर तक रहते रहे परंतु स्वास्थ्य में सुधार कुछ हुआ नहीं। यकृत की कोशिकाएं एक बार नष्ट हो जाएं तो दोबारा उनका निर्माण कठिनता से हो पाता है।

जब पूज्यपाद जी का मन वहां के निर्जनप्राय वातावरण से उकता गया तो उन्हीं के आदेश पर उन्हें दोबारा श्री देशराज जी के आवास पर मोतीबाग में पहुंचाया गया। तब से उस समय तक वे वहीं रहें जब १६-१७ नवम्बर को

उन्हें ले जाकर मूलचन्द अस्पताल में भर्ती नहीं कराया गया। लगभग डेढ़ महीने के इस अन्तराल में उनकी रुग्णता उग्र रूप को प्राप्त हो गई। अब उन्होंने आहार के नाम पर मात्र गंगाजल का सेवन आरम्भ कर दिया। कई बार नित्य का पाठ भी बिस्तर पर ही पड़े-पड़े करते रहे। उठने पर चक्कर खाकर गिर पड़ते थे। पं० देशराज और उनके परिवार ने बहुत सेवा की। ऐसा प्रतीत होता था जैसे शरीर को जाते देख कर सभी अवशिष्ट कर्मभोग अपना ऋण वसूलने पर उतारू हों। श्री रत्नलाल जी बताते हैं कि एक दिन इसी बीच में वे अपने आफिस से थोड़ी देर का अवकाश लेकर मोतीबाग में पूज्यपाद जी को देखने गये तो उनकी दयनीय स्थिति उनसे देखी नहीं गई और वे अति अधीर हो गये। परंतु मनोबल पूज्यपाद जी का उस समय भी बहुत ऊंचा था। उस व्यथा को भी वे जगदम्बा की अनुकम्पा समझते थे, वे भली प्रकार जानते थे कि जगन्माता के अनुग्रह से उन्हें आगे इस भूलोक में जन्म लेने सेमुक्त किया जा चुका है।

उस अवसर पर पूज्यपाद जी ने रत्नलाल जी से यह कहा कि वे श्री बी.आर. शुक्ल, प्राध्यापक श्री लालबहादुर वि. पीठ, से कहें कि वे पूज्यपाद जी से सम्पर्क करें। पश्चात् ऐसा करने पर उन्होंने श्री शुक्ल जी से वाराणसी के अपने सम्बन्धियों को पत्र लिखवाया था। उसमें यह सन्देश भिजवाया था कि अब उनका शरीर जल्दी ही छूट जाने वाला है और उनकी इच्छा यही है कि इस शरीर को गंगा में अर्पण किया जाए। इसलिए उनकी ऐसी सलाह है कि एक-दो महानुभाव वाराणसी से दिल्ली आ जाएं और उनको मोटरगाड़ी के द्वारा वाराणसी पहुंचा दें। जब तक उनके शरीर में प्राण रहे तब तक देख-भाल करते रहे और तदनन्तर शैवी सन्यास विधि से शरीर को गंगा में प्रवाहित कर देवें।

पूज्यपाद जी दिल्ली वाले भक्तों से भी कई बार कहते रहे कि उन्हें गंगा के तट पर कहीं पहुंचा कर छोड़ देवें। आगे जो भी स्थिति होगी उसे होने देवें। परन्तु भक्तजन पूज्यपाद जी को निराश्रय कैसे छोड़ सकते थे। उनके साथ वहां बहुत दिन ठहरने की समस्या भी उनके समक्ष थी। अतः दिल्ली में ही उनकी चिकित्सा का भी प्रबन्ध होता रहा और समुचित सेवा का भी। इसी बीच एक दिन पूज्यपाद जी से परामर्श करके उनसे गोदान के उपलक्ष में एक सहस्त्र रूपय्या संकल्प करवा के कुशा पर रखवा दिया गया था। श्री रामरत्न शर्मा जी ने यह सब कराया। इन्हीं दिनों एक अवसर पर रत्नलाल जी के अत्यंत संकोच पूर्ण ढंग से पूछने पर पूज्यपाद जी ने उन्हें यह निर्देश दिया कि शरीर छूटने पर डा० रघुनाथ शर्मा जैसा कहें वैसा करना चाहिए क्योंकि उन्हें पूज्यपाद जी ने सब व्यवस्था समझा रखी थी। श्री ललित गुप्ता

एक दिन श्री गुलजारी लाल जी नन्दा को साथ लेकर मोतीबाग पूज्यपाद जी के स्वास्थ्य की जानकारी लेने पहुंचे। एक दिन एक तांत्रिक को बुलाकर झाड़-फूंक भी कराई गई। परन्तु सब निष्फल।

पूज्यपाद जी यह सब तमाशा देखते रहे, किसी को रोका नहीं। सब थक गये और पूज्यपाद जी के शरीर की स्थिति दिन-प्रतिदिन बिगड़ती ही गई। दीपावली का पर्व भी आया और बीत गया। अगले ही दिन १६ नवम्बर को रात्रि में लगभग आठ बजे श्री रामसिंह जी ने श्री रत्नलाल जी के घर पर जा कर पूज्यपाद जी के स्वास्थ्य की शोचनीय दशा की सूचना दी। श्री रत्नलाल जी तुरन्त जनकपुरी श्री राजकुमार जी के पास परामर्श के लिये पहुंचे और वहां से दोनों डा. गणपति को लेकर स्पेशल टैक्सी के द्वारा रात्रि में लगभग १.३० बजे मोतीबाग पहुंचे और पूज्यपाद जी के स्वास्थ्य की जांच करवाकर औषधि उपचार प्रारम्भ करवाया। उस दिन जीवन में संभवतः पहली बार पूज्यपाद जी ने एल्योपेथिक इंजेक्शन लगवाया। इन डा० महोदय ने यही कहा कि इनका लिवर (यकृत) विशेष रूप से क्षतिग्रस्त हो चुका है और इन्हें तुरन्त अस्पताल में भर्ती करवा देना चाहिए। पूज्यपाद जी से जब पूछा गया को उन्होंने यही कहा "अब इस शरीर के स्वामी आप लोग हो, आप जैसा चाहो वैसा इसके साथ करो। परन्तु हम स्पष्ट इतना ही कहना चाहते हैं कि अब इसका सुधार होगा ही नहीं, सारी चिकित्साएं निष्फल हो जाएंगी।' प्रातः सब ने परस्पर विचार-विमर्श करके पूज्यपाद जी को मूलचन्द हस्पताल, लाजपतनगर में ले जाकर भर्ती करवा दिया। वहां पर चिकित्सकों ने उनकी जांच करने के उपरान्त चिन्ताजनक स्थिति को देखते हुए उन्हें "गहन चिकित्सा कक्ष" (Intensive Care Unit) में लेजाकर चिकित्सा प्रारम्भ कर दी। परन्तु वहां उनकी स्थिति और बिगड़ती गई और निश्चेष्ट जैसे हो गये। ऐसी स्थिति में डाक्टर कहने लगे कि इनको खून भरा जाना चाहिए। तब होश में आ सकेंगे। इस प्रस्ताव पर सभी असमञ्जस में पड़ गए। अन्ततोगत्वा मेरे भाई श्री भास्कर नाथ पण्डित जी ने यह सलाह दी कि पूज्यपाद जी की अपनाई हुई नीति के अनुसार पर्चियां डाल दी जाएं और तदनुसार जैसा जगन्माता का आदेश मिले वैसा किया जाए। अतः पर्चियां डाल दी गई। जगदम्बा से प्रार्थना की गई। फिर पर्ची जो उठवाई गई उसमें खून को भरने का निषेध लिखा था। पांच दिन डाक्टर लोग उनका बहुमूल्य औषधियों से सतत उपचार करते रहे परन्तु सब व्यर्थ। स्थिति को अत्यन्त गम्भीर जानकर डा० रघुनाथ जी के पूज्यपिता श्री पं० ज्ञानचंद शर्मा जी ने आतुर सन्यास की मर्यादा के अनुसार पूज्यपाद जी के कर्णेन्द्रिय के पास प्रैष्य मन्त्र का उच्चारण कर दिया। तब पूज्यपाद जी को वैसी ही स्थिति में २१-११-८२ को श्री रत्नलाल जी के

दिल्ली हाईकोर्ट में स्थित आवास पर लाया गया। डा० श्री तिक्कू जो को बुलाया गया। उन्होंने कोई रसायन खिलाने को दिया। उससे पूज्यपाद जी कुछ समय के लिए पुनः होश में आ गए और श्वासध्वनि जैसी आवाज से तथा इशारों से बात का उत्तर देने लगे। जब वे वैसी स्थिति में थे तो मैं भी उधर पहुंचा। इस आशय के टेलिग्राम श्री रत्नभाल जी ने कुछेक विशेष व्यक्तियों को भेजे थे। मेरे साथ नेत्रों के इशारों से ही जराभर वार्तालाप हुआ। जयपुर से श्री दुर्गादत्त एवं अन्य कुछ व्यक्ति उदयपुर से श्री बी.डी. बख्शी इत्यादि बहुत से भक्त इस अवसर पर दिल्ली पहुंचे। निरंतर पांच दिन वे निश्चेष्ट अवस्था में इसी प्रकार पड़े रहे और श्री रामरत्न शर्मा, डा. रघुनाथ, श्री देबीकान्त मिश्र, श्री भवानीशंकर त्रिवेदी और उनके आत्मज श्री रवि शर्मा इत्यादि पंडित जन उनको शास्त्र पाठ सुनाते रहे उस स्थिति में भी डा. रघुनाथ द्वारा मधुर कण्ठ से गाया गया रास पञ्चाध्यायी का कोई श्लोक जब उनके कर्ण छिद्र में प्रविष्ट होता था तो पूज्यपाद जी किसी अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति अवश्य करते थे जिसका स्पष्ट संकेत उनके ओष्ठों के कम्पन से प्रकट होता था। अगले दिन कार्तिक शुक्ल अक्षय नवमी को जब दिन में गोपाष्टमी थी सायंकाल ४.४० पर पूज्यपाद जी इस मर्त्यशरीर को छोड़कर सिद्धों के लोकों को सिधार गए।

कलकत्ता निवासी श्री सोहन लाल जी एवं जयजय राम के पुत्र दैवयोग से उस दिन दिल्ली में ही थे। उनको न जाने कैसे पूज्यपाद जी द्वारा शरीर त्याग का पता लगा। वे भी उनके अन्तिम दर्शन कर ही गये।

पूज्यपाद जी के निर्जीव पार्थिव शरीर को गङ्गा और यमुना के पवित्र जल से स्नान करवाकर, चन्दनादि सुगन्धित द्रव्यों और पुष्प मालाओं से सुसज्जित कर पद्मासन लगवाकर एक कुर्सी पर विठा दिया गया। वस्त्रों आदि से विभूषित करके उसी मुद्रा में उसे बांध कर रखा गया। डा० रघुनाथ को सूचना भिजवाई गई और वे धर्म संघ के आचार्य श्यामलाल जी से परामर्श करके और आवश्यक विधान की जानकारी प्राप्त करके तुरन्त श्री रत्न लाल जी के आवास पर पहुंचे। पूज्यपाद जी की विशेष कृपा से एक मेटाडोर गाड़ी का प्रबन्ध भी उसी समय हो गया। एक डाक्टर को बुलवा कर मेडिकल सर्टीफिकेट भी तुरन्त बनवा लिया गया। तदनन्तर कुछ विशिष्ठ व्यक्तियों के साथ पूज्यपाद जी के उस मृत शरीर को उसी मुद्रा में कुर्सी समेत मोटर गाड़ी में हरिद्वार पहुंचाकर सन्यासियों के विधान के अनुसार कनखल के पास गङ्गा जी की नीलधारा में ठीक तरह से बिठाकर उसे जल समाधि दी गई। पौरोहित्य कर्म, कर्मकाण्ड के मर्मज्ञ डा० रघुनाथ शर्मा जी के द्वारा सम्पन्न किया गया। ऐसा आदेश पूज्यपाद जी उन्हें जीवन काल में ही दे गए थे। अस्तु।

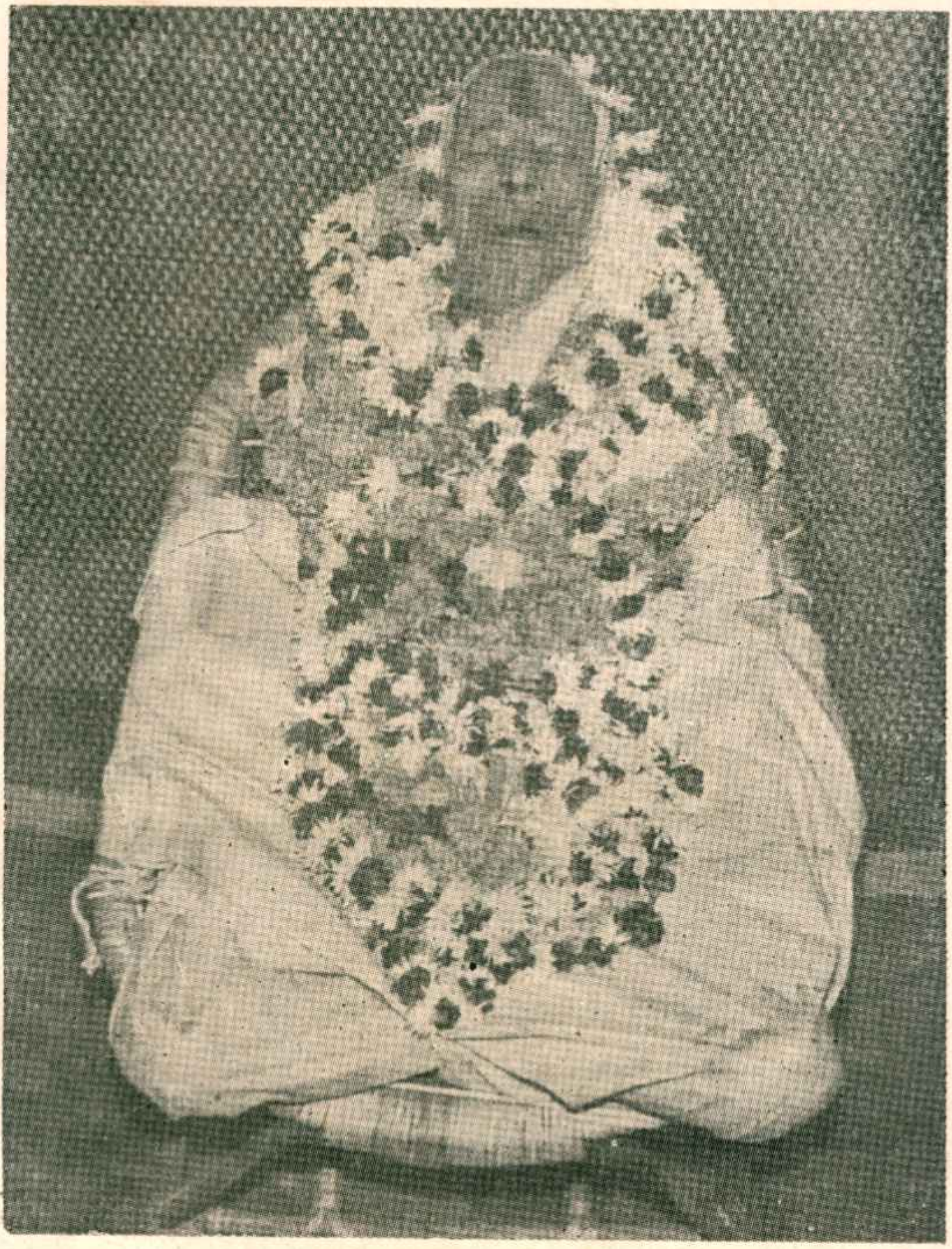

२४ नवम्बर सन् १९८२ (कार्तिक शु० नवमी सं० २०३९) को
वर्तमान शरीर छोड़ने के पश्चात् का चित्र।

पूज्यपाद जी ने श्री शुक्ल के द्वारा वाराणसी के अपने सम्बन्धियों को जो पत्र लिखवाया था उसके अनुसार उन लोगों ने पग उठाने का कार्यक्रम तो बनाया, परन्तु उनके साले श्री नारायण राजा राम 'आकूत' उस समय दिल्ली पहुंचे जब पूज्यपाद जी का शरीर दो दिन पहले हरिद्वार में गङ्गा जी की नील धारा में अर्पित किया जा चुका था। अस्तु !

२४-११-८२ को रात्रि में पूज्यपाद जी के पार्थिव शरीर को विशेष वाहन से हरिद्वार ले जाते समय जो लोग साथ गये, उनके नाम जहां तक मुझे स्मरण है इस प्रकार से है—

१. पं० दलजिन्नाथ जम्मू, प्रस्तुत ग्रन्थ के निर्माता	
२. पं० देश राज शर्मा	दिल्ली से
३. डा० रघुनाथ शर्मा	,,
४. श्री राज कुमार अग्रवाल	,,
५. श्री रवि शर्मा त्रिवेदी	,,
६. श्री रत्न लाल अग्रवाल	,,
७. श्री सेवक राम शर्मा	,,
८. श्री ललित कुमार गुप्ता एडवोकेट	,,
९. श्री राम सिंह ठाकुर	,,
१०. श्री शिव राज जी	,,
११, श्री दुर्गादत्त शर्मा	जयपुर
१२. श्री कस्तूरी लाल आनन्द	फरीदाबाद
१३. श्री ओम प्रकाश गुप्त	,,

एक उल्लेखनीय घटना जो उस अवसर पर हुइ वह यह है कि यद्यपि उन दिनी उग्रवादियों द्वारा निर्दोष व्यक्तियों की हत्याओं की सूचना निरन्तर आ रसी थी और इसी कारण पोलीस द्वारा वाहनों की विशेष जांच का अभियान खूब जोरों से चल रहा था। हम सभी लोग इससे काफी आशंकित और चिन्तत थे कि कहीं व्यर्थ ही कोई झंझट खड़ा न हो जाये, परन्तु पूज्यपाद जी ने एसी विशेष कृपा कर दी थी कि रास्ते में कहीं भी पोलीस ने वाहन को न तो रोका और न ही किसी प्रकार की कोई जांच ही की।

उपसंहार

आगमिक शैवमार्ग के अनुसार उत्कृष्ट साधना में लगे हुए साधकों की दो प्रकार की गति हुआ करती है। यदि वे संसार से सर्वथा विरक्त हों, यदि उन्हें सांसारिक स्थिति के प्रति कोई भी लगाव न हो, अर्थात् संसार का कल्याण हो या विनाश हो, इस बात की चिन्ता से जो ऊपर चले गए हों अर्थात् जिन्हें कल्याण और विनाश दोनों ही एक ही खेल के दो पहलू जैसे प्रतीत होते हों, वे शरीर छूटते ही परमशिव भाव में प्रविष्ट हो जाते हैं, उनकी वैयक्तिक सत्ता शिव सत्ता के साथ मिलकर एक हो जाती है।

परन्तु जिन योगियों को संसार के हित की चिन्ता बनी रहे, अथवा जिन्हें परमेश्वरता के व्यावहारिक भोगों की वासना अभी भीतर अवशिष्ट रहे, वे शरीर त्याग के क्षण में ही ब्रह्मभाव में प्रविष्ट होते हुए अपनी वैयक्तिक सत्ता को उसी भाव में विलीन नहीं करते हैं। वे तो एक ओर से परब्रह्म स्वरूप परमेश्वरता के साथ अपने अभेदमय सम्बन्ध के विमर्शन के आनन्द के चमत्कार का उपभोग तो करते रहते हैं, परन्तु साथ ही साथ इस संसार के कल्याण के लिए भी कोई न कोई यत्न करते ही रहते हैं। जैसा कि पूज्यपाद जी के सभी भक्तजन जानते हैं, उन्हें भारतवर्ष के कल्याल की, हिन्दु धर्म के उत्थान की और संसार में आदर्श मानवता की स्थापना की तीव्र अभिलाषा सदा बनी रहती थी है। इस कारण से वे अभी अपनी वैयक्तिक सत्ता को ब्रह्मसत्ता में विलीन करने को तब तक उद्यत नहीं होवेंगे जब तक भारत वर्ष पर आर्यजुष्ट सत्शासन् स्थापित न हो, जब तक हिन्दू धर्म का सच्चा रूप भारत में पूरी तरह से प्रथित न होने पाए और जब तक इस संसार में अमानवीय नीतियों की प्रधानता पर घोर प्रहार न होने पाएं।

तो इस समय पूज्यपाद जी किसी दिव्य शरीर को धारण करके किसी उत्कृष्टतर भुवन में दैवी प्रशासन के किसी प्रभावशाली अधिकार को हाथ में लेने के लिए यत्नशील होंगे। उन भुवनों के प्राणी इच्छापूर्वक इस भुवन में भी उतर आते हैं और अपने भक्तों का काम करके पुनः उधर चले जाते हैं। तो मुझे विश्वास है कि वे अब भी हमारा कल्याण कर सकते हैं और अवश्य करेंगे यदि हम श्रद्धा-पूर्वक उनसे प्रार्थना करते रहें। परन्तु हमें इस बात के प्रति भी ध्यान रखना ही चाहिए कि जीवन की क्षुद्रतम समस्याओं के समाधान के लिए उन्हें विवश न करें। जिन समस्याओं को हम लौकिक उपायों से ही सुलझा सकें उनके

विषय में पूज्यपाद जी को कष्ट देना उनके प्रति अन्याय करना है। हमें साधारण बातों के लिए उन्हें परेशान नहीं करना चाहिए। हां उनसे देश कल्याण के लिए और आध्यात्मिक प्रगति के लिए प्रार्थना अवश्य करनी चाहिए। इन दोनों कार्यों को वे ही हमारे लिए कर सकते हैं। हम अपने बल से इन दो के विषय में कुछ कर ही नहीं सकते।

पूज्यपाद जी इस समय कैसी ऐश्वर्यमयी स्थिति में हैं इस बात का दिग्दर्शन श्रीनगर में शारिका देवी के आंगन में मिले हुए उस सिद्ध पुरुष शिवजी के साथ किसी शून्य भवन में हुए उनके संवाद से हो सकता है। कुण्डलिनी योग विद्या की वेध दीक्षा से सन्तुष्ट हुए पूज्यपाद जी ने उस शिवजी नाम के सिद्ध पुरुष से यह प्रश्न किया था कि भगवान् दुर्वासा के द्वारा सिखाई गई शाम्भवी योग विद्या से जो तत्त्वदर्शन उन्हें हो चुका है उससे आगे की उनकी गति क्या होगी। इस प्रश्न पर सिद्ध महानुभाव ने कहा था कि वे उस बात को कह नहीं सकते। यदि कह दें तो पूज्यपाद का एकदम शरीरपात हो जाएगा और इस शरीर से जो भोग भोगने शेष हैं, वे अभुक्त ही रहेंगे और जो कार्य करने शेष हैं वे किए ही नहीं जा सकेंगे। उस सिद्ध पुरुष के ऐसे उत्तर से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि पूज्यपाद जी को उस समय के वर्तमान शरीर को छोड़ देने पर कोई ऐसी ऐश्वर्य के चमत्कार से भरी पदवी पर प्रतिष्ठित होना होगा जिसे शीघ्र पाने के लिए वे तत्काल ही शरीर त्याग देते। वह स्थिति इतनी आह्लादमयी होती कि झटपट उस स्थिति में पहुंचने की तीव्र उत्सुकता से उन्होंने वर्तमान जीवन का तत्क्षण अन्त कर दिया होता।

अब इस विषय में शङ्का यह उठ सकती है कि सात वर्ष तो बीत गए। अभी तक भारत में न्याय का शासन स्थापित नहीं हुआ, रिश्वतखोरी का अन्त नहीं हुआ, ऐसी बातें कब होंगी इत्यादि। इसके उत्तर में इन बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है—(१) कलिदेवता ऐसी बातों में प्रगति नहीं होने दे रहे हैं। किसी तरह उसको भी मजबूर करने में जो यत्न करने होंगे उनमें कुछ समय लग ही जाएगा। (२) कलिदेवता की नीति के अनुसार देवगणों ने जो योजनाएं चला रखी हैं, उनमें भी बहुत सारे परिवर्तन करवाने होंगे, जो अपना समय अवश्य ही लेंगी। (३) हमारा एक वर्ष देवलोक का एक दिन-रात होता है। तो समझिए कि पूज्यपाद जी को उधर गए अभी सात ही दिन हुए हैं। सात दिन में कितना परिवर्तन परिवर्धन आदि कराया जा सका होगा। अस्तु।

पूज्यपाद जी का जन्माङ्क

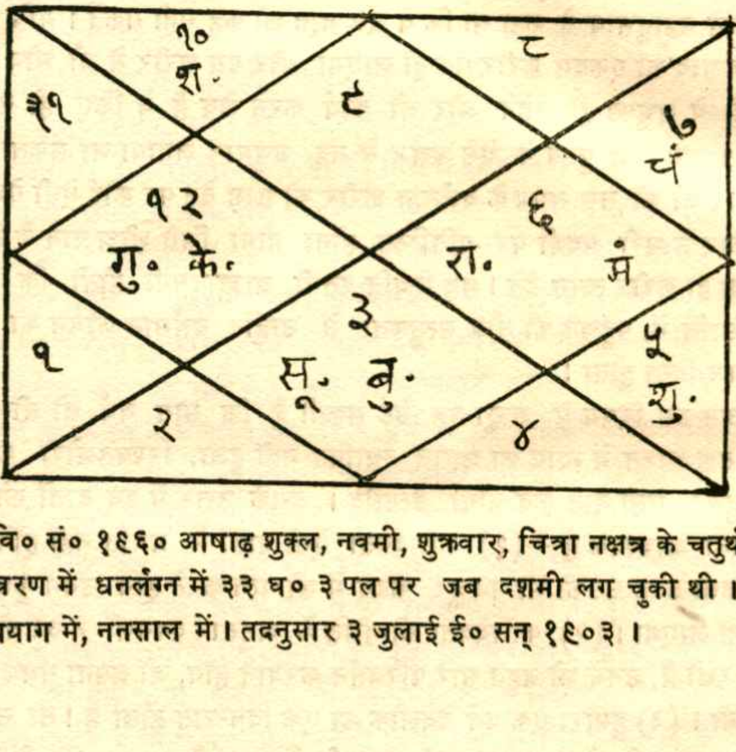

वि० सं० १९६० आषाढ़ शुक्ल, नवमी, शुक्रवार, चित्रा नक्षत्र के चतुर्थ चरण में धनलंग्न में ३३ घ० ३ पल पर जब दशमी लग चुकी थी। प्रयाग में, ननसाल में। तदनुसार ३ जुलाई ई० सन् १९०३।

परिशिष्ट

(१) आत्मचरितम्

वेदः कृष्णं यजुरतिशुभं तैत्तिरीयाः च शाखा
आपस्तम्बो मुनिगणवरः सूत्रकारो महर्षिः।
कौण्डिन्यर्षिः सदमलयशाः गोत्रकारोऽपि येषां
तेषां वंशे वरकलकुले जन्म यस्यास्ति जातम् ॥१॥

जिन ब्राह्मणों का वेद अति सुन्दर कृष्ण यजुर्वेद है, जिनकी शाखा तैत्तिरीय शाखा है, मुनियों के समूहों में श्रेष्ठ महर्षि आपस्तम्ब जिनका सूत्रकार है और जिनके गोत्र को चलाने वाला निर्मल और यथार्थ कीर्त्ति वाला कौण्डिन्य नाम का ऋषि है, उन्हीं ब्राह्मणों के वंश में वरकल (वरकड़े) अल्ल वाले कुल में जिस (पूज्यपाद जी) का जन्म हुआ है।

वैदर्भाभिजनाग्र (ग्र्य) जन्मकुलजो वाराणसीमागतः
कोऽप्यस्थापयदुत्तमं वरकलं ब्रह्मर्षिवंशं पुमान्।
सम्पाद्यावनिगोप्तृताम सुलभां यः कन्यकुब्जेश्वरे
पूर्वं शासित हायनाष्टशतकात्तन्मन्त्रि कन्यासुतः ॥२॥

आठवीं शताब्दी से भी पहले कभी कन्नौज नरेश के प्रशासन में उस नरेश के मन्त्री के दौहित्र किसी महापुरुष ने उस नरेश के राज्य की रक्षा की कोई अतीव महत्त्वपूर्ण सेवा करके और विदर्भ देश (बरार) से वाराणसी आकर के वहो इस वरकल नाम वाले विदर्भदेशीय ब्रह्मर्षियों के अत्युत्तम वंश को बसाया।

येषां कुलेऽस्ति परदैवतमेकवीरा
अद्वैतभावभरिता शिवशक्तिभक्तिः।
श्रीसुन्दरी रहसि पूज्यतमास्ति येषां
तेषां कुलं वरकलाह्वयमेतदस्ति ॥३॥

यह वरकल नाम का वंश उन (ब्राह्मणों) का है जिनकी पूज्य कुलदेवी एक-

वीरा रेणुका भगवती है, जिनमें अद्वैत भाव पर निष्ठा रखने वाली शिव-शक्ति की परा भक्ति कीं परम्परा चलती आई है, तथा रहस्य साधना क्रम में जिनकी पूज्य देवता बाला त्रिपुर सुन्दरी है ।

येषां श्रुतिस्मृ तिगिरो वदनारविन्दाद्
आविर्भवन्त्य इह लोकमिमं पुनन्ति ।
स्वात्म (ब्रह्म) प्रकाशनविमर्शन-पण्डितानां
तेषां सदा कुलमिदं किल जन्मभूमिः ॥४॥

यह वरकलवंश स्वात्मस्वरूप परब्रह्म के चिदानन्द-प्रकाश के विमर्शन में अतीव निपुण उन विद्वानों को जन्म देता आया है जिनके मुख कमल से निकलती हुई श्रुति और स्मृति की वाणियां यहां इस सारे भूलोक को पवित्र करती रही हैं ।

यहां तक पूज्यपाद जी ने अपने वरकल वंश का वर्णन करके आगे अपना परिचय इस प्रकार से दे रखा है—

प्रादुर्भू तस्तत्कुले काशिकेयै-
विद्वद्वृन्दैर्वन्दिते वर्ष्मणास्मि ।
अष्टाविंशः पूरुषस्तस्य विद्वान्
विद्वन्मान्यः साम्प्रतं वर्तमानः ॥५॥

काशी निवासी विद्वद्गणों के द्वारा वन्दनीय बने हुए उसी (वरकल) वंश में वर्तमान् स्थूल शरीर को लेकर के उत्पन्न हुआ और उस मूल पुरुष की अठाईसवीं पीढ़ी में प्रकट हुआ तथा विद्वानों के द्वारा माननीय बना हुआ मैं एक ऐसा विद्वान् इस समय विद्यमान हूं ।

श्रीकृष्णो जनकस्तु यस्य जननी राधा विमा रुक्मिणी
पत्नी शीलवती विमातृतनयः श्रीरामचन्द्रः सुधीः ।
कौन्डिन्यर्षि-सगोत्रजो वरकलोपाह्वोऽस्ति यः काशिको
भय्याशास्त्र्यपराभिधः स जयति श्रीवैद्यनाथः कृती ॥६॥

जिनके पिता जी श्री कृष्ण (वरकले) हैं, राधा जिनकी माता है, सौतेली मां जिनकी रुक्मिणी है, जिनकी पत्नी का नाम शीलवती है, जिनका सौतेला भाई श्री रामचन्द्र नामक विद्वान् है, कौण्डिन्य महर्षि के गोत्र में जिनका जन्म हुआ है, 'वरकल' जिनके वंश की अल्ल है, जो काशी निवासी हैं और (वहां) 'भैय्या शास्त्री' भी कहलाते हैं, वे ही श्री वैद्यनाथ सर्वोत्कृष्टता के पद पर स्थित हैं और कृतकृत्य हैं ।

अगले श्लोकों के द्वारा अपने पूर्व जन्मों के प्रति निर्देश करते हुए वर्तमान जन्म की घटनाओं का वर्णन करते हैं—

सोऽहं विद्याधरनिवसनात् प्राप्य मानुष्यमेतत्
शापाद् भ्रष्टो निजगुरुपदाद् गुर्ववज्ञाजदोषात्।
राजा भूत्वा प्रथमजनने विप्रबालस्ततो द्विस्-
तुर्ये जन्मन्यपि पुनरहो विप्रभावं गतोऽस्मि ॥७॥

मैं वही हूं जो गुरु की अवज्ञा करने के दोष के कारण (उनके) शाप से अपने विद्याधर-लोक के ऊंचे पद से गिरकर और इस मनुष्य योनि में आकर पहले जन्म में राजा बनकर और फिर दो ब्राह्मण बालक बन कर, अब इस चौथे जन्म में भी सौभाग्य से पुनः ब्राह्मण ही बन आया हूं।

वाराणस्याममरतटिनोपाव्रनीरप्रवाहे
पूरोत्पीडे प्रलयकरणानेहसीव प्रजाते।
घोरावर्त्ते प्लवनचतुरोऽप्यासमामौलिमग्नो
दिव्यां शैवीं श्रित इह तदा न्यासितां प्रत्यजानाम् ॥८॥

(एक बार) वाराणसी में गङ्गा नदी के जल के घोर प्रवाह के भीतर मैं ऐसा निमग्न हो गया (डूब गया) कि प्रवाह में नीचे नीचे दबता गया। उस समय मानो मेरे लिए प्रलय काल ही आ गया। यद्यपि मैं तैरने में अतीव निपुण था, फिर भी उस भयानक (भंवर) जलावर्त्त के भीतर शिखा तक निमग्नहो गया। तब मैंने (भगवान् शिव की) शरण लेकर यह प्रतिज्ञा की कि (जीवन शेष को) शैवी सन्न्यास लेकर (शिव को ही) अर्पण करूं।

सम्प्राप्याहं शिवपरवशश्चेतनां तीरलग्नो
जीवन्नेवोपयमसदनं प्राप्तवानागतोऽत्र।
इत्यालोच्य स्वमपि बहिरानिर्गतो गाङ्गतोयात्
कर्तव्यं स्वं सुनिरचिनबं वर्षमेकं विचिन्त्य ॥९॥

उस स्थिति से जब मेरा जीवन भगवान् शिव के ही हाथ में था तो (उनकी कृपा से) मैं (पुनः) तट पर लग कर जब फिर से होश में आया, तो मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि यमराज के लोक के समीप पहुंच कर भी जीते जी ही यहां आ गया हूं। गंगा जी के जल प्रवाहों से बाहिर निकल आकर ऐसा सोचकर और एक वर्ष तक इस विषय में विचार-विमर्श करके मैंने अपने कर्तव्य के विषय में निश्चय कर ही लिया।

नित्यं दुर्व्यवहारतः प्रथमतो व्यम्बाकृताद् दुःखवान्
उद्वहात् परतो हि निर्धनतया सन्तापितो न्यक्कृतः ।
आसं यः श्वशुरस्य बान्धवजनैर्भूयोऽपमानैस्ततः
सन्न्यासं वरमाविशं शिवपदं दुःखाकरध्वंसनम् ॥१०॥

पहले तो विमाता के लगातार दुर्व्यवहार से मैं दुःखी होता रहा। विवाह के अनन्तर जब श्वशुर के बान्धव जन मेरी निर्धनता के कारण बार बार मेरा अपमान कर करके तथा मुझे तिरस्कृत कर करके दुःख देते रहे तो समस्त दुःखों की खानों को नष्ट करने वाले और वास्तविक कल्याण का स्थान बने हुए उत्तम सन्न्यास (अर्थात् शैव सन्न्यास) आश्रम में मैंने प्रवेश किया ।

लब्ध्वाऽऽलोकं विमलहृदयात् पूर्णकारुण्यमूर्त्तेर्-
दिव्यादेशात् स्वगुरुवरतः कोपभट्टारकाद् यः ।
मोहावर्त्तं भवजनपथप्रेम सन्न्यस्य पूर्णं
शाके शम्भौ गुरुवरकले सोऽहमानन्दमेमि ॥११॥

इस तरह से (सन्न्यासी बन कर) मैं निर्मल हृदय वाले, तथा परिपूर्ण करुणा की मूर्त्ति बने हुए अपने गुरुवर भगवान् दुर्वासा जी से प्राप्त दिव्य योग दीक्षा के द्वारा मोह रूपी भंवर को और सांसारिक जीवों के मार्ग के प्रति प्रेम को भी पूरी तरह से छोड़कर अब समस्त शक्ति के एकघन स्वरूप तथा सद्गुरु की उत्तम कला के स्वामी और उत्तम कला वाले सद्गुरु स्वरूप भगवान् स्वात्मशिव की स्थिति में ठहरता हुआ परिपूर्ण आनन्द का आस्वाद ले रहा हूं ।

ग्रन्थान् विज्ञजनप्रसादनपटून् निर्माय निमायिकान्
आचार्यामृतवाग्भवेत्यभिधया ख्यातिं परां लम्भितः ।
पुण्ये भारतवर्षनाम्नि विषये देवर्षिसिद्धैर्वृते
लब्ध्वा देहमनादिमेमि परमं शाक्तं मुदा सुन्दरम् ॥१२॥

विद्वान् महानुभावों को प्रसन्न करने में सुसमर्थ बने हुए और माया से पार ले जाने वाले ग्रन्थों का निर्माण करके, "आचार्य अमृतवाग्भव" इस नाम से मैं पर्याप्त मात्रा में प्रसिद्ध हो गया। देवगणों, ऋषिवरों और सिद्धजनों के द्वारा अपनाये गए, भारतवर्ष नाम के देश में शरीर को प्राप्त करके मैं बड़ी प्रसन्नता से अत्यन्त सुन्दर, आदि-अन्त-रहित, उत्कृष्टतम, शक्तिघन स्वरूप (चिदानन्दमय दिव्यातिदिव्य देह) को प्राप्त कर रहा हूं ।

इस आत्मचरित की कोई पुष्पिका पूज्यपाद जी ने नहीं लिखी है। इसको शीर्षक भी उन्होंने नहीं दिया है। ऊपर दिया हुआ शीर्षक अनुवादक की कल्पना पर ही आश्रित है। इन श्लोकों की रचना स्वयं पूज्यपाद जी ने की है।

(२) चारु सन्देशः

पत्युः श्रेयः पतिहितपरां प्रार्थयन्तीं परेशं
प्रेम्णा पूतामतिमतिमतीं पालयन्तीं स्वशीलम् ।
चित्ते चञ्चत्स्वपतिचरणौ र्चाचतौ चिन्तयन्तीं
साध्वीं पत्नीं महितमुनयो वन्दनीयां वदन्ति ॥१॥

जनता के द्वारा पूजित होते हुए मुनिजन उस सच्चरित्रा पतिव्रता पत्नी को वन्दनीय कहते हैं जो पति के हित में ही लगी रहती हो, जो परमेश्वर से पति के कल्याण की प्रार्थना करती रहती हो, पति प्रेम ने जिसे पवित्र बनाया हो, जो विशेष सद्बुद्धि वाली हो, जो अपने चरित्र की रक्षा करती रहती हो और अपने चित्त में सदा चमकते हुए तथा सुन्दर सजाए हुए अपने पति के चरणों का ही चिन्तन करती रहती हो।

नित्यानन्दे महति महसां वासने वर्त्तमानं
गौरीकान्तं दहरकुहरेऽहर्निशं भावयन्तम् ।
संसारेऽस्मिन् कलुषमसृणे मङ्गलेभ्यः प्रतीपे
मोहावर्त्ते पुनरपि न मां पातयेथाः सुशीले ॥२॥

हे सुशील देवि, मैं नित्य आनन्दस्वरूप संवित् प्रकाश के असीम निवास स्थान में अब रह रहा हूं और दिन रात पार्वती पति शिव को हृदय गुहा में भावना के अभ्यास से ठहराया करता हूं। अब मुझे फिर से इस कोमल लगने वाले दूषित मोह के भंवर रूपी संसार चक्र में मत गिरा देना, जो समस्त मङ्गलों के विपरीत है (अर्थात् सर्वथा अमङ्गल है।)

भोगाः केचिल्ललितललिता घोर घोराश्च केचित्
सर्वे कालात् क्षणपरिणता नाशमेव प्रयान्ति।

वित्तं विद्या वपुरनुपमं वास्तवं वस्तु नैतत् ।
किञ्चित् तस्माद् विरम विरसाद् वासनावारिधेस्त्वम् ॥३॥

सांसारिक भोग कोई तो अतीव मनोहर होते हैं और कोई अत्यन्त भयानक हुआ करते हैं। ये सभी अपने अपने समय पर क्षण भर के लिए परिपक्व होकर नष्ट ही हो जाते हैं। धन, विद्या, अनुपम सुन्दर शरीर, इनमें से कोई भी वस्तु वास्तविकतया कोई सत्य पदार्थ तो है ही नहीं। इस कारण से वासनाओं के इस नीरस समुद्र से तू विरत ही हो जा।

स्थाने स्थाने ललित कलनं निर्गमं सङ्गमं वा
नद्याः स्रोतो रचयति यथा बालुकानां कणानाम् ।
कामं वामो विधिरपि तथा लालितों लालयन् स्वां
लोकाश्लेषं घटयति मुहुः स्वात्मनः प्रीणनाय ॥४॥

जैसे नदी का प्रवाह रेत के दानों के परस्पर सङ्गम को या वियोग को स्थान स्थान पर बड़ी मनोहर कला के द्वारा कराता रहता है, वैसे ही सदा उल्टा चलने वाला दैव भी अपनी कला की ललितता को निभाते हुए अपनी इच्छा के अनुसार अपने आप को सन्तुष्ट करने के लिए लोगों के परस्पर सम्बन्धों को बार-बार जोड़ा करता है।

कल्याणानां वसति हृदये कामना चेत् त्वदीये
तां कल्याणीं परममहिषीं मानसे भावयेथाः ।
दुःखं दैन्यं दुरितदलनी दारयेद् देवतानां
या सा सूते सपदि सकलाः सम्पदः सुप्रसन्ना ॥५॥

यदि आपके हृदय में कल्याणों को पाने की अभिलाषा विद्यमान है, तो तब आप अपने हृदय में समस्त कल्याण स्वरूपा उस परमेश्वर की महाराणी जगन्माता की भावना का अभ्यास कीजिए। समस्त पापों का नाश करने वाली जो जगन्माता देवताओं के भी दुःख को तथा उनकी दीनता को भी नष्ट कर सकती है, वही प्रसन्न होकर समस्त सम्पदाओं को तत्काल दे दिया करती है।

अस्ति स्वान्ते यदि मयि परं प्रेम कल्याणशीले
शीले वंशे त्रुटिमणुमयि प्रापयेथाः न किञ्चित् ।
काञ्चिद् विद्यां रसय महितां शाम्भवीं वग्विभूतिं
भूतिर्यस्याः पर करुणया प्रापणीया समस्ति ॥६॥

हे शुभ शील वाली, यदि आपके हृदय में मेरे प्रति सच्चा और बहुत अधिक प्रेम है, तो आपको चाहिए कि अपने चरित्र में और हमारे वंश में किसी भी प्रकार की त्रुटि को मत आने देना। किसी उस अतीव उत्तम शाम्भवी विद्या के रस का पान करते रहना तथा शाम्भवी वग्विभूति का भी (अर्थात् शाम्भवी साधना का अभ्यास भी करें और शिव स्तोत्रों का गायन भी करें), जिसके सद्भाव की प्राप्ति परमेश्वर के करुणामय अनुग्रह से ही प्राप्त की जा सकती है।

बद्ध्वा पद्मासनमविधवेऽहम्महो भावरूपे
स्वादुस्वादे ललितललिताभिन्नविन्दौ स्वरूपे।
आनन्दानां जयिनि महतामुद्गमानां निधाने
शैवं भावं रययितुमहो शीलवत्यर्हसि त्वम् ॥७॥

सौभाग्यवती शीलवती, आपको चाहिए कि आप पद्मासन बान्ध कर अतीव मजेदार स्वाद वाले तथा ललित से भी ललित अद्वैतात्मक विन्दु रूपी अपने उस वास्तविक स्वरूप के भीतर आश्चर्य पूर्वक अपनी उस शिवात्मिका सत्ता का आस्वाद लेवें जो बड़े से भी बड़े आनन्दों को जीत लेने वाली है और समस्त सृष्टियों का मूल कारण है।

अस्मिन् गात्रे जनन-मरण-क्लेश-पात्रेऽपवित्रे
हित्वा मोहं विमलहृदये तां सतीं पद्मनेत्राम्।
मुक्तिर्दासी भवति सकला यत्कृपादृष्टिपाताद्
आर्यां भार्यां स्मरदमयितुश्चारुशीले भजेथाः ॥८॥

हे निर्मल हृदय वाली और सुन्दर सत्स्वभाव वाली (शीलवती) आप जन्म-मरण कष्टों का पात्र बने हुए इस अपवित्र मर्त्य शरीर के प्रति मोह को छोड़कर कामदेव का दमन करने वाले भगवान शिव की उस कमल नयना तथा उत्कृष्ट महिमा वाली पत्नी का भजन किया करें जिसकी कृपादृष्टि के पड़ते ही सब प्रकार की परिपूर्ण तथा ऐश्वर्य युक्त मुक्ति दासी बन जाती है।

वैराग्यं ते वितरतु महद् विश्वनाथः स एव
प्रोद्यद्भक्तिं चरणकमले भर्तुरानन्त्यरम्याम्
नाम्नां घोषाद् भवति मनुजो यस्य सद्यो विवेक-
स्वस्थो लब्धुं प्रभवति पदं शाश्वतं केवलः स्वम् ॥९॥

वे भगवान् विश्वनाथ ही आपको बहुत वैराग्य देवें और अपने पति के चरण

कमलों के प्रति अनन्त रमणीयतावाली तथा सदा वृद्धि को प्राप्त होती हुई भक्ति भी देवें, जिनके नामों की ध्वनि के जप से मानव एकदम ही विवेक पाकर और उससे अपने वास्तविक स्वरूप में स्थित होकर अपने शाश्वत कैवल्य स्वरूप में स्थिति को प्राप्त कर सकता है।

कामेश्वर्या सह ललितया साधु कामेश्वरं तं
स्वान्ते शान्ते प्रतिदिनमभिध्यायतो विश्वरूपम्।
विद्वद्वंशेऽधिगतजनुषस्त्राणकृच्छीलवत्याः
कल्याणाय प्रभवतु चिरं चारु सन्देश एषः ॥१०॥

कामेश्वरी देवी ललिता त्रिपुर सुन्दरी के समेत उस विश्वरूप भगवान् कामेश्वर शिव का अपने शान्त हृदय में प्रतिदिन ध्यान करते हुए तथा विद्वानों के वंश में उत्पन्न हुए महानुभाव को यह सुन्दर सन्देश विद्वानों के कुल में उत्पन्न हुई शीलवती की रक्षा करने वाला बन जाए और उस का चिर कल्याण कर सके।

भारतान्तस्थवाहीके पुराणेषु प्रसिद्धयो।
ऐरावती - चन्द्रभागानद्योर्मध्येऽतिपुण्ययोः ॥११॥
स्थिते श्री लायलपुरे महाविद्यालये शुभे।
पुण्यश्लोके ऋषिकुले ब्रह्मचार्याश्रमस्थले ॥१२॥
श्रीनाथाख्यस्वशिष्यस्य काश्मीरकबुधस्य च।
भिषक्पदे नियुक्तस्याध्यापकस्य वसन् गृहे ॥१३।
काननाभ्रमिते वर्षे पौर्णमास्यां शुचौ रवौ।
निरमाच्चारुसन्देशं विद्वानमृतवाग्भवः ॥१४॥

भारतवर्ष के भीतर स्थित वाहीक (पंजाब) देश में, पुराणों में प्रसिद्ध रावी और चन्द्रभागा नाम की अति पवित्र नदियों के बीच में स्थित लायलपुर नगर में एक भव्य तथा प्रसिद्ध ऋषिकुल नाम के महाविद्यालय में, ब्रह्मचारियों के आश्रम में (अर्थात् छात्रावास में) चिकित्सक के पद पर नियुक्त अध्यापक श्रीनाथ नाम के अपने कश्मीरी विद्वान शिष्य के आवास में रहते हुए विद्वान् अमृतवाग्भव ने वि० सं० २००१ में माघ मास की पूर्णिमा के दिन रविवार को इस चारु सन्देश का निर्माण किया।

इत्याचार्य श्रीमदमृतवाग्भव प्रणीत-
श्चारुसन्देशः।

(३) मेरे गुरुदव

भगवान् शंकर की असीम अनुकम्पा से प्रातः स्मरणीय अनंत श्री विभूषित ब्रह्मलीन स्वामी श्रीमद् अमृतवाग्भवाचार्य जी महाराज के पावन जीवन पर आधारित यह ऐतिहासिक ग्रन्थ विद्वद्वरकल श्री राधाकृष्ण धार्मिक संस्थान के तत्वावधान में प्रकाशित करके आप जैसे प्रबुद्ध पाठकों के समक्ष लाते हुए संस्थान को अपार हर्ष हो रहा है। यह संस्था श्री आचार्य जी ने अपनी भौतिक लीला यहां से समेटने के कुछ ही दिन पहले स्थापित की थी। इसका संविधान भी स्वामी जी ने बहुत समय लगाकर स्वयं अपने सामने ही बनवाया था। जबकि उनका स्वास्थ्य उन दिनों ठीक नहीं चल रहा था।

श्री जी के जीवनकाल में सब भक्तजनों को उनके बारे में जानने की जिज्ञासा सदा बनी रहती थी। स्वामी जी इस विषय में मौन ही साधे रहते थे। प्रस्तुत ग्रंथ उन सब भ्रान्तियों को समाप्त कर देगा तथा भक्तजनों की जिज्ञासा की पिपासा को भी शान्त करेगा ऐसा विश्वास हमें है।

'श्री गुरु' महाराज के बारे में मेरे लिए कुछ कहना तो ऐसा ही है जैसा कि सूर्य को दीपक दिखाना। मैं तो केवल इतना कह सकता हूं कि वे एक युग प्रवंतक थे और साथ ही आत्मविद् सिद्ध पुरुष थे। उनका समस्त शास्त्रों पर पूर्ण भावेण अधिकार था। सबसे विलक्षण बात उनमें यह थी कि आध्यात्मिकता के साथ साथ व्यावहारिकता भी उनमें पूरी तरह भरी हुई थी। उन्होंने कभी भी अपने किसी भी शिष्य को चाहे वह उनसे कितना ही छोटा क्यों न हो "जी" के बिना नहीं बुलाया।

कठिन से कठिन समस्याओं को वे चाहे आध्यात्मिकता के बारे में हों या किसी भी सांसारिक बात के बारे में हों बड़ी ही सरलता से सुलझा देते थे। उनके शिष्यों की यह अनुभूति है कि जब-जब उनके समक्ष समस्याएं आई तभी महाराज श्री के स्मरण मात्र से ही सहज में ही सुलझती रहीं।

उन्हें अपने शैशवकाल से ही अनेक दिव्य विभूतियों ने न केवल दर्शन ही दिये

अपितु पल-पल उनका मार्ग दर्शन भी किया। इसीलिये उनके मुख मण्डल का तेज देखते ही बनता था। उनके दर्शन मात्र से ही उनके शिष्यों के समस्त कार्य बन जाते थे।

अधिक क्या कहूं यह ग्रन्थ पढ़ने के बाद आप भी गुरु जी के बारे में मेरी तरह ही सोचेंगे।

दिनांक—३०/१०/८६
(कार्तिक शु० प्रतिपदा)

राजकुमार अग्रवाल
(महामन्त्री)
विद्वद्वरकल श्रीराधाकृष्ण
धार्मिक संस्थान, दिल्ली
(रजिस्टर्ड)

(४) एक विलक्षण स्वप्न

मैं इसको स्वप्न और जाग्रत अवस्था की सन्धि या अर्धजगृदवस्था और अर्धनिद्रावस्था की दशा कहना उचित मानता हूं, उषः काल समाप्त हो रहा था और मैं अब शय्या से उठने का विचार कर रहा था, इतने में मुझे फिर निद्रा सी आने लगी और मैं यह स्वप्न देखने लगा—

'हमारे घर (मार्तण्ड) कश्मीर में हमारे घर के सामने वाली सड़क पर मैं नदी की ओर जा रहा हूं और देखता हूं कि सामने महात्मा अमृतवाग्भवाचार्य खड़े हैं, किसी लम्बे आदमी से बातें कर रहे हैं। उनका मुख मेरी ओर है और वे मेरी ओर देख रहे हैं।

मेरा और उनका साक्षात्कार हो जाता है। मैं झटपट उनके चरणों पर प्रणाम करता हूं। उनके तेजस्वी मुखमण्डल की तरफ भी देख रहा हूं। वह प्रसन्न मुद्रा में अपने तेजः पूर्ण नेत्रों से मुझे कुछ याद सी दिलाते हुए एक टक देखते हैं। और मैं रोता हूं। तथा बार बार उनके चरणों को स्पर्श करता हूं। उनकी वेष-भूषा भी वही थी। 'घुटनों तक धोती कुर्ता और गर्म बास्कट, खडाऊं पैरों में थीं।'

इतने में मेरी आंख खुलती है। फिर मैंने इस स्वप्न को तत्काल पद्यबद्ध कर लिया। यह पद्य इस प्रकार है :—

पद्यानि

'फाल्गुणस्य शुक्लपक्षे,
नवम्यां बुधवासरे ।
अरुणोदय वेलायाम्,
स्वप्ने साक्षादभून्मम ॥१॥

मद्ग्रामस्य ममावास-
वीथिकायां समुत्थितः
केनापि प्रांशुना सार्धं
संलपन्निव दीप्तिमान् ॥२॥

उद्यद्भास्वानिव श्रीमान्,
महात्मामृतवाग्भवः ॥
स्मयमान मुखाम्भोजो,
जानुपर्यन्त शाटिकाम् ॥३॥

वसानः पादुकाधारी,
प्रीतिं चोत्पादयन्निव ॥
अहं तु पादौ संगृह्या-
रुदं सगद् गद् स्वनः ॥४॥

भग्न निद्रोऽस्मरं स्वप्नं
भूयो भूयोतिविस्मितः ।
अमन्दानन्द सन्दोहम्
लब्धवान् छिन्नसंशयः ॥५॥

अर्थ—फाल्गुणशुक्ल की नवमी बुधवार को (मार्च १५ सन् १९८६), अरुणोदय के समय मैंने महात्मा अमृतवाग्भवाचार्य को स्वप्न में देखा। वह मेरे ग्राम की गली में किसी लम्बे कदवाले आदमी के साथ जैसे खड़े हुए बातें कर रहे थे। उनका मुख उदीयमान सूर्य के समान कान्तिमान् था। उनका मुखकमल मुस्कराता हुआ लगता था। वह प्रेममयी दृष्टि से देख रहे थे। उनके घुटनों तक धोती थी और पैरों में खड़ाऊं धारण किये थे। मैं उनके पैर पकड़ कर गद्‌गद् होकर रोने लगा। मेरी निद्रा टूट गई। और मैं अत्यन्त कृतार्थ सा अपने को मानता हुआ अत्यन्त प्रसन्नता से सारे दिन उसी स्वप्न को बार बार स्मरण करता रहा। और मेरे सभी संशय दूर हो गये।

(५) पूज्यपाद श्री महाराज की विनोद-प्रियता

—डा० भवानीशङ्कर त्रिवेदी

श्री महाराज जी सर्वशास्त्र पारङ्गत सर्वतन्त्र स्वतन्त्र रस स्निग्ध महाकवि थे, यह तो सुविदित ही है, साथ ही उनके सान्निध्य में रहने वाले भक्तजन इस तथ्य से भी सुपरिचित हैं कि वे बड़े विनोद प्रिय थे। उनकी यह विनोद-प्रियता उनके कार्य-कलाप में समय समय पर प्रकट होती रहती थी। उदाहरण के लिये—

कुराली के निकटस्थ ढंगराली ग्रामवासी महान् वैयाकरण पं० हरिराम जी शास्त्री के अनुज के विवाह में अमृतसर के श्री पं० मायाधारी जी शास्त्री, पं० मुकुन्द वल्लभ जी आदि अनेक विख्यात विद्वानों के अतिरिक्त कुराली के श्रीगोपाल जी शास्त्री, आदि कई विद्वान् भी सम्मिलित हुए थे। अपने चाचा श्री हरदेव त्रिवेदी के साथ मैं भी वहां पहुंचा हुआ था। जब लग्न के समय अनेक धुरन्धर पंडित गण उपस्थित हों, तो उनमें किसी न किसी विषय को लेकर वाद-विदाद छिड़ जाया करता है। तदनुसार पं० हरिराम जी और श्री गोपाल जी में बहस छिड़ गई। और उन्होंने पं० मुकुन्द वल्लभ जी को भी लपेट लिया। पंडित जी ने श्री गोपाल जी के पक्ष में कुछ कह दिया। बस फिर क्या था, हरिराम जी क्रोधाविष्ट हो गये और अब वे (निर्णय के लिए) श्री महाराज जी की ओर लपके।

श्री महाराज जी ने उक्त घटना का तत्काल कैसा मुंह बोलता चित्र एक श्लोक में अंकित कर दिया, देखिये—

हरिरामो हरिः पीत्वा श्री गोपालवचः सुराम्।
मुकुन्दालीकसन्दष्टोऽद्भुतानन्दमाययौ ॥

(श्री गोपाल की वाणी रूपी सुरा पिये हुए हरिराम रूपी हरि को जब मुकन्द वल्लभ रूपी बिच्छू ने डंक मार दिया तो उसकी दशा बड़ी अद्‌भुत आनन्ददायक हो गई। अन्तिम पद का दूसरा अर्थ यह है कि तब श्री हरिराम जी, आनन्द (महाराज जी का यह उपनाम भी था) जो बड़ा अद्‌भुत अर्थात् बड़ा विलक्षण और विचक्षण है, की ओर लपके।

इस श्लोक में महाराज जी की विनोद-प्रियता तो प्रकट हो ही रही है, साथ

ही उन दिनों (सन् १९३२) में कुराली के आसपास की विद्वन्मण्डली में महाराज जी का जैसा आदर सम्मान था, वह भी परिलक्षित होता है।

एक और रोचक घटना सुनिये—

श्री महाराज जी उन दिनों (सन् १९३५-३६ में) मुझे सांख्य योग पढ़ाने के लिए अमृतसर में (रामतलाई के कमरे में) विराज रहे थे। जनवरी में अमृतसर में ऐसी कड़कती ठंड पड़ती है कि कुछ न पूछिये। तब श्री महाराज जी से यदि कोई १०-११ बजे पूछ लेता कि महाराज जी, स्नान हो गया, तो महाराज जी बड़े आराम से उत्तर दिया करते थे—

'हां देखो, एक, दो, तीन और चार, चार स्नान तो हो गये, एक छोटा सा पांचवां स्नान और है सो वह भी बस अभी हो जाता है।

यह सुनकर अपरिचित व्यक्ति चकित हो जाता कि इस ठंड में भी श्री महाराज जी चार चार बार स्नान कर चुके हैं, महाराज जी बताते कि—'पहला आकाश, दूसरा वायु, तीसरा सूर्यस्नान और चौथा हुआ तैल स्नान (मालिश) ये चार स्नान तो हो गए अब बस एक छोटा सा जल स्नान बाकी है सो वह भी अभी इस तलाई में डुबकी लगाते ही हुए जाता है।

एक बार श्री महाराज जी को विनोद सूझा और वे श्री पं० हरिभानुदत्त जी शास्त्री (जिनके पास मैं रहता था) से बोले शास्त्री जी मैंने आपके लिए एक श्लोक बनाया है, सुनिये। शास्त्री जी इस पर बड़े खुश हुए। तब श्री महाराज जी ने जो श्लोक सुनाया उससे भी उनकी विनोद प्रियता ही प्रकट होती है। श्लोक है—

शाटीं जीर्णतमां गवाक्षशतकैर्युक्तां मलेनावृत्ताम्।
सानन्दं परिधाय थूत्कृतिपटुर्यष्टीं गृहीत्वा करे।
देवीशम्भुनिकाय्ययोरहरहर्मध्ये भ्रमन् सर्वदा
आलस्याधिपतिर्भवान् विजयतां श्री भानुदत्तः सुधीः॥

तथ्य तो यह है कि महाराज जी के सान्निध्य में रहने वाले प्रत्येक सहृदय को उनकी विनोदप्रियता के प्रमाण पदे पदे, मिलते ही रहते थे।

(श्लोक बड़ा सरल है इसलिये अर्थ की आवश्यकता नहीं।)

(6) His Holiness Sarvatantra Svatantra Anantsri ACHARYA AMRITAVAGBHAVA

It was in June, 1937 that I first met Acharya Amritavagbhava in a temple room at Solan (Himachal). At that time he was young, clad in white clothes, fair complexioned, slim, but healthy. He had lustre in his face and his eyes were clear and shining. As I entered the room he was busy in writing. At my enquiry, he told me that he was busy in writing a book 'Atam Vilas' in sanskrit. He gave his name 'Swami Anand.' I felt attracted towards him at the first sight. He asked about me and I replied. I then invited him to my house in Ambala city, when he happended to visit the place. He kept his promise and called me in Rambagh, where he was staying in Ambala City on the 17th November, 37. Next day on 18th November, 37, he came to my house and we continued to talk whole night till it was dawn. He narrated his spiritual experiences, meetings with saints, about his previous birth, his insight into the astral sphere and many other things. Relationship developed and he became my Guru. He stayed with me for the longest period when I was posted at Gojra (now in Pakistan) Thereafter whenever he had an opportunity he met me or called me, wherever I had been due to exigencies of my service. In my recent book "Wheel of life" in press, I have mentioned about all our meetings and teachings during his life time.

He was not only a great spiritual teacher, but a great sanskrit scholar, who was taught by Maharishi Durwasa during his sleep. He was proficient in the knowledge of Aurvedic herbs. He knew Kaya kalap. He was politically aware and was a great patriot. He wrote "Rashtar lok" in sanskrit, a b ook on political understanding. He strongly believed in Hindu scriptures, hindu dharma and its traditions. He wrote many books in praise of hindu gods in sanskrit verse. He lived a

simple life, ate simple food once in 24 hours and liked simple people. He kept away from riches and rich persons. His spiritual teachings are sublime His turya yoga technique is the swiftest way to spiritual progress. I mentioned it in my book "Glimpees of Divine Light", running into third edition, and also in my recent article "The best way to God Realization" published in Kalyan Kalptaru, Annual Number issued in May, 89, by Gita Press, Gorakhpur. He was a real saint without any attachment or wordly interest, difficult to be found in present time.

Besides all the above virtues, he was also interested in astrology. He had the power of intuition. When I was at Gojra (Lyallpur) and wanted to come to Ambala, he told my wife instantly without consulting any horoscope that I would be transferred to Ambala by the end of that month and so it came to happen exactly.

We all miss his physical form, but his spiritual guidance is still with us and will ever remain in our hearts. May his light foster brotherhood among his disciples and enlighten their hearts.

S. K. DASS, his humble disciple

पूज्यपाद जी द्वारा निर्मित/हस्ताक्षरांकित विद्वद्वरकल श्री राधाकृष्ण धार्मिक संस्थान के संविधान में वर्णित उद्देश्यों का सार

१. वेदादि सच्छास्त्रानुमोदित वर्णाश्रम धर्म का सर्वतोभावेन संरक्षण एवं परिपालन।

२. वैदिक/पौराणिक वांङ्मय की विविध विधाओं का संरक्षण एवं वैज्ञानिक अनुसंधान।

३. योग, आध्यात्म, श्री-विद्या एवं तन्त्र आदि विषयों सम्बन्धी शोध, गवेषणा एवं प्रकाशन।

४. उपरोक्त विषयों से सम्बन्धित पाण्डुलिपियों का संरक्षण।

५. देव भाषा (संस्कृत) एवं राष्ट्रभाषा (हिन्दी) का प्रचार/प्रसार एवं संरक्षण तथा इन भाषाओं के योग्य विद्यार्थियों की आर्थिक सहायता हेतु छात्र-वृत्तियां एवं अनुदान देना।

६. उपरोक्त उद्देश्य की सम्पूर्ति हेतु संस्कृत हिन्दी पत्र/पत्रिकाओं का सम्पादन प्रकाशनादि।

७. संस्थान के संस्थापक अनन्त श्री विभूषित सर्वतन्त्र स्वतन्त्र श्रीमद् अमृत-वाग्भवाचार्य जी महाराज द्वारा रचित ग्रन्थों का प्रकाशन/भाषान्तरानुवाद, इत्यादि।

८. समय समय पर संगोष्ठियों, आयोजनों एवं प्रशिक्षण शिविरों के माध्यम से भारतीय धार्मिक, दार्शदिक एवं सांस्कृतिक स्वरूप को जनमानस में प्रतिष्ठापित करना।

९. विशिष्ठ विद्वानों एवं सन्त महापुरुषों का समय समय पर सम्मान एवं अभिनन्दन करना।

१०. "श्री भवन" का निर्माण एवं "श्री पुस्तकालय" की स्थापना।

११. सदैव हानि लाभ निरपेक्ष भाव से धर्मशास्त्रानुमोदित रूपेण प्राणीमात्र का कल्याण।

श्रीमदमृतग्रन्थमाला के प्रकाशन—

संख्या	ग्रन्थ	टीका आदि	मूल्य
१)	महानुभवशक्तिस्तोत्रम्	(संस्कृत-हिन्दी व्याख्या)	१-००
२)	श्री परशुरामस्तोत्रम्	(हिन्दी अनुवाद)	अमूल्य
३)	श्रीविंशतिकाशास्त्रम्	(संस्कृत-हिन्दी-व्याख्याएं)	५-७५
४)	सप्तपदीहृदयम्	(संस्कृत-हिन्दी, अंग्रेजी अनुवाद)	१-५०
५)	सञ्जीवनीदर्शनम्	(संस्कृत-हिन्दी, अंग्रेजी अनुवाद)	१-५०
६)	सङ्क्रान्तिपञ्चदशी	(हिन्दी-गद्य-पद्य अनुवाद)	१-००
७)	श्रीसिद्धमहामन्त्रमयी शिवप्रार्थना	(हिन्दी-अंग्रेजी अनुवाद)	अमूल्य
८)	मन्दाक्रान्तास्तोत्रम्	(हिन्दी व्याख्या)	५-००
९)	श्रीआत्मविलास-सुन्दरी	(हिन्दी व्याख्या शब्दकोष)	२०-००
१०)	श्रीसिद्धमहारहस्यम् तथा देशिक-दर्शनम्	(हिन्दी टीका)	१०-००
११)	श्रीमद्अ मृतस्तोत्र-संग्रहः	(हिन्दी टीका)	३-००
१२)	श्री परमशिवस्तोत्रम् तथा वस्तुस्थिति-प्रकाशः	(विस्तृत हिन्दी व्याख्या)	१२-५०

आनन्दवन प्रसूनमाला के प्रकाशन

१)	श्रीसिद्धमहारहस्यम्	(मूलमात्रम्)	१-५०
२)	श्रीमदमृतसूक्तिपञ्चाशिका	(संस्कृत व्याख्या)	३-००
३)	श्रीमन्दाक्रान्तास्तोत्रम्	(हिन्दी अनुवाद)	३-००

अन्य प्रकाशन

१)	श्रीगुरुवरस्तवः	(बलजिन्नाथ पंडित)	४-००
२)	श्रीमद् अमृतवाग्भवाचार्य (चरितामृत)	(श्री बलजिन्नाथ पंडित)	८०-००

सभी पुस्तकें मिलने का पता—

(१) श्री रत्न लाल अग्रवाल, मकान नं० ए-१

दिल्ली हाईकोर्ट, शेरशाह मार्ग, नई दिल्ली-३

(२) दुर्गादत्त शर्मा, ए-७२, अमृत पथ,

श्रीमदमृतवाग्भव शोध संस्थान, जनता कलोनी, जयपुर (राजस्थान)

शुद्धिपत्र

पृष्ठ संख्या	पंक्ति सं०	अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप
xii	१५	निहर	निहत
	३१	दुःखिता	दुःखितो
xiii	३०	बुद्धिमास्तत्	बुद्धिमांस्तत्
xiv	२०	इत्यीभ	इत्यभि
xvii	१	गुरुमूर्ति	गुरोर्मूर्ति
	१	गुरुपदम्	गुरोः पदम्
	२	गुरुवावयं	गुरोर्वाक्यम्
	२	गुरु कृपा	गुरोः कृपा
सम्मतियां-१	१३	ज्योतिषपीठाधीश्वर	ज्योतिष्पीठाधीश्वर
,, -२	७	अमृतनियन्दिनी	अमृतनिष्यन्दिनी
चित्र	के नीचे	शाम्भी	शाम्भवी
३	२	पयुत्सको	पर्युत्सको
३	३	तच्चतेसा	तच्चेतसा
६	१	शिवाजी	शिव जी
२२	१६	चार वर्ष	दो वर्ष
४३	२३	ाव्रस्ते	खिस्ते
४७	२७	ताराचन्द जी	तारानन्द जी से यह
५१	२१	दिखाया या	दिखाया
५७	२९	बालन	चालन
५९	२७	देषिक	देशिक
६१	११	नवाह्िक	नवाह्निक
६४	२	प्रविष्ट में	में प्रविष्ट
११६	२	१६-२	१३-२
	१०	क्षत्रिय	श्रोत्रिय
१२१	१६	लिखा दी	खिला दी
१२४	४	भी आदत्त जोशी	भीमादत्त जोशी
१३७	२०	सम्य	सभ्य
१३८	१३	२४-११	२४-१
१६४	१६	८-६-३४	८ ९-३४
१७१	१	आह्िक	आह्निक
१७८	३	महादेव	महोदय
	१८	निगह	निर्वाह
१७९	४	उत्रोढ़ी	ड्योढ़ी
	१५	लाड	लाडी

१८०	२	१६-१६४०	१६-१-४०
१८१	१३	शिष्ठयाएं	शिष्याएं
१८२	२०	शैद दर्शन	सैद्ध दर्शन
	२०	१६८०	१६८०
१८३	२	राभ रक्षा	रामरक्षा
१८६	२८	जब	जज
१६०	३२	१६६४ ई०	१६६४ ई०
२००	३१	आहत	अहित
२०८	२४	महानुभावशक्तिस्तव	महानुभवशक्तिस्तव
२१६	१३	बाद	बार
२२४	१३	जन्य	अन्य
२२५	२	भश्ति	भक्ति
२२८	७	अत्तन्त	अत्यन्त
२३०	२	धर्मध्वजों	धर्मज्ञों
२३६	७	जौर	और
२५१	१२	ताम सुलभां	तामसुलभां
	१३	शासित हायना	शासितहायना
		न्मन्त्रि कन्या	न्मन्त्रिकन्या
२५२	४	श्रुतिस्मृ तिगिरो	श्रुतिस्मृतिगिरो
	२६	सर्वोप्कृष्टता	सर्वोत्कृष्टता
२५४	२	उद्वहात्	उद्वाहात्
	२०	निमायिकान्	निर्मायिकान्
	२३	बब्धवा	लब्ध्वा
२५५	२०	घोर घोराश्च	घोरघोराश्च
२५६	८	ललित कलनं	ललितकलनं
	२१	त्रुटिमणुमयि	त्रुटिमणुमपि
	२६	पर करुणया	परकरुणया
		किञ्चित्	काञ्चित्
२५७	७	बद्धवा	बद्ध्वा
	१०	रययितुमहो	रसयितुमहो
२५८	८	चारु सन्देश	चारुसन्देश
	१३	प्रसिद्धयो	प्रसिद्धयोः
२५६	शीर्षक	गुरुदव	गुरुदेव
२६२	३	स्मयमान मुखा	स्मयमानमुखा
	८	सगद् गद्	सगद् गद
	११	अमन्दानन्द सन्दोहम्	अमन्दानन्दसन्दोहम्
२६४	२१	वृत्ताम्	वृताम्
२६७	२०	दार्शदिक	दार्शनिक

ग्रन्थकार—डॉ० बलजिन्नाथ पंडित

जन्म स्थान—कुलगाम, कश्मीर

जन्म वर्ष—वि० सं० १९७२

विद्या स्थान—श्री रघुनाथ संस्कृत महाविद्यालय जम्मू

उपाधियां—शास्त्री	पंजाब वि० वि० लाहौर
एम० ए० संस्कृत	पंजाब वि० वि० लाहौर
पी० एच० डी०	पजाब वि० वि० चण्डीगढ़

अध्यापन कार्य—(१) मुख्याध्यापक संस्कृत पाठशाला, श्रीनगर

(२) लेक्चरार/प्रोफेसर, डिग्री कालेज कश्मीर

(३) लेक्चरार/रीडर, हिमाचल वि० वि० शिमला

(४) रिसर्च डायरेक्टर, कोष परियोजना, रणवीर विद्यापीठ जम्मू

पुस्तक निर्माण— पूज्यपाद जी के ग्रन्थों में से एक आध को छोड़कर शेष सभी के अनुवाद और टीकाएं हिन्दी और संस्कृत में।

स्वतन्त्र ग्रन्थ—काश्मीर शैव दर्शन पर कई एक ग्रन्थ संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजी में।

वर्तमान कार्य—कश्मीर शैव दर्शन के बृहत्कोष का निर्माण। १९८२ ई० में राष्ट्रपति से संस्कृत विद्वान् होने के कारण सम्मानपत्र प्राप्त किया।

विद्वद्रकल श्रीराधाकृष्ण धार्मिक संस्थान् (रजि.)
दिल्ली

ग्रन्थकार—डॉ० बलजिन्नाथ पंडित्

जन्म स्थान—कुलगाम, कश्मीर

जन्म वर्ष—वि० सं० १९७२

विद्या स्थान—श्री रघुनाथ संस्कृत महाविद्यालय जम्मू

उपाधियां—	शास्त्री	पंजाब वि० वि० लाहौर
	एम० ए० संस्कृत	पंजाब वि० वि० लाहौर
	पी० एच० डी०	पंजाब वि० वि० चण्डीगढ़

अध्यापन कार्य—(१) मुख्याध्यापक संस्कृत पाठशाला, श्रीनगर
(२) लेक्चरार/प्रोफेसर, डिग्री कालेज कश्मीर
(३) लेक्चरार/रीडर, हिमाचल वि० वि० शिमला
(४) रिसर्च डायरेक्टर, कोष परियोजना, रणबीर विद्यापीठ जम्मू

पुस्तक निर्माण—पूज्यपाद जी के ग्रन्थों में से एक आध को छोड़कर शेष सभी के अनुवाद और टीकाएं हिन्दी और संस्कृत में।

स्वतन्त्र ग्रन्थ—काश्मीर शैव दर्शन पर कई एक ग्रन्थ संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजी में।

वर्तमान कार्य—कश्मीर शैव दर्शन के बृहत्कोष का निर्माण। १९८२ ई० में राष्ट्रपति से संस्कृत विद्वान् होने के कारण सम्मानपत्र प्राप्त किया।

विद्वद्दूरकल श्रीराधाकृष्ण धार्मिक संस्थान् (रजि.)
दिल्ली